

संस्कृत निबन्ध-पथ-प्रदर्शक
Students' Guide to Sanskrit Composition

BY
VAMAN SHIVARAM APTE, M A

Translated Into Hindi

BY
RAM KRISHNA SHUKLA, M A, B T

ALLAHABAD
RAM NARAIN LAL
BOOKSELLER & PUBLISHER

1951

विषय-सूची

प्रथम भाग

सेक्शन पृष्ठ

१—८ १

अन्तर्देशन

समन्वय

पाठ

प्रथम पाठ—कर्ता और क्रिया का समन्वय ६—१७ ६

द्वितीय पाठ—(१) विशेष्य और विशेषण का समन्वय १८—२२ १३

(२) सम्बन्ध वाचक तथा सम्बन्धी का समन्वय २३—२५ १५

द्वितीय भाग

सम्बन्ध

तृतीय पाठ—कर्म कारक २०

सामान्य प्रयोग २६—३० २०—२२

विशेष प्रयोग ३१—३७ २३—२६

चतुर्थ पाठ—द्विकर्मक धातुएँ ८—४१ ३२

पञ्चम पाठ—प्रेरणार्थक (णिजन्त) ४२—४६ ३८

षष्ठ पाठ—तृतीया ४८

सामान्य प्रयोग ५०—५४ ४८—५०

विशेष प्रयोग ५५—५६ ५१—५३

सप्तम पाठ—चतुर्थी ५८

सामान्य प्रयोग	६०—६५	५८—६१
विशेष प्रयोग	६६—७१	६१—६५
अष्टम पाठ—पञ्चमी		७०
सामान्य प्रयोग	७२—७५	७०—७२
विशेष प्रयोग	७६—८६	७२—७८
नवम पाठ—सप्तमी		८४
सामान्य प्रयोग	८७—९२	८४—८५
विशेष प्रयोग	९३—१००	८६—९०
दशम पाठ—षष्ठी		९५
सामान्य प्रयोग	१०१—१०५	९५—९६
विशेष प्रयोग	१०६—११६	९६—१०८
एकादश पाठ—भावे षष्ठी तथा सप्तमी	१२०—१२५	११३

तृतीय भाग

व्याकरण में आने वाले शब्दों और रूँ का अर्थ

द्वादश पाठ—सर्वनाम		१२३
पुरुषवाचक	१२६—१२६	१२३—१२५
सङ्केतवाचक	१३०—१३५	१२५—१२६
सम्बन्ध वाचक	१६०	१३३—१२७
प्रश्न वाचक	१३४—१४०	१२७
अश्विनय वाचक	१३५—१३८	१२७
निजवाचक	१-६	१२६
त्रयोदशपाठ—		१३४
भूमिका	१४१	१३४
शतृशानच	१४२—१४७	१३४

विषय	संकेशन	पृष्ठ
स्यत्, न्यमान	१४८	१३७
कसु, कानच्	१४८	१३८
चतुर्दश पाठ—		१४२
क्, कवतु	१५०—१५४	१४२
कृत्यप्रत्यय (तव्य, अनीय, यत्, एयत्)	१५५—१५७	१४५
षड्दश पाठ—भाग १		१५२
अव्ययार्थक प्रत्यय-कृत्वा, ल्यप्	१५८—१६१	१५२
भाग २—		१५५
अम् मे अन्त होने वाले कृत् प्रत्यय	१६२—१८१	१५५
षोडश पाठ—तुमुन् प्रत्यय	१७२—१८७	१६५
सप्तदशपाठ—काल और वृत्तियाँ		१७०
भूमिका	१८२—१८४	१७०
वर्तमान काल (लट्)	१८५—१९०	१७१
आज्ञा (लोट्)	१९१—१९४	१७८
आशीर्लिङ्	१९५	१८०
अष्टादश पाठ—विधिलिङ्	१९६—२०६	१८४
ऊनविंशपाठ—लङ्, लिट् तथा लुङ्		१८४
अनद्यतनभूत (लङ्)	२०७—२०८	१८४
परोक्षभूत (लिट्)	२०९	१८६
सामान्यभूत (लुङ्)	२१०—२११	१८६
विंशतितम पाठ—दोनों भविष्यकाल (लुट्, लृट्)		२००
तथा क्रियातिपत्ति (लृङ्)		२००
दोनों भविष्यकाल (लुट् तथा लृट्)	२१२—२१५	२००
क्रियातिपत्ति (लृङ्)	२१६	२०२
कालों तथा वृत्तियों के प्रयोग पर कुछ और विचार	२१७—२४१	२०२

पूर्ण तथा उसके सातत्य बोवक रूप	२२१—२२५	२०४
गा, गी, गे	२२६—२३०	२०६
Should and Would	२३१—२३२	२०८
May (might) and Can (could)	२३३—२३५	२०९
Muxi and Ought	२३६—२३८	२०९
Conditional Sentences	२३९	२१०
Pleperfech Conditunal	२४१	२११
एकविंश पाठ—(अग, अथ, अधिकृत्य,		
अपि, अयि, अये, अहह, अहो)	२४२—२५१	२१६
द्वाविंशतितम पाठ—(आ, आ, आ, इति,		
इव, उत, एव, एवम्, ओम्)	२५२—२६२	२२६
त्रयेविंशतितम पाठ—(कच्चित्, क—क,		
कामम्, किम्, किमु, किमुत्,		
किपुन, किल, केवचम्, खलु)	२६३—२७१	२३७
चतुर्विंश पाठ—च (च-च), जातु तत्,		
तत्., तथा तावत्, तु	२७२—२७६	२४६
पञ्चविंश पाठ—दिष्टया, न, नाम, नु,		
ननु, न्नम्	२८०—२८७	२५६
षड्विंश पाठ—पुन	२८८—२९५	२६५—२६७
प्राय, प्रायेण,	२९६	२६५
वत्,	२९०	२६६
बलवत्,	२९१	२६६
सुहु,	२९२	२६६
यत्,	२९३	२६७
यत,	२९४	२६७
यत्सत्यम्	२९५	२६७

सप्तविंश पाठ—(यथा-तथा, यावत् तावत्)	२६६—३००	२७१
अष्टाविंश पाठ—(वरम-न वा, स्थाने, हन्त, हा, हि)	३०१—३०७	२८१
ऊनविंश पाठ—आत्मने पेद और परस्मैपद	३०८—३०९	२९१
भ्वादिगणी धातुएँ	३१०—३२५	२९२
त्रिंशत्तम पाठ—अदादिगणी धातुएँ	३२६—३२८	३०६
जुहोत्यादिगणी धातुएँ	३२९	३०७
दिवादिगणी धातुएँ	३३०	३०७
स्वादिगणी धातुएँ	३३१	३०७
तुदादिगणी धातुएँ	३३२—३३५	३०७
रुधादिगणी धातुएँ	३३६—३३७	३०८
तेनादिगणी धातुएँ	३३८—३४०	३०९
कृष्णादिगणी धातुएँ	३४१—३४२	३११
जुषादिगणी आर प्रेरणार्थक धातुएँ	३४३—३४५	३१२

चतुर्थ भाग

वाक्य—विश्लेषण तथा वाक्य—सकलन

(अभ्यास-सहित)

सेक्शन १

वाक्य विश्लेषण		३१८
भूमिका	३४६—३४९	३१८
साधारण वाक्य	३५०—३७६	३२०
उच्च श्रेय	३७२—३५५	३२०
कर्म अथवा विधेय की पूर्ति	३५७—३६०	३२३
विधेय	३६३—३६७	३२५
विधेय का विस्तार	३६८—३६९	३२८

कालवाचक क्रियाविशेषण विस्तार	३७०	३२८
स्थानवाचक क्रियाविशेषण विस्तार	३७१	३२९
प्रकारवाचक क्रियाविशेषण विस्तार	३७२	३३०
कार्य-कारण-वाचक क्रिया		
विशेषण विस्तार	३७३—३७५	३३२
साधारण वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण	३७६	३३३
उदाहरण		३३४
मिश्रित वाक्य	३७७—३८१	३३६
सज्ञा उपवाक्य	३७८—३८०	३३६
विशेषण उपवाक्य	३८१—३८२	३३७
क्रियाविशेषण उपवाक्य	३८३—३८७	३३८
मिश्रित वाक्यों का विश्लेषण	३८१	३४३
उदाहरण		३४३
सयुक्त वाक्य	३८२—३८८	३४५
सामूहिक सम्बन्ध (Cumulative Relation)	३८४	३४६
विरोध सूचक सम्बन्ध (Adversative Relation)	३८५	३४७
आनुमानिक सम्बन्ध (Illative Relation)	३८६—३८७	३४८
सयुक्त वाक्यों का विश्लेषण	३८८	३४९
उदाहरण		३५०
अभ्यासार्थ विविध उदाहरण		३५१
द्वितीय सेक्शन		
वाक्यों में शब्दों का क्रम	३८९—४१४	३५४

तृतीय सेक्शन

वाक्यों का संश्लेषण		३६२
भूमिका	४१५	३६२
साधारण वाक्य	४६—४२०	३६६
मिश्रित वाक्य	४२१—४२३	३७१
सयुक्त वाक्य	४२४—४२६	३७४

चतुर्थ सेक्शन

पत्र लेखन		३७६
भूमिका	४२७—४०	३७६
घरलू पत्र	४३१—४३३	३८२
विविध पत्र	४३४—४३८	३८५
अभ्यास		३८८
कठिन शब्दों का व्याख्या		३९०—४२८
परिशिष्ट १—चुने चुने शब्द समूह तथा मुहाविरै		४२९—४७४
परिशिष्ट २—शुद्ध करने के लिए वाक्य		४७५—४८०
परिशिष्ट ३—शब्द कोश		४८१—४९८

इस पुस्तक में प्रयुक्त सङ्केतों की सूची

भर्तृ० या भर्तृहरि	से	भर्तृहरिशतक समझना चाहिए
		“भर्तृ० २” से “नीतिशतक” अभिप्रेत है
		२ के बाद वाले अंक से श्लोक संख्या अभिप्रेत है
		“भर्तृ० ६” से “वैराग्यशतक” अभिप्रेत है
		३ के बाद दिए हुए अंक से श्लोक संख्या अभिप्रेत है
श्रीमद्भगवद्०	से	श्रीमद्भगवद्गीता समझना चाहिए
भट्टि०	से	भट्टिकाव्य—अध्याय संख्या—श्लोक संख्या

दशकुमार०	से	दशकुमार चरित समझना चाहिए	
ग० म०	से	गण रत्न महोदधि	” ”
हितोप०	से	हितोपदेश	” ”
ह० च०	से	हर्षचरित	” ”
काद०	से	कादम्बरी	” ”
किरात०	से	किरातार्जुनीय	” ”
कुमार०	से	कुमारसम्भव	” ”
मालविका०	से	मालविकाग्निमित्र नाटक	
मालती०	से	मालती माधव नाटक	” ”
मनु०	से	मनुस्मृति	” ”
मृच्छ०	से	मृच्छकटिक नाटक	” ”
मुद्रा०	से	मुद्राराक्षस	” ”
महावीर०	से	महावीर-चरित नाटक	” ”
नागा०	से	नागानन्द	” ”
पञ्च०	से	पञ्चतन्त्र—तन्त्रसख्या—कथा सख्या	
रघु०	से	रघुवश—सर्ग संख्या—श्लोक सख्या	
रत्न०	से	रत्नावली—नाटिका	
शकु०	से	शकुन्तला—नाटक	
शा० भा०	से	शाङ्कर भाष्य	
शिशु०	से	शिशुपालवध—सर्ग सख्या—श्लोक सख्या	
सि० कौ०	से	सिद्धान्तकौमुदी	
सुभाषित०	से	सुभाषितरत्नाकर	
उत्तर०	से	उत्तररामचरित नाटक—अंक सख्या—श्लोक सख्या	
विक्रमो०	से	विक्रमोवशाय नाटक—अंक सख्या—श्लोक सख्या	
वासव०	से	वासवदत्ता	
वेणी०	से	वेणीसहार नाटक—अंक सख्या—श्लोक सख्या	

संस्कृतनिबन्ध-पथ-प्रदर्शक

— — — — * ० * — — — —

भाग १

अन्तर्दर्शन

संस्कृत-जैसी प्रत्यय-प्रधान भाषाओं में “वाक्यरचना विधि” का न तो कोई निश्चित क्षेत्र हा है, न उसका कोई विशेष महत्व ही है। प्रत्यय-निष्पन्न पदों में स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है कि वाक्य के अन्दर आए हुए एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ क्या सम्बन्ध है। इसलिए, यदि वाक्यरचना के साधारण क्रम का पालन न किया जाय, तो भी कोई क्षति अथवा अशुद्धि नहीं हो सकती। उदाहरणार्थ हिन्दी का एक वाक्य लीजिए—“राम ने गोविन्द को देखा।” यहाँ पर यदि शब्दों के विन्यास का स्थान बदल दिया जाय, तब भी अर्थ में कोई अन्तर न पड़ेगा। “गोविन्द को राम ने देखा”, “देखा राम ने गोविन्द को”, “देखा गोविन्द को राम ने”—इन सभी वाक्यों का अर्थ एक ही है। यही

दशा सस्कृत मे भी है। “रामो गोविन्दमपश्यत् गोविन्द रामोऽपश्यत्, अपश्यद् रामो गोविन्दम् — इन सभी वाक्यको का एक ही अर्थ है। इसमें यह निष्कर्ष निकला कि सस्कृत-वाक्यों मे शब्दों का क्रम कोई विशेष महत्व नहीं रखता। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वाक्य-रचना मे पूर्ण स्वेच्छाचारिता बरती जा सकती है। कुछ ऐसे स्थल हे जहाँ शब्दों को एक क्रमविशेष के अनुसार रखना आवश्यक हो जाता है।

सस्कृतव्याकरणों मे रचना और क्रम के नियम बहुत कम दिये जाते हैं। साधारणतया यह समझा जाता है कि सिद्धान्त-कौमुदी के कारक-प्रकरण मे वाक्य-रचना का विवेचन किया गया है। परन्तु ऐसा समझना ठीक नहीं। सिद्धान्त कौमुदी के कारक-प्रकरण मे वास्तविक वाक्य-रचना के केवल एक अङ्ग अर्थात् मन्त्रन्ध (Government) या अन्वय का विवेचन किया गया है। वाक्यों मे शब्दों को जोड़ते समय उपसर्ग, अव्यय और व्याकरणमन्त्रन्धी रूपों के प्रयोग और अर्थ भी ध्यान मे रखने चाहिएँ। सस्कृतव्याकरणों मे जहाँ शब्दों की रचना समझाई गई है, वहाँ साथ ही साथ उन शब्दों का प्रयोग भी समझाया और दिया गया है। उदाहरणार्थ ‘लट् शत्रुशानचावप्रथमा, मानाधिकरणे’ मूल मे यह बताया गया है कि शत्रुन्त और शानजन्त शब्द किस प्रकार बनाए जाते हैं और उनका प्रयोग कब होता है।

यह पहिले ही कहा जा चुका है कि सस्कृत मे शब्दक्रम का कोई विशेष महत्व नहीं होता। परन्तु कतिपय ऐसे स्थल हे जहाँ शब्द-क्रम पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस विषय पर चौथे भाग मे कुछ नियम दिए जायेंगे।

२—सस्कृत मे तीन ‘पुरुष’ और तीन ‘लिंग’ होते हैं। सस्कृत मे ‘पुरुषों’ का प्रयोग बिल्कुल वैसा ही होता है जैसा हिन्दी मे।

परन्तु सस्कृत में सज्ञाओं के लिंगों का अन्तर समझाने के लिए कोई निश्चित नियम नहीं बनाए जा सकते । सस्कृत में लिंग-वर्गीकरण बिल्कुल मनमाना है । अलवत्ता जहाँ पुरुष और स्त्री बिल्कुल स्पष्ट मालूम पड़ते हैं और पुरुष तथा स्त्री का अन्तर स्वाभाविक है, वहाँ तो अवश्य कहा जा सकता है कि सज्ञाओं में किन्हीं विशेष नियमों का पालन किया गया है । उदाहरणार्थ 'चटक' (नर गौरैया), 'चटका' (मादा गौरैया) इसी प्रकार 'हस. हसी अजः अजा' इत्यादि ।

लिंग के बारे में सस्कृत में कितना मनमानापन है—यह तो इसी से जाना जा सकता है कि 'स्त्री' के बोधक सस्कृत में 'दार', 'कलत्र' और 'भार्या'—ये तीन शब्द हैं, और तीनों भिन्न भिन्न लिंग में हैं—'दार' पु लिंग है, 'कलत्र' नपुंसकलिंग, और 'भार्या' स्त्रीलिंग । इसी प्रकार 'शरीर' के बोधक 'काय', 'तनु' और 'शरीर'—ये तीन शब्द हैं, और तीनों भिन्न भिन्न लिंग में हैं—'काय' पु लिंग है, 'तनु' स्त्रीलिंग, और 'शरीर' नपुंसक लिंग । इसलिए लिंग का अध्ययन प्रायः कोष से किया जाना चाहिए ।

सस्कृत में तान वचन होते हैं । इनके प्रयोगों की कुछ विशेषताएँ नीचे दी जाती हैं—

३—सस्कृत में तीन वचन होते हैं—एक वचन, द्विवचन, बहुवचन । एक वचन से 'एक' का बोध होता है, परन्तु प्रायः एक वचन से 'सम्पूर्ण जाति' का भी बोध होता है, जैसे 'नर' (एक आदमी) । 'सिंहः सर्वेष्वपटेषु बलिष्ठः' (सिंह सब जानवरों से बली होता है) ।

'सम्पूर्ण जाति' या 'वर्ग' का बोध कराने के लिए एक वचन अथवा बहुवचन दोनों में से किसी का भी प्रयोग हो सकता है । 'ब्राह्मणो की पूजा की जानी चाहिए' इस अर्थ का बोध कराने के लिए 'ब्राह्मणा, पूज्या, अथवा 'ब्राह्मण पूज्य' दोनों में से किसी का भी प्रयोग हो सकता है ।

४—द्विवचन में 'दो' का बोध होता है, 'बालकौ' का अर्थ हुआ 'दो लड़के', 'दम्पती' का अर्थ हुआ 'जोड़ा'—अर्थात् 'स्त्री और पुरुष'। परन्तु 'द्वय, द्वितय, युगल, युग, द्वन्द्व' इत्यादि 'दो' या 'जोड़ा' का अर्थ देने वाले शब्द सर्वदा एकवचन में रक्खे जाते हैं, जैसे 'बाहुद्वयम्' का अर्थ हुआ एक जोड़ा भुजाएँ अर्थात् दो भुजाएँ, 'सुकुमारचरणयुगलम्' का अर्थ हुआ 'एक जोड़ा कामल कोमल चरण अथवा दो कोमल कोमल चरण'।

कभी-कभी द्विवचन जो कि एकशेषद्वन्द्वसमास के रूप में आता है एक ही वग के स्त्री तथा पुरुष दोनों का बोधक होता है जैसे 'जगत पतरो वन्द पावता-परमेश्वरा' (मे विश्व के माता पिता पार्वती तथा परमेश्वर (शिव) को प्रणाम करता हूँ)।

५—हिन्दी में बहुवचन में प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्दों का अनुवाद संस्कृत में द्विवचन में होना चाहिये जैसे, 'उसने अपने हाथ पोंछे' का अनुवाद 'हस्ता पादा च प्राचालयत' होगा 'उमने आँखें मूँद ली' का अनुवाद 'स नेत्रे न्यमीलयत' होगा।

६—बहुवचन 'दो' से अधिक का बोध कराता है और एक वचन के समान सम्पूर्ण वग या जाति का प्रतीक है, जैसे, ग्वग (चिड़ियों) अथवा (चिड़ियों का समूह)।

संस्कृत में कुछ ऐसे शब्द हैं जो आकार अथवा स्वरूप में तो बहुवचनान्त हैं पर अर्थ में 'एक' ही के बोधक हैं जैसे, दारा (स्त्री), इसी प्रकार आप (जल), वर्षासु (वर्षा में), सिकतासु (बालू में), अमव (प्राण), प्राणा (प्राण) इत्यादि।

कभी कभी बहु वचन का प्रयोग आदर दिखलाने के लिए होता है जैसे, 'इति शंकराचार्या' (श्री पूज्य शंकराचार्य जी का ऐसा मत है)।

यदि वक्ता उच्चकोटि का व्यक्ति हो, तो उत्तम पुरुष में बहुवचन

का प्रयोग एकवचन के स्थान पर भी होता है, जैसे, 'वयमपि भवत्यौ मखीगत किमपि पृच्छामः' (हम भी—अर्थात् मैं—आप दोनों से आपकी सखी के विषय में कुछ पूछत है ।) इसी प्रकार 'वयमपि स्वकर्मण्यभियुज्यामहे' (हम भी—अर्थात् मैं—अपने कार्य में तत्पर होंगे । (परन्तु यह विधि सर्वथा आवश्यक अथवा अनिवार्य नहीं है, जैसे, कित्वरण्यमढो नयमनभ्यस्तरथचर्या. (उत्तर०५) ।

७—संस्कृत में देशों के नाम सर्वदा बहुवचनान्त होते हैं क्योंकि वे वहाँ के निवासियों के नाम पर बने होते हैं, जैसे, अह गतः कदाचित् कलिगान (दशकुमार० २७)—एक बार मैं कलिगदेश गया अर्थात् कलिग लोगों के देश गया ।

टिप्पणी—जब देशों के नाम के साथ 'देश' विषय' इत्यादि शब्द लगे रहते हैं तब एकवचन का ही प्रयोग होना चाहिए, जैसे 'मगधदेशे पाटलिपुत्र नाम नगरम्'—मगध देश में पाटलिपुत्र नामक एक नगर है ।

८—व्यक्तिवाचक सज्ञाओं का बहुवचन प्रायः वश अथवा परिवार का बोध कराता है, जैसे, रघूणामन्वय वक्ष्ये (खुवश० १।६)—मैं रघुवशियों का परिवार वर्णन करूँगा । 'जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः'—जनकवशियों और रघुवशियों का सम्बन्ध किसे प्रिय नहीं लगता ।

प्रथम पाठ

९—“जब दो सम्बद्ध शब्द एक ही लिंग, वचन, पुरुष अथवा काल के होते हैं, तब वे एक दूसरे के अन्वयी अथवा परस्पर समन्वित कहे जाते हैं। किसी एक पुरुष अथवा स्त्री के विषय में हम ‘वह’ का प्रयोग करेंगे, परन्तु जब बहुत से पुरुषों अथवा स्त्रियों के विषय में बोलना होगा तब ‘वे’ का प्रयोग करेंगे”—वेन।

संस्कृत में तीन प्रकार के समन्वयों पर ध्यान देना चाहिये —

- (१) कर्ता और क्रिया का समन्वय
- (२) सज्ञा और विशेषण का समन्वय
- (३) सम्बन्धी और सम्बन्धवाची का समन्वय

कर्ता और क्रिया का समन्वय

१०—जिसके विषय में कुछ कहा जाता है उसे वाक्य का कर्ता कहते हैं और प्रथमा विभक्ति में रखते हैं। क्रिया का वचन और पुरुष कर्ता के अनुसार होता है अर्थात् जिस वचन और जिस पुरुष का कर्ता होगा उसी वचन और उसी पुरुष की क्रिया भी होगी, जैसे, आसीद्राजा शूद्रका नाम (कादम्बरी)—शूद्रक नाम का राजा था। साधयामो वयम्(शकु०१)—हम लोग जाते हैं।

११—विधेय (अथवा उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाता है वह) या तो क्रियापद होगा जैसा कि ऊपर के उदाहरण में है या सज्ञापद होगा या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से असंघात से युक्त कोई विशेषण होगा। ऐसी दशाओं में सज्ञापद अपने स्वाभाविक लिंग में प्रयुक्त होगा और कारकमात्र में, न कि लिंग में भी, उद्देश्य अथवा कर्ता का अनुगामी होगा, जैसे, सा कुलपतेरुच्छ्वान्तामनः (शकु० ३)—वह कन्या मानो कुलपति का प्राण है। यहाँ विधेय उच्छ्वसितम् का प्रयोग अपने स्वाभाविक लिंग अर्थात् नपुंसकलिंग में हुआ है और यह शब्द कर्ता 'सा' का केवल कारक में अनुगामी हुआ है, न कि लिंग में भी, अर्थात्, जैसे कर्ता 'सा' प्रथमा विभक्ति में है उसी प्रकार विधेय उच्छ्वसितम् भी प्रथमा विभक्ति में है। 'ककुद वेदविदाम्—जो कि वेद जानने वालों के कूबड (अग्रणी) हैं।

(विशेषण का समन्वय द्वितीय पाठ में दिया जायगा)

(क) ऐसी दशाओं में क्रिया सर्वदा कर्ता (उद्देश्य की अनुगामिनी होती है जैसे, तस्मान्स्वा त्वमग्नि (उ० ५)—इसलिए तू मित्र है।

(ख) जब पात्र, आसन, स्थान, पद, प्रमाण, भाजन इत्यादि शब्द विधेय के तौर पर प्रयुक्त होते हैं, तब ये सर्वदा एक वचन और नपुंसकलिंग में होते हैं चाहे कर्ता (उद्देश्य) किसी भी लिंग या वचन में हो, और क्रियापद कर्ता का अनुगामी होता है न कि विधेयस्थानाय सज्ञा का, चाहे यह विधेयस्थानीय सज्ञा जिस भी स्थान पर हो, जैसे गुणा पूजास्थान गुणेषु (उ० ४)—गुणी पुरुषों में गुण ही पूजा का हेतु होता है आयामिश्रा प्रमाणम् (मालविका० १)—आप (श्रीमान्) प्रमाण हैं अर्थात् आपकी सम्मति मान्य है, मन्वदः पदमापदाम् (हितोप०)—वन विपत्तियों का घर है, त्वमग्नि महसा भाजनम् (मालती० १)—आप तेज के आधार हैं, विविधमहमभूव पात्रमालोकितानाम् (मालती० १)—म अनेक प्रकार से उस (स्त्री) की दृष्टि का विषय हुआ। यहाँ पर

गुणा. पूजास्थानमस्ति और 'अह पात्रमभूत्' कहना अशुद्ध प्रयोग होगा चाहे स्थानम् और 'पात्रम्' शब्द वाक्य में किसी भी स्थान पर हो ।

१२—'होना' मालूम पड़ना 'दिखाइ पड़ना' इत्यादि अपूर्ण विधेय वाली क्रियाओं का अर्थ पूरा करने के लिए जो सजा अथवा विशेषण शब्द प्रयुक्त होता है वह प्रथमा विभक्ति में रक्खा जाता है, जैसे, यदि सर्ग एष त (रघु० ३।५१)—यदि आप का यह सकल्प है । प्रभुर्बुभू पुभुवन-त्रयस्य (शिशु० १।४६)—तीनों लोकों का स्वामी होने की इच्छा करता हुआ । मदनः क्लृप्ते यमाज्ज्यते (शकु० ३) ।

(क) पुकारना, 'नाम रखना', 'बनाना', 'सोचना', 'चुनना', 'नियुक्त करना' इत्यादि अपूर्ण विधेय वाली सकर्मक क्रियाओं के कर्मवाच्य में भी उपर्युक्त ही नियम लगता है, जैसे, कुक्कुरो व्याघ्रः कृतः (हितोप० ४)—कुत्ता बाघ बना दिया गया । नाय मूर्खो मन्नव्य—वह मूर्ख नहीं समझा जाना चाहिए ।

१३—'और' द्वारा जुड़े हुए दो या दो से अधिक सजापद जब कर्ता होते हैं, तब क्रिया कर्तृपदों के सयुक्तवचन की अनुगामिनी होती है, जैसे, तयोज्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च मागधी (रघु० १।५७)—राजा और रानी मागधी-दोनों ने उनके पाँव पकड़े ।

(क) जब सजाएँ इकट्ठा नहीं मानी जाती, बल्कि प्रत्येक पृथक् पृथक् समझी जाती हैं, अथवा वे सब एक साथ मिलकर केवल एक विचार-विशेष की वाचक होती हैं तब क्रिया एकवचन की होती है, जैसे, न मा त्रातु तातः प्रभवति न चाम्ना न भवती (मालती० २)—मुझे न तो मेरे पिता बचा सकते हैं, न मेरी माता, न आप ही । पटुस्त्व मत्यर्वादिन्व कथायोगेन बुध्यते (हितोप० १)—निपुणता और सत्यवादिता वार्तालाप से प्रकट होती है ।

(ख) कभी-कभी क्रिया आसन्नतम कर्तृपद के अनुरूप होती है और शेष कर्तृपदों के साथ समझ लिए जाने के हेतु छोड़ दी जाती है, अहम्

रात्रिश्च उभे च मन्ध्ये धर्मोपि जानाति नरस्य वृत्तम् (पचतत्र १।४)
—दिन और रात, दोनो गोबूलियाँ, और धर्म भी मनुष्य के कार्य को जानते हैं ।

१४—‘अथवा’ ‘या’ ‘वा’ द्वारा जुड़े हुए एकवचनास्त कर्तृपद के लिए एक वचन की क्रिया आती है, जैसे, रामो गोविन्दः कृष्णो वा गच्छतु—राम या गोविन्द या कृष्ण जाय । शिशुत्व स्त्रैण वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतः (उत्तर०४ ।

(क) जब कर्ता में भिन्न भिन्न वचनो के शब्द होते हैं, तब क्रिया आसन्नतम कर्तृपद के अनुरूप होती है, जैसे, ते वा अय वा पारितोषिकं गृह्णातु—चाहे वे लोग चाहे यह आदमी इनाम ले ।

१५—जब कर्ता में भिन्न भिन्न पुरुषो के दो या दो से अधिक पद ‘और’ द्वारा जुड़े होते हैं तब क्रिया उनके सयुक्त वचन के अनुरूप होती है । जब कर्ता में उत्तम, मध्यम तथा अन्य (प्रथम)—सभी पुरुषों के पद होते हैं, तब क्रिया उत्तम पुरुष की होती है । परन्तु जब कर्ता में केवल मध्यम और अन्य (प्रथम) पुरुष के पद हो तब क्रिया मध्यम पुरुष की होती है, जैसे, त्व चाह च पचावः (महाभाष्य)—तू और मैं पकाते हैं । इसी प्रकार ते किरारः अह च श्वो ग्राम प्रतिष्ठेमहि—वे नौकर और मैं कल गाँव को चल देगे । त्व चैव सोमदत्तिश्च कर्णश्चैव तिष्ठत (महा-भारत७।८७।१२)—तू और सोमदत्ति और कर्ण रहे ।

१६—जब कर्ता में ‘अथवा’ या ‘वा’ द्वारा जुड़े हुए भिन्न भिन्न पुरुषों के दो या दो से अधिक पद आते हैं तब क्रिया का वचन और पुरुष आसन्नतम पद के अनुरूप होता है, जैसे, उसने अथवा तुम लोगों ने यह काम किया है—प वा यूयं वा एतत् कर्म अकुरुत । या तो वे लोग या हम लोग इस कठिन कार्य को कर सकते हैं—ते वा वयं वा इदं दुष्कर कार्यं सम्पादयितुं शक्नुमः ।

१७—जब दो या दो से अधिक कर्तृपद किसी सजा या सर्वनाम के समानाधिकरण होते हैं, तब विधेय सजा अथवा सर्वनाम के अनुरूप होता है, जैसे, माना मित्र पिता चेति स्वभावात् त्रितय हितम् (हितोप० १)—माता, मित्र और पिता—ये तीनों स्वभाव से ही हितैषी होते हैं।

अभ्यास

- १—उर्वशी सुकुमार प्रहरण महेन्द्रस्य । प्रत्यादेशो रूपगर्वितायाः
श्रियः । अलंकारः स्वर्गस्य ।
- २—सर्वत्रौदारिकस्याभ्यवहार्यमव विषयः ।
- ३—हा कथं महाराजदशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या ।
क एतत् प्रत्येति सैवेयमिति ।
- ४—सार्थवाहस्यार्थपते वमर्दका बहिश्चराः प्राणाः ।
- ५—ममापि दुर्योधनस्य शकास्थानं पाडवाः ।
- ६—त्वं चाहं च वृत्रहन्नुभौ सप्रयुज्यावहै ।
- ७—प्रवृद्ध यद्वैर मम खलु शिशोरेव कुरुभि
न तत्रार्यो हतुर्न भवति किरीटी न च युवाम् ।
- ८—त्व जीवित त्वमसि मे हृदयं द्वितीयम्
त्वं कौमुदी नयनयोरमृत त्वमंगे ।
- ९—बलवानपि निस्तेजाः कस्य नाभिभवास्पदम् ।
निःशकं दीयते लाकैः पश्य भस्मचये पदम् ।
- १०—तीर्थोदकं च बह्विधं नान्यतः शुद्धिमर्हतः ।
- ११—इद्वान्कुवश्यः ककुदं नृपाणां ककुत्स्थ इत्याहितलक्षणोऽभूत् ।

अभ्यासार्थं अतिरिक्त वाक्य

- १—अस्ति ताम्रदेकदा प्रसग्न कथिन एव मया माधवाभिधानः कुमारो यस्त्वमिव मामकीनस्य मनसो द्वितीय निबन्धनम् (मालती० ३) ।
- २—एकस्मिन् जीर्णकोठरे जायया सह निवसतः पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य कथमपि पितुरहमेवैको विधिवशात्सुखमभवत् (काद०) ।
- ३—देव, काचिच्चातुडालकन्यका शुक्रमादाय देव विज्ञापयति । सकलभुवनतलसर्वं रत्नानामुदधिरिवैकभाजनं देव । विहगमश्चायमाश्चर्यंभूतो निखिलभुवनतलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमागताहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुमिति (काद०) ।
- ४—आयु कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च पचैतान्यपि सुज्जयन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनिः (द्वितीय०) ।
- ५—रहस्यभेदो याचना च नैष्ठुर्यं चलचित्ता । क्रोधो निःसत्यता द्यूतमेतन्मित्रस्य दूषणम् (द्वितीय०) ।
- ६—अदयमातातृत्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे (रघु० ३ । १६) ।
- ७—निसर्गभिन्नास्पदमेकमस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वतो च (रघु० ६ । २९) ।
- ८—व्यतिकरितदिगन्ताः श्वेतमानैर्यशोभिः
सुकुनविलसितानां स्थानमूर्जस्वलानाम् ।
अकलितमहिमानः केतनं मङ्गलानाम्
कथमपि भुवनेऽस्मिस्तादृशाः सम्भवन्ति ॥ (मालती०)

मस्कृत में अनुवाद कीजिए

- १—वग के राजा ने युद्ध में प्राण दे दिए ।
- २—जब उस स्त्री ने वह भयकर दृश्य देखा, तो उसके हाथ पाँव काँपने लगे ।

- ३—ऐ गोविन्द, तुम मेरे प्राण, मेरे आनन्द, मेरे गौरव के पात्र, और मेरे सारे ससार हो ।
- ४—व लोग बिना अपराध के ही सन्देह के पात्र हो गए ।
- ५—अच्छा पत्नियों सारे धार्मिक कृत्यों के मूल कारण हैं ।
- ६—ऐ गजन्, भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, तू, बलशाली भोज, शकुनि, द्रौणि और मैं आप की सेना हूँ ।
- ७—जब वह घोड़े पर से गिरा, उस समय राम, गोपाल और हम दोनों उपस्थित थे ।
- ८—तुम और कृष्ण इस काम को पूरा करने का प्रयत्न क्यों नहीं करते । क्या यह बहुत कठिन है ।
- ९—आज्ञाकारिता, सत्यवादिता, अभिमान का अभाव, अपने काम में परिश्रमशीलता—ये नौकर के गुण हैं ।
- १०—तुमने, राम ने और मैं ने दण्डकारण्य में मुखपूर्वक समय बिताया ।
- ११—इस ससार में धन असंख्य विपत्तियों का कारण है ।
- १२—हरि का पुत्र परशुराम अपनी कक्षा का रत्न तथा अपने कुल का आभूषण है ।
- १३—चाहे वह आदमी, चाहे ये लडके इस फल को ले ।
- १४—हरि और मैं, अथवा तुम और कृष्ण इस काम को कर सकते हो, न तो गोपाल, न उसके छोटे भाई इसे कर सकते हैं ।
- १५—तुम दोनों को, पुष्पमित्र के तीनों भृत्यों को और दो और आदमियों को राजक्रीय दरबार (सभा) में जाना चाहिए ।

द्वितीय पाठ

विशेष्य और विशेषण का समन्वय

१८—अंग्रेजी भाषा में विशेष्य के लिए के कारण विशेषण के स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। विशेष्य चाहे पु लिंग हो, चाहे स्त्रीलिंग हो, चाहे नपु सकलिंग हो, पर विशेषण का स्वरूप सदा एक सा रहेगा। परन्तु संस्कृत में विशेषण का वही लिंग, वही वचन और वही कारक होगा जो विशेष्य का होगा, चाहे विशेषण कृत्प्रत्ययनिष्पन्न हो, चाहे सर्वनामिक हो, चाहे साधारण हो जैसे गच्छन्ती नारा, का वृत्ति, तन सखम्, शाभनानि गृहाणि, शाभनेभ्यः गृहभ्यः, शाभनाभ्यो वापाभ्यः, हरि पर्यन्तं मुच्यते। तात्पर्य यह कि संस्कृत में विशेषणों के रूप ठीक उन्हीं प्रकार लिंग, वचन और कारक में चलते हैं जैसे कि सजा अथवा सर्वनाम के।

विशेष—संख्याबोधक विशेषण साधारण विशेषणों से भिन्न होते हैं। उनके प्रयोग के विशेष नियम हैं जो व्याकरण की पुस्तकों में मिलेंगे।

१९—जब विशेषणों का प्रयोग समानाधिकरण अथवा बहुव्रीहि समास में होता है, तब उनका मौलिक तथा अविकृत रूप ही प्रयुक्त होता है जैसे कृष्णमृग—काला हिरन रक्तनेत्रा—लाल नेत्र वाली, रूपवद्धार्था—स्वसूरत पत्नी गृहीतधनु—लिया हुआ धनुष, अन्य-मक्रातद्द्वयो नर—ऐसा मनुष्य जिसका हृदय किसी दूसरी में लगा हो।

(क) उपर्युक्त नियम के कुछ अतिरेक भी हैं।

जब स्त्रीलिंग विशेषण 'अभिवान' या 'नाम' माना जाता है अथवा

जब पूरणी-सख्या-वाचक स्त्रीलिंग-विशेषण किसी ममास का पूर्वपद होता है, अथवा जब पूर्वपद किसी वर्गविशेष का वाचक होता है, तब स्त्रीलिंग का प्रत्यय लुप्त नहीं होता, बल्कि बना रहता है, जैसे, दत्ताभार्य पचमीभार्य, शूद्राभार्य, सुकेशीभार्य, खौघ्नीभार्य । विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए सिद्धान्त-कौमुदी में पाणिनीय सूत्र ६।३।३४-४१ पर की गई व्याख्या पढ़िए ।

२०—जब कृत्प्रत्ययनिष्पन्न विशेषण विधेय के तौर पर प्रयोग में आते हैं और विधेय के तौर पर प्रयुक्त की हुई एक समानाधिकरणी सजा उद्देश्य के बाद आती है तब कृत्प्रत्ययनिष्पन्न विशेषण उद्देश्य के अनुसार होता है (११ अनुच्छेद देखिए), जैसे मालात्रिका उपायनं भेषिता (मालविका० १)—मालविका उपहार के तौर पर भेज दी गई ।

२१—जब एक ही विशेषण दो या अधिक विशेष्यो की विशेषता बतलाता है तो विशेषण का वही वचन होता है जो कि सब विशेष्यो का इकट्ठा मिलकर होता है । रही लिंग की बात, जब विशेष्य पु लिंग और स्त्रीलिंग होंगे, तब विशेषण पु लिंग होगा । परन्तु जब विशेष्यो में पु लिंग, स्त्रीलिंग और नपु सकलिंग सभी मिले रहेंगे तब विशेषण नपु सकलिंग होगा, जैसे, पद्मपातिनौ अनयोः अहं देवी च (मालविका० १)—मैं और रानी इन दोनों के पद्मपाती हैं । तस्मिन् सय धृत ज्ञान तपः शच दमः शमः । ब्रवाणि पुरुषव्याघ्रे लाकपालसमे नृपे (महाभारत ३।५८।१०)—लोकपालों की समता करने वाले तथा मनुष्यों में श्रेष्ठ उस राजा में सत्य, माहस, ज्ञान, तपस्या, पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, और शान्ति दृढ़ हैं ।

विशेष—यह नियम पाणिनीय सूत्र १।२।७२ त्यदादीनि सबैर्नित्यम् के आधार पर बना है । इस पर एक यह वार्तिक है—“त्यदादितः शपे पुंनपु सकतो लिंगवचनानि, सा च देवदत्तश्च तौ, तच्च देवदत्तश्च यज्ञदत्ता च तानि, तच्च देवदत्तश्च ते ।”

२२—प्रायः सस्कृत में विशेषण निकटतम विशेष्य के अनुरूप होता है जैसे, यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च (उत्तर राम० १)—जिसकी वीरता से हम तथा तीनो लोक सुखी हैं, कामश्च जृम्भतगुणा नवयौवनं च (मालविका० १)—कामदेव तथा नई युवावस्था दोनों ने अपनी अपनी शक्ति प्रदर्शित की । यहाँ हम लोगोको लिगविपरिणाम” की विधि स्मरण रखनी चाहिए । लिगविपरिणाम विधि का अर्थ यह हुआ कि जो दूसरा विशेष्य प्रयोग में आया है उसके अनुसार विशेषण का लिग समझकर लगा लेना चाहिए ।

सम्बन्धवाचक तथा सम्बन्धी का समन्वय

२३—सस्कृत में सम्बन्धवाचक सर्वनाम तथा उसके सम्बन्धी के सम्बन्ध में कोई विचित्र विशेषताएँ नहीं हैं । सम्बन्धवाचक सर्वनाम के लिग, वचन और कारक उसके सम्बन्धी के लिग, वचन और कारक के अनुसार होते हैं और सम्बन्धवाचक का जैसा भी सम्बन्ध उसके उपवाक्य के साथ होगा उसी सम्बन्ध द्वारा अथवा उसी सम्बन्ध के आधार पर सम्बन्धवाचक का कारक निर्णीत होगा । सस्कृत के अन्य सर्वनामों की भाँति सम्बन्धवाचक अकेला भी आ सकता है अथवा विशेषण के तौर पर भी ।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम का जिस सजा के साथ सम्बन्ध होता है प्रायः उसके पहिले ही वह आता है । अथवा सम्बन्धवाचक सर्वनाम अकेला आ सकता है और उससे सम्बन्ध रखने वाली सजा संकेतवाचक सर्वनाम के साथ आ सकती है । कभी कभी तो सम्बन्धवाचक में सम्बन्ध रखने वाली सजा बिल्कुल प्रकट ही नहीं का जाता अन्तर्या मृग्यते स स्थाणुर्वो निःश्रेयसायास्तु (विक्रमोर्वशीय १)—वह स्थाणु जो अन्तःकरण में खोजे जाते हैं तुम लोगों को सर्वाच्च सुख दे । बुद्धिर्यस्य बलं तस्य

(पञ्चतन्त्र १।६)—जिसके पास बुद्धि होती है उसके पास बल होता है ।
 ।धगस्मान् सर्वा ये एकाकिना बटुना सह युध्यामहे—हम सबो को
 बिकार है जो अकेले लडके के साथ लड रहे हैं ।

२४—जब सम्बन्धवाचक सर्वनाम का विवेक कोई ऐसा सज्ञा शब्द होता है जिसका लिंग उसके सम्बन्धी के लिंग से भिन्न होता है, तब सम्बन्धवाचक सर्वनाम साधारणतया विवेक के अनुरूप होता है जैसे, शेत्य ।ह यत् सा प्रकृतिजलस्य (खुवश ५।५४)—क्योंकि जो शीतलता है वह जल का स्वाभाविक धर्म है । इसी प्रकार—मातुस्तु यौतक यत् स्यात् कुमारभावा एव स (मनु ६।१३१) ।

विशेष—इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो गया कि सम्बन्धवाचक सर्वनाम का लिंग उस सज्ञा के अनुसार होता है जिसकी वह विशेषता बताता है । परन्तु सूत्र सख्या १।४।३२ में पाणिनि ने “व मणा यमभिप्रै त म सम्प्रदानम्” ऐसा प्रयोग किया है, न कि “तत् सम्प्रदानम् ।”

२५—जब सम्बन्धवाचक सर्वनाम किसी सम्पूर्ण वाक्य का वाचक होता है, तब वह सदा नपु सकलिंग एकवचन में आता है, जैसे, ननु वज्रिण एव वीर्यमेतद्विजयते द्विगता यदस्य पद्या. (विक्रमोर्वशीय १)—क्या वस्तुतः यह इन्द्र की वीर्यता नहीं है कि उसके मित्र पक्षवाले अपने शत्रुओं को हरा देते हैं । मम तु यादय याता लोक ।वलोचन-चन्द्रिका । नयनविषय जन्मन्यरुः स एव महोत्सव (मालविका ० १)—लेकिन मेरे नेत्रों की चौदनी वह कन्या (या स्त्री) मेरे नेत्रों के विषय में आई—यह बात मेरे सारे जीवन का एक मात्र सर्वश्रेष्ठ उत्सव है ।

ऐसे प्रयोगों में, प्रधान वाक्य में सकेतवाचक सर्वनाम का लिंग वही होता है जो कि सम्बन्धी सज्ञा (महोत्सव) का । यदि यह कहा जाय कि ‘यत्’ नपु सकलिंग है इस लिए सकेतवाचक सर्वनाम भी नपु सकलिंग होना चाहिए तो ऐसा कहना ठीक नहीं ।

अभ्यास

१—तयैव देवतया तयोः कुशलवाविति नामनी प्रभावश्चाख्यातः ।
(उत्तर राम० २) ।

२—यदेते चन्द्रमरोरक्षास्त्वया निःसारितास्तदनुचितं कृतम् ।
(हितोपदेश) ।

३—यस्मिन्नेवाधिकं चक्षुरारोपयति पार्थिवः ।

४—अकुलीनः कुलीनो वा स श्रियो भाजनं नरः (पञ्चतन्त्र) ।

५—कृताः शरव्य हरिणा तवासुराः ।

६—शरासनं तेषु विकृत्यतामिदम् (शाकुन्तलम् ६) ।

७—स सुहृद् व्यसने यः स्यान् स पुत्रो यस्तु भक्तिमान् ।
सभृत्या यो विधेयज्ञः सा भार्या यत्र निर्वृतिः ॥

८—पाण्डवाश्च महात्मानो द्रौपदी च यशस्विनी ।

कृतोपवासाः कौरव्यप्रययुः प्राङ्मुखास्ततः ॥ (महाभारत १७ । १ । ३७)

९—धर्मः कामश्च दर्पश्च हर्षः क्रोधः सुखं वयः ।

अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते न सशयः ॥ (रामा-६ । ६२ । ३७)

१०—उमावृषाकौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शची पुरन्दरौ ।

तथा नृपः सा च सुतेन मागधो ननन्दस्तुत्सदृशेन तत्समौ (रघु-
वश ३ । २३)

अभ्यासार्थं अतिरिक्तं वाक्यं

१—वन्या सा या ऽऽर्यपुत्रेण बहु मन्यते या चार्यपुत्रं विनोदयत्याशानिबन्धनं जाता
जीवलोकस्य ।

२—सोऽयं पुत्रस्तव मदमुखा वारणानां विजेता ।

यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य ज्ञानं (उत्तर० ३) ।

३—न प्रमाणीकृतं पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितं ।

नाह न जनको नाग्निर्नुवृत्तिर्न सतति (उत्तर० ७)

४—य ब्राह्मणमिय देवा वाग्वश्येवानुवर्तते ।

उत्तर रामचरित तत्प्रणीत प्रयुज्यते ॥ (उत्तर राम० १) ॥

५—चतुर्दश सहस्राणि रक्षमा भीमकर्माणाम् ।

त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्द्धानो रणे हता ॥ (उत्तर राम० २) ॥

६—रोगी चिरप्रवासी परात्रभोजी परावमथशायी ।

यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्राम ॥ (हितोप०) ॥

७—मित्र प्रीतिरसायन नयनयोरानन्दन चेतस

पात्र यत्सुखदुःखयो मह भवेन्मित्रेण तद्दुर्लभम् ।

ये चान्ये सुहृदः सृष्टाऽसमये द्रव्यगमिलाषाकुला

स्ते सर्वत्र मिलन्ति तत्त्वनिकषाया तु तेषा विपत् ॥ (हितोप०) ॥

८—यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।

यस्यार्था स पुमाल्लोके यस्यार्था स हि पण्डित ॥ (हितोप०) ॥

९—हिसाशून्यमयत्नलभ्यमशन धात्रा मरुत्कल्पितम्

व्यालानां पशवस्तृणाङ्कुरभुज सृष्टा स्थलीशायिन ।

ससारार्णवलघनक्षमधिया वृत्ति कृता सा नृणाम्

यामन्वेषयता प्रयान्ति सतत सर्वे समाप्तिं गुणा ॥ (भर्तृहरि नीति शतक) ॥

१०—महिमानं यदुत्कीर्त्य तव सहितं वच ।

श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया ॥ (रघुवत् १० । ३२) ॥

११—यस्मिन् सत्यं च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे ।

अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ॥ (महाभारत ६ । ६ । २६)

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—इस नगर में बहुत से सज्जन हैं, परन्तु वे कतिपय सकीर्णविचार, दुष्ट तथा चिड़चिड़े स्वभाव वाले मनुष्यों से घृणा किये जाते हैं ।

- २—पाटलिपुत्र का राजा तथा उसकी रानी /—दोनों बहुत ही उदार हैं ।
- ३—कल मैं ने तीन सुन्दर भील, छ गहरे कुएँ, और छापन विशाल बगीचे देखे ।
- ४—जो अपने अपराध को छिपाने के लिये असत्य बोलता है वह दो अपराध करता है ।
- ५—तुम ऐसी बात कह रहे हो—यह आश्चर्य है ।
- ६—मनुष्य को सर्वदा पुण्यात्मा होना चाहिये—यह प्राचीन तथा अर्वाचीन सभी दार्शनिकों का मत है ।
- ७—ये भीठे आम मेरे छोटे भाई द्वारा उपहार के तौर पर भेजे गये हैं (कृतप्रत्ययनिष्पन्न विशेषण का प्रयोग कीजिये) ।
- दुष्ट लोग पुण्यात्माओं से घृणा करे—यह तो उनका जन्मसिद्ध स्वभाव है ।
- ८—जो लोग प्रत्युत्पन्नमति होते हैं वे कठिनाइयों को पार कर सकते हैं ।
- १०—इस घटना के कारण मैं उनकी ईर्ष्या का पात्र बन गया (जन् धातु-निष्पन्न विशेषण का प्रयोग कीजिये) ।
- ११—धैर्य, परिश्रम, और ईमानदारी सर्वदा प्रशंसनीय हैं , परन्तु जल्दबाजी, आलस्य, और विश्वासघात निन्दनीय हैं ।



द्वितीय भाग

सम्बन्ध

तृतीय पाठ

कर्म कारक

२६—वाक्यों में शब्दों के व्याकरणात्मक मेल के नियामक सिद्धान्त को 'सम्बन्ध' कहते हैं। इस पाठ में इसी 'सम्बन्ध' का निरूपण होगा। किसी भी शब्द को उस शक्ति को सम्बन्ध कहते हैं जिसके द्वारा वह किसी सज्ञा या सर्वनाम शब्द के कारक की व्यवस्था करता है। इस भाग में जितने पाठ दिए जायेंगे उनमें इसी शक्ति की व्याख्या की जायगी और उसके उदाहरण दिए जायेंगे।

२७—किसी भी वाक्य में सज्ञा तथा क्रिया के बीच जो सम्बन्ध होता है उसे कारक कहते हैं। जिन शब्दों का क्रिया के साथ कोई भी सीधा सम्बन्ध नहीं होता उनके बीच चाहे जो भी सम्बन्ध हो, कारक नहीं कहलायेगा।

संस्कृत में छः कारक होते हैं—कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अविकरण। "सम्बन्ध" को कारक नहीं कहते, इसीलिये इस सूची में 'सम्बन्ध' को स्थान नहीं दिया गया है। इन कारकों का बोध

कराने वाली क्रमशः प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी और सप्तमी विभक्तियाँ हैं। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि संस्कृत में 'कारक' और 'विभक्ति' पर्यायवाची शब्द नहीं हैं, प्रत्युत 'कारक' और 'विभक्ति' में बड़ा अन्तर है। साधारणतया लोग समझते हैं कि कर्ताकारक सर्वदा प्रथमाविभक्ति में रखा जाता है और जो शब्द प्रथमाविभक्ति में रखा दिखाई पड़े वह अवश्य ही कर्ताकारक होगा। पर ऐसा समझना ठीक नहीं है। अनेक ऐसे प्रयोग आते हैं जिनमें कर्ताकारक प्रथमाविभक्ति में नहीं रखा जाता, बल्कि तृतीयाविभक्ति में रखा जाता है। इसी प्रकार, अनेक ऐसे प्रयोग आते हैं जिनमें कर्मकारक द्वितीयाविभक्ति में नहीं रखा जाता, बल्कि प्रथमाविभक्ति में रखा जाता है। इसलिये यह न समझना चाहिये कि जो शब्द प्रथमाविभक्ति में हो वह अवश्य ही कर्ताकारक होगा। उदाहरणार्थ, रावणा रामेण हतः। यहाँ हननक्रिया का वास्तविक करनेवाला 'राम' है, पर वह प्रथमाविभक्ति में नहीं रखा गया है, बल्कि तृतीयाविभक्ति में रखा गया है। इसी प्रकार, हननक्रिया का वास्तविक कर्म 'रावण' है पर वह द्वितीयाविभक्ति में नहीं रखा गया है, बल्कि प्रथमा विभक्ति में रखा गया है।

कर्ता का अर्थ है करने वाला'। संस्कृत में प्रथमाविभक्ति केवल नाम बताने के लिए प्रयोग में लाई जाती है। पाणिनीय सूत्र २।३।१६ प्रातिपदकाथलिङ्ग-परिमाणवचनमात्रे प्रथमा' के अनुसार प्रथमा का प्रयोग केवल किसी शब्द का मूलरूप, लिङ्ग, वजन, और वचन बतलाने के लिये होता है, जैसे, नीचैः, कृष्ण, श्री, जानम्, तट, तटी, तटम् द्रोणो ग्रीहि, एक, द्वौ, बहव इत्यादि।

नोट—संस्कृत में अनेक अव्यय शब्द ऐसे हैं जिनके योग में किसी-न किसी विभक्ति का प्रयोग होता है। ऐसी दशा में उन विभक्तियों को उपपदविभक्ति अर्थात् अव्ययसम्बद्ध-विभक्ति कहते हैं। ये उपपद-विभक्तियाँ कारकविभक्तियों से भिन्न हैं। कारकविभक्ति उसे कहते हैं

जो किसी सज्ञा या सर्वनाम का सीधा सम्बन्ध किसी क्रिया के साथ बतावे। उपपदविभक्ति के उदाहरण नमो नृत् हाय, मामन्तरा, ग्रामादुत्तरम् इत्यादि हैं। जहाँ दोनो प्रकार की विभक्तियाँ प्रयुक्त हो सकती हैं वहाँ उपपदविभक्ति न आकर कारकविभक्ति ही प्रयोग में आती है (उपपद-विभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी)।

२८—जिस पुरुष या वस्तु के ऊपर किसी क्रिया का फल या प्रभाव पड़ता है वह उस क्रिया का कर्म कहलाता है। कर्मवाच्य को छोड़कर शेष सभी स्थलों पर कर्म द्वितीयाविभक्ति में रखा जाता है, जैसे, स हरिमपश्यत्—उसने हरि को देखा। ओदनं बुभुक्षु त्रिपुमुङ्क्ते—भात खाने की इच्छा करता हुआ जहर खाता है। यहाँ ‘अपश्यत्’ क्रिया का कर्म हरिम् तथा मुङ्क्ते क्रिया का कर्म त्रिपुम् है, परन्तु हरिः सेव्यत में सेव्यते पदक्रिया और कर्म के उस सम्बन्ध को बता रहा है जो कि हरि और सेव् के बीच में है। इसीलिए हरि को द्वितीयाविभक्ति में रखने की आवश्यकता नहीं। परन्तु हरि सेवने में कर्मवाच्य का प्रत्यय नहीं है, इसलिए सज्ञाशब्द हरि द्वितीयाविभक्ति में रखा गया है।

२९—नाम धराना, चुनना, बनाना, नियुक्त करना, निर्वाचित करना, पुकारना, जानना, समझना इत्यादि अर्थों का बोध कराने वाली क्रियाएँ दो कर्म लेती हैं, जिनमें एक प्रत्यक्ष कर्म होता है और दूसरा अप्रत्यक्ष, जैसे, त्वामामनन्ति प्रकृतिम्—वे लोग तुम्हें प्रकृति समझते हैं। कामपि गणिकामवरोधमकरात्—किसी वेश्या को अपनी स्त्री बना लिया (दशकुमार २।६)। जानामि त्वा प्रकृतिपुरुषम् (मेघदूत ६)—मैं तुम्हें प्रधान पुरुष समझता हूँ।

३०—गत्यर्थक धातुओं के योग में द्वितीया होती है, जैसे, गतेऽह-कामदेवायतनम् (मालती० १)—मैं कामदेव के मन्दिर में गया था। अहमपि महीमटन् (दशकुमार० २।२)—मैं भी पृथ्वी पर भ्रमण करता

हुआ। यमुनाकच्छमवर्तीणः (पचतन्त्र)—यमुना के तट को गया। विचचार दावम् (रघुवश २।८)।

कभी कभी गमन या गति का भाव अनेक सुहावनों में भी प्रकट किया जाता है। ऐसे स्थानों पर गमन की क्रिया वास्तविक नहीं होती, केवल काल्पनिक होती है, जैसे, पर विषादमगच्छत् (पचतन्त्र १।१)—महान् शोक को प्राप्त हुआ। अश्वत्थामा किं न यातः स्मृति ते (वेणी सहार ३)—क्या अश्वत्थामा तुम्हारे द्वारा स्मरण नहीं किया गया था। पश्चाद्माख्या सुमुखा जगाम (कुमार सम्भव १।२६)—सुन्दर मुखड़े वाली वह स्त्री पीछे से उमा नाम से विख्यात हुई। नरपतिहितकर्ता द्वेष्टयता याति लोके (पचतन्त्र १।२), न तृप्तमाययौ (रघुवश ३।३)।

(क) प्रायः उपसर्गपूर्वक अकर्मक धातुएँ अर्थतः सकर्मक हो जाती हैं। ऐसी धातुओं के योग में द्वितीया आती है, जैसे, वृत्—होना। अनुवृत्—किमी के अनुसार कार्य करना अथवा अनुसरण करना, जैसे, प्रभुचित्तमेव हि जनेऽनुवर्तते (शिशुपालवध १५।४१)—प्रजा वस्तुतः अपने राजा के चित्त का अनुसरण करती हैं। अचलतुंगशिखरमारुरोह (कादम्बरी)—पर्वत की ऊँची चोटी पर चढ़ गया। इसी प्रकार, यन्ता गजस्याभ्यपतद् गजस्थम् (रघुवश ७।३७), नोत्पतति वा दिवम् (कादम्बरी)। ऋषीणां पुनराद्याना वाचमर्थोऽनुधावति (उत्तररामचरित १)।

३।१—अधि उपसर्गपूर्वक शी वातु, स्थाधातु तथा आस धातु के योग में आधारवाचक स्थान या वस्तु में द्वितीया होती है, जैसे, चन्द्रापीडा मुक्ताशिलापट्टमधिशिश्ये (काद०)—चन्द्रापीड मोती की पटरी पर सो गया। अध्यासन गात्रभिन्नोऽद्वितष्ठौ रघु० ६।७३—इन्द्र के आधे आसन पर बैठता था। अध्यास्य पणशालाम् (रघुवश १।६५)—पत्तियों की बनी हुई भोपड़ी में लेटकर।

(क)^१ अभि तथा नि पूर्वक विश् धातु का आधार कर्मकारक होता है, जैसे, अभिनिविशत सन्मार्गम्—वह अच्छे मार्ग का आश्रय लेता है। भयं तावत्सेव्यादभिविशिते सेवकजनम् (मुद्रा राक्षस ५) ।

३२^२—उप, अनु, अधि, आ पूर्वक वस् धातु का आधार कर्मकारक होता है, जैसे, उपवसति वैकुण्ठं हरिः, अनुवसति वैकुण्ठ हरिः, आवसति वैकुण्ठ हरिः, अधिवसति वैकुण्ठ हरिः—हरि वैकुण्ठ में रहते हैं।

३३^३—उभयर्तः, सर्वतः धिक्, उपर्युपरि, अधोर्धः, अध्यधि, इन शब्दों की जिससे सन्निकटता पाई जाती है उसमें द्वितीया होती है, जैसे, उभयतः कृष्ण गोपाः—कृष्ण के दोनों तरफ ग्वाले हैं। सर्वतः कृष्णम्—कृष्ण के सब तरफ। उपर्युपरि लोक हरिः—हरि मसार के ठीक ऊपर हैं। अधोऽधो लोकम्—ससार के ठीक नीचे। धिर्जालमान्—बदमाशों को धिक्कार है। न मे सशीतिरस्या दिव्यता प्रति—उस स्त्री के स्वर्गीय होने के विषय में मुझे बिल्कुल सन्देह नहीं है। इसी प्रकार, बुभुक्षित न प्रतिभात किञ्चित्।

जब सन्निकटता नहीं पाई जाती तब षष्ठी का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे, उपर्युपरि सर्वेषामादित्य इव तेजसा—सूर्य के समान अपनी कान्ति के कारण सब से बढ़कर अथवा सब से ऊँचे।

(क) कभी-कभी धिक् के योग में प्रथमा अथवा सम्बोधन का प्रयोग

१—अभिनिविशद्व (१।४।४७)

२—उपान्वध्याङ् वस (१।४।४८)

३—उभयसर्वतसो कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।

द्वितीयाच्चेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते ॥ (वातिक)

होता है, जैसे, धिङ् मूढ—ऐ मूर्ख, विकार है। धिगियं दरिद्रता—इस गरीबी को विकार है।

३४-^१अभितः परितः के अर्थ होते हैं 'चारों ओर'। समया, निकषा के अर्थ होते हैं 'निकट'। हा के अर्थात् होते हैं 'विकार', या 'विपत्ति पड़े'। प्रति का अर्थ 'तरफ या 'ओर' है। अभितः, परितः, समया, निकषा, हा और प्रति के योग में द्वितीया होती है, जैसे, परिजनो राजानमभितः स्थितः (मालविका० १)—नौकर राजा के चारों ओर खड़े हो गए। रक्षासि वेदी परितो निरास्थत् (मट्टि० १।१२)—वेदी के चारों ओर बैठे हुए राक्षसों को नष्ट कर दिया। ग्राम समया—गाँव के निकट। ग्रामम् निकषा—गाँव के निकट। निकषा सौभित्तिम् (दशकुमार चरित), पयोधि विलध्य लङ्का निकषा हनिष्यति (शिथुपाल० १।६८)। हा कृष्णाभक्तम्—जो कृष्ण का भक्त नहीं है उसके ऊपर विपत्ति पड़े।

कभी कभी 'हा' के योग में सम्बोधन का प्रयोग होता है, जैसे, हा भगवत्यरुन्धति (उत्तर राम० १)—हाय भगवती अरुन्धती।

३५-^२अन्तरेण का अर्थ होता है 'बिना 'छोड़कर', 'बारे में'। इसके योग में भी द्वितीया आती है, जैसे, कोऽयस्त्वामन्तरेण शक्तः प्रतिर्तुम् (वेणी स० ३)—तुम्हे छोड़कर दूसरा कौन बदला लेने में समर्थ है। भवन्तमन्तरेण कीदृशोऽस्या दृष्टिरागः (शकुन्तला २)—आप के बारे में इसके नेत्रों का प्रेम कैसा है।

(क) इसी प्रकार अन्तरा (बीच में) के योग में भी द्वितीया होती है, जैसे, अन्तरा त्वा च मा च क्मण्डलुः (महाभारत)। पाचालास्तव पश्चिमेन त इमे वामा गिरा भाजनाः, त्वद् दृष्टेरतिथीभवतु यमुना त्रिस्रोतस चान्तरा (बालरामायण १०)।

१—अभित परित समया निकषा हा प्रति योगेऽपि। (वार्तिक)

२—अन्तरान्तरेण युक्ते २।३।४।

३६—जितने समय तक अथवा जितनी दूर तक कोई क्रिया होती रहे या कोई वस्तु लगातार हो तो समयवाचक तथा मार्गवाचक शब्द में द्वितीया होती है, जैसे, न ववर्ष वर्षाणि द्वादश दशशतात् (दशकुमार २।६)—नहव नेत्रवाले इन्द्र बारह वर्ष तक नहीं वरसे। क्रोश कुटला नदी (सिद्धान्तकौमुदी)—नदी कोस भर टेढ़ी है। सभा वैश्रवणी राजन् शतयजनमायता (महाभारत)—हे राजन्, विश्रवण की सभा १०० योजन लम्बी है।

३७—कभी कभी अनु (पीछे, फलस्वरूप, किसी के द्वारा प्रकट की हुई, मिलती जुलती हुई) के योग में द्वितीया होती है, जैसे, जपमनु प्रावर्पत् (सिद्धान्त कौमुदी)—जप के बाद वर्षा हुई। सर्व मामनु ते (विक्रमोर्वशीय ४)—तेरी प्रत्येक वस्तु मुझसे मिलती जुलती है।

टिप्पणी—पाणिनि ने अभि, उप अनु और अति को कर्मप्रवचनीय कहा है। कर्मप्रवचनीय का अर्थ है 'ऐसे उपसर्ग जो स्वतः अर्थात् किसी भी क्रिया के साथ में आए बिना ही प्रयोग में आते हैं और जिनके योग में द्वितीया आती है।' अभि—पूर्व, पेशतर, बिल्कुल समीप में। उप—निकट, घट कर। अनु—बगल में, किनारे किनारे, घटिया। अति—बढ़ कर। जैसे, भक्तो हरिमभि (भक्त हरि के बिल्कुल समीप है)। उप हरि सुराः (देवता लोग हरि से घट कर है अथवा हरि के समीप हैं)। अति देवान् कृष्णः (कृष्ण देवताओं से बढ़कर हैं)। नदामन्ववसिता सेना (सेना नदी के किनारे टिकी है)। अनु हरि सुराः (देवता लोग हरि से छोटे हैं)—सिद्धान्त कौमुदी।

अभ्यास

- १—धारिणीभूतधारिण्योर्भव भर्ता शरच्छतम् (मालविका ० १) ।
- २—मिन्दूस्तेपान् पिपासुः परिपतति शिखी आन्तिमद्वारियत्रम् (मालविका ० २) ।

- ३—मन्दौत्सुक्योस्मि नगरगमनं प्रति (शकुन्तला १) ।
- ४—एषा मे मनोरथप्रियतमा सकुसुमास्तरणं शिलापट्टमधिशयानां
सखीभ्यामन्वास्यते (शकुन्तला ३) ।
- ५—सागरवर्जयित्वा कुत्र वा महानद्यवतरति । क इदानीं सहकार-
मन्तरेणातिमुक्तनता पल्लविता सहते (शकुन्तला ३) ।
- ६—स राजर्षिरिमानि दिवसानि प्रजागरुकृशो लक्ष्यते
(शकुन्तला २) ।
- ७—धिङ् मामुपस्थितश्रेयोऽवमानिनम् (शकुन्तला ६) ।
- ८—धिगिमा देहभृतामसारताम् (रघुवश ८ । ५१) ।
- ९—इष्टान् देशान् विचर जलद प्रावृषा संभृतश्रीः (मेघदूत
११८) ।
- १०—कृतकार्यमिदं दुर्गं वनं व्यालनिपेवितम् ।
यदध्यास्ते महाराजो रामः शस्त्रभृता वर (रामायण २ । ६८) ।
- ११—धिक् प्रहसनम् । अयमृष्यशृगाश्रमादरुन्धर्तपुरस्कृतान्
महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान् वसिष्ठः प्राप्तः ।
तत्किमेव प्रलपसि (उत्तर रामचरित ४) ।
- १२—तत्र च निखिलधरणि तलपर्यटनखिन्नस्य निजबलस्य
विश्रामहेतोः कतिपयान् दिवसानतिष्ठत् (कादम्बरी) ।
- १३—अस्या वेलायां किं नु खलु मामन्तरेण चिन्तयति वैशम्पायन
इति चिन्तयन्नेव स निद्राययौ (कादम्बरी) ।
- १४—अमी वेदी परितः क्लृप्तधिष्ण्याः समिद्वन्तः प्रातसस्तीर्ण-
दर्भाः ।
अपन्नन्तो दुरितं हृद्यगन्धैर्वैतानस्त्वां वह्नयः पावयन्तु
(शकुन्तला ४) ।
- १५—शक्रस्य दिव्या सभा

विस्तीर्णा योजनशत शतमध्यर्धमायता

वैहायसी कामगमा पञ्चयोजनमुच्छ्रिता (महाभारत २ । ७३ ३) ।

१६—रम्या रघुप्रतिनिधिः स नवोपकार्यम्

बाल्यात्परामिव दशा मदनोऽभ्युवाम (रघुवश ५ । ६३) ।

१७ - तस्य पुत्रो महातेजाः सम्प्रत्येप पुरीमिमाम्

आवसत्परमप्रख्यः सुमतिर्नाम दुर्जयः । (रामायण

१ । ४७ । १७) ।

१८—क्रमेण सुप्रामनु सविवेश सुप्रोत्थिता प्रातरनूदतिष्ठत् ।

(रघु० २ । २४)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—सङ्कटकप्रणयोऽयं जन । तदस्या देवो वसुमतीमन्तरेण महदुशालम्भन
गतोऽस्मि (शकुन्तला ५) ।

२—कथय कथमियन्त कालमवस्थिता मया विना भवती (विक्रमोर्वशी ४) ।

३—भावप्रोषिता हि स्वगृहान्महाराजेन लकासमरसुहृदो महात्मान प्लवगराक्षसाः
नानादिगतागता ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च येषामाराधनायेयनो दिवसानुत्सव आसीत्
(उत्तररामचरित १) ।

४—विवक्षना दोषमपि च्युतात्मना त्वयैकमीश प्रति मातु भाषितम् (कुमारमम्भव
५ । ८१) ।

५—विचित्राभारमसदृशसयोगकारिणम् (काद०) ।

३—आर्य, आर्य, प्रणिपत्य देवश्चन्द्रगुप्तो विज्ञापयति क्रियान्तरान्तरायमन्तरेणार्थं
द्राडुभिच्छामीति (सुदाराक्षस ३) ।

७—मन्दोप्यमन्दतामेति समर्गेण रिपिञ्चन ।

पर्काच्छद फलस्यैव निरुधेणाविलं पय ॥ (मालविका० २) ।

८—भर्तुर्मित्र प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुबाहम् (मेघदूत १००) ।

९—अयाधिशिष्ये प्रयत प्रदीपे रथ रघु ऋषिपतश्छगर्भम् (रघुवश ५ २८) ।

१०—मनुष्यवाह्य चतुरस्रयानमध्यास्य कन्या परिवारशोभि

विवेश मन्त्रान्तरराजमार्गं पतिवरा क्लृप्तविवाहवैषा (रघु० ६ । १०) ।

- ११—अभिन्यविक्षथास्त्व मे यथैवाव्याहृतं मन ।
नवाप्यध्यावसन्त मा मा रौत्सीर्हृदय तथा (भट्टिकाव्य ८ । ८०) ।
- १२ —अर्थानामर्जने दु खमर्जिनानां च रक्षणे ।
आये दुख व्यये दु ख धिगर्था कष्टसश्रया* (पचतत्र १ । ४ ॥
- १३ —हा हा धिक् परगृहवासदूषण यद्वैहेह्या प्रशमितमद्भुतैरुपायै एतत् तत्पुनरपि
दैवदुर्विपाकादालर्कं विषमिव सर्वत प्रसृतम् (उत्तर राम १) ।
- १४ —यत्र दृमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे
यानि प्रियामहचरञ्चिरमध्यवात्सम् ।
एतानि तानि बहुनिर्झरकन्दराणि
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि (उत्तर रामचरित ३) ।
- १५ —को वीरस्य मनस्विन स्वविषय को वा विदेशस्तथा
य देश श्रयते तदेव कुरुते बाहुप्रतापार्जितम् ।
यत् दष्टानखलागुलप्रहरण सिहो वन गाहते
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णा छिनत्त्यात्मन (हिनोपदेश) ।
- १६ —धिक् सानुज कुरुपति धिगजातशत्रुम्
धिग्भूपतीन् प्रिफलशस्त्रभृतो धिगस्मान् ।
केशग्रह खलु तदा दृपदात्मजाया
द्रोणस्य चाद्य लिखितैरिव वीक्षितो यै ॥
(वेणीसहार ३) ।
- १७—जलानि सा तीरनिखानयूपा वहत्ययाव्यामनु राजधानीम्
(रघुवश १३ । ६१) ।
- १८—प्रसदामनु सस्थित शुचा नृपति सन्निति वाच्यदर्शनात् ।
न चकार शरीरमग्निसात् सह देव्या न तु जीविताशया ॥
(रघुवश ८ । ७२) ।

संस्कृत में अनुवाद कीजिये :—

- १—पत्नी को सदा पति की इच्छानुगामिनी होना चाहिए ।
२—यह एक दूसरा पुरुष एक दूसरे कार्य के विषय में हम लोगो की

सेवा करने के लिए आ रहा है ।

३—जब उस कन्या से बहुत जोरो से अनुरोध किया गया तब उसने उस स्त्री से तुम्हारी अशिष्टता (वैयात्य) बता दी ।

४—पुष्पपुर शहर के चारो ओर एक सुन्दर उद्यान है ।

५—हाय मेरा दुर्भाग्य ! कहा जा रहा है कि मेरा इवलौता पुत्र भी मर गया ।

६—उसने तीन वर्ष और पचहत्तर दिन न्याय पढा और अब उसमें निपुण हो गया ।

७—अवन्ती के चारो ओर दो मील तक सुन्दर बगीचे दिखाई पड़ते हैं ।

८—क्या वह अभी तक होश में नहीं आई ? मैं समझता हूँ कि उत्कृष्टतर उपचार के प्रयोग के बिना यह असम्भव है ।

९—मेरे अतीत साहसपूर्ण वृत्तान्तों के बारे में मणिपुर के निवासी क्या सोचेंगे ?

१०—हम लोगो को उचित जान पड़ता है कि अब हम लोग अपने वादविवाद के विषय की ओर फिर आवें ।

११—जो लोग स्वार्थ के बिना ही दूसरो को सताना चाहते हैं उन्हें धिक्कार है ।

१२—जो लोग अनीति के मार्ग का अनुसरण करते हैं उनके ऊपर विपत्ति पड़े ।

१३—राम चित्रकूट पर्वत पर बहुत दिन रहे (अधि + वम्) ।

१४—भृत्य ने नानी से निवेदन किया कि महाराज क्रीडापर्वत पर बैठे हैं (अधि + आस्) और आप को शीघ्र ही बुला रहे हैं ।

१५—जब वह फिर से होश में आ गई तब उसने अपने मरे हुए भाई का शरीर जला दिया और सारी रात एक चटाई पर सोई रही ।

१६—गाय अब पाताल में रहती है (अधि + स्था) जिसके दरवाजे बड़े बड़े साँपो द्वारा सुरक्षित हैं ।

- १७—आम्रमजरियों के अस्तित्व के बिना बसत ऋतु सुन्दर नहीं प्रतीत होता ।
- १८—उस युवा ऋषि के प्रस्थान के अनन्तर तुमने मुझमें जो कुछ कहा था वह मुझे स्मरण नहीं ।
- १९—क्या तुम लोग कहते हो कि तुम्हारे महाराज को छोड़कर कोई क्षत्रिय नहीं है । तुम सबों को धिक्कार है । देखो मैं तुम्हारा झंडा अपहरण कर रहा हूँ । यदि बचा सकते हो तो बचाओ ।

चतुर्थ पाठ

द्विकर्मक धातुएँ

३८—संस्कृत में कुछ धातुएँ ऐसी हैं जो साधारण कर्म के अतिरिक्त एक कर्म और लेती हैं जिसे अकथित कर्म कहते हैं। जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है, अकथितकर्म उसे कहते हैं जो अपादान, अधि-करण इत्यादि अन्य कारको का अर्थ रखता है और उन्हीं के द्वारा प्रकट किया जाना चाहिए, पर जब वक्ता इन कारको का प्रयोग नहीं करना चाहता तो वह उसे द्वितीया विभक्ति द्वारा प्रकट करता है। इसी से यह कर्म वैकल्पिक होता है। जो सजा अकथित कर्म में रक्खी जाने योग्य होती है वह यदि किसी अन्य कारक में विवक्षित नहीं होती है तो द्विकर्मक धातुओं के योग में द्वितीया में रक्खी जाता है, जैसे, धेनु दोग्धि पयः— गाय से दूध दुहता है।

ब्रजमवरुणद्धि गाम्—गाय को बाड़े में घेरता है।

यहाँ पर 'धेनुम्' और 'ब्रजम्' अकथित अथवा वैकल्पिक कर्म हैं। यदि वक्ता इस कर्म को न रखना चाहे, तो ये शब्द अपने स्वाभाविक अथवा साधारण कारक में रक्खे जायेंगे जैसे धेनोः दोग्धि पयः (धेनोः-पचमी)। ब्रजे अवरुणद्धि गाम् (ब्रजे—सप्तमी)।

३९—निम्नलिखित कारिका में प्रायः सभी द्विकर्मक धातुएँ आ जाती हैं—

दुह्याच् पच् दण्ड् रुधिप्रन्छिचिब्रू शासुजिमथमुषाम् ।

कर्मयुक्त्यादकथितं तथा स्यान्ती दृक्कृष्वहाम् ॥

दुह् (दुहना), याच् (माँगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना), रुध् (रोकना, रूँधना), प्रच्छ् (पूछना), चि (इकट्ठा करना), ब्रू (कहना, बोलना), शाम् (शासन करना), जि (जीतना), मन्थ् (मथना), सुप् (चुराना), नी (लेजाना), ह् (हरना), कृष् (खींचना), वह् (दोना), तथा इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली धातुएँ द्विकर्मक होती हैं, जैसे,

गा दोग्धि पयः—गाय से दूध दुहता है ।

बलि याचते वसुधाम—बलि से पृथ्वी माँगता है ।

तण्डुलान् ओदन पचेति—चावलो का भात पकाता है ।

गर्गान् शत दण्डयति—गर्गों पर एक सौ रुपया दण्ड लगाता है ।

ब्रजमवरुणद्वि गाम्—गाय को बाड़े में घेरता है ।

माणवक पन्थान पृच्छति—माणवक से रास्ता पूछता है ।

वृक्षमवचिनोति फलानि—वृक्ष के फलों को इकट्ठा करता है ।

माणवकं धर्मं ब्रूते भापते शास्ति वा—माणवक से धर्म कहता है ।

शत जयति देवदत्तम्—देवदत्त से एक सौ जीत लेता है ।

सुधा क्षीरनिधि मथ्नाति—क्षीरसागर से अमृत मथता है ।

देवदत्त शत मुष्णाति—देवदत्त से एक सौ चुराता है ।

ग्रामम् अजा नयति, हरति, कर्षति, वहति वा—बकरी को गाँव में ले जाता है ।

बलि वसुधा भिक्षते—बलि से पृथ्वी माँगता है ।

ता त्वा सवरणस्यार्थे वरयामि विभावसो

(महाभारत १। १७। २१)

ब्रू याच् के जो अर्थ होते हैं वही अर्थ भिक्ष् अथवा वृ के होते

ह। उसी प्रकार जो अर्थ ब्रू के होते हैं वही अर्थ भाप् अथवा वच् के होते हैं।

टिप्पणी—चि, मुप्, पच्, मथ्, रुध्, जि, कृष, ह् और वह् धातुएँ संस्कृत साहित्य में द्विकर्मक के रूप में बहुत कम प्रयोग में आती हैं।

४०—ऊपर लिखी हुई धातुएँ तथा उनके समान अर्थ रखने वाली धातुएँ दो कर्म लेती हैं। उनमें से एक मुख्य कर्म कहलाता है और दूसरा गौण। पहिली बारह धातुओं (दुह से लेकर मुप् तक) के योग में जो पयः, वसुधाम्, फलानि, सुधाम् इत्यादि आए ह वे मुख्य कर्म हैं। गाम्, वलिम्, वृक्षम्, चीरानधिम् इत्यादि गौण कर्म हैं क्योंकि व वक्ता का इच्छा के अनुसार दूसरे कारको में रखे जा सकते हैं।

अन्तिम चार धातुओं के योग में जो अजाम् और ग्रामम् आए हैं उनमें अजाम् मुख्य कर्म है और ग्रामम् गौण कर्म है। सारांश यह कि जो शब्द क्रिया का अर्थ पूरा करने के लिए अनिवार्य रूप में द्वितीया में रखा जाता है वह मुख्य कर्म है और जो वक्ता की इच्छा के अनुसार द्वितीया में रखा जाता है वह गौण कर्म है।

४१—ऊपर कही हुई द्विकर्मक धातुओं का कर्मवाच्य बनाने में दुह से लेकर मुप् तक की प्रथम बारह धातुओं के गौण कर्म और अन्तिम चार धातुओं अर्थात् नी, ह्, कृप्, वह् के प्रधान कर्म प्रथमा में रखे जाते हैं, दुह से लेकर मुप् तक के प्रधान कर्म और नी, ह्, कृप्, वह् के गौण कर्म द्वितीया में रखे जाते हैं जैसे—

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
स धेनु पयो दोग्धि	तेन वेनु पय दुह्यते
देवा समुद्र सुधा ममन्थु	देवै समुद्र सुधा ममन्थे
सोऽजा ग्राम नयति, हरति,	तेन अजा ग्राम नीयते, ह्रियते,
कर्षति, वहति वा	कृष्यते, उह्यते वा

✓ १—गौणे कर्मणि दुह्यादे प्रधाने नी ह्कृष्वङ्गाम्।

विभक्तिः प्रथमा शैया द्वितीया च तदन्यत

अभ्यास

१—आज्ञप्तास्मि देव्या धारिण्या आचिरप्रवृत्तोपदेश चलित नाम
नाट्यमन्तरेण कीदृशी मातृविकेति नाट्याचार्यमायगणदास
प्रष्टुम् । (मालविका ० १) ।

२—ह्यन्तत्र भवतीरावती दधी सुख प्रष्टुमागता । (मालविका ० ४) ।

३—महाश्वेता कादम्बरीमनामय पप्रच्छ । (कादम्बरी) ।

४—हिमालय सर्वशैला वत्स परिकल्प्य

भास्वन्ति रत्नानि महौपवीश्च

पृथूपदिष्टा दुदुहुर्यरित्रीम् । (कुमारसम्भव १ । २)

५—सोऽहं तृष्णातुरैर्वृष्टि विद्युत्त्वानिव चातकैः ।

अग्विप्रकृतैर्देव प्रमूति प्रतियाचितः ॥ (कुमारसम्भव

६ । २७) ।

६—किमत्र चित्र यदि कामसूभूर्वृत्ते स्थितस्याविपते प्रजानाम् ।

अचिन्तनीयस्तु तव प्रभावा मनीषित द्यौरपि येन दुग्धा ॥

(रघुवंश ५ । ३३) ।

७—तमरण्यसमाश्रयान्मुख शिरसा वेष्टनशोभिना सुत ।

पितर प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमयाचतात्मनः ॥

(रघुवंश ८ । १२) ।

८—अथ ज्येष्ठा सुराः सर्वे देवकार्यचिकीर्षया ।

शैलेन्द्र वरयामासुर्गंगा त्रिपथगा नदीम् ॥

(रामायण १ । ३५ । १६) ।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—तमानिथ्यक्रियाशान्त रथ क्षोभ परिश्रमम् ।

पप्रच्छ कुशल राज्ये राज्याश्रममुनि मुनि ॥

(रघुवंश १ । ५८)

२—त क्रमेण जन्मभूमि जाति विद्या कचत्रमपत्यानि विभव वयः प्रमाण प्रव्रज्या-

कारण च स्वयमेव पप्रच्छ चन्द्रापीड (कादम्बरी) ।

३—कोशिकेन स किल क्षिताश्वरो राममध्वरविधातशान्तये ।

काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसा हि न वयः समीक्ष्यते ॥ (रघुवश ११। २१)

४—न तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णकुलेक्षणम् ।

चिषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदन ॥

(गीता २। १)

५—भर्तुस्तथा कलुषिता बहुवल्लभस्य

मार्गे कथंचिदवतार्य तनूभवन्तीम् ।

सर्वार्पणा रतिकयाचतुरेव दूती

गङ्गा शरन्नयति सिन्धुर्गतिं प्रसन्नाम् ।

(सुदाराक्ष्म ३)

६—नामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुम्

ब्रूया एव तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्य ।

अन्यापन्न कुशलमबले पृच्छति त्वा वियुक्तः

पूर्वाभाष्य सुखमविपदा प्राणिनामेव देयम् ॥

(मेघदूत १०४)

७—सोऽपृच्छललक्ष्मण सीता याचमानः शिव सुरान् ।

राम यथास्थितं सर्वं आता ब्रूते स्म बिह्वलः ॥

मन्दृश्य शरणं शून्यं भिक्षमाणो वनप्रियाम् ॥

प्राणान्दुहन्निवात्मानं शोकचित्तमवारुधत् ।

गता स्यादवचिन्वाना कुसुमान्याश्रमद्रुमान् ।

आ यत्र तापसान् धर्मं सुतीक्ष्णशस्तिं तत्र सा ॥

(भट्टिकाव्य ६। ८। १०)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए

- १—मैं ने उससे दस प्रश्न पूछे, परन्तु उसने उनसे एक का भी उत्तर न दिया ।
- २—भिखमगे ने एक धनी पुरुष से पचास रुपए माँगे जो बहुत उदार कहा जाता था ।
- ३—राजा ने अपराधी पर तीन सौ साठ रुपए जुर्माना किया ।
- ४—आचार्य दन शिष्यों को न्याय और व्याकरण के सिद्धान्त सिखाता है ।
- ५—नौकर का अपराध क्षमा करने के लिए मंत्री द्वारा राजा से प्रार्थना की गई ।
- ६—वह सुझसे कहता है (ब्रू) कि गोपाल ने अपनी गाँव दुह ली है ।
- ७—महाशय जी, मेरे द्वारा आप से आप का नाम और वश पूछा गया था, न कि यह कि आप के पास कितना धन है ।
- ८—क्षीरसागर से चौदह रत्न मथे गए थे ।
- ९—गडरिया सब भेड़ों को बाजार ले गया और उन्हें बेच दिया ।
- १०—कल गाँव मेरे कनिष्ठ भ्राता द्वारा दुही गई थी ।
- ११—देवता लोग ब्रह्मा के पास गए और उनसे एक ऐसा पुरुष माँगा जो तारकासुर से उनकी रक्षा करे ।

पञ्चम पाठ

प्रेरणार्थक (गिजन्त)

४२—“किसी वातु का प्रेरणार्थक रूप यह प्रोत्ति करतल है कल कोई वुतुतल तल वस्तु कलसी दूसर वुतुतल तल वस्तु तु वह कलरुतल करतलल है कु कु उस धलतु से सूतुतल हुतल है”—डलकुटर कललहुर्न कल वुतलकरण सेकुशन ४१६ । उदलहरण—

गडु-कलनल	गकुऑतल—कलतल है	गडुतल—कलने कल प्रेरणल
		करतल है
अशु-खलनल	अनुतल—खलतल है	अलशतल—खलने कल प्रेरणल
		करतल है

४३—वलतु कल सलदी दशल तु कु कर्तल हुतल है, वह प्रेरणलरुतलक दशल तु तृतीतल तु रकुखल कलनल है, अतुर कर्तु तु कुई परलवर्तन नही हुतल, कुसे—

सलदी दशल	प्रेरणलरुतलक दशल
देवदतु अुदन पकुतल	(तु)देवदतुने अुदन पलकुतल
(देवदतु तुतल पकलतल है)	(वह देवदतु से तुतल पकलतल है)
रलतु तुतल तलकुतल	(स)गलतु तुतल तलकुतल
(रलतु अुतुनी तुतुनी कु ऑडते है)	(वह रलतु से अुतुनी तलु
	ऑडलतल है)

४४'—गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक तथा ज्ञानार्थक, भङ्गणार्थक वातुओ मे जिनका कर्म कोई शब्द' या 'साहित्यिक विषय हो, उन वातुओ मे, और अक्रमक वातुओ मे, जो सादी दशा मे कर्ता रहता है वह प्रेरणार्थक अथवा णिजन्त दशा मे कर्म हो जाता है, परन्तु कर्म मे कोई परिवर्तन नहीं होता जैसे,

सादारूप

प्रेरणार्थक रूप

शत्रवः स्वगमगच्छन्
भवे वेदार्थम् अविदुः
देवा अमृतमाश्रन्
विधिर्वेदमध्यायैत
पृथ्वी सलिले आस्त

शत्रून् स्वर्गमगमयत्
भवान् वेदार्थमवेदयत्
देवानमृतमाशयत्
विधि वेदमध्यापयत्
पृथ्वी सलिले आसयत्

परन्तु गमयति रामो गोविन्दम् मे यदि कोई ठूमरा व्यक्ति राम से ऐसा कराने की प्रेरणा करता है, तब वाक्य यो होगा—

विष्णुमित्रो रामेण गाविन्द गमयति—विष्णुमित्र राम को प्रेरित करता है कि वह गोविन्द को जाने के लिए कहे। यहाँ राम द्वितीया मे नहीं रक्खा गया क्योंकि वह प्रेरणार्थक क्रिया का कर्ता है, न कि सादी क्रिया का।

टप्पण — गति, बुद्धि प्रत्ययनानार्थ दृष्ट्यादि सूत्र मे आए हुए शब्दकर्म का अर्थ करते हुए महाभाष्यकार पतञ्जलि ने यह व्याख्या लिखी है। 'शब्दकर्म' का अर्थ या तो यह हो सकता है कि 'शब्दा येषा क्रिया' या 'शब्दा येषां क्रम ।'

१—गतिबुद्धिप्रत्ययसानार्थशब्दकर्म कर्मकारणामणिकर्ता म शौ । शत्रून्गमयत्स्वर्ग वेदार्थ र्गानवेदयत् । आशयच्चाश्रुत देवान् वदमध्यापयद्विधिम् । आसयत्सलिले पृथ्वी य स मे श्रीहरि गति

यदि पहला अर्थ लिया जाय तो ह्वयति (ह्वे), क्रन्दति (क्रन्द्)
और शब्दायत (शब्द मे निष्पन्न नामधातु) धातुएँ इस नियम मे
से निकल जायेंगी, जैसे,

ह्वयति देवदत्तः—ह्वाययति देवदत्तेन ।

क्रन्दति शब्दायत देवदत्तः—क्रन्दयति शब्दाययति देवदत्तेन ।

साथ ही, श्रु धातु, वि पूर्वक जा धातु, उपपूर्वक लभ धातु इस नियम
मे आ जायेंगी, जैसे, शृणोति, विजानाति, उपलभते देवदत्तः—श्रावयति,
विज्ञापयति, उपलम्भयति देवदत्तम् ।

(ख)^१ अद् धातु और खाद् धातु के प्रेरणार्थक के योग मे तृतीया
होती है, जैसे,

बटुरभ्रमति खादति वा | बटुनाऽन्नमादयति खादयति वा
(लड़का अन्न खाता है) | (वह लड़के से अन्न खिलवाता है)

(ग)^२ जब भञ् धातु का अर्थ 'हिसा करना' नहीं होता तो उसके
योग मे तृतीया होती है, जैसे,

भक्षयति पिंडी देवदत्तः भक्षयति पिंडी देवदत्तेन
परन्तु भक्षयति यवान् बलीवर्दाः | भक्षयति बलीवर्दान् यवान्

(महाभाष्य)

(घ) विशिष्ट प्रकार के ज्ञान का बोध कराने वाली स्मृ और
ग्रा जैसी धातुओं का प्रयोग द्वितीया के साथ नहीं होता, जैसे, स्मरति-
जिब्रति देवदत्तः, स्मारयति-ग्रापयति देवदत्तेन ।

परन्तु कभी कभी 'स्मृ' धातु के योग मे द्वितीया का भी प्रयोग होता
है, विशेषकर उस दशा मे जब कि 'स्मृ' का अर्थ होता है "किसी के
विषय मे सोचना" या "पश्चात्तापपूर्वक किसी को याद करना", जैसे, अपि

१—अर्थादखाद्योने (वार्तिक)

२—भक्षे रक्षितार्थस्य न (वार्तिक)

चन्द्रगुप्तदोषा अतिक्रान्तपार्थिवगुणान् स्मारयन्ति प्रकृतीः (मुद्रा० १),
शिशुपाल ६ । ५६ भी देखिए) ।

(ड)^१ दृश् का प्रेरणार्थक रूप द्वितीया के साथ प्रयुक्त होता है:
जैने, भक्ता हरि पश्यन्ति. दर्शयति भक्तान हरिम् (सिद्धा०) ।

टिप्पणी—संस्कृत साहित्य में दृश् का प्रयोग चतुर्थी के साथ मिलता
है, न कि द्वितीया के साथ, जैसे, प्रत्यभिज्ञानरत्न च रामायादर्शयत् कृती
(रघु० १२ । ६४)

(च)^२ ह, कृ धातुओं के साधारण रूपों का कर्ता, और अभिवद्
तथा दृश के आत्मनेपद के रूपों का कर्ता, प्रेरणार्थक में द्वितीया अथवा
तृतीया में रक्खा जाता है जैसे, भृत्य कट करोति हरति वा (नौकर
चटाई बनाता है या ले जाता है) ।

भृत्य भृत्येन वा कट कारयति हारयति वा (सिद्धा०)—वह नौकर
से चटाई बनवाता है या ढोवाता है ।

इसी प्रकार, अभिवादयते—दर्शयते देव भक्त भक्तेन वा (सि० कौ०) —
(वह भक्त से देवता को प्रणाम करवाता है या भक्त को प्रेरित करता
है कि देवता को प्रणाम करे) ।

४६— धारा ४४ में जिन अकर्मक धातुओं का उल्लेख किया गया है
उनमें ऐसी धातुओं का अभिप्राय है जो स्वभावतः कालवाची, स्थानवाची
इत्यादि कर्मों के अतिरिक्त अन्य कोई कर्म ले ही नहीं सकती । धारा ४४
में उल्लिखित अकर्मक धातुओं से ऐसी धातुएँ अभिप्रेत नहीं हैं जो
सकर्मक होते हुए भी कभी कभी वृत्ता की इच्छा के अनुसार अकर्मक के
तौर पर प्रयुक्त कर दी जाती हैं, अथवा वे धातुएँ जिनका अर्थ बिल्कुल
स्पष्ट रहता है, जैसे किकर पचति । यहाँ 'पचति' सकर्मक होते हुए भी

✓—इन्द्रोदच (वारिक) ।

✓—हर्कोरन्त्यतरस्याम् (१ । ४ । ५३) अभिवादिदुशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम् ।

बिना कर्म के प्रयुक्त हुई है क्योंकि यह बड़ी सरलता से समझी जा सकती है। अतएव “क्रिकरेण पाचयति” होगा, न कि “क्रिकर पाचयति” परन्तु “मासमासयति देवदत्तम्” होगा।

४७—^१प्रेरणार्थक क्रियाओं का कर्मवाच्य बनाने में प्रेरणार्थक का प्रधान कर्म जो कि मौलिक (साधारण) दशा में क्रिया का कर्ता रहता है प्रथमा विभक्ति में रक्खा जाता है और दूसरा (गौण) कर्म ज्यो का ल्यो रह जाता है, उदाहरणार्थ—

साधारण दशा	प्रेरणार्थकदशा	प्रेरणार्थककर्मवाच्य
रामो ग्राम गच्छति (राम गाँव को जाता है)	राम ग्राम गमयति (वह राम को गाँव जाने की प्रेरणा करता है)	रामो ग्राम गम्यते (राम उसके द्वारा गाँव जानेको प्रेरित किया जाता है)
भृत्यः कट करोति (नौकर चटाई बनाता है)	भृत्येन भृत्य वा कट कारयति (वह नौकर से चटाई बनवाता है)	भृत्यः कट कार्यते नौकर उसके द्वारा चटाई बनाने के लिए प्रेरित किया जाता है
गोविन्दो मासमास्ते (गोविन्द महीने भर बैठा है)	गोविन्द मास मासयति (वह गोविन्द को महीने भर बैठाता है)	गोविन्दो मासमास्यते (गोविन्द उसके द्वारा महीने भर बैठाया जाता है)

१—दृढिभक्षार्थयोः शब्दकर्मणा च निजेच्छया ।

प्रयोज्यकर्मण्यन्येषा ण्यन्ताना लादयो मता ॥ (सिद्धा ०)

(क) परन्तु बुद्धयर्थक, भक्षार्थक तथा शब्दकर्मा धातुओं का कर्मवाच्य बनाने में, प्रधान कर्म प्रथमा विभक्ति में रक्खा जाता है और गौण कर्म द्वितीया में अथवा प्रधान कर्म द्वितीया में और गौण कर्म प्रथमा में, जैसे, माणवक धर्म बोधयति (वह माणवक को उसका कर्तव्य समझाता है) । इसका कर्मवाच्य इस प्रकार होगा—माणवको धर्म बोध्यते अथवा माणवक धर्मो बोध्यते (माणवक को उसका कर्तव्य समझाया जाता है अथवा कर्तव्य माणवक को समझाया जाता है) । इसी प्रकार बटुमोदन भोजयति । वह लडके को भोजन कराता है—इसका कर्मवाच्य यों होगा—बटुरोदन भोज्यते अथवा बटुमादनो भाज्यते (सि० कौ०) ।

४८—चुगादिगण की धातुओं के प्रेरणार्थक के रूप ठीक वैसे ही होते हैं जैसे साधारण रूप । इसलिए प्रकरण से अर्थ का निर्णय किया जाना चाहिए, जैसे, राम शिव पूजयति (राम शिव को पूजता है), रामो गोविन्देन शिव पूजयति (राम गोविन्द से शिव को पूजवाता है) । यहाँ दूसरा वाक्य प्रेरणार्थक है ।

४९—धारा ४३ तथा ४४ में उल्लिखित नियम द्विर्मक धातुओं में भी लगते हैं, अर्थात् गत्यर्थक धातुओं के योग में मूल (साधारण) क्रिया का कर्ता द्वितीया में रक्खा जाता है और अन्य धातुओं के योग में, धारा ४५ में उल्लिखित नियम का पालन करते हुए मूल (साधारण) क्रिया का कर्ता तृतीया में भी रक्खा जाता है, जैसे, वामनो बलि वसुधा याचते, इसका प्रेरणार्थक (ईश्वर) वामनेन बलि वसुधा याचयति होगा (ईश्वर वामन को बलि से पृथ्वी माँगने की प्रेरणा करते हैं) । 'गोप अज्ञा नगर हरति' का प्रेरणार्थक होगा "स्वामी गोप गोपेन वा अज्ञा नगर हारयति (मालिक गोप द्वारा बकरी को शहर में पहुँचाता है) ।

अभ्यास

१—अभिमन्युन ५ परीक्षितमुद्रादुपरतमे ५ निर्गतमुत्तराप्रलापोप-
जनितकृपा भगवान् वासुदेवो दुर्लभानसून् प्रापितवान् ।

(काद०) ।

०—अथ शिशुर्न शक्नोति शिरोधरा धारयितुम् । तदेहि गृहाणेमम-
वताग्य सलिलसमीपमित्यभिधाय तेनर्षिकुमारेण मा
सरस्तीरमनाययत् । उपसृत्य च जलसमीपं स्वयमादाय
मुक्तप्रयत्नमुत्तानितमुखमगुल्या कतिचित्सलिलविदून्पाययत् ।

(काद०) ।

३—काम इदानीं सकामो भवतु येनासत्यसधे जने सखी पदं कारिता ।

(शकु०) ।

४—महेन्द्रभवनं गच्छतोपाध्यायेन त्वमासनं प्रतिग्राहितः ।

(विक्रमो०) ।

५—तौ कुरालवौ भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्मवस्तुतः परिगृह्य
पाषितौ परिरक्षितौ च । वृत्तचूडौ च त्रयीवर्जमितरा विद्याः
सावधानेन परिपाठितौ । समनतरं च गर्भादेकादशे वर्षे
ज्ञात्रेण कल्पेनापनीय गुरुणा त्रयीविद्यामध्यापितौ ।

(उत्तर०२) ।

६—नलिनिके पायय कमलमधुरसं कलहसान् । पल्लविके भोजय
मरिचाग्रपल्लवदलानि भवनहारीतान् । (काद० १८४) ।

७—आर्यो दापयतु मे वैशपायनानग्रनाय गमनाभ्यनुज्ञां तातेन ॥
नान्यथा मे दोषशुद्धिर्भवति । (काद०) ।

८—तौ दपती स्वां प्रति राजधानीं

प्रस्थापयामास वशीं वसिष्ठः ।

(रघु० २।७०) ।

६—ततो द्रोणोऽर्जुने भूयो रणशिखामशिक्षयन् ।

(महाभारत १।१३०।५)

१०—तौ दपती बहु विलप्य शिशोः प्रहर्त्रा

शल्यं निखातमुदहारयतामुरस्तः । (रघु० ६।७८) ।

११—वाल्मीकिस्तौ कुशलवौ

साग च वेदमध्याप्य किचिदुत्क्रांतशैशवौ ।

स्वकृति गापयामास कविप्रथमपद्धतिम् । (रघु० १५।३३) ।

१२—स सेतुं बधयामास प्लवगैलेवणाभिमि ।

तनोत्तीर्य पथा लका रोधयामास पिगलैः ।

द्वितीय हेमप्राकारं कुर्वद्भिरिव वानरै ॥ (रघु० १२।७०) ।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—एव क्रियते शुभदादेश* । कितु या यस्य युज्यते भूमिका ता तथैव भावेन सर्वे
वर्ग्याः पाठिताः । (सालती० १) ।

२—स कार्तानिकस्ता विलोक्य स्निग्धदृष्टिराचष्ट । भट्टे अस्ति कौशल शालिप्रस्थेनानेन
सपन्नमाहारमस्मान्भवहारयितुमिति । (दशकुमार० २।६) ।

३—ततो मया पाटलिपुत्रं गत्वा श्रावितोऽमात्यसदेशं वैतालिकं स्तनकनस ।
(सुद्रा० ४) ।

४—रत्नोत्तिमिरावगुठिते पुरमार्गे धनशब्दविह्वला ।

वसति प्रिय कामिना प्रियास्त्वद्वृत्ते प्रापयितुं क ईश्वर ॥ (कुमार० ४।२) ।

५—तापश्चिताभ्यं कुलदेवताभ्यं कुलप्रतिष्ठां प्रणमय्य माता ।

ऋकारयत् कारयितव्यदक्षा ब्रमेण पादग्रहणं मनीनाम् ॥ (कुमार० ७।२७) ।

६—प्रियागुणसहस्राणामेकोन्मीलनपेशल ।

य एव दुस्मरं कालस्तमेव स्मारिता वधम् ॥ (उत्तर० ६) ।

७—शरैरुत्सवमकेतान् स कृत्वा विरतोऽभवान् ।

नयोदाहरणं बाह्यांगोपयामास किन्नरान् ॥ (रघु० ४।७८) ।

८—अथानाया प्रकृतयोऽमातृप्रधुनियामिनम् ।

मोत्सगनाययामासुर्भरत स्तम्भिताश्चभि ॥ (रघु० १२।१२) ।

९—त्व रक्षमा भीरुयतोपमाना त मार्गमेता कृपया लता मे ।

अदुर्गन्धन् वक्तुमशनुषन्त्यः शाखाभिररावर्जितस्तनवाभि । (रघु० १३ २४) ।

१०—पुणानुरक्तामनुरक्तसाधन

कुलाभिमानी कुलजा नराधिप ।

परैस्त्वदन्य क द्वापहागये—

न्मनोरममात्मवयमिव श्रियम् (किरात० १ । ३१)

११—य पयो द्रोणिव पाषाण स रामाङ्गूतिमाप्नुयात् ।

रावण गमय प्रीतिं बोधयन् हिताहितम् ॥

प्रीतोह भोजयिष्यामि भवतीं भुवनत्रयम् ।

किं विलापयसेऽत्यर्थं पार्श्वे शायय रावणम् ॥

आज्ञा कारय रक्षोभिर्मा प्रियाण्युपहारय ।

क. शक्रेण कृत नेच्छेद्देशिर्मूर्धानमजलिम् ॥ (भट्टि० ८ । ८२।८४)

१२—विद्यामथैन विजया जया च रक्षोगण क्षिप्तुमविक्षतात्मा ।

अध्यायवद्गाधिसुनो यथावन्निघातयिष्यन्युधि यातुधानान् ॥ (भट्टि० ३ । २ ११)

मस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१—हम लोगो ने उसे उसका वर्म (कर्तव्य) समझाया (विद्) और घर भेज दिया (प्र + स्था प्रेरणार्थक) ।

२—जब स्वतंत्रता की इच्छा मंत्री के हृदय में घुस जाती है, तब वह राजा को भी प्राण छड़वा देता है (त्यज) ।

- ३—युद्ध में अपने शत्रु को हराकर उसने अपने भाटों से अपने वरकृत्यों का यश गवाया (गै) ।
- ४—उसने अपने नौकरों में वाजाग में इन्धन मँगवाया (नी अथवा हृ) ।
- ५—यह कोई आश्चर्य नहीं है कि कर देने वाले राजों में सम्राट् अपनी आज्ञा पालन करवाता है ।
- ६—इन पुरुषों में कह दिया गया था कि उन नौकरानियों में मालार्ण नेयार करा ल ।
- ७—जब छत्र को किसी विषय के सिद्धान्त समझा दिये जाते हैं तब उसका अभ्यास सिखाया जाता है ।
- ८—अपने शत्रुओं को पराजित करो और उनमें कर दिलाओ (दा) ।
- ९—उसने अपने पुत्र के विवाह के लिए अपने नौकरों से एक विशाल मण्डप बनवाया (कृ) ।
- १०—उसने लडके को उसकी उच्छ्रा के प्रतिकूल खवाया (अद् वा खाद्) ।
- ११—मेने अपने सम्भ्रान्त अतिथि को अपना पुस्तकालय दिखाया (दृश् का प्रेरणार्थक) ।
- १२—वह राम से यात्रियों से काशी का मार्ग पुँछवाता है ।
- १३—भेडे स्वामी द्वारा नौकर में गाँव में पहुँचाई गई ।
- १४—मृत्यु को चाहिए कि छन्दोऽनुवर्तन द्वारा वह अपने स्वामी को पारितोषिक देने के लिए प्रेरित कर ।
- १५—मेने उन लोगों को राजा के चारों ओर खड़ा कराया और उनसे उसको प्रणाम करवाया (अभि + वद् प्रेरणार्थक) ।

षष्ठ पाठ

तृतीया

५०—संस्कृत में तृतीया विभक्ति दो प्रधान अर्थों में प्रयुक्त की जाती है। तृतीया विभक्ति या तो किसी कार्य के कर्ता का बोध कराती है, या जिस साधन से कार्य का सम्पादन होता है उसका, जैसे, ततो देव्या किमभिहितम् (तब रानी से क्या बात कही गई)—यहाँ ‘देव्या’ में जो तृतीया हुई है वह ‘अभिहितम्’ के कर्ता का बोध कराती है। सचूण्यामि गदया न सुयोधनोरु (वेणी० १) —क्या मैं अपनी गदा से दुर्योधन की जँघों को चूर चूर न कर डालूँ। यहाँ ‘गदया’ की तृतीया बतलाती है कि ‘चूर-चूर कर डालने’ की क्रिया में ‘गदा’ से सहायता ली जायगी, अर्थात् ‘गदा’ साधन बनेगी। तामेव दिव्ययोषित चक्षुषा पुनर्निरूपयामास (काद०) —फिर उस दिव्य स्त्री की तरफ अपनी आँख से देखा।

५१—तृतीया विभक्ति से जिस प्रकार के करणत्व (साधनत्व) का बोध होता है वह विविध सम्बन्धों द्वारा प्रकट किया जाता है —

(क) एक तो किसी कार्य के करने का प्रकार या ढङ्ग। दूसरे जिस प्राकृतिक गुण से कोई सज्ञा युक्त हो, जैसे, आत्मानुरूपा विधिनोपयमे (कुमार० १।१८)—उसने अपने योग्य भार्या को विधि से व्याहा। प्रकृत्या दर्शनाय (महाभाष्य)—प्रकृति से ही सुन्दर। माठरोऽस्मि

गोत्रेण—गोत्र में से माठर हूँ। त्रिषमेण धावति—ऊपर नीचे दौड़ता है। इसी प्रकार, द्विट्रोणेन धान्य क्रीणाति, माहस्त्रेण पशुन क्रीणाति, शतेन पाययति वत्सान्।

(ख) जिस मूल्य पर कोई वस्तु खरीदी जाती है, जैसे, कियता मल्येन क्रीत पुस्तकम्—किस दाम पर पुस्तक खरीदी गई।

(ग) गत्यर्थक वातुओं के योग में वाहन या साधन (करण) होता है, जैसे, आत्मन पद विमानेन विगाहमान (रघु० १३।१)—अपने स्थान को विमान द्वारा विचरते हुए।

(घ) वहनार्थक अथवा न्यासार्थक धातुओं के योग में, जिस पर कोई वस्तु ढोई जाती है अथवा रक्खी जाती है वह तृतीया में रक्खा जाता है जैसे, स श्वान स्कन्धेनोवाह (द्वितो०)—वह कुत्ते को कन्धे पर ढोता था। भर्तु राज्ञा मर्ध्ना आदाय (कुमा० ३।२०)—अपने स्वामी की आज्ञा को मिर पर वाग्य कर।

(ङ) शपथ बोधक शब्दों के योग में, जिसके नाम से शपथ ली जाती है वह साधन (करण) होता है, जैसे, जीवितेनैव शपामि ते—मैं तुमसे अपने प्राणों की कसम खाकर कहता हूँ।

(च) किसी स्थानविशेष तक जाने के लिए जिस मार्ग का अनुसरण किया जाता है उसकी दिशा साधन (करण) होती है, जैसे कतमेन दिग्भागेन गत स जाल्म (वि० १)—वह शठ किस दिशा में गया।

५०—उत्कर्षार्थक तथा सादृश्यार्थक धातुओं के योग में जिन गुणों की उत्कृष्टता होती है, अथवा जिन बातों में सादृश्य पाया जाता है, उनमें तृतीया होती है जैसे, पूर्वान महाभाग तयातिशेषे (रघु० ५।१४)—ऐ महाभाग, तुम उस (श्रद्धा) के कारण अपने पूर्वजों से बढ़कर (उत्कृष्टतर) हो। स्वरेण रामभद्रमनुद्हरति (उत्तर० ४)—आवाज ने राम से मिलता-जुलता है।

टिप्पणी—कभी कभी इसी अर्थ में सप्तमी का प्रयोग होता है, जैसे, धनदेन समस्त्यागे सत्पे धर्म डवापर (रामा० १।१६)—दानशीलता में कुबेर के समान और सत्यवादिता में दूसरे धर्म के समान ।

(क) पृथक्त्वबोधक शब्दों का प्रयोग साधारणतः तृतीया के साथ होता है जैसे, अयमेकपदे तथा वियोग उपनत (विक्रमो० ४)—यह उससे वियोग एकाएक आ पड़ा । इसी प्रकार मा भूदेव क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग । (मेघ० ११८) ।

(ख) सादृश्यार्थ बोधक तथा समानता बोधक शब्द तृतीया विभक्ति के साथ प्रयुक्त होते हैं, जैसे धनदेन समस्त्यागे—दानशीलता में कुबेर के समान । अस्य मुख सीताया मुखचद्रेण सवदति (उत्तर० ४)—इसका मुखड़ा सीताजी के चन्द्रतुल्यमुख में मिलता-जुलता है । षष्ठी विभक्ति का भी प्रकरण देखिए ।

५३^१—अभीष्ट फल की प्राप्ति अथवा अभीष्ट कार्य की सिद्धि का बोध कराने में कालवाची तथा मार्गवाचा शब्दों में तृतीया होती है, अर्थात् जितने “समय” में या जितना “मार्ग” चलते-चलते कोई कार्य सिद्ध हो जाता है, उस “समय” और “मार्ग” में तृतीया होती है, द्वादशवर्षैर्व्याकरण श्रूयते (पञ्चतन्त्र १)—व्याकरण बारह वर्ष में अव्ययन किया जाता है । कोशेन पाठस्तेनाधीत (सि० कौ०)—उसके द्वारा कोस भर में पाठ पढ़ लिया गया ।

५४^२—साधन अथवा कारण से कारण या प्रयोजन भिन्न होता है । किसी वस्तु या किसी क्रिया के कारण या प्रयोजन का बोध कराने वाली सज्ञा तृतीया में रक्खी जाती है, जैसे, गुणै भक्त्या प्रीतास्मि ते (रघु० २।६३)—गुरु के प्रति तेरी भक्ति से मैं तुझसे प्रसन्न हूँ । अतिद्वीयस्तया

✓—अपवर्गे तृताया २। ३ ६। फलप्राप्ति अथवा कार्यसिद्धिको “अपवर्ग” कहते हैं ।

✓—हेतौ । २। ३। २३।

च तस्य प्रदेशस्य न किञ्चिद्दर्श (काद०)—उस स्थान के बहुत दूर होने के कारण वह कुछ भी न देख सका ।

(क) प्रयोजन भी तृतीया विभक्ति में रक्खा जाता है, जैसे, अध्ययनेन वसति (सि० कौ०)—अध्ययन करने के प्रयोजन से रहता है ।

टिप्पणी—सन्तुष्ट, प्रसन्न, हर्षित, आश्चर्यचकित, लज्जित—इन अर्थों का बोध कराने वाली क्रियाओं के साथ प्रयुक्त होने वाली तृतीया, इमा नियम के अन्तर्गत है, जैसे, कापुरुष स्वल्पकेनापि तुष्यति (पच-तन्त्र—(नीच पुरुष योड़ी सी वस्तु से भी प्रसन्न हो जाता है । उभयार्णतथा लोक प्रावीण्येन विमिष्टिमये (रघु० १५।६८)—लोग उन दोनों की चतुरता (कौशल) से इतने आश्चर्यान्वित नहीं हुए । अनेन प्रागल्भ्येन लज्जं (काद०)—मैं इस वृष्टता से लज्जित हूँ ।

५५^१—शरार के जिस अंग में विकार होता है उसमें तृतीया होती है जेने, अदृणा काण (सि० कौ०)—एक आँख का काना । इसी प्रकार पादेन खज्र—पैर का लँगड़ा । कर्णेन बाधिर—कान का बहिरा ।

५६^२—किसी दशा या अवस्था विशेष की सत्ता का बोध कराने वाला गुण तृतीया में रक्खा जाता है, जैसे, जटाभिस्तापम. (सि० कौ०)—जटाओं के कारण वह तपस्वी है ।

५७—“वस” या “पर्याप्ति हो चुका” अर्थात् निषेध अर्थ का बोध कराने वाले अलम् तथा कृतम् के योग में तृतीया होती है, जैसे, अलम-तिविस्तरण (वे० १)—बहुत विस्तार मत करो । कृतमश्वेन (उत्तर० ४)—घोड़े से बाज आए, घोड़े को हटाओ । तस्मात् कृत चरणपात-विडम्बनाभि (पचतन्त्र) ।

१—येनागविकार । २।३२०।

२—इत्थभूतलक्षणे । २।३।२१।

(क) इस अर्थ में अलम् शब्द प्रायः क्वाप्रत्ययान्त के साथ प्रयुक्त होता है जैसे, अलमन्यथा गृहीत्वा (मालविका० १)—उलटा पुलटा न समझ ले। ऐसे प्रसंगों में अलम् शब्द निषेधार्थवाचक होता है।

५८—‘सह, साक, सार्ध, समम्—इन शब्दों का अर्थ होता है “साथ”। इनके प्रयोग में उस शब्द में तृतीया होती है जो किसी वाक्य के प्रधान कर्ता का साथ देता है जैसे, त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु (उत्तर० २)—मेरे साथ जंगलों में रहूँगी। अमरसिन्धु सार्वमस्मद्विधाभि (उत्तर० ३)—हम जैसे पुरुषों के साथ देव नदी। आम्स्व साक मया सौधे (भट्टि० ८।७६)—मेरे साथ महल में बैठो।

५९—कि, काय, अर्थ, प्रयोजन, गुण इत्यादि “लाभ” अथवा “आवश्यकता” वाचक शब्दों का, तथा इसी अर्थ का बोध कराने वाली ‘किम्’ पूर्वक ‘क्’ धातु का जब प्रयोग होता है, तब जिसमें लाभ होना अथवा आवश्यकता पड़ जाती है उसमें तृतीया होती है और जिसको लाभ होने वाला होता है अथवा जिसे आवश्यकता पड़ती है वह पाठों में रक्खा जाता है जैसे, देवपादानां सेवकैर्न प्रयोजनम् (हितो० १)—श्रीमान् को नौकरों की आवश्यकता नहीं है। तृणेन कार्यं भवतीश्वराणाम् (पञ्चतन्त्र १।१)—वनी लोगों का कोई कोई काम तिनके से भी सँभल जाता है। किं तथा क्रियते धेन्वा (पञ्चतन्त्र १)—उस गाय से क्या करना है। किं तथा दृष्टया (शकु २)—उमें देखने में क्या लाभ? अप्राज्ञेन सानुरागेण भृत्येन को गुण (मुद्रा० १)—अनुरागयुक्त परन्तु मूर्ख नौकर में क्या लाभ?

टिप्पणी—पाणिनि के नीचे लिखे हुए दो सूत्र हैं — (१) दिव्कर्मच १।४।४३ अर्थात् “खेलना” अर्थवाचक दिव् धातु के योग में द्वितीया अथवा तृतीया होती है, जैसे, अक्षे अक्षान् वा दीव्यति।

(२) सजोऽन्यतरस्या कर्मणि २।३ २२, पित्रा पितर वा स जानीते
—यह अपने पिता के साथ मेल से रहता है ।

अभ्यास

- १—अलमल बहु विकल्थ्य । राज्ञः समक्षमेवावयोरधरोत्तर-व्यक्ति
र्भविष्यति (मालविका० १) ।
- २—देवेन देव्या च परिगृहीतोऽहममुना हृदत्तेन प्रधान-पुरुषसम-
क्षमय न मे पादरजसा तुल्य इत्यधिक्षिप्तः (मालविका० १) ।
- ३—शापितासि मम लवगिकावलोकितयोर्जीवितेन यदि वाचा न
कथयसि (मालती० ८) ।
- ४—आगतुकतयाऽश्रुतपूर्व आवाभ्यामेष वृत्तातः (शकु० ६) ।
- ५—भगवति तमसे अय (करिकलभकः) तावदीदृशः सपन्नः ।
तौ पुनर्न जाने कुशलवावेतावता कालेन कीदृशाविव भवतः
(उत्तर० ६) ।
- ६—चंद्राग्रीवस्य सहपाशुक्लीडिततया सहसवृद्धतया च सर्वविश्रंभ-
स्थान द्वितीयमिव हृदय वैशपायनः पर मित्रमासीत् (काद०) ।
- ७—अलमतियत्रण्या । कृतमतिप्रसादेन । भगवति प्रसीद विमुच्य-
तामयमद्यादर इति तामब्रवीत् (काद०) ।
- ८—उषसि चोत्थाय तस्य जरद्बिडधार्मिकस्येच्छया निसृष्टैर्धनविसरैः
प्रयित्वा मनोरथमभिमतमभिरमणीयेषु प्रदेशेषु निवसन्नल्पैरे-
वाहोभिरुज्जयिनीमाजगाम (काद०) ।
- ९—अलमुपालभ्य । आर्य दैवेनेदमनुष्ठित किमत्रार्यस्य (मुद्रा० ३) ।
- १०—अयि पचालतनये अल विषादेन । किं बहुना । यत्करिष्ये
तच्छ्रूयताम् । अचिरेणैव कालेन सुयोधनशोणितशोणपाणिस्तत्र
कचान् भीम उत्तसयिष्यति (वेणी० १) ।

- ११—स्वदृश्येनापि विदितवृत्तातेनामुना जिह्मेमि (काद०) ।
 १२—प्रवातशयने निपण्णा देवो परिजनहस्तगृहीतेन चरणेन परिज्वा-
 जिकया कथाभिर्विनोद्यमाना तिष्ठति (मृच्छकटिक ४) ।
 १३—मदनमपि गुणैर्विशेषयन्ती
 रतिरिव मूर्तिमती विभाति सेयम् (मृच्छकटिक ४) ।
 १४—शुद्धातदुर्लभमिदं वपुराश्रमवासिनो यदि जनम्य ।
 दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः (शकुं० १) ।
 १५—शरीरसादादममभूषणा मुखेन सालक्ष्यत लोभपाडुना ।
 तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्वरी
 (रघु ० ३२) ।
 १६—यो मामजमनादि च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
 असमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते (भगवद्गीता १०।३) ॥
 १७—किं तया क्रियते धेन्वा या न सूते न दुग्धदा ।
 कोऽर्थः पुत्रेण ज्ञातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान् (पञ्चतन्त्र १) ।

अभ्यासार्थं अ तरिक्त वाक्य

- १—अशुनान्या गतिर्नास्ति । अकथ्यमाने च महाननथोऽपनिपातो जायते प्राणपरित्यागे-
 नापि रक्षणीयाः सुहृदसव इति कथयामि । (काद०) ।
 २—तेषु तेषु रम्यतरेषु स्थानेषु तया सह तानि तान्यपरिसमाप्तान्यपुनरुक्तानि केवल
 चद्रमाः कादबरी मह कादवरी महाश्वेतया सह महाश्वेता तु पु डरीकेण मह
 पुं डरीकोऽपि चंद्रमसा सह परस्परावियोगेन मर्व एव सर्व कालसर्व सुखान्वयभुवतः
 परा कोटिमानंदरूपाध्यगच्छन् (काद०) ।
 ३—अवधूतप्रणिपताः पश्चात्सतप्यमानमनमोऽपि ।
 निमृत्नैर्व्यपव्रपते दयितानुनयैर्मनस्विभ्यः ॥ (विक्रमो० ३) ।

१—रुष्ट जन कुलधनैरनुरजनं यस्तन्नो यदुक्तमशिव न हि तत्क्षमते ।

नैमर्गिकी सुरभिण नृसुमस्य सिद्धा मूर्ति स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ॥

(उत्तर० १) ।

२—अथ दुर्लभ्यशामनतया भगवतो मनोभुवो मदजननयया चमधुमासस्यातिरमणीयतया
च तस्य प्रदेशस्याविनयबहुलतया चाभिनवयौवनस्य चचलप्रकृतितया चेन्द्रियाणां
तुर्निवारतया च विषयाभिलाषाया तथा भवितव्यतया च तस्य तस्य वस्तुन तमपि
नरलनामनयदनग । (काद०)

३—विनाध्यैर्वीर स्वृशति बहुमानोन्नतिपद

ममायुक्तोऽप्यये. परिभवपद याति कृपण ।

स्वभावादुद्भूता गुणममुदयावातिविषया

द्युति सैवी किं श्वा ध्वनकनकमालोऽपि लभते ॥ (हितोप० १)

४—अल महीपाल तव श्रेणेण प्रयुक्तमप्यन्वमितो वृथा स्यात् ।

न पादपोन्मूलनशक्ति रङ्ग शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य (रघु० २ । ३४) ।

५—कुलेन कात्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानै ।

त्वसात्मनस्तुत्यमसु वृणीष्व रत्न समागच्छतु काचनेन (रघु० ६ । ७९) ।

६—लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकै

सत्य चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ।

मौज्यय यदि किं गुणै स्वमहिमा यद्यस्ति किं मङ्गलै ।

मद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥ (भर्तृहरि २।५५) ।

१०—अयमार्थचरणव्यतिष्ठति—

यो न दमैर्यन्त्रपयो परिभूय लोक-

मस्तोदयो प्रतिदिशन्नविभिन्नकालम् ।

पर्यायपातितहिमोष्णमसर्वगामि

धाम्नातिशाययति धाम सहस्रधाम्न ॥ (मुद्रा० ३) ।

११—भूषणाद्युपचारं प्रभुर्भूति न प्रभु ।

परैरपरिभूतिस्तत्त्वमिव प्रभुरुच्यते ॥ (मुद्रा० ३) ।

१२—आज्ञा कीति पालन ब्राह्मणानां ज्ञान भोगा मित्रसरक्षण च ।

येषामेन षट्पुण्या न प्रवृत्ता कोर्यस्तथा पार्थिवोपाश्रयेण ॥ (भर्तृहरि० २।४८) ॥

१३—न तेन सज्ज क्व चिदुद्यतं धनु कृत न वा कोपविजिह्वमाननम् ।

गुणानुरागण शिरोभिरुह्यते नराधिपैर्भक्त्यमिवास्य शासनम् ॥ (किरान० १।२१) ॥

१४—समुद्र इव गाम्भीर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव ।

विष्णुना सदृशो वीर्ये क्षमया पृथ्वीसम ॥ (रामायण १।१।१७) ।

१५—स बाल आसीदपुषा चतुर्भुजा मुखेन पूर्णेन्दुनिभन्विलोचन ।

युवा कराक्रातमहःशृङ्गकैरमशय सप्रतिपत्तमाग्नि ॥ (शिशु० १।७०) ।

संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

१—मनुद्वारा विहित नियमों के अनुसार राजा अपनी प्रजा का पालन करे ।

२—मदाचार कहता है कि अपने प्राण को सकट में डालकर भी मित्र का रक्षा करे ।

३—यह लोभ का अवतार है यह कितना भी धन-सचय करे, पर कभी तृप्त न होगा ।

४—क्या तुम अज्ञान से लजाते नहीं हो, और क्या अपने विद्याविहीन उच्चकुल का अभिमान करते हो ।

५—प्रजा को संतुष्ट रखने की कामना, तथा ज्ञान और पराक्रम में यह राजा अन्य सबों से बढ़कर है ।

६—अन्य राजाओं द्वारा आप की आज्ञा सिर पर धारण की जाती है—यह आपकी महिमा का बहुत बड़ा चिह्न है ।

७—वह मनुष्य अजशावक को कन्धे पर ले कर इस मार्ग से कसाई-
वाने गया ।

८—मे अपने दृष्टदेव का शपथ खाकर कहता हूँ कि मैंने इसके पहिले
आपकी अँगूठा कभी नहीं देखी ।

९—म जानता हूँ कि मेरे नौकर पन्द्रह दिन मे लोट आवेगे क्योंकि उनके
वहाँ अधिक ठहरने से क्या लाभ ?

१०—उत्कट श्रद्धा के साथ केवल एक बार भी ओंकार कहने से पापी
भी अपने तमाम पापों से मुक्त हो जाता है ।

११—इस आदमा के साथ टहलने से क्या लाभ ? वह दाहिने पाँव
का लँगडा है और शीघ्रतापूर्वक नहीं चल सकता ।

१२—इस विषय म शङ्का न कीजिए (अलम्), । मेरे बहनोई द्वारा यह
मामला स्वीकार कर लिया गया है ।

१३—तुम्हें मुर्ख को बिकारा है । यदि तू पुस्तकों को नहीं पढता तो तुम्हें
उनके बोझ से क्या लाभ ?

१४—मेरी निन्दा न कीजिए (अलम्) यह मुझसे नहीं किया गया ।

१५—वच्चे मत रोओ (अलम्) जब तेरी माता यहा आवगी तो मे
उससे तुम्हें खिलवाऊँगा ।

१६—अपने प्रेमा के विषय म माचने रहने के कारण शकुन्तला ने
दुवासा का आगमन नहीं देखा ।

१७ - १७ अन्ये आदमी, तुम्हें इस दीपक से क्या लाभ ?

सप्तम पाठ

चतुर्थी

६०—जिसको कोई वस्तु दी जाती है उसे सम्प्रदान कहते हैं। सम्प्रदान में चतुर्थी होती है जैसे, कि वस्तु विद्वन् गुरुवे प्रदेयम् (रघु० ५। १८) —ए विद्वान् पुरुष, गुरु जी को क्या देना है ?

जिस पुरुष या वस्तु के लिए अथवा जिनके उद्देश्य में कोई कार्य किया जाता है, वह भी सम्प्रदान होता है जैसे, युद्धाय मन्त्रह्यते (महा भाग्य) —युद्ध के लिए तैयारी करता है। ना नन्दनाय प्रार्थयते (मालती०) — वह उसे नन्दन के लिए माँग रहा है।

। क १ यज्ञ धातु (यज्ञ करना) के योग में, जिस व्यक्ति को यज्ञ अर्पण किया जा रहा है, वह द्वितीया में रक्खा जाता है, और जिस वस्तु या साधन द्वारा यज्ञ किया जाता है वह तृतीया में रक्खा जाता है जैसे, पशुना रुद्र यजते (सि० कौ०) —वह रुद्र को एक पशु चढ़ाता है।

६१—रच् धातु तथा रुच् के समान अर्थ रखने वाली धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाला चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे, यत् प्रभविष्णवे

१—यजे कर्मणः करणमज्ञा, सम्प्रदानस्य च कर्ममज्ञा (वार्तिक)

२—रुच्यर्थानां प्रीय माणा १।४।३३।

दोचत (शकु० २ —जो श्रीमान् को भाव । यज्ञदत्ताय स्वदत्ते पृप
(नाशिका) — यज्ञदत्त को अपूप अच्छा लगता है ।

८०१—वारि वातु (उबार लेना, कर्ज लेना, के योग में महाजन
(कर्ज देने वाला) चतुर्थी में रक्खा जाता है जैसे, गोविन्दो रामाय लज
धारयति—गोविन्द ने राम में एक लाख उबार लिया है ।

१२५—स्पृह् वातु (चाहना) के योग में चाही हुई वस्तु चतुर्थी में रक्खा
जाता है जम, परिस्त्रीणो यवाना प्रसृतयं स्पृहयति(भर्तृ० नीति० ४५)।—
गगन आदमी मुट्ठी भर (पमर भर) जौ चाहता है ।

टिप्पणी—स्पृह् वातु में प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्दों के योग में कम
कमी चतुर्थ्यन्त पद का प्रयोग होता है, जैसे, भोगभ्य स्पृह्यालवः (भर्तृ०
नीति ६४)—भोगों (आरामों) के इच्छुक । कथमन्ये करिष्यन्ति
पुत्रभ्यः पुत्रिण स्पृहाम् (वेणी० २) ।

माधारणतया स्पृह् वातु में प्रत्ययनिष्पन्न शब्दों के योग में
सम्यन्तपद का प्रयोग होता है जैसे, स्पृहावती वस्तुषु वेपु मागर्वा
(रघु० ३।५)

६३३—क्रुब् गुस्सा होना, द्रुह (द्रोह करना, वैर करना) ईर्ष्य
(डाह या जलन करना, अमय (डाह या जलन करना)—इन वातुओं
तथा इनके समान अर्थ रखने वाली अन्य धातुओं के योग में, जिसके
ऊपर क्रोव किया जाता है, या जिसमें घृणा या डाह इत्यादि की जाती है वह
चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे, हरये क्रुध्यति द्रुह्यति ईर्ष्यति असूयति
वा (सि० कौ०)—वह हरि में गुस्सा होता है, द्रोह करता है अथवा
डाह करता है ।

१—धारेक्ष्मण १।४।३५

२—स्तुहेरीप्मिन् १।४।३६।

३—क्रुधद्रुहेर्ष्यामयार्थानां य प्रति कोप क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयो कर्म १।४।३७-८

परन्तु उपसर्गयुक्त क्रुध तथा द्रुह् धातुए द्वितीयान्त पद लेती हैं, जैसे, मच्छरीरमभिद्रोयुं । मुद्रा० १)—मेरे शरीर पर आघात पहुँचाने के लिए । न खलु तामभिक्रुद्धो गुरु (विक्रमो०३ —क्या गुरु जी उस पर गुस्मा नहीं हुए ?

६४^१—प्र-पूर्वक तथा आ-पूर्वक श्रु धातु का अर्थ होता है “प्रतिज्ञा करना ।” तो जिस पुरुष से कोई प्रतिज्ञा कर दी जाती है वह चतुर्थी में रक्खा जाता है जैसे, प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विघ्नप्रतिक्रियाम् । रघु० १५ । ४)—काकुत्स्थ ने उन लोगो में विघ्नो को हटाने की प्रतिज्ञा कर दी ।

६५^२—जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है या जिसको बनाने के लिए कोई दूसरी वस्तु कायम रहती है या प्रयुक्त होती है वह चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे, काव्य यशसे (काव्य प्रकाश)—काव्य यश के लिए होता है । यूपाय दारु (महाभाष्य)—खम्भा (बनाने) के लिए लकड़ा । कुण्डलाय हिरण्यम् (महाभाष्य)—सुवर्ण कुण्डल नामक आभूषण बनाने के काम आता है । अवहननाय उत्खलम् (महाभाष्य)—कटने के लिए अथवा काटने के लिए ओखली ।

(क)^३ जब किसी वाक्य में तुमुनन्त वातु का अर्थ या भाव छिपा या ढका-सा रहता है, तब तुमुनन्त का कर्म चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे, फलेभ्यो याति=फलान्याह तु याति—वह फलो के लिए जाता है अर्थात् फलो को लाने के लिए जाता है । वनाय गा मुमोच=वनं गन्तुं गा मुमोच—उसने गाय को जंगल के लिए छोड़ दिया अर्थात् जंगल को जाने के लिए छोड़ दिया । यहाँ “आहतुम्” का

१—प्रत्याडभ्याश्रुव पूर्वस्य कर्ता । १ । ४ । ४० ।

२—क्रादर्थे चतुर्थी वाच्या (वार्तिक) ।

३—क्रियार्थोपदस्य च कर्मणि स्थानिन । २ । ३ । १४ ।

कर्म “फल” और “गन्तुम्” का कर्म ‘वन’ चतुर्थी में रक्खा गया है ।

(ख)^१ किमी वातु में तुमुन् प्रत्यय जोड़ने से जो अर्थ निकलता है वही अर्थ पाने के लिए, उस वातु में बनी हुई भाववाचक सजा में चतुर्थी होता है जेमे, यागाय याति—यष्टु याति—वह यज्ञ करने के लिए जाता है । समिदाहरणाय प्रस्थिता वयम् (शकु ० १) । यतिष्य व सखीप्रत्यानयनाय (विक्रमो ० १)

६६^२—कल्प (समर्थ होना या पेदा करना) के योग में तथा उमी प्रभार का अर्थ रखने वाली संपद् भू, जम सरीखी अन्य वातुओं के योग में, जो परिणाम निकलता है वह चतुर्थी में रक्खा जाता है, जैसे, कल्पसे रक्षणाय (शकु ० ५)—तुम प्रजाओं की रक्षा करने में समर्थ हो । मृत्राय कल्पते-जायते सम्पद्यते यवागू (महाभाष्य)—माण पेशाव पेदा करता है ।

उमा अर्थ में, भू अथवा अस् के न रहने पर भी प्रायः चतुर्थी प्रयुक्त होती है जेम, यतस्तो स्वल्पदुःखाय (पचतत्र १)—चूँकि वे दोनो बहुत कम दुःख देते हैं

(क)^३ किसी अशुभसूचक घटना द्वारा जिस वस्तु का पूर्वरूप दिखाई देता है वह चतुर्थी में रक्खी जाती है, जैसे, वाताय कपिला विद्युत् (महाभाष्य)—चितकवरी बिजली तूफान की द्योतक है । मासौदनाय व्याहरति मृग (महाभाष्य)—हिरन की आवाज मास के भोजन की प्राप्ति सूचित करती है ।

(ख) ‘दिन’ और ‘सुख’ के साथ चतुर्थी प्रयुक्त होती है जेमे,

१—समर्थ भाववचनात् । २।३।१५।

२—कृपि सम्पद्यमाने च (वार्तिक) ।

३—उत्पत्तेन ज्ञापिते च (वार्तिक) ।

ब्राह्मणाय हितम् सुखम् (सि० कौ०)—ब्राह्मण के लिए हितकर वा सुख-
कर । हितमामयाविने (महाभाष्य)—रुग्ण पुरुष के लिए हितकर
अथवा सुखकर ।

टिप्पणी—हित का प्रयोग सप्तमी तथा षष्ठी के साथ भी
होता है ।

६७^१—नम. स्वस्ति स्वाहा, स्वधा, अलम् (जोड़, काफी) और वषट्
शब्दों के योग में चतुर्थी होती है, जैसे, नमो विश्वस्तुजे तुभ्यम् (रघु०
१०।१६)—विश्व के रचने वाले आप को नमस्कार है । स्वस्ति भवते
(माल-विका०२)—आप का कल्याण हो । अग्नये स्वाहा (सि० कौ०)—
अग्नि को यह बलि । इसी प्रकार पितृभ्यः स्वधा, इन्द्राय वषट्, दैत्येभ्यो
हरिरलम् (सि० कौ०)—हरि दैत्यों के जोड़ के हैं । अलमेषा
क्षुधितस्य (मे) तृप्त्यै (रघु० २।३६)—मुझ भूखे को सन्तुष्ट करने
के लिए यह गाय पर्याप्त है ।

(क) अलम् (पर्याप्त, करने के लिए समर्थ) के अर्थवाचक 'प्रभु'
और 'शक्त' शब्द तथा 'प्र' पूर्वक 'भू' धातु के योग में चतुर्थी
होती है, जैसे, प्रभुमल्लो मल्लाय, शक्तो मल्लो मल्लाय,
प्रभवति मल्लो मल्लाय (महाभाष्य)—पहलवान का जोड़ पहलवान
होता है । विधिरपि न येभ्य प्रभवति (भर्तृ० नीति० ६४)—जिनके
ऊपर ब्रह्मा का भी जोर नहीं चलता ।

(ख) 'नम' पूर्वक कृधातु के साथ साधारणतया द्वितीया
आती है, परन्तु कभी कभी चतुर्थी भी, जैसे, मुनित्रय नमस्कृत्य
(सि० कौ०)—तीनों मुनियों को नमस्कार करके । परन्तु नमस्कुर्मो
नृसिंहय (सि० कौ०)—हम लोग नृसिंह को नमस्कार करते हैं ।

(ग) "प्रणाम करना"—इस अर्थ का बोध कराने वाली प्रणिपत्

१—नम स्वस्ति स्वाहा स्वधाऽलवषट् योगाच्च । २।३।१६।

और प्रणम् इत्यादि धातुओं के साथ द्वितीया अथवा चतुर्थी आती है; जैसे, धातार प्रणिपत्य (कुमार० २।३) — ब्रह्मा को प्रणाम कर। तस्मै प्रणिपत्य नन्दी (कुमार३।६०)। आर्य प्रणिपत्य (सुद्रा० १)। ता भक्ति-प्रवणेन चेतसा प्रणनाम (काद०)। ता कुलदेवताभ्य प्रणमय्य (कुमार०-७। २७)। प्रणम्य त्रिलोचनाय (कादम्बर०)।

टिप्पणी—संस्कृत लेखक इन धातुओं से बने हुए सज्ञाशब्दों का भा प्रयोग समय समय पर चतुर्थी के साथ करते हैं, जैसे, मूर्ध्ना प्रणाम वृषभध्वजाय (कुमार० ३। ६२)। अस्मै प्रणाममकरवम् (कादम्बरी)। तस्मै दण्डप्रणाममकरवम् (दशकुमार० १।२)।

(घ) आशीर्वाद प्रकट करने तथा स्वागत करने में 'स्वागतम् कुशलम्' आदि शब्दों के साथ चतुर्थी आती है जैसे, 'देवदत्ताय कुशलम्' 'कुशलम्', 'भद्रम्' 'सुखम्' इत्यादि शब्द षष्ठी के साथ भी आते हैं। दशम पाठ देखिए।

६८—'कहना'—इस अर्थ का बोध कराने वाली कथ्, ख्या, शस्, और चक्ष् तथा 'नि' पूर्वक वद् धातु का प्रणार्थक और इसी अर्थ का बोध कराने वाली अन्य धातुओं के योग में वह व्यक्ति सम्प्रदान कहलाता है जिसमें कुछ कहा जाता है, जैसे, आर्ये कथयामि ते भूतार्थम् (शकु १)—ऐ आर्य, मैं तुममें सत्य कहता हूँ। स्वागत देव्यै (माल-विका० १)—रानी का स्वागत। एहि इमा वनस्पतिसेवा काश्यपाय निवेदयाव (शकु ० अक ४ पञ्चवे श्लोक के बाद)—आओ, चलो वृक्षों की इस सेवा को हम लोग काश्यप को बतला दें। यस्मै ब्रह्मपारायण जगौ (उत्तर० ४—जिसमें उन्होंने वेद गाया (वेद का उच्चारण किया)। यस्मै बुनिर्ब्रह्म पर विवत्रे महावीर० २)।

६९—'मेजना'—इस अर्थ का बोध कराने वाली धातुओं के योग में वह व्यक्ति सम्प्रदान होता है जिसे कोई वस्तु भेजी जाती है, पर जिस स्थान पर वह वस्तु भेजी जाती है वह कर्मसंज्ञक होता है, जैसे भोजेन

दूतो रघवे विसृष्ट (रघु० ५। ३६)—रघु के पास भोजद्वारा एक दूत भेजा गया । माधव पद्यावती प्रह्लिखता देवरातेन (मालती० १)—पद्मावती के पास माधव को भेजने वाले देवरात द्वारा ।

७०^१—जब अनादर दिखाना होता है तो मन् (समझना दिवादि०) धातु का गौण कर्म, यदि वह प्राणी न हो, द्वितीया या चतुर्थी में गृह्यता जाता है जैसे, न त्वा वृणाय वृण वा मन्ये (सि० कौ०)—मैं तुम्हें तिनके के भी बराबर नहीं समझता ।

जब निषेध या अनादर नहीं दिखाया जाता बल्कि केवल तुलना दिखाई जाती है, तब केवल द्वितीया आती है जैसे, त्वा वृण मन्य (महाभष्य)—मैं तुम्हें तिनके के तुल्य समझता हूँ । परन्तु, हरिमध्यमस्त वृणाय (शिशु० १। ६१) ।

७१^२—जब गत्यर्थक वातुओं का कर्म मार्ग नहीं रहता और क्रिया के निष्पादन में शरीर से व्यापार करना पड़ता है, तो उस कर्म में द्वितीया या चतुर्थी होती है, जैसे, ग्राम ग्रामाय वा गच्छति । यहाँ पर 'ग्राम' मार्ग नहीं है, बल्कि स्थान है, और गाँव जाने में हाथ, पैर, तथा शरीर के और अंगों का हिलाना डुलाना पड़ता है अर्थात् शारीरिक व्यापार करना पड़ता है, अतएव 'ग्रामम्' 'ग्रामाय' दोनों होता है ।

परन्तु यदि गत्यर्थक वातु का कर्म "मार्ग" हो, तो कर्म में केवल द्वितीया होगी, जैसे, पन्थानं गच्छति ।

जहाँ शारीरिक व्यापार नहीं करना पड़ता वहाँ केवल द्वितीया होती है, जैसे, मनसा हरिं भजति । यहाँ हरि के पास जाने में 'मन से' काम

१—मन्वकर्मण्यनादरे विभवाऽप्राणिषु । २। ३। १७।

२—गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थी चेष्टायामनध्वनि । २। ३। १२ । गत्यर्थक धातु उसे कहते हैं जिसका अर्थ हो 'जाना'—जैसे, गम्, चल् इण्, या इत्यादि ।

स्लेता है' न कि शरीर के अवयवों से, इसमें जाने वाले को हाथ, पैर
अथवा शरीर का और कोई अंग हिलाना डुलाना नहीं पड़ता । इसलिए
“हरि” मे केवल द्वितीया हो सकती है, चतुर्थी कदापि नहीं ।
इसी प्रकार —

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यता याति लोके ।

तदानन मृत्युरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाधाय न वृत्तिमाययौ ।

विद्या ददाति विनय, विनयाद् याति पात्रताम् ।

अश्वत्थामा कि न यात स्मृति ते ।

पश्चादुमाख्या सुमुखी जगाम ।

टिप्पणी^१— जिस पुरुष के विषय में कुशल-विषयक अथवा सुख-
सौभाग्यविषयक प्रश्न किए जाते हैं, वह राध् धातु (आराधना करना या खुश
करना) तथा ईक्ष् धातु (कल्याण कामना करना) के योग में चतुर्थी
में रक्खा जाता है, जैसे, कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा गर्गः अर्थात् पृष्ठो
गर्गः शुभाशुभ पर्यालोचयति—पूछे जाने पर गर्ग जी श्रीकृष्ण के शुभाशुभ
का विचार कर रहे हैं ।

जिस^२ मूल्य या बँधी हुई मजदूरी पर कोई पुरुष नियुक्त किया जाता
है वह मूल्य या मजदूरी तृतीया अथवा चतुर्थी में रक्खी जाती है,
जैसे, शतेन शताय वा परिक्रीतोऽयं दासः—यह नौकर सौ रुपए में
खरीद लिया गया है ।

अभ्यास

१—नैतन्न्याय्यम् । सर्वज्ञस्याप्येकाकिनो निर्णयाभ्युपगमो दोषाय ।
(मालविका)

१—राधीक्ष्योयस्य विप्रश्न । १।४।३९ ।

२—परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् । १।४।४४ ।

२—चपलोयं बटुः कदाचिदस्मत्प्रार्थनामन्तः पुरेभ्यः कथयेत् ।

[शकु ० २]

३—अहमपि वैतानिक शांत्युदकमस्यै गौतमीहस्ते विसर्ज-
यिष्यामि । स्पृह्यामि खलु दुर्ललितायास्मै । मृगतृष्णकेव
नाममात्रप्रस्तावो मे विषादाय कल्पते । [शकु ० ७]

४—मूर्ख, नैष तव दोषः । साधोःशिक्षा गुणाय सपद्यते नासाधोः ।

[पचतत्र १।१८]

५—प्रसीद भगवति वसु धरे शरीरमसि ससारस्य । तत्किमसविदानेव
जामात्रे कुप्यसि । [उत्तर ० ७]

६—मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भरा न प्रणमति देवताभ्यो, न मानयति
मान्यानात्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यति
हितवादिने । [काद ० १०८]

७—प्रतिश्रुत तेन तस्मै स्वसुरवतिसु दर्या प्रदानम् । [दश कुमार]

८—चद्रापाडः समुपस्तृत्य पूर्ववदव ता महाश्वेताप्रणामपुरःसरं
दक्षितविनयः प्रणनाम । [काद ० २१६]

९—प्रणिपत्य सुरास्त्रस्मै शमयित्रं सुरद्विषाम् ।

अथैनं तृष्टुवुः स्तुत्यमवाङ् मनसगोचरम् ॥ [रघु १०-११]

१०—रविमावक्षत सता क्रियावै सुधया तर्पयत सुरान् पितृ श्व ।

तमसा निशि मूर्च्छता निहन्त्रे हरचूडानिहितात्मने नमस्ते

[विक्रमा ० ३]

११—उमा वधूभवान् दाता याचितार इमे वयम् ।

वर शम्भुरल ह्येष त्वत्कुलोद्भूतये विधिः ॥

[कुमार सम्भवदा ८२]

१२—चरतः किल दुश्चर तपस्तृणविदोः परिशक्तिः पुरा ।

प्रजिघाय समाधिभेदिनी हरिरस्मै हरिणी सुरागनाम् [रघु ०

८। ७६]

१३—वाताय कपिला विद्युदातपायातिलोहिनी ।

पीता भवति सम्याय दुर्भिन्नाय सिता भवेत् ॥ [महाभाष्य]

१४—स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताबुगर्भम् ।

शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि । [रघु १। ७७]

१५—ताभ्या तथागतमुपेत्य तमेकपुत्र-

मञ्जानतः स्वचरित नृपतिः शशस । [रघु ७। १७७]

१६—परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे ॥ [भगवद्गी० ४। ८]

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—तदाकर्ण्य तामह दडवत्प्रणम्य तस्यै मदुदतमखिलमाख्याय विस्मयविकसिताक्ष जनकमदर्शयम् । (दशकुमार) ।

२—सखि वासति दु खायेदानीं रामस्य दर्शनं सुहृदाम् । तत्किञ्चिद्वा त्वा रोदयिष्यामि । तदनुजानीहि मा गमनाय । (उत्तर ३) ।

३—स्वयमेवोत्पद्यत एवविधा कुनपाशवो निःस्नेहा पशवो येषां क्षुद्राणां प्रज्ञा पराभिस-
धानाय न ज्ञानाय, पराक्रम प्राणिनामुपधाताय, नोपकाराय, धनपरित्याग कामाय,
न धर्माय । किं बहुना सर्वमेव येषां दोषाय न गुणाय । (काद०) ।

४—श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सवतीं महोक्ष वा निर्वपति गृहमेधिन (उत्तर ४) ।

५—दुदोह गा म यज्ञाय सत्याय मयवा दिवम् ।

सपत्न्यनिमयेनोभौ दधतुर्बुवनद्वयम् ॥ (रघु० १। २६)

६—नमस्त्रिमूर्तये तुभ्य प्राक्सन कैरलात्मने ।

गुणत्रयविभागाय पद्मवाङ्मेदमुत्प्रेषे ॥ (कुमारसंभव २। ४)

७—स स्थाणु स्थिरभक्तियोगसुनभो नि श्रेयमायाम्तु व । (विक्रमो० १)

८—सर्वं कल्पे वयनि यतते लब्धुमर्थान्कुटुम्बी

पद्मात्पुत्रैरपह्नभर कृतानं विश्रमाय । (विक्रमो० २) ।

९—यदेवोपनत दु खात्सु तद्रमनत्तरम् ।

निर्वाणाय तरुच्छाया नमस्य हि विशेषत (विक्रमो० ३) ।

१०—शुद्धातसभोगनितातुष्ट न नैपथे कार्यमिदं निगाद्यम् ।

अथा हि तुष्टाय न वारिधारा स्वादु सुपथि स्वदते तुषारा ॥ (नैषधीय ३। ९५)

- ११—किमित्यपास्याभरणानि यावने धृत त्वया वार्द्धकशोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुट चद्रतारकाविभावरीयद्यस्याय कल्पते (कुमार सम्भव ५। ४४)
- १२—पुसामसमर्थानामुपद्रवायात्मनो भवेत्कोप ।
पिठरं कथदत्तिमात्र, निजपाश्वानेव दहतितराम् ॥ (५ चतन्त्र १। १४) ।
- १३—पयःपान भुजगानां केवल विषवर्द्धनम् ॥
उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न ज्ञातये ॥ (हितोप ३) ।
- १४—प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय न चेदिभूमुजे ।
अनुहुंकुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी ॥ (शिशुपाल १६। २५) ।
- १५—सतानकामाय तथेति काम राज्ञ प्रनिश्रुत्य पयस्विनी सा ।
दुग्ध्वा पय पत्रपुटे मदीय पुत्रोपभुङ्क्तेति तमादिदेश ॥ (रघु० २। ६५) ।
- १६—तस्या प्रसन्नं दुमुख प्रसाद गुरुर्पाणा गुरवे निवेद्य ।
प्रद्वर्षचिह्नानुमित प्रियायै शशस वावा पुनस्तथेव ॥ (रघु० २। ६८)
- १७—ततो यथायद्विहिताध्वराय तस्मै स्मयावेशविवर्जिताय ।
वर्णाश्रमाणा गुरवे स वर्णी विवक्ष्य प्रस्तुतमाचक्षे ॥ (रघु० ५। १९)
- १८—वसन् स तस्या वसनौ रघूणा पुराणशोभामधिरोपितायाम् ।
न मैथिलेय स्पृहयावभूव भर्त्रे दिवो नाप्यनकेश्वराय ॥ (रघु० १६। ४२)
- १९—तस्यै स्पृहयमाणोसौ बहुप्रियमभाषत ।
सानुनोतिश्च सीतायै नाक्रुध्वन्नाप्यमूयत ॥
मक्रुध्यसि मृषा किं त्वं दिदृक्षु मां मृगेक्षणे ।
ईक्षितव्य परस्त्रीभ्य स्वधर्मो रक्षसामयम् ॥
रावणाय नमस्कुया स्यात् सीते स्वस्ति ते ध्रुवम् ।
अन्यथा प्रातराशाय कुर्याम त्वामल वयम् ॥ (मट्टि० ८। ७५। ७६। ९८)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

- १—ऐ आभागे, क्या तुझे चाण्डाल के घर में नौकरी पसन्द है ।
२—ऐ आर्ये, मेरे विषय में गलत भावना न लाइये, और व्यर्थ ही मुझ पर क्रोध न कीजिए ।
३—मैं धन नहीं चाहता (स्पृह), बल्कि अमर यश ।
४—“मैं तुम्हारे साथ चलूँगा”—ऐसी प्रतिज्ञा लक्ष्मण से करके अब

तुम उनसे यह क्यों कहते हो कि तुम ऐसा करने में असमर्थ हो ?

५—वृत्तान्त सुनने पर अत्यन्त प्रसन्न होकर उन लोगो ने अपने रहस्य भी उससे बता दिए (नि + विद्) ।

६—इन पवित्र पुरुषों का दर्शनमात्र मेरी शुद्धि के लिए पर्याप्त होगा (क्लृप्), अतः अपने अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि के लिए मैं उनकी सेवा करूँगा ।

७—मैंने अपने भाई द्वारा उनसे कहला दिया (आ + ख्या) कि आपके दर्शन से मुझे कोई प्रयोजन नहीं ।

८—ऐ वृद्धे, ऐसे शोकप्रद विचारों से और भी अधिक दुःख पैदा होंगे। अतः, थोड़ी देर तक टाढ़स रखो ।

९—इस ससार में विषयो का उपभोग केवल खेद पैदा करता है ।

१०—मेरी प्रजा मुझसे वृणा करती है (असूय्) और मेरे प्राण लेने के लिए षड्यन्त्र रचती है (द्रुह्) ।

११—पहिले अपने गुरु को प्रणाम करो (प्रणम्), तब अपना शठ आगम्भ करो ।

१२—अपने तीसरे नेत्र की आग से कामदेव को भस्मसात् कर देने वाले त्रिनेत्र भगवान् को नमस्कार है ।

१३—जब मनुष्य के पुत्र उत्पन्न होता है, तब वह अपने पूर्वजों (पितरों) के ऋण से उन्मृण (अनृणा) हो जाता है ।

१४—शत्रु की सम्पूर्ण सेना को हराने के लिए तुम अकेले ही समर्थ हो (अलम्) ।

१५—छोटा सा भी कारण दुर्भाग्यग्रस्त मनुष्य के नाश के लिए, प्रयास होता है ।

१६—विदेहराज के पास दूत भेजकर यह शुभ समाचार उनको बताऊँगा ।

अष्टम पाठ

पचमी

७२-पचमी विभक्ति का मुख्य अर्थ होता है 'अपादान'। जिस पुरुष, स्थान या वस्तु से मन कल्पित अथवा प्रत्यक्ष वियोग (पृथक्त्व) होता है, वह 'अपादान' होता है और पचमी में रक्खा जाता है, जैसे, ग्रामादायाति वह गाँव से आता है। यहाँ पर "ग्राम" से वियोग या पृथक्त्व पाया जा रहा है क्योंकि आने वाला पुरुष 'ग्राम' में अलग हो रहा है।


७३-पचम्यन्त सज्ञा प्रायः किसी कार्य का कारण बताती है और "कारण से" इस अर्थ का बोध कराती है, जैसे—

सौहृदादपृथगाश्रयाम् (उत्तर०१)—स्नेह के कारण अलग न रहने वाली को।

जो सज्ञा स्त्रीलिंग की न हो और किसी कार्य का कारण बताती हो वह तृतीया या पचमी में रक्खी जाती है, जैसे—जाड्येन जाड्यात् वा बद्धः (सि० कौ०)—वह अपनी जड़ता (मूर्खता) के कारण बाँधा गया।

बुद्ध्या मुक्तः (सि० कौ०)—वह अपनी बुद्धि (चतुरता) के कारण छूट गया।

भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च (रघु० २।६३)—मेरे ऊपर तुने

—विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् । २ । ३ । २५ ।

जो कृपा तथा गुरु के प्रति जो श्रद्धा दिखाई उसके कारण मैं तुझ से प्रसन्न हूँ ।

टिप्पणी—कभी कभी स्त्रीलिंग की सजा भी इसी अर्थ में पचमी में प्रयुक्त होती है, जैसे, नास्ति घटोऽनुपलब्धे (सि०कौ०) ।

(क) वाद विवाद में, युक्ति उपस्थापित करने अथवा उत्तर देने के लिए, पचमी विभक्ति प्रायः सम्पूर्ण कार्य-कारण-सम्बन्ध के अर्थ का बोध कराती है, जैसे, पर्वतो वह्निमान् धूमात् (तर्क संग्रह)—पहाड़ में आग है, क्योंकि उसमें धुआँ है ।

नेश्वरो जगतः कारणमुपपद्यते । कुत वैषम्यनैर्घृण्यप्रसंगात् (शाकर भाष्य)—भोई वादी कहता है, ईश्वर ससार का कारण नहीं हो सकता । क्यों ? क्योंकि वह पक्षपात करने वाला तथा निर्दय है ।

७४—तरप् और ईयसुन् प्रत्ययान्त शब्दों तथा तुलनार्थक शब्दों के योग में, वह शब्द पचमी में रक्खा जाता है जिससे तुलना की जाती है, जैसे मत्यादध्यन्तं श्रेय (वेणी०३)—असत्य सत्य से भी बढ़कर है ।

मोहादभूतकष्टतरः प्रबोध (रघु० १४।५६)—चेतनावस्था मूच्छा से भी अधिक कष्टदायक हुई ।

चैत्ररथादनूने वृन्दावने (रघु० ६। ५०)—जो वृन्दावन चैत्ररथ में किसी प्रकार भी घट कर नहीं है उस में ।

अश्वमेधसहस्रेभ्यः सत्यमेवातिरिच्यते (हितो०)—सत्य सहस्रों अश्वमेधयज्ञों से कहीं बढ़कर है ।

श्राद्धस्य पूर्वाह्नादपराह्णे विशिष्यते (मनुस्मृति ३। २७८)—श्राद्ध के लिए पूर्व पहर की अपेक्षा दोपहर अधिक अच्छा है ।

७५—जत्र ल्यप् अथवा क्त वाप्रत्ययान्त क्रिया वाक्य में प्रकट नहीं

ल्यबलापे कर्मण्युपमख्यानम् । अधिकरणेन । प्रज्ञाख्यानयोश्च (वार्तिक)

की जाती, किन्तु छिपी रहती है, तो उस क्रिया के कर्म और आधार पचमी में रखे जाते हैं, जैसा,

प्रासादात् प्रेक्षते (सि० कौ०)—प्रासादमारुह्य प्रेक्षते—महल से देखती है अर्थात् महल पर चढ़कर देखती है ।

श्वशुराजिह्वेति (सि० कौ०)—श्वशुर वीक्ष्य जिह्वेति—समुद्र से लजाती है । अर्थात् समुद्र को देखकर लजाती है ।

आसनात् प्रेक्षते—आसने उपविश्य स्थित्वा वा प्रेक्षते—आसन से देखता है अर्थात् आसन पर बैठकर देखता है ।

प्रश्न और उत्तर में भी पचमा आती है, जैसे, कुतो भवान्—पाटलिपुत्रात् (महाभाष्य)—आप कहाँ से आ रहे हैं—पाटलिपुत्र में (आ रहा हूँ) ।

७६^१—जुगुप्सा (घृणा), विगम (बन्द हो जाना, अलग हो जाना, छोड़ देना, हटना), प्रमाद (भूल)—इनका बोध कराने वाले तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ पचमी आती है । (जिस से घृणा क, जिससे हटे अर्थात् जिसे दूर कर दे, जिस काम में भूल करे, उन सब में पचमी होती है) । जैसे,

पापात् जुगुप्सते (महाभाष्य)—पाप से घृणा करता है ।

वत्सैतस्माद् विरम (उत्तर० १)—बेटा, इस से दूर हटो ।

स्वाधिकारात् प्रमत्तः (मघ० १)—अपने कर्तव्य में भूल कर के ।

प्राणाघातात् निवृत्तिः (भर्तृहरि० नीति० २६)—जीवहिंसा से अलग हटे रहना ।

धर्मात् मुह्यति (महाभाष्य)

टिप्पणी—“किसी के विषय में असावधान रहना”—इस अर्थ में

१—जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम् (वार्तिक)

‘प्रमद्’ धातु सप्तमी के साथ आती है, जैसे, न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः। (मनु० २ । २१३)—बुद्धिमान् लोग अपनी स्त्रियों के विषय में असावधानी न ही करते ।

७७^१—जिस गुरु या अव्यापक या मनुष्य से कोई चीज नियमपूर्वक पढ़ी जाती है, अथवा मालूम की जाती है, वह गुरु या अध्यापक या अन्य मनुष्य अपादान होता है जैसे, उपाध्यायादधीते (सि० कौ०)—गुरु से पढ़ता है ।

मया तीर्थादभिनयविद्या शिञ्चिता (मालविका०१)—मैंने अभिनय करने की विद्या अध्यापक से सीखी ।

२जन् धातु के कर्ता का मूलकारण अपादान होता है, जैसे, गोमयाद् वृश्चिको जायते (महाभाष्य)—गोबर से बिच्छू पैदा होता है ।

कामात् क्रोधोऽभिजायते—काम से क्रोध पैदा होता है ।

प्राणाद् वायुरजायत (ऋग्वेद १०।६०)—श्वास से हवा पैदा हुई ।

भू धातु के कर्ता का उद्गमस्थान अथवा प्रादुर्भावस्थान अपादान होता है, जैसे,

हिमवतो गगा प्रभवति (महाभाष्य)—गगा हिमालय से निकलती है।
लोभात् क्रोधः प्रभवति (हितो०१)—लालच से क्रोध पैदा होता है ।

टिप्पणी—“पैदा होना” अर्थ का बोध कराने वाली धातुओं के “उद्भव, स्थान” में सप्तमी होती है, जैसे,

परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ (मनु० ३ । १७४) ।
जातोऽपि दास्यां शूद्रेण (याज्ञवल्क्य-व्यवहाराध्याय श्लोक

१—आख्यातोपयोगे । १।४।२९ ।

२—जनिकर्तुं प्रकृतिः १।४।३० ।

३—सुतः प्रभव । १।४।३१ ।

१३३) । शुक्रनासस्यापि मनोरमायां तनयो जातः (कादम्बरी) । सा तस्यामुदपादि (कुमार० १ । २२) ।

७८-^१—‘भय’ और ‘भय से रक्षा करना’ अर्थों का बोध कराने वाली धातुओं के योग में, भय का उद्भवस्थान तथा जिससे रक्षा करनी या करानी अभीष्ट हो, वह अपदान होता है जैसे—न भीतो मरणादस्मि (मृच्छकटिकम् १०)—मै मृत्यु से भयभीत नहीं होता । कपेरत्रासि पुनर्दात् (भट्टि० ६ । ११)—बन्दर के नाद से (वे लोग) डर गए । तीक्ष्णादुद्विजते (मुद्रा० ३)—उग्रप्रकृतिपुरुष से डरता है । भीमाद् दुःशासन त्रातुम् (वेणी० ३)—भीम से दुःशासन को बचाने के लिए ।

यहाँ ‘मरण’, ‘नाद’ तथा ‘तीक्ष्ण’ भय के उद्भवस्थान हैं, अतः ये अपदान हैं । इसी प्रकार लोकापवादाद् भयम् (भट्टहरि नीति शतक, ६२ श्लोक) । तृणबिन्दोः परिशक्तिः (रघु० ८ । ७६) ।

(क) जिससे कोई पुरुष दूर किया जाता है अथवा मना किया जाता है वह अपदान होता है, जैसे, पापान्निवारयति (भट्टहरि, नीति शतक, ७२ श्लोक) ।

७९-^३—‘परा’ पूर्वक ‘जि’ धातु के योग में जो वस्तु या मनुष्य असहनीय होता है, वह अपदान होता है, जैसे, अध्ययनात् पराजयते (महाभाष्य)—अध्ययन से हार रहा है अर्थात् अध्ययन असहनीय हो रहा है ।

८०-^४—जिस स्थान से या जिस समय से किसी दूसरे स्थान या समय

१—भीमार्थानां भयैहतु १ । ४ । २५ ।

२—वारणार्थानामीप्सित १ । ४ । ४७ ।

३—पराजिरेसोढ. १ । ४ । २६ ।

४—यतश्चन्द्रकालनिर्माणं तत्र पचमी । तद्युक्तादध्वनः प्रथमामस्रम्यौ । कालात् मप्तमी च वक्तव्या (वार्तिक)

की दूरी दिखाई जाती है तो जिससे दूरी दिखाई जाती है वह स्थान या समय पचमी में रक्खा जाता है ।

जितनी 'स्थानवाचक दूरी' दिखाई जाती है वह प्रथमा विभक्ति या सप्तमी विभक्ति में रक्खी जाती है ।

जितनी 'कालवाचक दूरी' दिखाई जाती है वह केवल सप्तमी में रक्खी जाती है ।

प्रयागात् प्रतिष्ठानपुर क्रोशोऽस्ति अथवा प्रयागात् प्रतिष्ठानपुरं क्रोशोऽस्ति—प्रयाग में प्रतिष्ठानपुर (भूमी) एक कोस है ।

यहाँ जिस स्थान से दूरी दिखाई गई है वह "प्रयाग" है, इसलिए 'प्रयाग' पचमी विभक्ति में रक्खा गया है, और जितनी दूरी दिखाई गई है वह "कोस" है, इसलिए 'कोस' प्रथमा में अथवा सप्तमी में रक्खा गया है । कोस स्थानवाचक दूरी दिखलाता है, इसलिए इसमें प्रथमा या सप्तमी दोनों हो सकते हैं । इसी प्रकार और भी उदाहरण हो सकते हैं ।

प्रतिष्ठानपुरात् काशी विशतिक्रोशा विशतिक्रोशेषु वा । गवीधुमतः सांकाश्य चत्वारि योजनानि चतुर्षु योजनेषु वा (महाभाष्य) । समुद्रात् पुरी क्रोशौ अथवा क्रोशयोः । कार्तिक्या आग्रहायणी मासे (महाभाष्य)—कार्तिकी पूर्णिमा से आग्रहन की पूर्णिमा एक महीने पर होती है ।

यहाँ "कार्तिकी पूर्णिमा" से दूरी दिखाई गई है, इसलिए उसमें पचमी हुई और "एक महीने" की दूरी दिखाई गई, इसलिए "महीने" में सप्तमी हुई । "एक महीना" कालवाचक दूरी दिखलाता है, इसलिए इसमें केवल सप्तमी हो सकती है, प्रथमा नहीं हो सकती ।

८१-^१ "भिन्न" अथवा "अतिरिक्त" अर्थ बोध कराने वाले 'अन्य' 'पर' 'इतर' शब्द, 'समीप' या 'दूर' वाचक 'आरात्' शब्द, 'विना'

या 'छोड़कर' का अर्थ देने वाला 'ऋते' शब्द, कालवाचक तथा दिशा-वाचक शब्द, 'अच्' धातु से निष्पन्न 'प्रत्यक्' और 'प्राक्' जैसे दिशा-वाची शब्द, और 'आ' अथवा 'आहि' में अन्त होने वाले शब्द—इन सबों के योग में पचमी विभक्ति आती है, जैसे,

कृष्णादन्यो भिन्न इतरो वा (सि० कौ०)—कृष्ण से भिन्न ।

आरात् वनात् (सि० कौ०)—वन के समीप अथवा वन से दूर ।

विविक्ताद् ऋतऽन्यच्छरण नास्ति (विक्रमो० २)—एकान्त स्थान को छोड़ कर दूसरा कोई आश्रय नहीं ।

ग्रामात् पूर्वम् उत्तरो वा—गाँव के उत्तर अथवा पूर्व ।

चैत्रात् पूर्व फाल्गुन (सि० कौ०)—फाल्गुन का महीना चैत से पहिले होता है ।

प्राक् प्रत्यक् वा ग्रामात् (सि० कौ०)—गाँव के पूर्व अथवा पश्चिम ।
दक्षिणा दक्षिणाहि वा ग्रामात् (सि० कौ०)—गाँव के दक्खिन अथवा गाँव से दक्खिन दिशा में ।

प्राङ् नाभिबधनात् (मनु० २। २६)—नाभि काटने के पहिले ।

८२—'प्रभृति,' 'आरभ्य,' 'बहि,' 'अनन्तरम्,' 'परम्,' 'ऊर्ध्वम्' के साथ पचमी आता है, जैसे—शैशवात् प्रभृति पोषिताम् (उत्तर० १)—बचपन से ही पाली पोषी हुई । मालत्या प्रथमावलोकदिवसादारभ्य (मालती० ६)—मालती के प्रथम दर्शन के दिन से ही ।
निवसन्नावसथे पुराद्बहिः (रघु० ८। १४)—नगर के बाहर किसी निवास-स्थान में रहते हुए ।

पाणिपीडनविधेरनन्तरम् (कुमार० ८। १)—उसके पाणिग्रहण के बाद ।

अस्मात्परम् (शकु० ६)—इस पुरुष के बाद ।

ऊर्ध्वं त्रिये मुहूर्ताद्वि (भट्टि० १८। ३६)—एक क्षण भर के बाद मर जाऊँगा ।

टिप्पणी—(क) 'प्रभृति' और 'आरभ्य' शब्द प्रायः इसी अर्थ में कालवाचक क्रियाविशेषण अव्ययों के साथ आते हैं, जैसे, यत् प्रभृति—ततः प्रभृति (शकु० ३) । अद्यप्रभृति तवास्मि दासः (कुमार० ५।८६) ।

(ख) कभी कभी 'अनन्तरम्' और 'परम्' का अर्थ परोक्ष रहता है, जैसे, बहोर्दृष्ट कालात् (उत्तर० २)—बहुत समय के बाद देखा हुआ ।

८३—पृथक् (अलग, भिन्न), विना और नाना शब्दों के साथ द्वितीया, तृतीया तथा पचमी विभक्तियों में से कोई एक आ सकती है, जैसे—

रामात्, रामेण, रामं वा विना जीवितुं नोत्सहे—राम के विना मैं नहीं जी सकता ।

लक्ष्मण चतुर्दशवर्षाणि भार्या, भार्यया, भार्यायाः वा पृथगुवास—लक्ष्मण जी चौदह वर्ष तक अपनी स्त्री से अलग रहे ।

विभीषणो रावण, रावणेन, रावणात् वा पृथगभवत्—विभीषण रावण से अलग हो गया ।

कौमुदी चन्द्रं, चन्द्रेण, चन्द्रात् वा विना स्थातुं न शक्नोति—चन्द्रमा के विना चाँदनी नहीं ठहर सकती ।

नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा (वोपदेव)—स्त्री के बिना जीवन व्यर्थ है ।

८४—तक' 'जहाँ तक' 'से' का अर्थ बताने वाला 'आ' पचमी के साथ प्रयुक्त होता है, जैसे —

आपरितोषात् विदुषाम् (शकु० १)—विद्वानों का सन्तोष हो जाने तक ।

आमूलाच्छ्रोतुमिच्छामि (शकु० १)—प्रारम्भ से सुनना चाहता हूँ । आकैलासात् (मेघदूत ११)—कैलास तक ।

✓ १—पृथक् विना नानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम् २। ३। ३२.

अव्ययीभाव समास बनाने के लिये भी 'आ' सज्ञाओं के साथ जोड़ा जाता है, जैसे, आमेखल सचरता घनानाम् (कुमार १।५) — मेखला (करधनी या मध्यभाग) तक घूमते फिरते हुए बादलों के ।

८५^१—जत्र 'छिपना' या 'छिपाना' अभीष्ट होता है, और कोई अपने को किसी से छिपाना चाहता है तो जिससे छिपाता या छिपता है वह अपादान होता है, जैसे, मातुर्निलीयते कृष्ण. (सि० कौ०)—कृष्ण माता से छिपता है ।

८६^२—“किसी के बदले में” या 'प्रतिनिधि' का अर्थ बताने वाले 'प्रति' उपसर्ग के साथ जिसके बदले में कोई चीज दी जाती है या जिसका प्रतिनिधित्व दिखाया जाता है, वह पचमी में रक्खा जाता है, जैसे, प्रद्युम्न कृष्णात् प्रति (सि० कौ०)—प्रद्युम्न कृष्ण के प्रतिनिधि हैं । तिलेभ्य प्रतिपच्छति माषान् (सि० कौ०)—तिलों के बदले में उर्द देता है ।

अभ्यास

- १—अनुष्ठितनिदेशोऽपि सत्क्रियाविशेषादनुपयुक्तमिवामान समर्थये (शकु ७)
- २—अलमलमाक्रदितेन । सूर्योपस्थानात् प्रति निवृत्त पुरुरवस मामुपेत्य कथ्यतां कुतो भवत्यः परित्रातव्या इति (विक्रमो. १)
- ३—राम —एवमेतत् । एते हि हृदयममभिदः ससारभावा येभ्यो बीभत्समाना सत्यज्य सर्वान् कामान् मनीषिणाऽरण्ये विश्राम्यति (उत्तर० १)
- ४—नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम् (काद०)

१—अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति । १ । ४। २८ ।

२—प्रतिनिधि प्रतिदाने च यस्मात् । २। ३। ११ ।

- ५—नैव जानासि तं देवमैद्वाकं यदेवं वदसि । तद् विरम्यतामति-
प्रसगात् (उत्तर० ५) ।
- ६—कृतातिथ्यया महाश्वेतया परिपृष्टो दिग्विजयादारभ्य किन्नरमि-
थुनानुसरणप्रसंगेनागमनमात्मन सर्वमाचचक्षे (काद०) ।
- ७—वत्से मालति, जन्मनः प्रभृति वल्लभा ते लवगिका । तत् किमु-
जिज्ञहानजीवितां वराकीं नानुकम्पसे (मालती० १०) ।
- ८—चारणक्यः—वृषल वृषल अन्नमुत्तरोत्तरेण । यद्यस्मत्तो वरीयान्
राक्षसोऽवगम्यते तदिदं शस्त्रं तस्मै दीयताम् (मुद्रा० ३) ।
- ९—तासां चतुर्दश कुलान् । एकं भगवतः कमलयोनेर्मनसं समुत्पन्नम्
अन्यद्वेदेभ्यः संभूतम् । अन्यदग्नेरुद्भूतम् । अन्यत् पवनात्प्र-
सूतम् । अन्यदमृतादुन्मथ्यमानादुत्थितम् । अन्यज्जलाज्जातम् ।
अन्यदर्ककिरणेभ्यो निर्गतम् । अन्यत्सौदामिनीतः प्रवृत्तम् ।
(कादम्बरी) ।
- १०—मां तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्त्या
स्वार्थात्सता गुरुतरा प्रणयिक्रियैव । (विक्रमो० ४) ।
- ११—निशम्य चैता तपसे कृतोद्यमा सुता गिरीशप्रतिसक्तमानसाम् ।
उवाच मेना परिरभ्य वक्षसा निवारयन्ती महतो मुनिव्रतात् ।
(कुमार० ५।३) ।
- १२—प्रजा सरक्षति नृपः सा वर्द्धयति पार्थिवम् ।
वर्द्धनाद्रक्षणं श्रेयस्तदभावे सदप्यसत् (हितोप० ३) ।
- १३—त्वचं स मेभ्यां परिधाय रौरवी-
मशिच्छतास्त्रं पितुरेव मंत्रवत् । (रघुवंश ३।३१) ।
- १४—अनन्त्राणां समुद्धर्तुस्तस्मात्सिधुरयादिव ।
आत्मा संरक्षितः सुहृद्वृत्तिमाश्रित्य वैतसीम्
॥ (रघुवंश ४।३५)

- १५—ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
 संगत्संजायते काम. कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
 क्रोधाद्भवति समोहः समोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
 स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ (भगवद् गीता २।६३)
- १६—हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्य यत्प्राग्विनशनादपि ।
 प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तित ॥ (मनु० २।१२)

अभ्यासार्थं अतिरिक्त वाक्य

- १—जन्मकर्मतो मलिनतरजन जनतो निखिशतरलोकहृदय लोकहृदयेभ्यो निष्ठुण
 तरसवस व्यवहारमपुण्यकर्मैकापण पक्षमपश्यम् । (कादम्बरी) ।
- २—सा कुसुमघटितशिलीमुखमनोहरा मदनचापादिव प्रमदवनात्प्रस्यति जानकीव
 पीतरक्तेभ्यो रजनिचरेभ्य इव चपकाशेक्रेभ्यो विभेति (कादम्बरी) ।
- ३—त नृप वसुरक्षितो नाम मन्त्रिवृद्धैकदाऽभाषत । तात अत्रभवति सर्वैवात्मसपदभि-
 जनात्प्रभृत्यन्यूनैव लक्ष्यते । बुद्धिश्च निसर्गपट्वी तवेतरेभ्यः प्रतिविशिष्यते ।
 (दशकुमार० २।८) ।
- ४—अहो दुराराध्या राजलक्ष्मीरात्मविद्भिरपि राजभिः—
 तोक्षणादुद्भिजते मृदौ परिभवत्रासान्न सतिष्ठने
 मूर्खान्द्रेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यतविद्वत्स्वपि ।
 शूरेभ्योऽप्यधिक विभेत्युपहसत्येकातभीरुनहो
 श्रीर्लब्धप्रसरेव वैश्वनिता दुःखोपचर्या भृशम् । (मुद्रा० ३) ।
- ५—सर्वद्रव्येषु विचैत्र द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
 अहार्यत्वादनर्घ्यत्वात्क्षयत्वाच्च सर्वदा ॥ (हितो०) ।
- ६—प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
 स पिता पितरस्तासां केवल जन्महेतवः ॥ (रघु० १।२४)

७. न नवः प्रभुराफलोदयात्स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः ।
न च योगविधेर्नवैतरः स्थिरधीरापरमात्मदर्शनात् ॥ (रघु० ८ । २२)
८. रत्नैर्महाहैस्तुतुषुर्न देवा न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
मुषा विना न प्रयशुर्विराम न निश्चितार्थाद्विरमति धीरा ॥ (भर्तृहरि२। ८०)
९. श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधन श्रेयः परधर्मो भयावहः (गीता ३। ३५)
१०. लोभान्मोहाद्भयान्मैत्र्या त् कामात्क्रोधात्तथैव च ।
अज्ञानाद्दालभावाच्च साध्य वितथमुच्यते ॥ (मनु० ८। ११८) ।
११. पूर्वस्मादन्यथद्वाति भावाद्वाशरथि स्तुवन् ।
ऋते क्रौर्यात्समायातो मा विश्वासयितु नु किम् ॥
इतरो रावणादेव राघवानुचरो यदि ।
सफलानि निमित्तानि प्राक् प्रभातात्ततो मभ ॥ (भट्टि ८ । १०५, १०६) ।
- १२ वृक्षाद्वृक्ष परिक्रामन्रावणाद्विभ्यती भृशम् ।
शत्रोस्त्राणमपश्यन्तोऽपृश्यो जनकात्मजाम् ॥
ता पराजयमाना स प्रीते रक्ष्या दशननात् ।
अन्तर्दधाना रक्षोभ्यो मलिना ध्याममूर्धजाम् (अपश्यत्) (भट्टि० ८ । ७०-७१) ।
१३. पतद्भोय भृगुः शास्त्र श्रावयिष्यत्वशेषतः ।
एतद्धि मत्तोधिजगे सर्वमेषोखिल मुनि ॥ (मनु० १। ५९)
१४. एकाक्षरं पर ब्रह्म प्राणायामा पर तपः ।
सावित्र्यास्तु पर नास्ति मौनात् सत्त्वं विशिष्यते ॥ (मनु० २। ८३)

स्कृत में अनुवाद कीजिए

- १-गृहिणी के बिना गृह सूनसान में जगल को सात कर देता है ।
२-इस वृत्त की उत्तर दिशा में नाग्नो, और मैं अभी तुम्हारा अनुसरण करूँगा

- ३—जिस कार्य को करने की एक बार प्रतिज्ञा कर चुके हो, उसको बन्द न करो ।
- ४—इन ऋषियों से वेद पढ़ने के लिए मैं वाल्मीकि के आश्रम से इस स्थान पर आया हूँ ।
- ५—उस लड़की को सकट से बचाने के लिए उसने बहुत बड़े क्लेश सहे ।
- ६—जो अपने मित्र के मन को पाप से हटाकर, सत्कर्म में प्रवृत्त करता है, वह सच्चा मित्र है ।
- ७—क्या तुम नहीं जानते कि दुष्टों के पदचिह्नों पर चलने से नाना प्रकार के दुःख पैदा होते हैं ।
- ८—तुम्हारी यह बीमारी तुम्हारे कल व कड़े परिश्रम के कारण पैदा हुई है । क्या इस समय तुम्हारी दशा में कुछ उत्तम परिवर्तन हुआ है ।
- ९—हिमालय प्रदेश तक फैले हुए अपने राज्य को इस पराक्रमी राजा के अतिरिक्त और कौन बचा सकता है ।
- १०—अध्ययन प्रारम्भ करने के पहले वह व्याकरण और शब्दकोश अपने पास रख लेता है ।
- ११—पाँच वर्ष हुए मैंने इसी रमणीय वन को देखा था, परन्तु इस समय इसमें बड़ा परिवर्तन हो गया है ।
- १२—जिस दिन मैंने उस स्त्री को देखा था, उसी दिन से मेरा मन उद्धिग्न हो गया है, और उसके विषय में निरन्तर चिन्तन करते रहने के कारण मैं भोजन तक करने की नहीं सोचता ।
- १३—कल सभापति के उत्कृष्ट भाषण के अनन्तर (ऊर्ध्वम्, अनन्तरम् वा) तुमने जो व्याख्यान दिया उसे मैं अनुमोदित नहीं करता ।
- १४—सीता जी राम को (षष्ठी का प्रयोग कीजिए) प्राणों से भी प्यारी थीं ।

- १५—ईमानदारी अन्य सभी गुणों से बढकर है। ईमानदारी के बिना मनुष्य किसी के भी हृदय में विश्वास नहीं पैदा कर सकता ।
- २२—भय के मारे अगो के सिकुड जाने के कारण छोटे सुग्गे को दुष्ट बहेलिए ने नहीं देख पाया ।
- १७—भगवन्, हम लोग आप से इस सुग्गे का वृत्तान्त आदि से सुनना चाहते थे ।
- १८—मुम्बयी पूना से १२० मील दूर है ।

नवम पाठ

सप्तमी

८७—जिस स्थान पर कोई कार्य होता है उसे अधिकरणा कहते हैं और वह सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसे,

स्थाल्यामोदन पचनि—बटुली में भात पकाता है ।

आसने उपविशति—आसन पर बैठता है ।

(क) जिस समय कोई कार्य होता है वह सप्तमी में रक्खा जाता है; जैसे,

आषाढस्य प्रथमदिवसे (मेघ० २)—आषाढ महीने की परिवा को ।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् (रघु० १।८) ।

८८—‘पर’, ‘प्रति’ और ‘विषय मे’ का अर्थ बोध कराने के लिए प्रायः सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है, जैसे,

मयि मा भू अकरुणा (मालती० ६)—मुझ पर निर्दय न हो ।

विषयेषु विनाशधर्मसु निःस्पृहोऽभवत् (रघु० ८।१०)—नश्वर पदार्थों के प्रति अनिच्छुक हो गया ।

८९—यदि किसी वस्तुविशेष या व्यक्ति-विशेष की, अपने समुदाय

✓ १—यतश्च निर्धारणम् २। ३। ४१ ।

के अन्य अवयवों से, किसी विशेषण द्वारा, कोई विशिष्टता दिखाई जाती है तो समुदायवाचक शब्द सप्तमी अथवा षष्ठी में रक्खा जाता है, जैसे,

गवा कृष्णा बहुक्षीरा या गोषु कृष्णा बहुक्षीरा	} (सि० कौ०) — गायों में काली गाय बहुत दूध देने वाली होती है
नृणा द्विजः श्रेष्ठ या नृषु द्विजः श्रेष्ठः	

(सि० कौ०) — मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ होते हैं ।

६०^१ — समय अथवा मार्ग का अन्तर बोध कराने वाले शब्दों में पचमी या सप्तमी होती है, जैसे, अस्मिन् दिने भुक्त्वाऽयं त्र्यहातृत्र्यहं वा भोक्ता (सि० कौ०) — आज भोजन करके वह फिर तीन दिन के अनन्तर भोजन करेगा ।

इहस्थोऽयं क्रोशे क्रोशाद्वा लक्ष्य विध्येत् (सि० कौ०) — यहाँ खड़ा खड़ा वह एक कोस के अन्तर पर स्थित लक्ष्य को भेद देगा ।

६१ — शब्दकोषों में सप्तमी का प्रयोग “के अर्थ में” द्योतित करने के लिए होता है, जैसे,

बाणे बलिमुते शरे (अमरः) — “बाण” शब्द “बलि का पुत्र” तथा “तीर” के अर्थ में आता है ।

६२ — जिस प्रयोजन या अभिप्राय से कोई कार्य किया जाता है उसका बोध कराने के लिए सप्तमी का प्रयोग होता है, जैसे,

चर्मणि द्योपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुंजरम् ।

केशेषु चमरी हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः ॥ (महाभाष्य) ।

अर्थात् बाघ को (उसके) चमड़े के लिए, हाथी को (उसके)

दाँतों के लिए, चमरी को (उसके) बाल के लिए, और कस्तूरी-मृग को कस्तूरी के लिये मारता है ।

६३—“किसी के प्रति व्यवहार करना”—इस अर्थ के वाचक शब्द सप्तमी विभक्ति के साथ आते हैं, जैसे,

आर्योऽस्मिन् विनयेन वर्तताम् (उत्तर० ६)—श्रीमान् जी इस पुरुष के प्रति विनयपूर्वक व्यवहार करे ।

कथं कार्यविनिमयेन व्यवहरति मय्यनात्मज्ञ (मालविका० १)—ओह, क्या यह मूर्ख मेरे साथ कार्य की अदल-बदल के लिए व्यवहार करता है ।

कुरु प्रियमम्भीवृत्तिं सपत्न्येजने (शकु० ४)—सबतों के प्रति प्रिय मित्र का सा बर्ताव करो ।

६४—‘स्नेह’, अभिलष, अनुरज जैसे ‘स्नेह’ ‘आसक्ति’ तथा ‘सम्मान’ वाचक शब्दों के साथ, जिसके लिए स्नेह, आसक्ति अथवा सम्मान प्रदर्शित किया जाता है वह सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसे,

किं नु खलु बालोऽस्मिन् स्निह्यति मे मन (शकु० ७)—मेरा मन इस लड़के को क्यों प्यार करता है ।

न तापसकन्यकाया शकुतलाया मृमाभिलाषः (शकु० २)—मुनिकन्या शकुतला से मेरा स्नेह नहीं है ।

स्वयोषिति रति —(भर्तृ० २।६२)—अपनी पत्नी में आसक्ति ।

दण्डन त्यां नात्य दृतोऽभूत् (दशकुमार० २।८)—राजनीति के प्रति (उसके हृदय में) कोई महान् सम्मान नहीं था ।

देवे चन्द्रगुप्ते दृढमनुरक्ताः प्रकृतय (मुद्रा० १)—श्रीचन्द्रगुप्त के प्रति प्रजावर्ग का बहुत बड़ा अनुराग है ।

अस्ति मे सोदरस्नेहोऽप्येतेषु (शकु० १)—इनके प्रति (मेरे हृदय में) सगी-बहिन जैसा प्रेम है ।

विशेष — ‘अनुरज’ से प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्द कभी कभी द्वितीया के साथ प्रयुक्त होते हैं, जैसे, ण्षा भवन्नामनुरक्ता (शकु ० ६)—यह आप से अनुराग करती है अथवा आप में अनुरक्त है ।

अपि वृषत्तमनुरक्ताः प्रकृतयः (मुद्रा ० १)—क्या प्रजा (उस) शूद्र (से अनुराग करती है) ।

ऐसे स्थलों पर ‘अनु’ को बिल्कुल अलग मानकर “कर्मप्रवचनीय” समझना चाहिए, ‘कर्मप्रवचनीय’ हो जाने पर उसके साथ द्वितीया आवेगी । (नियम ३७ देखिए) ।

६५—जब कारण-वाची शब्द का प्रयोग होता है, तब कार्य मसमी में रक्खा जाता है, जैसे, दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् (भरतृहरि नीतिशतक, श्लोक ८४)—भाग्य ही मनुष्य की उन्नति तथा अवनति का कारण है ।

६६—‘युज्’ धातु के साथ तथा ‘युज्’ से प्रत्ययद्वारा निष्पन्न शब्दों के साथ सप्तमी आती है, जैसे, असाधुदर्शी तत्रभवान् काश्यपो य इमामाश्रमधर्मे नियुक्त (शकु ० १)—पूज्यपाद काश्यपजी महाराज बुद्धिमान् नहीं हैं जिन्होंने इसे आश्रम के कार्यों में नियुक्त कर रक्खा है ।

(क) ‘योग्यता’ अथवा ‘उपयुक्तता’ इत्यादि अर्थों का बोध कराने वाले शब्दों के योग में, उस व्यक्ति का वाचक शब्द सप्तमी में रक्खा जाता है जिसके विषय में योग्यता अथवा उपयुक्तता प्रकट की जाती है । जैसे,

युक्तरूपमिदं त्वयि (शकु ० २)—यह तुम्हारे लिए योग्य है ।

त्रैजोम्यम्याप प्रभुत्व तस्मिन् युज्यते (हितोप ०)—तीनों लोकों का भी राज्य उसके लिए उपयुक्त है ।

अथवोपपन्नमेतदृषिकल्पेऽस्मिन् राजनि (शकु ० २)—अथवा इस ऋषितुल्य राजा के लिए यह सर्वथा उचित है ।

ते गुणा परस्मिन् ब्रह्मण्युपपद्यन्ते (ऋंकरभाष्य १६०)—वे गुण परब्रह्म के लिए उपयुक्त हैं ।

विशेष—प्रायः षष्ठी भी इसी अर्थ में आती है, जैसे, उपपन्नमिदं विशेषणं वायोः (विक्रमो०)—यह विशेषण वायु के लिए उपयुक्त है ।

६७—वस्तुतः सप्तमी विभक्ति स्थान का बोध कराती है । परन्तु अनेक स्थलों पर सप्तमी उस वस्तु या पात्र में भी प्रयुक्त होती है जिसको कोई चीज सुपुर्द की जाती है या दी जाती है, जैसे, शुकनामनाम्नि मन्त्रिणि राज्यभारमारण्य यौवनसुखमनुवभूव (काद०)—राज्य का भार (अपने) मंत्री शुकनास को सुपुर्द कर वह यौवन का सुख भोगने लगा ।

वितरति गुरु प्राज्ञे विद्या यथैव तथा जडे (उत्तर० २)—गुरु जिस प्रकार से चतुर पुरुष को विद्या प्रदान करता है उसी प्रकार मूढ़ को भी ।

इसी प्रकार—योग्यसचिवे न्यस्तः समस्तो भर. रत्नावली १)

टिप्पणी—वि + वृ का प्रयोग चतुर्थी के साथ भी होता है, जैसे, मद्य त वप्रतरन् (दशकुमार० ११, —उसको मुझे दे दिया । इसी प्रकार—मारीचस्ते दर्शनं वितरति (शकु० ७)

(क) ग्रहणार्थक तथा प्रहारार्थक धातुओं के योग में वह सप्तमी में रक्खा जाता है जो पकड़ा जाता है या जिस पर प्रहार किया जाता है, जैसे, आर्तत्राणाय व. शस्त्रं न प्रहर्तुमनागमि (शकु० १)—आप का शस्त्र दुःखितो की रक्षा करने के लिए है, न कि निरपराधों पर प्रहार करने के लिए । इसी प्रकार—केशेषु गृहीत्वा—बाल पकड़ कर ।

६८—‘फेकना’ या ‘किसी पर झपटना’—इस अर्थ का बोध कराने वाली—‘क्षिप्’, ‘मुच्’ और ‘अस्’ धातुओं के योग में, जिस पर कोई चीज फेकी जाती है या झपटती है, वह सप्तमी में रक्खा जाता है, जैसे,

मृगेषु शरान् मुमुक्षोः (रघु० ६।५८)—हिरनों पर बाण छोड़ने की इच्छा करने वाले का ।

न बाण सन्निपत्योऽस्मिन् मृगशरारे (शकु० १)—हिरन के इस शरीर पर बाण नहीं छोड़ा जाना चाहिए ।

(क) 'विश्वास' अर्थबोधक शब्दों के साथ, प्रायः जिसका विश्वास किया जाता है वह सप्तमी में रखा जाता है, जैसे, पुंसि विश्व-सिति कुत्र कुमारी—भला, कुमारी कन्या कब पुरुष का विश्वास करती है ।

विशेष— 'श्रद्धा' के साथ द्वितीया आती है, जैसे, क श्रद्धास्यति भूताथम् (मृच्छकटिक ३)—वास्तविक बातों का कौन विश्वास करेगा ।

६६^१—'अधीतिन्' (पढ़ चुकने वाला) और 'गृहीतिन्' (समझ चुकने वाला) के योग में इनका कर्म सप्तमी में रखा जाता है, जैसे,

अधीती चतुर्ध्वान्नायेषु (दशकुमार० २।५)—चारों वेदों को पढ़ चुकने वाला ।

गृहीती षट्स्वगेषु (दशकुमार० २।५)—छहों अंगों को पूर्णरूप से पढ़ चुकने वाला, छहों अंगों का प्रकाण्ड विद्वान् ।

'साधु'^२ और 'असाधु' शब्दों के योग में, जिसके प्रति साधुता अथवा असाधुता दिखाई जाती है, वह सप्तमी में रखा जाता है, जैसे,

मातरि साध्वसाधुर्वा (सि० कौ०)—अपनी माता के प्रति सद् व्यवहार करता है अथवा दुर्व्यवहार ।

१००—'सलग्न' या 'तुला हुआ' या 'कटिबद्ध'—इस अर्थ के बोध कराने वाले 'व्यापृत' 'आसक्त' 'व्यग्र' 'तत्पर' इत्यादि शब्दों के साथ सप्तमी विभक्ति आती है, जैसे, गृह कर्मणि व्यापृता व्यग्रा वा (पचतत्र २)—अपने घर के कामों में सलग्न ।

१—क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम् (वार्तिक)

२—साध्वसाधुप्रयोगे च (वार्तिक)

‘चतुर’ या ‘होशियार’—अर्थावाचक ‘कुशल’, ‘निपुण’ ‘शौण्ड’, ‘पटु’, ‘प्रवीण’, ‘पंडित’ इत्यादि शब्दों के योग में, और ‘धूर्त’ और ‘कितव’ (ठग, बढमाश, छलिया) शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति आती है, जैसे रामोऽत्तद्यूते निपुण प्रवीणो वा (सि० कौ०)—राम जुआ खेलने में होशियार है।

(क)^१ ‘प्रसित’ (अत्यन्त इच्छुक) और ‘उत्सुक’ (अत्यन्त इच्छुक) शब्दों के साथ सप्तमी अथवा तृतीया विभक्ति आती है, जैसे, निद्राया निद्राया वा उत्सुक (सि० कौ० —निद्रा के लिए अत्यन्त इच्छुक। मनो नयोगक्रियोसुत्क मे (रघु० ५। ११)—मेरा मन आजा पाने के लिए अत्यन्त उत्सुक है।

टिप्पणी—अप + राध् (अपराध करना) धातु के कर्म में सप्तमी प्रयुक्त होती है, और कभी कभी षष्ठी, जैसे, कस्मिन्नपि पूजार्हेऽपराद्धा शकुन्तला (शकु० ४)—शकुन्तला ने किसी सम्माननीय व्यक्ति का अपराध किया है।

अपराद्धोऽस्मि तन्नभवत् कण्वस्य (शकु० ७)।

अभ्यास

१—प्रथितयशसा भास-कवि-सौमिल्लक-विमिश्रादीना प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवे कालिदासस्य क्रियायां कथं परिषदो बहुमानः

(मालविका० १)

२—यः पौरवेण राज्ञा धर्माधिकारे नियुक्त सोहमविघ्नक्रियो-पलम्भाय धर्मारण्यमिदमायातः (शकु० १)

३—दृढं त्वयि बद्धभावोर्वशी। न सेतोगतमनुरागं शिथिलयति (विक्रमो० २)

४—एष देवो रघुपतिस्तिष्ठति । स च स्निह्यत्यावयो रुक्मण्यते च
युष्मत्सन्निकर्षस्य (उत्तर० ६) ।

५—दुर्जनत्वं च भवतो वाक्यादेव विज्ञात यदनयोर्भूपालयोर्विग्रहे
भवद्वचनमेव निदानम् (हितोप० ३) ।

६—एष धृष्टद्युम्नेन द्रोणः केशेष्वकृष्णसिपत्रेण व्यापाद्यते
(वेणी० ३) ।

७—न जानामि केनापि कारणेनापहस्तितसकलसखीजनं त्वयि
विश्वसिति मे हृदयम् (काद०) ।

८—उपकारिषु य साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिर्बुध्यते ॥ (हितो० २) ।

९—न मातरि न दारेषु न सोदर्ये न चात्मनि ।
विश्वासस्तादृश पुसा यावन्मित्रे स्वभावज ॥ (हितो० १)
क्षमा शत्रो च मित्रे च यतीनामेव भूषणम् ।
अपराधिषु सत्त्वेषु नृपाणा सैव दूषणम् ॥ (हितोप० २) ।

११—वाङ्मा सज्जनसगमे गुणिगणे प्रीतिगुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसन स्वर्गोर्षित रतिर्लोकापवादाद्भयम् ।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने ससर्गमुक्तिः खले-
ष्वेते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥
(भर्तृहरिनीतिशतक, ६२ श्लोक) ।

१२—सतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता ।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे ॥ (रघु० १। ३४) ।

१३—भूताना प्राणिनः श्रेष्ठा प्राणिना बुद्धिजीविन ।
बुद्धिमत्सु नरा श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणा स्मृताः ॥ (मनु० १। १६) ।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

- १४—अवैमि ते सारमत. खलु त्वा कार्ये गुरुष्यात्मसम निभोक्ष्ये ।
व्यादिश्यते भूधरतामवेक्ष्य कृष्णेन देहोद्ग्रहनाय शेषः ॥ (कुमार० ३।१३) ।
- १५—अशुद्धप्रकृतौ राक्षि जनता नानुरज्यते । (पचर्तत्र १।११) ।
- १६—जनकाना रघूणा च यत्कृत्स्न गोत्रमगलम् ।
तस्मिन्नकरुणे पापे वृथा वः करुणा मयि ॥ (उत्तर० ६) ।
- १७—निगुणेष्वपि सत्त्वेषु दया कुर्वति साधवः ।
न हि सहरते ज्योत्स्ना चद्रश्चाडालवेश्मनि ॥ (हितोप० १) ।
- १८—इत्युक्तवन्त जनकात्मजाया नितातरूक्षाभिनिवेशमीशम् ।
न कश्चन भ्रातृषु तेषु शक्तो निषेद्धमासीदनुमोदित वा ॥ (रघु० १४।४३) ।
- १९—परकर्मापह सोऽभूद्वतः स्वेषु कर्मसु ।
आवृणोदात्मनो रश्मि रश्मेषु प्रहरन् रिपून् ॥ (रघु० १७.६९) ।
- २०—भगवति कमलालये शृङ्गमगुणज्ञासि
आनदहेतुमपि देवमपास्य नद
रक्तासि किं कथय वैरिणि मौय्यपुत्रे (मुद्रा० २) ।
- २१—साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्वं
चित्रार्पिता मुद्गरिमा बहु मन्यमानः ।
स्रोतोवहा पथि निकामजलामतीत्य
जात. सखे प्रणयवान्मृगतृणिकायाम् ॥ (शकु ० ६।) ।
- २२—पोतो दुस्तरवारिराशितरण्ये दीपोऽधकारागमे
निर्वाति व्यजन मदांधकरिणां दर्पोपशात्यै शृष्टिः ।
इत्थं तद्भुवि नास्ति यस्य विधिना नोपायचिन्ता कृता
मन्ये दुर्जनचित्तवृत्तिहरणे धातापि भग्नोन्नमः ॥ (हितो० २) ।

२३—चिरेणानुगुण प्रोक्ता प्रतिपत्तिपराङ्मुखी ।

न मासे प्रतिपत्तासे मा चेन्मर्तांसि मैथिलि ॥ (भट्टि० १५५)

२४—एतस्मान्मा कुशलिनमभिज्ञानशानाद्विदित्वा

मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी भूः । (मेघदूत ११५)

२५—एवमाप्तवचनात्स पौरुष काकपक्षकधरेऽपि राघवे ।

श्रद्धे त्रिदशगोपमात्रके दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि ॥ (रघु० ११।४२)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए:—

१—इस राजा की सारी प्रजा इसमें अनुरक्त है (अनु + रज्) ।

२—जो निस्सहाय पुरुषों के प्रति करुणा दिखलाता है और देवताओं के लिए यज्ञ करता है — वे दोनों पुण्य में बराबर समझे जाते हैं ।

३—मेरे पतिदेव मुझसे स्नेह नहीं करते, जो कुछ मैं उनसे कहती हूँ उसमें विश्वास नहीं करते और मुझे अयोग्य कार्यों में नियुक्त करते हैं ।
ऐ सखी, क्या तुम मुझे बताओगी कि ऐसी परिस्थिति में मैं क्या करूँ ।

४—ऋषि लोग इस सासारिक जीवन के सुख तथा दुःख के प्रति निस्पृह हो जाते हैं ।

५—इस लड़के की शिक्षा के विषय में जरा भी चिन्ता न कीजिए ।

६—कुटुम्ब का भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप कर और मित्रों तथा सम्बन्धियों से विदा हो उसने अरण्यनिवास का आश्रय लिया ।

७—बाल पकड़कर वह नीचे खींच लिया गया, तब सारे दर्शकों ने उसके ऊपर पत्थर फेके ।

८—जो कुछ उस स्त्री के आस पास हो रहा था उस पर उसने अन्यमनस्का होने के कारण दृष्टि तक न डाली ।

९—यह वृत्तान्त सर्वत्र विदित हो गया है । क्या यह आप के कानों तक नहीं पहुँचा कि राजा का प्रेम सागरिका पर लगा हुआ है ।

- १०—कैकेयी राम के चौदह वर्ष के बनवास का प्रधान कारण थी ।
- ११—जो लोग द्यूतकला में निपुण हैं उनके साथ जुआ खेलने में वह सदा अपना समय बिताता है ।
- १२—इस बगीचे के सब वृक्षों से यह वृक्ष लम्बा है ।
- १३—मनुष्यों में सब से प्रशंसनीय वही है जो परोपकार में तत्पर रहता है ।
- १४—भारतीय कवियों में कालिदास और भवभूति सब से अधिक प्रसिद्ध हैं ।
- १५—राक्षस अपना कुटुम्ब ऐसे पुरुषों को नहीं सौपेगा जो गौरव में उसी के समकक्ष नहीं हैं ।
-

दशम पाठ

षष्ठी

१०१—तृतीय पाठ में कह आए हैं कि “सम्बन्ध” कोई कारक नहीं है। वस्तुतः षष्ठी विभक्ति एक सज्ञापद का दूसरे सज्ञापद के साथ, अथवा सज्ञापद का सर्वनामपद के साथ सम्बन्ध बतलाती है।

इस पाठ में दिए हुए नियमों में षष्ठी का एक ही मुख्य अर्थ है, और वह है “सम्बन्ध” का अर्थ। जहाँ षष्ठी के साथ क्रियापदका प्रयोग किया गया है, वहाँ भी यही समझना चाहिए कि षष्ठी ‘सम्बन्ध’ अर्थ में आई है। परन्तु कई स्थलों पर संस्कृतलेखकों ने षष्ठी का प्रयोग ऐसे सम्बन्धों का बोध कराने के लिए भी किया है जो अन्य कारकों द्वारा भी दिखाये जाते हैं, जैसे—

(१) तं च व्यसृजद्भरतस्य (उत्तर०४)—उसको भरत के पास भेजा। यहाँ ‘भरताय’ भी हो सकता था।

(२) जयसेनायास्तावत्सवेद्य गच्छ (मालविका०४)—यहाँ “जयसेनायै” भी हो सकता था।

(३) स्त्रीणां विश्वासो नैव कर्त्तव्यः (हितोप०)—यहाँ पर “स्त्रीषु” भी हो सकता था।

इन उदाहरणों में साधारण नियमों का उल्लंघन किया गया है, अतः कदापि इनका अनुकरण न करना चाहिए।

१०२—प्राय षष्ठी विभक्ति से यह सूचित होता है कि कोई सज्ञा अथवा सर्वनाम पद किसी अन्य सज्ञा अथवा विशेषण अथवा कभी कभी किसी क्रियापद के आश्रित है।

(क) हिन्दी के “का, की, के” का बोध कराने के लिए षष्ठी का प्रयोग होता है। परन्तु अनेक स्थलो पर षष्ठीविभक्ति के स्थान पर समास का प्रयोग होता है, जैसे, दशरथस्य पुत्रः अथवा दशरथपुत्र ।

विशेष—ध्यान रहे कि संस्कृत में षष्ठी उन सभी सम्बन्धो और अर्थों का बोध नहीं करा सकती जिन्हे दिखाने के लिए हिन्दी में ‘का, की, के,’ प्रयुक्त किए जाते हैं। उदाहरणार्थ विशेषण का अर्थ अथवा सामानाधिकरण्य का अर्थ दिखाने के लिए, जैसे—

- (१) “सोने का बर्तन” का अनुवाद प्रायः समस्तपद “हेमपात्रम्” अथवा प्रत्ययनिष्पन्न पद “हैम पात्रम्” होता है। परन्तु “हेमः पात्रम्” कभी नहीं होता।
- (२) मिट्टी का बर्तन—मृद्भाण्डम् अथवा मृण्मय भाण्डम् न कि “मृद भाण्डम्”।
- (३) बड़े मूल्य की मुक्ता—महार्घ मुक्ताफलम्, न कि महार्घस्य मुक्ताफलम्। यहाँ “बड़े मूल्य” और “मुक्ता” में विशेषणविशेष्य-सम्बन्ध है।
- (४) शक्ति का पुरुष—सबलो नरः, न कि बलस्य नरः। यहाँ ‘शक्ति’ और ‘पुरुष’ में विशेषण-विशेष्य-सम्बन्ध है।
- (५) वैशाख के महीने में—वैशाखे मासे, न कि वैशाखस्य मासे। “वैशाख” और “मास” में सामानाधिकरण्य सम्बन्ध है।
- (६) बम्बई का शहर—मुम्बापुरी अथवा मुम्बा नाम पुरी, न कि मुम्बायाः पुरी। “मुम्बा” और “पुरी” में सामानाधिकरण्य सम्बन्ध है।

१०३—षष्ठी विभक्ति से “रखने वाले” का अथवा “स्वामी” का बोध होता है। जो चाज रखी जाती है अथवा जिसपर स्वामित्व होता है वह प्रथमा में रखी जाती है, जैसे,

(१) यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा (पचतन्त्र)—जिसके स्वयं बुद्धि नहीं होती अथवा जो स्वयं बुद्धि नहीं रखता।

(२) इमे नो गृहा (मृच्छकटिक १)—ये हमारे घर हैं।

(२) स्वलन मनुष्याणां धर्म—गलती करना मनुष्य का धर्म (स्वभाव, गुण) है, अर्थात् मनुष्यों से गलती होती ही है।

विशेष—यह अर्थ प्रायः प्रत्ययनिष्पन्न शब्दों द्वारा सूचित किया जाता है। जैसे, पैतृकं रिक्थम्—बापदादो की सम्पत्ति। इसी प्रकार, अस्मदीय गृहम्।

१०४—जिनके सम्पूर्ण या समष्टि का बोध कराने के लिए एक अश्मात्र का नाम ले लिया जाता है उन विशेष्यों के साथ षष्ठी आती है, और उसे अश्वाची षष्ठी (Partitive genitive) कहते हैं, जैसे, जलस्य बिन्दु—जल की बूँद। अयुतं शरदा ययौ (रघु० १०।१)—एक लाख वर्ष बीत गए। इसी प्रकार गवा शतसहस्राणि—हजारों गाएँ।

(क) पूरणीसख्यावाचक सर्वनामो और विशेषणो के साथ तथा सख्यावाचकसर्वनामों और विशेषणो के साथ ‘अश्वाची षष्ठी’ (Partitive Genitive) आती है, जैसे,

(१) त्वमेककल्याणि तयोस्तृतीया (रघु० ६३६)—ऐ कल्याणि, तुम्हीं उनकी तीसरी हो।

(२) गृह्यतामनयोरन्यतरा (मालविका० ५)—दो में से एक स्वीकार कर ली जाय।

(३) तासामन्यतमा (मालती०)—उन लड़कियों में से एक।

(ख) इसी प्रकार, तमप् प्रत्ययान्त और इष्ठन् प्रत्ययान्त

विशेषणों के साथ, तथा तमवन्त और इष्टन्नन्त शब्दों-जैसा अर्थ बोध कराने वाले शब्दों के साथ भी “अ शवाची षष्ठी” आती है, जैसे, द्विजानां ब्राह्मणं श्रेष्ठ । धौरेय साहसिकानामग्रणीर्विदग्धानाम् (कादम्बरी)—साहसी तथा बुद्धिमानों में सब से आगे ।

विशेष—षष्ठी के इस प्रयोग की विवेचना सेक्शन ८६ में पहिले हो चुकी है ।

(ग) कभी कभी “मे,” या “मे से” के अर्थ में षष्ठी के साथ “मध्ये” शब्द का प्रयोग होता है, जैसे, एतेषां मध्ये केचिदरे कोष-दंडाभ्यामर्थिन (मुद्रा० ५)—इनमें से कुछ लोग शत्रु के कोष और सेना के इच्छुक हैं ।

१०५—जब यह दिखाना होता है कि अमुक क्रिया के हो जाने के बाद, या होते होते, या करते करते, इतना समय व्यतीत हो गया, तब उस क्रियाका बोध कराने वाला शब्द षष्ठी में रक्खा जाता है, जैसे,

अद्य दशमो मासस्तातस्योपरतस्य (मुद्रा० ६)—पिता जी को मरे हुये आज दस महीने हो गए ।

कतिपये सवत्सरस्तस्य तपस्तप्यमानस्य (उत्तर० ४)—

उन्हें तपस्या कररते कई वर्ष बीत गए ।

१०६—“प्रिय—” अर्थ वाची शब्द के साथ षष्ठी विभक्ति आती है, जैसे—

प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीत् (उत्तर० ६)—सीता जी स्वभाव ही से श्रीरामचन्द्र जी को प्यारी थी ।

काय कस्य न वल्लभ (पंचतत्र १)—शरीर किसे प्यारा नहीं होता ।

(क) “विशेषः”, “अन्तरम्”—जैसे अन्तर-बोधक शब्दों के साथ षष्ठी आती है, जैसे एतावानेवायुष्मत शतक्रतोश्च विशेष (शकु ७)—आयुष्मान् (आप) तथा इन्द्र में इतना ही अन्तर है ।

अत्रभवतो मम च समुद्रपल्वलयोरिवान्तरम् (मालविका० १)

— श्रीमान् तथा मुझमें उतना ही अन्तर है जितना समुद्र और गड़ही में।

१०७^१—तव्यत्, तव्य, अनीयर, यत्, एयत्, क्यप् और केलिमर्—ये कृत्यप्रत्यय हैं। जिन शब्दों के अन्त में ये प्रत्यय लगे रहते हैं उनका प्रयोग होने पर, उनके कर्ता में तृतीया अथवा षष्ठी होती है, जैसे,

नास्ति असाध्यं नाम मनोभुव. (कादम्बरी)—निश्चय ही, कामदेव के लिए कोई चीज असाध्य नहीं है।

न वयमनुग्राह्या प्रायो देवतानाम् (कादम्बरी)।

न वञ्चनीया प्रभवोऽनुजीविभि (किरात १४)।

राक्षसेन्द्रस्य सरद्व्यं मया लव्यमिदं वनम् (भट्टि० ॥ १२६)—राक्षसाधिपति रावण के द्वारा रक्षणीय यह जङ्गल मुझसे अवश्य काट डाला जाना चाहिए।

१०८^२—जब 'हेतु' शब्द का प्रयोग होता है तो जो शब्द कारण या प्रयोजन रहता है वह और 'हेतु' शब्द—दोनों षष्ठी में रखे जाते हैं, जैसे,

अल्पस्य हेतोर्बह् हातुमिच्छन् (रघु० २।४७)—थोड़े से के लिए बहुत को त्यागने की इच्छा करता हुआ।

विमृत कस्य हेतो (मुद्रा० १)—किस कारण यह भुला दिया गया।

विशेष—पतञ्जलि का मत है कि 'निमित्त', 'कारण', 'हेतु' इत्यादि कारण-वाचक शब्दों के योग में किसी भी विभक्ति और वचन का सर्वनाम आ सकता है, पर जिस विभक्ति और वचन में सर्वनाम रहेगा उसी विभक्ति और वचन में 'निमित्त' या, 'कारण' या 'हेतु' भी रहेगा परन्तु

१—कृत्यानां कर्तरि वा। २।३। ७१।

२—षष्ठी हेतुप्रयोगे। २।३। ६२

संस्कृतकाल के कवियों और गद्यलेखकों के लेखों से इस कथन की पुष्टि नहीं होती। केन निमित्तेन—कारणेन—हेतुना तथा कस्मात् निमित्तात्—कारणात्—हेतोः—ऐसे प्रयोग 'कारण'—अर्थ में साधारणतया मिलते हैं। परन्तु इसी अर्थ में 'को हेतुः वससि' या 'क हेतु वससि'—ये प्रयोग नहीं मिलते। 'कस्मै हेतवे वससि'—यह प्रयोग भी 'कारण'—अर्थ में नहीं आता, वरन् इसका अर्थ है—“किस प्रयोजन से रहते हो।” अलबत्ता 'किनिमित्त—प्रयोजन—कारणम्—अर्थम्'—यह प्रयोग साधारणतया मिलता है। इसलिए पतञ्जलि का नियम केवल विरले स्थलों में ही व्यवहृत किया जाना चाहिए।

१०९^१—घातुओ में 'कृत्' प्रत्यय लगाकर जो सशब्द बनाई जाती हैं उनका प्रयोग होने पर उनके कर्ता और कर्म में षष्ठी आती है। क्तन् वृ, षन् ल्युट् इत्यादि कृत्प्रत्यय हैं।

क्रियाममा कालिदासस्य (वेक्रमो० १)—कालिदास की यह क्रिया, अर्थात् कालिदास का यह ग्रन्थ। यहाँ कर्ता में षष्ठी है। 'कालिदास' कर्ता है 'क्रिया' का।

भर्तुः प्रणाशात् (रघु० १४।१)—पति की मृत्यु के कारण। यहाँ 'भर्तुः' की षष्ठी कर्ता में है। भर्ता 'प्रणाश' का कर्ता है।

शास्त्राणां परिचय (कादम्बरी)—शास्त्रों का ज्ञान। 'परिचय' क्रिया है, शास्त्र उस क्रिया का कर्म है। अतः कर्म में षष्ठी हुई है।

आहर्ता क्रतूनाम् (कादम्बरी)—यशो का करने वाला। 'आहरण करना' क्रिया है। इसका कर्म है 'क्रतु', अतः 'क्रतूनाम्' की षष्ठी कर्म में हुई है।

दुःखायेदानीं रामस्य सुहृदा दर्शनम् (उत्तर० ३)—श्रीरामचन्द्र जी को मित्रों को देखने से, केवल दुःख ही पैदा होगा। यहाँ 'रामस्य' कर्ता है

१११^१—आशीर्वाद देने में 'आयुष्यन्', 'मद्रम्', 'भद्रम्', 'कुशलम्', 'सुखम्', 'अर्थ' और 'हितम्' के योग में चतुर्थी या षष्ठी होती है, जैसे, कृष्णस्य कृष्णाय वा कुशलं, हित, मद्र, भद्र, वा भूयात् (सि० कौ०)—कृष्ण को सुख होवे अथवा सौभाग्य प्राप्त होवे ।

११०^२—दिशावाची 'तस्'-प्रत्ययान्त शब्दों के योग में तथा 'तस्' प्रत्ययान्त-शब्दों जैसे अर्थ रखने वाले 'उपरि' 'अध' 'पुर', 'पश्चात्' 'अग्रे', 'पुरस्तात्' इत्यादि के योग में वह शब्द षष्ठी में रक्खा जाता है जिसको लक्षित करके दिशा बताई जाती है, जैसे,

ग्रामस्य दक्षिणत उत्तरत वा (सि० कौ०)—गाँव के दक्खिन या गतमुपरि घनानाम् (शकु०)—बादलों के ऊपर गया हुआ ।

तरुणा मध (शकु०१)—पेड़ों के नीचे ।

तिष्ठन् भाति पितुः पुरा भुवि यथा (नागानन्द)—जैसे कोई पिता के सामने जमीन पर खड़ा हुआ सुशोभित लगता है ।

यः पुरस्ताद्यतीनाम् (मालविका०१)—जो सन्यासियों में सर्वश्रेष्ठ है ।

विशेष—'उपरि'—शब्द प्रायः समास में जोड़ दिया जाता है, जैसे, प्रत्यारोपय रथोपरि राजपुत्रम् (उत्तर०५) । चाणक्योपरि प्रद्वेषपक्षपाताः (मुद्रा०३) ।

(क)^३ 'दक्षिणेन', 'वत्तरेण' इत्यादि दिशावाची 'एनप्'—प्रत्ययान्त शब्दों के योग में उस शब्द में द्वितीया या षष्ठी होती है जिसका नाम लेकर दिशा बताई जाती है, जैसे,

दक्षिणेन तु श्वेतस्य निषधस्योत्तरेण तु (महाभारत ६।८।२)
—श्वेत के दक्खिन और निषध के उत्तर ।

^१—चतुर्थी चाशियायुष्यमद्रभद्र कुशलसुखार्थहितै । २। ३। ७३ ।

^२—षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन । २। ३। ३० । 'दक्षिणतः', 'उत्तरतः' इत्यादि दिशावाची तस् प्रत्ययान्त शब्द हैं ।

^३—एनपा द्वितीया । २। ३। ३१ ॥

दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम् (शकु. १)—बगीचे के दक्खिन ।

धनपतिगृहानुत्तरेण (मेघ० ७८)—कुबेर के घर के उत्तर ।

(ख.^१ 'दूर' और 'अन्तिक' (समीप) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों के योग में षष्ठी अथवा पंचमी होती है, जैसे,

ग्रामात् ग्रामस्य का वनं दूरं-निकटं-समीपम् इत्यादि (सि०-कौ०) । जंगल गाँव के समीप अथवा गाँव से दूर है ।

विशेष—अधिकतर षष्ठी का ही प्रयोग होता है, जैसे,

तस्याश्रमपदस्य नातिदूरे (कादम्बरी) ।

अत समीपे परिणेतुरिष्यते (शकु ५) ।

प्रयामि तस्याः सकाशम् (कादम्बरी) ।

११३—'ईश्' (समर्थ होना), 'प्र + भू' (समर्थ होना), द्यू (दया करना), और 'अधि + इ' (स्मरण करना) 'स्मृ' (स्मरण करना)—इन धातुओं तथा इनका-सा अर्थ रखने वाली धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है, जैसे,

ननु प्रभवत्यर्थः शिष्यजनस्य (मालविका० १)—क्यों श्रीमान्, अपने शिष्यों के ऊपर प्रभाव रखते हैं अर्थात् शिष्यों के ऊपर पूरा पूरा जोर रखते हैं ।

प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः (मालती० ४) ।

यदि प्रभविष्यामि आत्मनः (शकु १) ।

नायं गात्राणामीष्टे (कादम्बरी)—वह अपने अंगों को वश में नहीं रख सकता ।

रामस्य दयमानोऽसावध्येति तव लक्ष्मणः (भट्टि० ८।११६)—रामके ऊपर दया करते हुए लक्ष्मण तुम्हारी याद करते हैं ।

१—दूरान्तिकार्थं. षष्ठ्यन्वतरस्याम् । २। ३ ३४ ॥

२—अधीगर्थदयेशां कर्मणि । २। ३। ५२ ।

स्मर्तुं दिशति न दिवः सुरसुन्दरीभ्यः (किरात० ५।२८)—
अप्सराओं को स्वर्ग की सुधि नहीं करने देते ।

अस्मार्षिज्जलनिधिमथनस्य शौरि (शिशु० ८।६४)—भगवान्
कृष्ण ने समुद्रमथन को याद किया ।

विशेष—(क) 'प्र'-पूर्वक 'भू'-धातु का जब 'योग्य होना' अर्थ होता है तब वह तुमुन्-प्रत्ययान्त शब्द के साथ प्रयुक्त होती है (षोडश पाठ देखिए) । जब 'प्र'-पूर्वक 'भू'-धातु का "काफी" या "पर्याप्त" अर्थ होता है तब उसके योग में चतुर्थी आती है (सेक्शन ६७ क देखिए) ।

(ख) साधारणतया 'याद करना' के अर्थ में 'स्मृ धातु के साथ द्वितीया आती है, जैसे,

स्मरसि तान्यहानि स्मरसि गोदावरी वा (उत्तर० १) ।

ऊपर के प्रयोग में कर्म का व्यक्त किया जाना अभीष्ट है (यदा कर्म विवक्षित भवति तदा षष्ठो न भवति-महाभाष्य) ।

(ग) 'जानने वाला' या 'परिचित' या 'सावधान'—इन अर्थों का बोध कराने वाले विशेषणों तथा इनके उलटे अर्थों का बोध कराने वाले विशेषणों के योग में कर्म में षष्ठी होती है, जैसे,

अनभिज्ञा गुणाना यः स भृत्यैर्नानुगम्यते (पञ्चतन्त्र १।१)—
जो पुरुष गुणों को नहीं समझता या पहिचानता उसका, भृत्य लोग, अनु-
सरण नहीं करते ।

अनभ्यन्तरे आवा मदनगतस्य वृत्तातस्य (शकु ३) ।

कभी कभी सप्तमी का भी प्रयोग होता है, जैसे, यदि त्वमीदृशः
कथायामभिज्ञः (उत्तर० ४) । तत्राप्यभिज्ञो जन उत्तर० ५) ।

११४^१—'बार' या 'मरतवा'-अर्थवाची क्रियाविशेषण अव्ययों के योग में समयवाची शब्द षष्ठी में रक्खा जाता है, परन्तु सप्तमी का अर्थ देता है ।

द्विः, त्रिः, अष्टकृत्वः, शतकृत्वः इत्यादि ऐसे ही शब्द हैं। द्विः (दो बार), त्रिः (तीन बार), अष्टकृत्वः (आठ बार और शतकृत्व (सौ बार)। उदाहरण—

द्विरहो भोजनम् (सि० कौ०)—दिन में दोबार भोजन।

शतकृत्वस्तवैकस्याः स्मरत्यहो रघूत्तमः (भट्टि० ८।१२२)—
रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी दिन में केवल तुम्हें सौ बार याद करते हैं।

११२^१—जब 'क्त'-प्रत्ययान्त शब्द वर्तमानकाल के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं तो वे षष्ठ्यन्त पदों के साथ आते हैं, जैसे,

अहमेव मतो महीपतेः (रघु० ८।८)—राजा मुझे ही मानते हैं।

विदितं तप्यमानं च तेन मे भुवनत्रयम् (रघु० १०।३६)—मैं जानता हूँ कि वह तीनों लोकों को सता रहा है।

राज्ञा पूजितः (सि० कौ०)—राजाओं द्वारा पूजा जाता है।

(क) परन्तु जब भूतकाल विवक्षित होता है तब केवल तृतीया आती है, जैसे, न खलु विदितास्ते चाणक्यहतकेन (मुद्रा० २)—क्या दुष्ट चाणक्य ने उन लोगों का पता नहीं लगा लिया।

(ख) जब 'क्त' प्रत्ययान्त शब्द भाववाचक नपुंसकलिङ्ग सज्ञापदों के तौर पर प्रयुक्त होते हैं तब उनके योग में षष्ठी होती है, जैसे,
मयूरस्य नृत्तम् (महाभाष्य)—मोर का नाचना।

कोकिलस्य व्याहृतम् (महाभाष्य)—कोयल का बोलना।

छात्रस्य हसितम् [महाभाष्य]—विद्यार्थी का हँसना।

११६—'कृते' और 'समक्षम्' के योग में षष्ठी होती है। 'कृते' का अर्थ है 'लिए' या 'वास्ते'। 'समक्षम्' का अर्थ है 'सामने'। उदाहरण, अभीषा प्राणाना कृते (भर्तृ० वैराग्यशतक ३६)—इस जीवन के लिये।

राज्ञः समक्षमेव (मालविका० १)—राजा के सामने ही ।

विशेष—‘कृते’ शब्द का प्रायः दूसरे शब्दों के साथ समास कर दिया जाता है, जैसे, काव्यम् अर्थकृते (काव्यप्रकाश) ।

११७^१—‘बराबर’ या ‘समान’ अर्थवाची ‘तुल्य’, ‘सदृश’, ‘सम’, ‘सकाश’ इत्यादि शब्दों के योग में वह शब्द तृतीया में रक्खा जाता है जिससे किसी की तुलना की जाती है, जैसे, कृष्णस्य तुल्यः सदृशः (सि० कौ०) ।

धनदेन-समस्त्यागे—उदारता में कुबेर के समान । अभ्य मुख सीताया मुखचन्द्रेण सवदति (उत्तर० ४)—इसका मुखड़ा सीताजी के चन्द्रतुल्य मुखड़े से मिलता जुलता है (सेक्शन ५२-ख देखिए) ।

विशेष—पाणिनि का मत है कि ‘तुला’ और ‘उपमा’ शब्द तृतीया के साथ नहीं आ सकते । परन्तु यह बात अच्छी लेखनशैली में नहीं पाई जाती, जैसे,

तुला यदाराहति दत्तवाधसा (कुमार० ५।३४)—जब वह इंद्र की समता को प्राप्त होता है ।

नभसा तुला समारुहाह (रघु० ८।१५) आकाश की समता को प्राप्त हो गया ।

स्फुटोपम भूतिसितेन शम्भुना (शिशु० १।४)—भस्म (राख) से सफेद शम्भु के समान स्पष्ट-उपमा वाला ।

मल्लिनाथ ने इन उदाहरणों का पाणिनीय सूत्र के साथ सामग्र्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है, पर उनकी युक्ति ठीक नहीं जँचती ।

(क) ‘योग्य’, ‘उचित’, ‘उपयुक्त’, ‘अनुरूप’ अर्थ-वाची विशेषणों के योग में षष्ठी आती है, जैसे, सखे पुण्डरीक, नैतदनु रूप भवतः (कादम्बरी)—ऐ मित्र पुण्डरीक, यह तुम्हारे योग्य नहीं है ।

सदृशमेवैतत् स्नेहस्यानवलेपस्य (शकु ६)—वस्तुतः, यह बात अभिमानहीन प्रेम के अनुरूप ही है। सेक्शन ६६ (क) भी देखिए।

११८—जब 'प्रकृति' या 'स्वभाव' दिखाना विवक्षित होता है तब 'तृ'-प्रत्ययान्त शब्द द्वितीया के साथ प्रयुक्त होते हैं, न कि षष्ठी के साथ, जैसे,

पितरमाराधयिता भव (विक्रमो० ५)—सर्वदा अपने पिता को प्रसन्न रखो।

सम्भावयिता बुधान, न्यग्भावयिता शत्रून् (दशकुमार० २८ — जिसका साधारण स्वभाव विद्वानों का आदर करना और शत्रुओं को नीचा दिखाना है। परन्तु 'जगतः निर्माता' और 'घटस्य कर्ता' आदि अपवाद-स्वरूप प्रयोगों का ध्यान रहे।

(क) 'अनु' उपसर्गपूर्वक 'कु' धातु का अर्थ 'नकल करना या 'मिलना जुलना' होता है। इस धातु का प्रयोग होने पर प्रायः इसके कर्म में षष्ठी होती है, जैसे,

ततोऽनुकुर्यात् तस्याः स्मितम् (कुमार० १।४४)—तब कदाचित् यह उसकी मुसकुराहट से मिल जुल जाय।

श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम् (कादम्बरी)—कालिमामे भगवान् हरि से मिलती जुलती हुई सी।

सर्वाभिरन्याभिः कलाभिरनुचकार तं वैशम्पायनः (कादम्बरी)
—वैशम्पायन अन्य सभी कलाओं में उससे मिलता जुलता था।

शैलाधिपस्यानुचकार लक्ष्मीम् (भट्टि० २।८)—पर्वताधिपति हिमालय के ऐश्वर्य से मिलता जुलता था।

११८^१—‘सौदा का लेन देन करना’ या ‘बुझा में लगा देना’—इन अर्थों का बोध कराने वाली ‘व्यवहृ’ और ‘पण्’ धातुओं के योग में इनके कर्म में षष्ठी होती है, जैसे, शतस्य व्यवहरण-पणनम् (सि० कौ०)
—सैकड़ों का लेन देन करना । प्राणानामपणिष्टासौ (भट्टि० ८। १२१)—उसने प्राणों की बाजी लगा दी ।

परन्तु द्वितीया का प्रयोग बहुत ज्यादा मिलता है, जैसे, पणस्व कृष्णा पाचालीम् (महाभारत २। ६५। ३२) ।

(क) जब ‘दिव्’ धातु इसी अर्थ में आती है, तो उसके योग में भी कर्म में षष्ठी होती है, जैसे, शतस्य दीव्यति (सि० कौ०) ।

परन्तु जब ‘दिव्’ धातु उपसर्गपूर्वक रहती है तब षष्ठी या द्वितीया कोई भी आ सकती है, जैसे, शतस्य शत वा प्रतिदीव्यति (सि० कौ०)

अभ्यास

१—नस्या पंडितकौशिक्या सहिताया समक्षमेव न्याय्यो व्यवहारः । (मालविका १) ।

२—श्वापदानुसरणैर्मम गात्राणामनीशोस्मि संवृत्तः (शकुं २) ।

३—कथं मामेकाकिनीं त्यक्त्वायुपुत्रो गतः । भवतु कोपिष्यामि यदि तं प्रेक्षमाणात्मनः प्रभविष्यामि । (उत्तर० १) ।

४—अयि भागीरथीप्रसादाद्वनदेवतानामप्यदृश्यासि संवृत्ता । (उत्तर१)

५—इ देवि स्मरसि वा तस्य प्रदेशस्य तत्समयविश्रंभातिशयप्रसंग-
सान्निध्यः । (उत्तर० ६) ।

१—व्यवहृपणो. • समर्थयो : । दिवस्तदर्थस्य । विभाषापसर्गे ।

६—एवमवस्थिते यदत्रावमरप्राप्तमीदृशस्य चानुरागस्य सदृशमस्मदा-
गमनस्य चानुरूपमात्मनि समुचितं तत्र प्रभवति देवीत्यभिधाय
मन्मुखामक्तदृष्टिं कर्पिजलस्तूष्णीमामीत् । (कादम्बरी) ।

७—धिङ् मा द्रुष्टकृतकारिणी यस्या कृते तवेयमीदृशी दशा वर्तते
(कादम्बरी) ।

८—हा दयित माधव परलोऽरुणोऽपि स्मर्तव्यो युष्माभिरयं जन । न
खलु स उपरतो यस्य वल्लभो जन स्मरति । (मालती० ५) ।

९—कापि महती वेला वर्तते तवाद्दृष्टस्य । तदनया सहैवागच्छ ।
(कादम्बरी) ।

१०—ग्रहं हि समतो राज्ञो य एव मन्यते कुधौ ।
वलीवर्द स विज्ञेयो विपाणपरिवर्जित ॥ (पञ्चतन्त्र १। १०)

११—शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमनरम् ।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पातस्थायिनो गुणाः ॥ (हितोप० १)

१२—अर्थानामीशिषे त्व वयमपि च गिरामीशमहे यावदर्थम्
(भर्तृ० वैराग्य० श्लोक ३०)

१३—समरशिरसि च वत्पंचचूडश्चूडमना-
मुपरि शरतुषारं कोप्ययं वीरपोत (किरति) । (उत्तर० ५)

अभ्यासार्थं अतिरिक्त वाक्य

१—स राजा मनसि धर्मेण कोपे यमेन प्रतापे बहि ना मुखे शशिना प्रज्ञाया सुरशुरुणा
तेजसि सवित्रा च वसता सर्वदेवमयस्य प्रकटितविश्वरूपाकृतेरनुकरोति भगवतो
नारायणस्य । (कादम्बरी)

२—नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थिनिना भगवता परिभूतकलिकालविलसितेन धर्मेण
न स्मर्यते कृतयुगस्य । (कादम्बरी)

३—उदेति पूर्वं कुसुम तत फलं धनोदयः प्राक् तदनतर पयः ।

निमित्तनैमित्ति कयोरथ क्रमस्तव प्रसादस्य पुरस्तु सपद ॥ (शकु ७)

४—शबूको नाम वृषल पृथिव्यां तप्यते तप

शीर्षच्छेद्यः स ते राम न हत्वा जीवय द्विजम् ॥ (उत्तर०१)

५—अपीप्सित क्षत्रकुलागनाना

न वीरसूशब्दमकामयेताम् । (रघु०१४।४)

वाच्यस्त्वया मद्रचनात्स राजा वही विशुद्धामपि यत्समक्षम् ।

मा लोकवादश्रवणादहासी श्रुतस्य किं तत्सदृश कुलस्य ॥ (रघु०१४।६१)

७—देव्या शून्यस्य जगतो द्वादश परिवत्सर ।

प्रनष्टमिव नामापि न च रामो न जीति ॥ (उत्तर०३)

८—अयं मैथिल्यभिज्ञान काकुत्स्थस्यागुलीयक ।

भवत्या स्मरतात्यर्थमपि सादर मम ॥ (भट्टि०८।११८)

९—पुरः प्रवेशमाश्चर्यं बुद्धा शाखाशृगेण सा ।

चूडाम गेमभिज्ञान ददौ रामस्य समतम् ॥

रामस्य शयितं मुक्त जल्पित हसित स्थितम् ।

प्रक्रात च मुहुः पृष्ठा हनूमत व्यसर्जयत् ॥ (भट्टि०८।१२४, १२७)

१०—त दृष्ट्वाऽर्चितयत्मीता हेतोः कस्यैष रावणः ।

अवरुह्य तरोरारादैति वानरविग्रहः ॥

उत्तराहि वसन् रामः समुद्राद्रक्षसां पुरम् ।

अवैल्लवणतोयस्य स्थिता दक्षिणतः कथम् । (भट्टि०८।१०४, १०७)

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—नवयुवक को बड़े गौर से देखती हुई स्त्रियाँ मुश्किल से अपने आपको अपने वश में कर सकीं (ईश) ।

- २—यदि मनुष्य सभी कार्यों में पशुओं की नकल करे (अनु + कृ) तो दोनों में क्या अन्तर है ।
- ३—मित्र, निराश मत होओ, जिसके लिए (कृते) तुम इतने दुखी हो वह स्वयं तुम्हारे पास जल्दी ही आवेगी ।
- ४—गृहस्थी का सारा काम पुत्रों को सौंप कर जंगल में निवास करने वालों को जो सुख होता है उसके बराबर दूसरा कोई सुख नहीं ।
- ५—क्या तुम्हारा यह कार्य उस उच्चकुल के उपयुक्त है जिसमें तुम पैदा हुए हो ?
- ६—मेरे गुरुजनों की आज्ञा केवल मेरे शरीर पर काबू कर पावेगी (प्र + भू), परन्तु मेरे मन तथा उसके कार्यों पर नहीं ।
- ७—बहुत दिनों तक माता से दूर हटाए जाने के कारण बच्चा बारबार उसे याद करता है ।
- ८—इस पर्वत के उत्तर (उत्तरतः) हरी घास से ढका हुआ एक विस्तृत प्रदेश है जो कि दर्शको के नेत्र को करीब करीब मोहित कर लेता है ।
- ९—समस्त राजमन्त्रियों के सामने (समक्ष) अनुचर ने राजा से जो कहानी कही उसने उस (राजा) के हृदय में स्थान प्राप्त कर लिया ।
- १०—इधर सामने (पुर) हड्डियों की एक बड़ी राशि, और उधर पेड़ों के तले मास के अनेक टुकड़े । यह क्या हो सकता है ?
- ११—सुषेण के राज्य में प्रजा का हर एक आदमी समझता था कि मैं राजा से पूजा तथा माना जाता हूँ ।
- १२—प्रजाओं को अच्छे लगने वाले गुणों के कारण आप अपने पिता के अनुरूप होवें ।
- १३—मालविका को देखने के लिए गई हुई देवी जी को बहुत समय हो गया ।
- १४—यह राजा भृत्यों द्वारा सेव्य है, और 'नर पाल' की पदवी इन्हे पूर्णतः शोभा देती है ।

- १५—सज्जनों के साथ मैत्री करने के समान (सदृश) ससार में और कोई चीज नहीं ।
- १६—बुद्धिमान् विद्यार्थियों को उत्तम पुस्तकें सुन्दर सुन्दर वस्त्रों की अपेक्षा अधिक प्रिय लगती हैं ।
- १७—धर्म-निष्ठ ब्राह्मण को दिन में तीन बार सन्ध्योपासन करना चाहिए और सूर्यास्त के पूर्व एक ही बार भोजन करना चाहिए ।
- १८—राम सीता को प्राणों से भी अधिक प्रिय थे ।

एकादश पाठ

भावे पष्ठी तथा सप्तमी

१२०—‘जब शत्रन्त अथवा शानजन्त पद का लिंग, वचन और कारक, क्रिया के कर्ता से भिन्न किसी अन्य कर्ता के अनुरूप होता है, तब वह वाक्याश (Phrase) ‘भावे’ कहलाता है’—बेन । जिस उपवाक्य में स्वतंत्र वाक्याश रहता है, उसकी साधारण रचना से उस (स्वतंत्र) वाक्याश का कोई सम्बन्ध नहीं रहता, जैसे, वायु के अनुकूल होने के कारण जहाज ने प्रस्थान कर दिया ।

‘भावे’ वाली विभक्ति भिन्न भिन्न भाषाओं में भिन्न भिन्न होती है । अंगरेजी में भाव विभक्ति प्रथमा होती है, लैटिन भाषा में पञ्चमी होती है; और संस्कृत में षष्ठी तथा सप्तमी ।

यदि आश्रित उपवाक्य का कर्ता प्रधान उपवाक्य में सज्ञापद के रूप में अथवा उस सज्ञा के स्थानापन्न सर्वनामपद के रूप में न आता हो तो, स्वतंत्र-वाक्याश (भाव-वाला प्रयोग) काम में लाया जा सकता है । इस वाक्य को लीजिए—लका को ले लेने पर राम अयोध्या को लौटे । यहाँ दोनो उपवाक्यों का कर्ता एक ही है, इसलिए यहाँ स्वतंत्र वाक्याश (भाव प्रयोग) नहीं रक्खा जा सकता । इस वाक्य का अनुवाद इस प्रकार होगा लका गहीत्वा (अथवा गृहीतलक) रामोऽयोध्या निवृत्ते ।

परन्तु यदि वाक्य इस प्रकार हो—बन्दरो के लका ले लेने पर राम अयो-
ध्या को लौटे—तो स्वतन्त्र-वाक्यांश (Absolute phrase) का प्रयोग
करके इसका अनुवाद इस प्रकार किया जा सकता है:—कपिभिर्गृहीतायां
लकाया रामोऽयोध्यां निववृत्ते अथवा कपिषु लंकां गृहीतवत्सु
रामोऽयोध्या निववृत्ते ।

टिप्पणी—इन स्वतन्त्र प्रयोगों को बनाने के लिए शत्रन्त तथा शान-
जन्त पदों के कर्ता को षष्ठी अथवा सप्तमी में रखना चाहिए और शत्रन्त
तथा शानजन्त पद का लिङ्ग, वचन और कारक वही होना चाहिए जो उनके
कर्ता का हो ।

१०१^१—जिस कार्य विशेष के होते रहने पर या हो चुकने पर किसी
दूसरे कार्य का होना पाया जाता है, वह सप्तमी में रक्खा जाता है। ऐसी दशा
में पहिले कार्य का समय ज्ञात रहता है, परन्तु दूसरे कार्य का समय
ज्ञात नहीं रहता, इस दूसरे कार्य का समय पहिले के आधार पर निर्धारित
किया जाता है, जैसे,

क. पौरवे वसुमती शासति अविनयमाचरति (शकुं ६)—पौरव
के शासन करते हुए कौन धृष्टतापूर्ण आचरण कर रहा है ।

वचस्यवसिते तस्मिन् ससर्ज गिरमात्मभूः (कुमार० २।५३)—
उस वचन के समाप्त हो जाने पर आत्मभू (ब्रह्मा) ने वाणी उच्चारण की ।

क. एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छति (मुद्रा० १)—
मेरे जीते जी चन्द्रगुप्त को कौन दवाना चाहता है ।

१०२—जिसका अनादर या तिरस्कार करके कोई कार्य किया जाता
है उसमें षष्ठी होती है, जैसे,

नन्दाः पशव इव हता पश्यतो राज्ञस्य (मुद्रा० ३)—राज्य
के देखते देखते नन्दवंशवाले पशु के समान मार डाले गए ।

१—यस्य च भावेन भावलक्षणम् । २। ३। ३७ ।

२—षष्ठी चानादरे । २। ३। ३८ ।

पश्यतोऽपि मे श्येनेनापहृतः शिशु (पचतत्र १।२१)—

१२३—‘जब’ के अर्थ में सप्तमी अथवा षष्ठी कोई भी आ सकती है, परन्तु साधारणतया षष्ठी का जो अर्थ हुआ करता है उस अर्थ में नहीं, जैसे, एव तयो परस्पर वदतो स राजा शयनमासाद्य प्रसुप्तः (पचतत्र)—जब वे दोनों इस प्रकार बातें कर रहे थे, तब राजा अपने शयन पर आकर सो गया ।

विशेष—जब किसी स्वतन्त्र-वाक्यांश में ‘रहते’ आता है, तो संस्कृत में उसका अनुवाद नहीं किया जाता, वह छोड़ दिया जाता है और उसकी जगह दो विशेष्य (Substantive), अथवा एक विशेष्य और एक विशेषण साथ साथ स्वतन्त्र रूप से ‘भावे’-विभक्ति (absolute case) में रखे जाते हैं, जैसे, नाथे कुतस्त्वय्यशुभं प्रजानाम् (रघु० ५।१३)—तुम्हारे राजा रहते हुए, प्रजाओं का कोई भी अनिष्ट कैसे हो सकता है ।

१२४—सेक्शन १२२ में बताया गया है कि ‘अनादर’ में षष्ठी का प्रयोग किया जाता है । परन्तु कभी कभी षष्ठी अथवा सप्तमी—दोनों में से कोई भी आ सकती है, जैसे, रुदति पुत्रे रुदतो वा पुत्रस्य पिता प्रात्राजीत् (सि० कौ०)—पुत्र के रोते रहने पर भी पिता सन्यासी हो गया ।

(क) ‘ज्योही’ ‘ऐसा हुआ नहीं था कि’, ‘मुश्किल से ऐसा हुआ था कि इतने ही में’ ‘जिसी क्षण’—इन अर्थों का बोध कराने के लिए सप्तमी आती है और सप्तमी के बाद में ‘एव’ जोड़ दिया जाता है, अथवा शत्रन्त, शानजन्त पद का ‘मात्र’ के साथ समास करके, पूरे समस्त पद को सप्तमी में रखते हैं और उसके साथ कभी ‘एव’ को जोड़ देते हैं, और कभी कभी नहीं भी जोड़ते, जैसे,

अनवसितवचन एव मयि महानाशीविष उदैरयत् शिरः (दश० २।४)—जिसी क्षण मेरी बात समाप्त हुई, एक बड़े साँप ने अपना सिर उठाया ।

अप्रभातायामेव रजन्याम् (मुद्रा० १)—मुश्किल से अभी प्रातः-काल हो पाया था कि ।

प्रविष्टमात्र एव तत्रभवत् निरुपसवानि नः कर्माणि संवृत्तानि (शकु ३)—ज्योही श्रीमान् ने प्रवेश किया, त्योही हम लोगो के सारे कार्य विघ्नरहित हो गए ।

टिप्पणी—अन्य विभक्ति के साथ भी जुड़ कर 'मात्र' शब्द एव-रहित या एव-सहित उपर्युक्त अर्थ का बोधक होता है, जैसे, जातमात्र न य.

शत्रुं व्याधि च प्रशम नयेत् (पचतत्र ३।१)—शत्रु और बीमारी को पैदा होते ही जो पुरुष दबा नहीं देता ।

(ख) कभी कभी शत्रन्त अथवा शानजन्त शब्दों का अव्ययो के साथ संयोग हो जाता है, जैसे, एव गत (शकु ४)—ऐसी परिस्थिति में, ऐसी परिस्थिति होने पर । तथानुष्ठिते (हितोप० ३, —ऐस. कर लिए जाने पर । एवम्, इत्थम्, तथा, इति—इत्यादि ऐसे अव्यय हैं जो शत्रन्त और शानजन्त शब्दों के साथ प्रायः जुड़े हुए मिलते हैं ।

१२५^१—स्वतन्त्र वाक्यांशों (absolute phrases) में कर्ता या कर्म कोई भी प्रधान उपवाक्य में, षष्ठी के अतिरिक्त और किसी विभक्ति में न तो

१—इस विषय में वैयाकरणों ने कुछ भी सम्मति नहीं प्रकट की है । तथापि मैं समझता हूँ कि इस प्रकार का प्रयोग निश्चित रूप से प्रामाणिक समझा जा सकता है । इसके पक्ष में तीन बातें हैं—

(१) स्वतन्त्र वाक्यरचना (absolute construction) के जो लक्षण बताए जाते हैं उनसे यह बात प्रमाणित हो जाती है ।

(२) दूसरे अनेक लब्धप्रतिष्ठ संस्कृत लेखकों के प्रयोगों से भी यह बात प्रमाणित हो जाती है ।

संज्ञारूप में न सर्वनामरूप में दुबारा आ सकता है। जब कर्ता या कर्म या उनके स्थानापन्न सर्वनाम को प्रधान वाक्य में दुहराना अभीष्ट हो तब स्वतंत्र वाक्यांश नहीं बनाना चाहिए, प्रत्युत सारे वाक्य को एक मान कर उसका अनुवाद शत्रन्त अथवा शानजन्त शब्दों द्वारा करना चाहिए, जैसे, गोषु 'दुह्यमानासु ता जलमपाययतन कृत्वा दुह्यमाना गा जलमपाययत्' कहना चाहिए।

‘आगतेषु विप्रेषु तेभ्यो दक्षिणां देहि’ इतना मुहावरेदार प्रयोग नहीं है जितना ‘आगतेभ्यो विप्रेभ्यो दक्षिणां देहि’। ‘आपणात् पात्रे समानीते तस्मिन्नन्न पचामि —यह इतना अच्छा प्रयोग नहीं है जितना आपणात् समानीते पात्रे अन्न पचामि’।

(३) तीसरे, लैटिन-जैसी अन्य क्लैसिकल भाषाओं में भी इसी प्रकार के प्रयोग पाए जाते हैं।

लक्षण में स्पष्टतया कहा गया है कि स्वतंत्र वाक्यांश (absolute phrase) का कर्ता प्रधान वाक्य में किसी भी हालत में नहीं आना चाहिए।

दूसर, संस्कृत-लेखकों के लेखों में स्वतंत्र वाक्यांश (absolute construction), क जों अनेक उदाहरण मिलते हैं उनमें ऐसे प्रयोग बहुत कम हैं जिनमें कर्ता या कर्म प्रधान वाक्य में, षष्ठी के अतिरिक्त अन्य किसी विभक्ति में दुबारा आया हो।

जिस प्रकार ‘महाबली’ कहना अनुचित है, और ‘महाबल.’ कहना ठीक है, उसी प्रकार ‘दुह्यमाना गा जलमपाययत्’ ‘गोषु दुह्यमानासु ता जलमपाययत्’ की अपेक्षा अधिक सार्थक और शुद्ध है और इसीलिए अधिक मुहावरेदार है।

तीसरे, लैटिन में भी भावविभक्ति (absolute case) इसी ढंग की होती है।

इसी प्रकार 'सारगे एव विचार^२ति स सारग.) व्याधेन हत'— यह प्रयोग उतना मुहावरेदार नहीं है जितना एव विचारयन् सारगो व्याधेन हत. ।

इसी प्रकार 'ताडयतोऽपि स्वामिनस्तस्मै भृत्या न कुप्यन्ति' बुरा प्रयोग है, और ताडयतेऽपि स्वामिने भृत्या न कुप्यन्ति अच्छा प्रयोग है ।

परन्तु 'मदने हरेण दग्धे तस्य पत्नी विवशा बभूव, अथवा 'मृतेऽस्मिन् राज्ञि तस्य पुत्रो राज्यमधिगमिष्यति' सर्वथा सुन्दर प्रयोग है ।

अभ्यास

१—अलमलमुपालम्भेन । पत्तने विद्यमानेऽपि ग्रामे रत्नपरीक्षा
(मालविका० १) ।

२—इदमवस्थातर गते तादृशेऽनुरागे किं वा स्मारितेन (शकुं० ५)

यद्यपि संस्कृत-वैयाकरणों ने इस विषय में कोई भी सम्मति प्रकट नहीं की है, तथापि उपर्युक्त तीनों बातों से यही निष्कर्ष निकलता है कि जो अधिक सक्षिप्त और मुहावरेदार होता है वह उसकी अपेक्षा अधिक शुद्ध है जिस पर वैयाकरणों ने कोई भी सम्मति नहीं प्रकट की है, न कोई आक्षेप अथवा आपत्ति प्रकट की है । दक्षिण-प्रान्त-निवासी मेरे एक मित्र ने "नारायणीयम्" नामक ग्रन्थ की ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया है । यह ग्रन्थ श्रीभागवतपुराण का सक्षिप्त संस्करण है । इस ग्रन्थ के प्रणेता ने ऊपर उल्लिखित नियम की सर्वथा अवहेलना की है । मेरे मित्र ने अपने कथन की पुष्टि के लिए दो तीन उदाहरण भी दिए हैं । मेरे विचार में, ऐसे प्रयोग अशुद्ध और गैरमुहावरेदार हैं । इस प्रकार के अपर्याप्त प्रमाणों के आधार पर मैं इस नियम में संशोधन अथवा परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं हूँ ।

- ३—मा तावदनात्मज्ञे देवेन प्रतिषिद्धे बसंतोत्सवे त्वमाभ्रकलिकाभंगं
किमारभसे (शकुं० ६) ।
- ४—अभिव्यक्तायां चन्द्रिकायां कि दीपिकापौनरुक्तयेन ।
(विक्रमो० ३) ।
- ५—आर्ये आत्रेयि, अथ तस्मादरण्यात् परित्यज्य गते लक्ष्मणे
सीतादेव्या कि वृत्तमित्यस्ति काचित् प्रवृत्तिः (उत्तर० २) ।
- ६—हा कष्टमरुन्धनी-वसिष्ठाविष्टितेषु रघुकदवकेषु जीवतीषु च प्रवृ-
द्धासु राज्ञीषु कथमिदमापतितम् । (उत्तर० २) ।
- ७—अत्रातरे शक्तिखडमर्षितेन गांडीविनैव भणितम् । अरे दुर्योधन-
प्रमुखा कुरुबलसेनाप्रभवः अरे अविनयनदीकर्णधार कर्ण
युष्माभिर्मम परोक्ष एकाकी पुत्रकोऽभियन्युर्व्यापादितः । अहं
पुनर्युष्माकं प्रेक्षमाणानामेनं कुमारवृषसेनं स्मर्तव्यशेषं नयामि ।
(वेणी०४)

- ८—कुतो धर्मक्रियाविघ्नः सता रक्षितरि त्वयि ।
तमस्तपति गर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ॥ (शकुं०)
- ९—मनोरथस्य यद्वीज तद्वैवेनादितो हतम् ।
लताया पूर्वलूनाया प्रसूनस्यागम कुतः ॥ (उत्तर०५) ।
- १०—सा सीतामंकमारोग्य भर्तृप्रणिहितेक्षणात् ।
मामेति व्याहरत्येव तस्मिन्पातालमभ्यगात् ॥ (रघु०१५।८४)

अभ्यासार्थं अतिरिक्त वाक्य

- १—राजा देवीमुखेन दुहितरमुवाच । पुत्रि, त्वयि दुहितरि स्थिताया किमेव युज्यते
यत्सर्वे पार्थिवाः मया सह विग्रहं कुर्वन्ति । (पचत्र १।५)
- २—अथ कदाचिदवसन्नाया राज्ञावस्ताचलचूडावलंबिनि भगवति कुमुदिनीनायके
चद्रमसि लघुपतनको नाम वायसो व्याधमपश्यत् (हितोप०१) ।
- ३—विकारहेतौ सति विक्रियते

येषा न चेतासि त एव धीरा । (कुमार०१।५९)

४—अनपायिनि संश्रयदुर्मै गजभङ्गे पतनाय वल्लरो । (कुमार०४।३१)

५—यस्मिंजीवति जीवति बहव सोऽत्र जीवति ।

वयासि किं न कुर्वति चच्चा स्त्रोदरपूरणम् ॥ (पञ्चतन्त्र १।१)

६—दर्शितभयेऽपि धानरि धैर्यध्वमो भवेन्न धीराणाम् ।

शेषितसरसि निंदाधे नितरामेवोद्धत सिन्धु ॥ (पञ्चतन्त्र १।२)

७—गुणवत्तरपात्रेण द्वाद्यते गुणिना गुणा ।

रात्रौ दीपशिखार्कानिर्न भानावुदिते सति ॥ (पञ्चतन्त्र १।१६)

८—सतानवाहीन्यपि मानुषाणां दुःखानि सद्बुधवियोगजानि ।

दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि स्रोत सहस्रैरिव सप्लवते ॥ (उत्तर०४)

९—पचभिर्निमित्ते दैहे पचत्व च पुनर्गते ।

स्वा स्वा योनिमनुप्राप्त तत्र का परिदेवना ॥ (हितोप०४)

१०—सर्वत्र नो वार्तामवेहि राजन्नाये कुतस्त्वय्यशुभ प्रजानाम् ।

सूर्ये तपत्यावरणाय दृष्टे कल्पेन लोकस्य कथं तमिच्छा (रघु०५।१३)

११—नस्मिन् हृदं सहितमात्र एव क्षोभात्ममाविद्धतरंगहृन्मनः ।

रोधासि निध्नन्नवपातमग्नं करोव वन्या परुष ररास ॥ (रघु०१६।७८)

१२—जीवत्सु तातपादेषु नवे दारारिग्रहे ।

मातृमिश्रित्यमानाना ते हि नो दिवसा गताः ॥ (उत्तर०१)

१३—त्वय्युत्कृष्टबलेऽभियोक्तारि नृपे नदानुरक्ते पुरे

चाणक्ये चलिताधिकारविमुखे मौर्ये नवे राजनि ।

स्वाधाने मयि मार्गमात्रकथनव्यापारयोगोद्यमे

त्वद्वाङ्मातरितानि सप्रति विभो तिष्ठति साव्यानि वः ॥ (मुद्रा०४)

१४—अखज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरतरौवार्यमाणे

सेनानाये स्थितेऽस्मिन्मम पितरि गुरौ सर्वधन्वीश्वराणाम् ।

कर्णाल सभ्रमेण व्रज कृप समर मु च हादिर्वय शका

ताते चापद्विताये वहति रणधुर को भयस्यावकाश ॥ (विष्णु०३)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

[ध्यान रहे कि “भावे सप्तमी” या “भावे षष्ठी” के द्वारा ही अनुवाद होना चाहिए ।]

- १—देवताओं के देखते रहने पर भी लोग दुष्कर्म करते हैं ।
- २—दारिद्र्यता रूपी हाथी के द्वारा आत्म सम्मान रूपी वृक्ष के काट दिए जाने पर गुणरूपी सारे पक्षी उड़ जाते हैं ।
- ३—जब विपत्तियाँ बिल्कुल समीप आ जाती हैं तो मित्र भी शत्रु हो जाते हैं !
- ४—ज्योंही चित्रकार चित्र को समाप्त कर ले, त्योंही मुझे बुलाने के लिए आ जाना ।
- ५—ज्योंही ऋषि ने इन शब्दों का उच्चारण किया, त्योंही क्षराभर में वह सुन्दर अप्सरा पत्थर में परिणत हो गई ।
- ६—जब सक्क का कारण इतना दूर है तो तुम रोग का व्याज करके क्यों कहते हो कि मैं आप लोगों के साथ नहीं चल सकूँगा ।
- ७—जब यह दुःख समाचार उन लोगों के कान तक पहुँचा तो उन्हें महान् दुःख हुआ ।
- ८—मैं नहीं जानता कि माता द्वारा निर्दयतापूर्वक त्याग दिए जाने के बाद उस बालक की क्या दशा हुई ।
- ९—इन्हीं तथा इन्हीं-जैसे व्यथाकर विचारों से मन के व्याप्त रहने के कारण उसने निद्राहीन रात्रि व्यतीत की ।
- १०—ज्योंही उस चीज पर बाण छोड़ा गया त्योंही उसने उस दिशा में एक करुण क्रन्दन की आवाज सुनी ।
- ११—द्युतिमान् दिक्पालों के रहते हुये भी दमयन्ती नल को ही पतिरूप में चाहती है ।
- १२—ऐ, बलकी डींग मारने वाले अधमो, तुम्हें धिक्कार है । हम सौ भाइयों के जीते जी कौन हमारे भाई की परछाई भी लॉप सकता है ।

- १३—उदय होते हुए चन्द्रमा के द्वारा तमोराशि (तमः पुष)
हटा दिए जाने पर पूर्व दिशा मेरे नेत्रों को आकृष्ट कर रही है ।
- १४—कैदी (बन्दी) के प्राणों की रक्षा के लिये मेरे प्रार्थना करने
पर भी राजा ने उसके वध की आज्ञा दी ।
- १५—जब मृत्यु निश्चित है तो भाग कर (भगदड का आश्रय लेकर)
क्यों अपनी कीर्ति को मलिन करते हो ।



तृतीय भाग

व्याकरण में आने वाले शब्दों और रूपों का अर्थ

द्वादश पाठ

सर्वनाम

पुरुषवाचक सर्वनाम

१२६—पुरुषवाचक सर्वनामो के प्रयोग के विषय में कोई विशेष बात नहीं होती । क्रियाओं और परसर्गों के योग में पुरुषवाचक सर्वनामो में वेही नियम लागू होते हैं जो सज्ञाओं में, जैसे, अह त्वां प्रार्थये (मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ) । त्वया विना सोऽपि समुत्सुको भवेत् (विक्रमो० १) ।

१२७—‘अस्मद्’ और ‘युष्मद्’ के वैकल्पिक रूपों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये । ये रूप ये हैं—मा, मे, नौ, नः, त्वा, ते, वा, वः । इनका प्रयोग निम्नलिखित दशाओ में निषिद्ध है—

(अ) वाक्य के प्रारम्भ में ।

(आ) च, वा, एव, हा, अह, ह—इनके ठीक पूर्व में ।

(इ) श्लोक के चरण के प्रारम्भ में ।

‘मे मित्रम्’, ‘नः पाहि’ ‘वा मरुतम्’—ये प्रयोग अशुद्ध हैं। तस्य च मम च (न किं ‘मे च’) वैरमस्ति—उसकी और मेरी शत्रुता है। तस्य मम वा गृहम् (न किं मे वा)। इदं पुस्तकं ममैव (न किं ‘मे एव’)। हा मम मन्दभाग्यम् (न किं ‘मे मन्द भाग्यम्’)। वेदैरशेषैः स वेद्योऽस्मान्कृष्णः सर्वदाऽवतु (सि० कौ०)—समस्त वेदों के द्वारा ज्ञातव्य श्रीकृष्ण भगवान् हम लोगों की सर्वदा रक्षा करे।

(क) जब ये वैकल्पिक रूप च ‘वा’ ‘एव’ इत्यादि से जुड़े हुये नहीं होते तो उनका प्रयोग इन अव्ययों के साथ हो सकता है, जैसे, हरो हरिश्च मे स्वामी (सि० कौ०)—हर और हरि मेरे स्वामी हैं किवा मे पुत्री करोतु—मेरी पुत्री क्या करे।

(ख) सम्बोधन के ठीक अनन्तर ये वैकल्पिक रूप नहीं आ सकते, जैसे, वयस्य, मम गृहमेतत् (सि० कौ०) (न किं ‘मे गृहमेतत्’)। “देवास्मान् पाहि सर्वदा” ठीक प्रयोग है, “नः पाहि सर्वदा” अशुद्ध प्रयोग है। इसका अर्थ है—“हे भगवन्, सर्वदा हम लोगों की रक्षा कीजिये।” वास्तव में, सम्बोधन एक सन्निहित वाक्य है।

(ग) यदि सम्बोधनपद के परे उसका विशेषण लगा रहे तो ये वैकल्पिक रूप प्रयोग में आ सकते हैं, जैसे हरे दयालो, नः पाहि (सि० कौ०)—ऐ दयालु हरि, मेरी रक्षा करो।

१०८—जिसका सम्बोधित करके बातचीत की जाती है उसके प्रति, शिष्टाचार दर्शाने के लिये ‘भवत्’ शब्द प्रयोग में लाया जाता है। ऐसे प्रयोग में यह आवश्यक नहीं है कि संबोधित व्यक्ति के प्रति आदर दिखाया जा रहा है। इस दशा में ‘भवत्’ शब्द प्रथमपुरुष (अन्य पुरुष) होता है और उसके साथ प्रथमपुरुष की क्रिया आती है जैसे, अथवा कथं भवान् मन्यते (मालविका० १)—या आप क्या समझते हैं। वयमपि भवत्यौ किमपि पृच्छामः—मैं भी आप लोगों से कुछ पूछता (पूछती) हूँ।

१२६—जब आदर सूचित करना होता है तो 'भवत्' और 'भवती' के पहिले 'अत्र', 'तत्र', 'स' रख देन हैं। आसन्नवर्ती व्यक्ति का बोध कराने के लिए 'अत्रभवान्' और 'अत्रभवती' का प्रयोग होता है और 'दूरवर्ती अथवा अनुपस्थित व्यक्ति का बोध कराने के लिए 'तत्रभवान्' और 'तत्रभवती' का, जैसे क तत्रभवती कामन्दकी—पूज्य कामन्दकी देवी कहाँ हैं। आदिष्टोऽस्मि तत्रभवता काश्यपेन (शकुं ४)—पूज्य काश्यपजी ने मुझे आदेश दिया है। अपेहि रे अत्रभवान् प्रकृति-मापन्न (शकु २)—अरे हटो, यह सम्माननीय सज्जन होश में आ गए हे। मां सभवान् नियुक्ते (मालती ०१)—मुझको वह श्रीमान् जी नियुक्त कर रहे हैं।

टिप्पणी—['स का यह प्रयोग अशुद्ध मालूम पड़ता है। जैसे 'अत्र' और 'तत्र' भवत् के पूर्व प्रयुक्त हुए हैं उस प्रकार से 'स' का प्रयोग नहीं मालूम पड़ता। 'सभवता—जैसा प्रयोग कहीं नहीं मिलता। ऊपर मालतीमाधव में जो उदाहरण दिया गया है उसमें 'स' को 'भवान्' में अलग समझना और पढ़ना चाहिए।

सक्रेतवाचक सर्वनाम

१३०—सक्रेतवाचक सर्वनाम तीन होते हैं, इदम् या एतद् जिसका अर्थ होता है—यह तद्—वह, अदस्—यह या वह। ये जिन मन्त्रों से सम्बद्ध होते हैं उनके साथ भी प्रयुक्त होते हैं और अकेले भी, जैसे, एष नृप, एष गुरुप, तद् गृहम्, आह, एष मे किकरः, इदं नो गृहम्, असौ विद्याधर।

१३१—"यह देखिए मैं आता हूँ", "वह देखिए, लड़का आता है"—इस प्रकार के वाक्यों में इदम् और एतद् के रूप "यह देखिये" और "वह देखिए" के अर्थ में प्रायः उत्तम पुरुष और अन्य पुरुष के साथ प्रयुक्त होते हैं और जैसे सामान्य विशेषणों के लिये, वचन, कारक

विशेष्य के अनुरूप होते हैं उसी प्रकार इनका लिंग, वचन और कारक वाक्य के कर्ता के अनुरूप होता है, जैसे, आर्यपुत्र इयमस्मि (शकु १), इयमहमारोहामि (उत्तर० १), अयमागच्छामि (शकु ३), इय सा जातिः परित्यक्ता (वेणी० ३)

१३२—तद् के रूपों का प्रयोग प्रायः “प्रसिद्ध”, “सुविख्यात” के अर्थ में होता है, जैसे, सा रम्या नगरी (भट्टि० ३।३७)—वह प्रसिद्ध रमणीक नगरी । सामन्तचक्रं च तन् (भट्टि०)—सामन्तो (करद राजाओं) का वह सुप्रसिद्ध मङ्गल ।

(क) तद् का प्रयोग प्रायः ‘एव’ के साथ “वही” या “उसी” के अर्थ में होता है, ‘एव’ साधारणतया प्रत्यक्षरूप में और कहीं कहीं पर अप्रत्यक्षरूप में रहता है, जैसे, तानेन्द्रियाणि सकलानि (भर्तृहरि० २।४०)—सारे शरीर के अवयव वही रहते हैं । तदेव नाम (भर्तृहरि०)—नाम भी वही रहता है । एते त एव । गरयः (उत्तर० ३)—ये वही पर्वत हैं । तदेव पञ्चवटीवनम् (उत्तर० ३)—पञ्चवटी का वन वही है ।

(ख) जब तद् के रूप दुहरा कर प्रयुक्त होते हैं तो उसका अर्थ होता है “कई” अथवा “भिन्न भिन्न” जैसे, तेषु तेषु स्थानेषु (काद०)—भिन्न भिन्न स्थानों में ।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम

१३३—जब यद् शब्द का रूप दुहराया रहता है तो उसका अर्थ होता है—सब, सम्पूर्ण, जो कुछ, और यद् का सम्बन्धी सर्वनाम भी दुहराया जाता है, जैसे —क्रियत यद्येषा कथयति (उत्तर० १)—जो कुछ भी यह कहती है, वह सब मैं करूँगा । योय शस्त्रं विभति...क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमिह जगतामन्तकस्यान्तक्रोऽहम् (वेणी० ३)—जो कोई भी शस्त्र धारण करते हैं, उन सबों का, मैं संहारकर्ता हूँ चाहे वह ससार के नष्ट करने वाले यमराज ही क्यों न हो ।

य य प पश्यमि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीन वच. (भर्तृ हरि० २।५१) ।

(क) अपि, चित्, चन के सहित अथवा इनसे रहित किम् के रूपों के साथ यद् के रूपों को जोड़कर 'जो कोई भी' वा "जिस किसी भी" का अर्थ प्रकट करते हैं, जैसे, एतादृशा रूपवती कन्या अस्मै कस्मैचित् न दानव्या—ऐसी सुन्दर लड़की जिस किसी को भी नहीं दे देना चाहिए । यावाको वा भवान्यहम् (वेणी०३)—मैं चाहे जो कोई भी होऊँ । यत्रकुत्रापि स्वपिति—जहाँ कहीं भी सो जाता है ।

प्रश्नवाचक, अनिश्चयवाचक और निजवाचक सर्वनाम

१२४—प्रश्नवाचक सर्वनाम और उसमें प्रत्यय लगाकर बने हुये शब्द प्रश्न पूछने में प्रयुक्त होते हैं, जैसे, कः पुनरसौ जामाता (उत्तर०१)—लेकिन यह दामाद महाशय कौन है । कनमन दिग्भभोत गतः स जालमः (विक्रमो० १)—वह दुष्ट किस दिशा में चला गया । किं करोमि क गच्छामि (उत्तर० १)—क्या करूँ और कहाँ जाऊँ ।

१२५—कभी कभी प्रश्नवाचक सर्वनामों और प्रश्नवाचक क्रिया-विशेषणों में चित् चन, अपि अथवा स्विद् जोड़कर अनिश्चयवाचक सर्वनामों का अर्थ प्रकट करते हैं, कश्चिद्यत्नो वसति चक्रे मेघदूत १)—किसी यत्न ने अपना निवासस्थान बना लिया । कदाचित्, कदाचन कदापि—कभी, किसी समय । कास्विद्वगुण्ठनवती नारी (शकु . ५)—घूँघट डाले हुई कोई स्त्री

(क) 'अपि' का कभी कभी "अवर्णनीय, अनिर्वच्य" अर्थ होता है, जैसे, कोऽपि हेतु (उत्तर० ६)—कोई अनिर्वचनीय कारण । तत्तस्य किमपि द्रव्यं या हि यस्य प्रियो जन (उत्तर० २) ।

(ख) 'कचित्-कचित्' का अर्थ होता है 'कहीं—कहीं' अर्थात् 'एक जगह—दूसरी जगह', और 'कदाचित्—कदाचित्' का अर्थ होता है 'कभी—कभी' अर्थात् 'एक समय—दूसरे समय', जैसे, कचिद्वीणा वाद्यं, कचिदपि च हाहति रुदितम् (भर्तृहरि० वैराग्यशतक श्लोक १२)—कहीं (एक जगह) तो वीणा बज रही है, कहीं (दूसरी जगह) हाय, हाय का विलाप हो रहा है। कदाचित् कानन जगाहे, कदाचिन कमलवनेषु रमे (काद०)—कभी (एक समय) तो वह किसी जङ्गल में घुस जाता था और कभी (दूसरे समय) वह कमल वनों में रमण करता था।

(ग) किसी किसी विरले स्थल पर 'कचित्-कचित्' का अर्थ "कभी-कभी" भी होता है, जैसे, कचिद् घनाना पतता कचिच्च (रघु० १३। १६)—किसी समय बादलों का, किसी समय चिड़ियों का।

१३६—'अन्य-अन्य' और 'पर-पर' 'एक-दूसरा' के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, जैसे, अन्य करोति, अन्यो मुद्धे—एक करता है, दूसरा भोगता है, यानी अपराध तो कोई दूसरा करता है, पर फल किसी दूसरे ही को भुगतना पड़ता है। मनस्यन्यद् वचमन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनम् (पञ्चतन्त्र १)—दुष्टों के मन में कुछ दूसरी बात होती है, वाणी में कुछ दूसरी और कर्म (काम) में कुछ दूसरी।

१३७—पूर्वकथित या वर्णित किन्हीं दो चीजों या व्यक्तियों के संबंध में, अधिकतर 'एक—अपर' या 'एक—अन्य' का प्रयोग होता है, जैसे, एको ययौ चैत्ररथप्रदेशान् सौराज्यरम्यानपरो विदर्भान् (रघु० ५। ६०)—एक चैत्ररथ प्रदेश चला गया, दूसरा विदर्भ देश को, जो कि अच्छे राजा होने के कारण प्रसन्न था।

१३८—जब 'एक—अपर' या 'एक अन्य' बहुवचन में आता है तो उसका अर्थ होता है 'कुछ—कुछ', जैसे, विधवाना पुनरुद्वाह शास्त्रप्रति-

पिद्ध इत्येके मन्यन्ते, शास्त्रविहित इत्यपरे (अथवा अन्ये)—कुछ लोगों का मत है कि विधवाओं का पुनर्विवाह शास्त्र द्वारा निषिद्ध है, और कुछ लोगों का मत है कि वह शास्त्रविहित है ।

(क) इसी अर्थ में कभी कभी “एके” की जगह पर ‘केचित्’ का प्रयोग होता है, जैसे, मदुक्त केचिदन्वमन्यन्त । अपरे पुनर्निनिन्दुः (दशकुमार २।४)—कुछ लोगों ने मेरी बात का अनुमोदन किया, पर कुछ लोगों ने निन्दा की ।

१३६—‘स्व’, ‘स्वकीय’, ‘आत्मीय, और ‘निज’—ये निजवाचक के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, जैसे, स्वनाम कथय—अपना नाम बताओ । निजं वैयमदर्शयत्—उसने अपना वैयं दिखलाया ।

(क) ‘स्वयम् निजवाचक क्रियाविशेषण अव्यय है, जैसे, सा स्वयमेव तत्र जगाम—वह स्वयं ही वहाँ गई ।

१४०—निजवाचक सर्वनाम के तौर पर अधिकतर ‘आत्मन्’ शब्द का प्रयोग होता है । ‘आत्मन्’ से बोध होने वाली सजा चाहे जिस वचन और जिस लिंग की हो, पर ‘आत्मन्’ शब्द सदा पु लिंग और एकवचन में ही आता है जैसे, वा स्त्रा अनेने प्रार्थ्यमानमात्मान विकृत्यने (विक्रमो० २)—इसके द्वारा चाही जाती हुई कौन सी स्त्री अपने आप को गौरवान्वित समझती है अथवा अपने आप पर गर्व करती है ।

आत्मानं बहु मन्यामहे वयम् (कुमारसम्भव ६।२०)—हम लोग अपने आप को बहुत कुछ समझते हैं ।

गुप्तं ददृशुरात्मानं सर्वाः स्वप्नेषु वामनैः (रघु० १०।६०) ।

अभ्यास

१—तस्य च मम च पोरधूर्तैर्वैरमुदपाद्यत (दश कुमार० २।२) ।

२—न न कुतूहलमस्ति सर्पदर्शनं (मुद्रा० २) ।

- ३—श्रीशस्त्वाऽवतु मापीह दत्तात्ते मेऽपि शर्म सः ।
 सुख वा नौ ददात्वीश पनिर्वामपि नौ हरिः ॥
 सोऽव्याद् वो नः शिव वो नो दद्यात्सेव्योऽत्र वः मनः ॥
 (सि० कौ०) ।
- ४—एवमत्रभवन्तो विदांकुर्वन्तु । अस्मि तत्रभवान् काश्यप
 श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम जातुकर्णोपुत्र (उत्तर०१) ।
- ५—एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यिक्तदानीतनश्च संवृत्तः (उत्तर०१) ।
- ६—तद्देव पचवटीवनम् । सैव प्रियसखी वासती । त एव जातनिर्वि-
 शेषाः पादपाः । मम पुनर्मन्दभाग्यायाः सर्वमेवैतद् दृश्यमानमपि
 नास्ति (उत्तर०३) ।
- ७—आयुष्मन्नेष वाग्विषयीभूत स वीरः । (उत्तर०५)
- ८—राजा—आर्यं बहु प्रष्टव्यमत्र । चा०—वृषल विश्रब्ध ब्रूहि।ममापि
 बह्वाख्येयमत्र । रा०—एष पृच्छामि । चा०—अहमप्येव कथयामि ।
 (मुद्रा०३)
- ९—अमुना व्यतिकरेण कृतापराधमिव त्वय्यात्मानमवगच्छति काद-
 बरी । (कादम्बरी)
- १०—केचित् सपद्भिः प्रलोभ्यमाना रागावेशेन बाध्यमाना विह्वलता-
 मुपयाति । अपरे तु धूर्तैः प्रतार्यमाणा सर्वजनस्योपहास्यता-
 मुपयाति । (काद)
- ११—साहसकारिण्यस्ता कुमार्यो याः स्वयं सदिशन्ति समुप-
 सर्पति वा ।
- १२—अनयत्प्रभुशक्तिसपदा वशमेको चेत्तीननतरान् ।
 अपरः प्रणिधानयोग्यया मरुतः पञ्चशरीरगोचरान् ॥
 (रघु०८।७८)

१३—कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना. प्रपद्य तेऽन्यदेवताः ।

त त नियममास्थाय प्रकृत्या नियता स्वयः । (भगवद्गीता ७ २०)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अथममौ मम ज्ञायानार्थं कुशो नाम भरताश्रमात् प्रतिनिवृत्त (उत्तर० ६) ।

२—नक्षत्र्योन्मादिना व्यसनगतशरव्यनामुपगता बहनीकतृणाग्रावस्थिता जलविन्दव
इव पतिनमप्यात्मान नावगच्छन्नि (ऋदम्बरी) ।

३—तस्य तरुषण्डस्य मध्ये मण्डिर्पणमिव त्रैलोक्यत्रयस्या क्वचित् न्यम्बकवृषभ
विषाणकोटलडिन्तशिलाखण्डं क्वचिदैरावनदशनमुसलसडितकुमुददटमच्छेद
नाम मरो दृष्टवान् (ऋदम्बरी) ।

४—उति नरपतिरस्त्र यद्यदाविश्वमार ।

क्रमवदय मुरारि प्रत्यहन्तदाशु ॥ (शिशुपाल० २० । ७६) ।

[क्रमवत् अर्थात् परिपालित्ता]

५—नीनीन्द्रियाणि सकलानि तदेव नाम,

मा बुद्धिरप्रतिहता वचन तदेव ।

अयोधमणा विरहित पुरुष स एव

त्वन्य क्षणेन भवतीति विचित्रमेव ॥ (भर्तृहरिनीति ०४) ।

६—एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा

स्नान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि ।

आमजु-मजुल लतानि च तान्यमूनि

नोरन्ध्रनीलनिचुलानि सरित्तटानि ॥ (उत्तर० २) ।

७—योऽस्ति यन्य यदा माममुभयो पश्यतान्तरम् ।

एकस्य क्षणिका प्रीतिरन्य प्राणैर्विमुच्यते ॥

८—वज्र च राजतेजश्च द्वयमेवातिभीषणम् ।

एकमेकत्र पतति पतत्यन्यत् समततः ॥ (द्वितीय० १) ।

९—विश्वम्भरात्मजा दवी राज्ञा त्यक्ता महावने ।

प्राप्तप्रसवमात्मान गगा देव्या विमु चति ॥ (उत्तर०७) ।

१०—काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतो शुद्धवैषयो ।

हिमनिमुक्तयोर्योगि चित्रावन्द्यमसोरिव ॥ (रघु०१ । ४६) ।

११—कोऽप्येष एव पिशुनोग्रमनुव्यथर्म ।

कर्णे पर स्पृशति हति पर समूलम् ॥ (पचतत्र १ । ११)

१२—रूप तदोजस्वि तदेव वीर्यम्

तदेव नैसर्गिकमुन्नतत्वम् ।

न कारणात् स्वाद् बिभिदे कुमार

प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात् ॥ (रघु०५ । ३७) ।

संस्कृति में अनुवाद कीजिए—

१—पूज्य गौतम जी ने मुझे यह कार्य करने की आज्ञा दी है ।

२—इस शुभ अवसर पर श्रीमान जी क्या बोलने का सकल्प करते हैं ।

३—प्यारे गोपाल, मत राओ । जिन दोनो माइयों को तुम भरा हुआ समझते थे, वे यह आ रहे हैं ।

४—यह, हाथो मे फल लिये हुए इस बच्चे की माता आ रही है ।

५—बुद्धिमान लोगो की सङ्गत मे एक अवर्णनीय आनन्द होता है ।

६—उस विपत्तिकाल मे उन लोगो ने बड़ी कठिनता से अपने को बचाया ।

७—ये दोनो लड़के भेरे द्वारा अपने ही बच्चो की तरह पाले पोसे गए , एक तो बहुत बुद्धिमान था, पर दूसरा अत्यन्त मन्दबुद्धि ।

८—उस समाचार को सुनने पर उस स्त्री ने अपने आपको सबसे अधिक भाग्यहीन समझा ।

९—कहा जाता है कि भद्रकाली के मन्दिर मे एक बुढ़ी औरत रहती है । कभी तो वह बड़बड़ाने लगती है और कभी ठिकाने से बोलने लगती है ।

- १०—कुछ दर्शनशास्त्रवेत्ता लोगो का विश्वास है कि ईश्वर ने सारा विश्व बनाया, कुछ लोग यह मानते हैं कि विश्व स्वय ही पैदा हुआ ।
- ११—कुछ लोग अपना ही हित साधते हैं, कुछ लोग दूसरो का ही हित साधते हैं और कुछ लोग दोनों साधते हैं ।
- १२—यज्ञदत्त के पुत्र भिन्न भिन्न कलाओं और शास्त्रों में निपुण हो गए हैं ।
- १३—जिस आदमी को मेने सड़क पर फटे चीथड़े पहिने हुए देखा था यह वही आदमी है ।
- १४—वह कहीं भी अध्ययन कर लेता है, किसी के भी साथ बाहर चला जाता है किसी के भी घर में खा लेता है और कहीं भी सो जाता है, ।
- १५—जो दृढचित्त होता है वह अपने प्रति किए हुये अपमान का बदला लेने का प्रयत्न करता है ।
- १६—जो लोग तुम्हारे घर पर आवे उनमें कोमलतापूर्वक बोलो ।



त्रयोदश पाठ

शतृ, शानच्, क्त, क्तवतु

स्यतृ, स्यमान, क्सु, कानच्

तव्य, अनीयर्, एयत्

कृत्वा, ल्यप्

१४१—शतृ, शानच्, क्त, क्तवतु, स्यतृ, स्यमान, क्सु, कानच्, तव्य अनीयर्, एयत् प्रत्ययों को लगाकर जितने शब्द बनते हैं वे सब विशेषण होते हैं, और उनके लिंग, वचन और कारक उनके विशेष्य के लिंग वचन और कारक के अनुसार होते हैं। जिन धातुओं में ये जोड़े जाते हैं उन धातुओं के योग में जो विभक्ति आती है वही विभक्ति इन प्रत्ययों से निष्पन्न शब्दों के योग में भी आती है।

इस पाठ में शतृ, शानच्, स्यतृ, स्यमान और क्सु, कानच् का निरूपण किया जायगा।

शतृ, शानच्

१४२—शतृ शानच् से निष्पन्न शब्द अंग्रेजी के उन शब्दों के समकक्ष होते हैं जो क्रिया (verb) में ing लगा कर बनाए जाते हैं। जब किसी कार्य की समानाधिकरणता या समकालीनता पाई जाती है तब शतृ शानच् से निष्पन्न शब्दों का प्रयोग होता है, जैसे, इति

विचारयन्नेव तुरगाद्वततार (काद०)—ऐसा सोचता हुआ ही वह घोड़े से उतर गया ।

विवाहकौतुकं त्रिभ्रत एव तस्य वसुधा हस्तगामिनीमकरोत् (रघु० ८।१)—जब कि वह वैवाहिक सूत्र पहिने ही हुए थे तभी उसको उन्होंने पृथ्वी दे दी ।

त्रजश्च समर्थयामास (काद०)—और जाते हुए वह सोचता जाता था ।

शत्रन्त और शानजन्त शब्दों में “जब कि” का अर्थ विद्यमान रहता है और जिस भाव या विचार को प्रकट करने के लिए समूचे वाक्य की आवश्यकता पड़ती है, उसको प्रकट करने के काम में इन शब्दों का प्रयोग होता है ।

विशेष—(क) जब कार्य की समानाधिकरणता या समकालीनता न पाई जाती हो तो इन शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जैसे वे लोग पर्वत पर चढ़ कर कुछ काल के लिये विश्राम करने लगे—इसका संस्कृत अनुवाद होगा “पर्वतमारुह्य ते कञ्चित् कालं व्यश्राम्यन्” । “पर्वतमारोहत ते कञ्चित् कालं व्यश्राम्यन्—” ऐसा प्रयोग नहीं होगा । अलबत्ता यदि वाक्य का अर्थ यह है कि दोनों कार्य एक साथ ही किये जाते हैं तब तो अवश्य “पर्वतमारोहन्तः ते” इत्यादि प्रयोग ठीक होगा ।

(ख) शत्रन्त और शानजन्त शब्द विधेय के स्थान पर विशेषण बनकर कर्ताकारक में कदापि नहीं आ सकते । उदाहरणार्थ ‘स कुर्वन् नस्ति—’ सर्वथा अशुद्ध प्रयोग है । परन्तु ‘कार्यं कुर्वन् स क्रीडति’ सर्वथा शुद्ध प्रयोग है ।

१४३^१—प्रायः शानजन्त शब्दों का प्रयोग ‘स्वभाव’ या ‘मनोवृत्ति’

या 'अवस्था का कोई मापदण्ड,' अथवा 'योग्यता' या 'किसी कार्य के करने की क्षमता,' इत्यादि अर्थों का बोध कराने के लिए होता है, जैसे, भोग भुजान (सि० कौ०)—भोगने का अभ्यस्त ।

कवच बिभ्राण (सि० कौ०)—कवच पहिने हुए यानी जिस उम्र में कवच पहिना जाता है उस उम्र का । शत्रु निघ्नान (सि० कौ०)—शत्रु को मारने में समर्थ ।

उपर्युक्त द्वितीय उदाहरण के साथ निम्नलिखित उदाहरण की तुलना कीजिए । सम्यग विनातमथ वर्महर कुमारम् (रघु० ८ । ९४) । यहाँ वमहर = कवचधारणार्हवयस्कः ।

१४५—किसी विद्यमान परिस्थिति या सम्बद्ध परिस्थिति अथवा विशेषता का बोध कराने और किसी कार्य का कारण बतलाने के लिए शत्रन्त और शानजन्त शब्दों का प्रयोग होता है, जैसे, शयाना भुजते यवनाः (सि० कौ०)—यवन लोग लेटे लेटे भोजन करते हैं ।

तिष्ठन् मूच्यति (महाभाष्य — तिष्ठन् भक्ष्यति (महाभाष्य) । हरि पश्यन् मुच्यते (सि० कौ०)—हरिका दर्शन करने के कारण वह मुक्त हो जाता है । शयाना भुजते यवनाः' उत्तर है 'कथं भुजते' का और हरि पश्यन् मुच्यते' उत्तर है 'केन मुच्यते' का ।

(क) शत्रन्त और शानजन्त शब्द किसी क्रिया के कर्ता की विशेषता में बताते हैं, जैसे, योऽधोयान आस्त सदेवदत्तः (महाभाष्य)—जो पढ़ रहा है वह देवदत्त है ।

(विशेषः)—जिस प्रकार अंग्रेजी के पार्टिसिपल से सीमित या नियंत्रित कर देने का बोध होता है ठीक उसी प्रकार शत्रन्त और शानजन्त शब्दों से भी सीमित या नियंत्रित कर देने का बोध होता है, जैसे, Students preparing their lessons will be rewarded का अनुवाद होगा पाठानधीयाना. शिष्याः पारितोषिकाणि लप्स्यन्ते ।

(ख) किसी सामान्य सत्य का बोध कराने के लिये भी शत्रन्त और शानजन्त शब्दों का प्रयोग होता है, जैसे, शायाना वर्धते दूर्वा (महा भाष्य)—दूब लेटी हुई या पड़ी हुई दशा में ऊगती है। आमीन वयने विसम (महाभाष्य)—विस माने कमलदण्ड, कमलनाल मीधा सडे रहने की दशा में बढ़ता है।

१४५—आस् (बैठना), रा (खड़ा होना) भू (होना) और अस् (होना)—इन धातुओं से बोध होने वाले कार्य का नैरन्तर्य प्रकट करने के लिए इन धातुओं में यथायोग्य शतृ और शानच् प्रत्यय जोड़े जाते हैं, जैसे वल्माकाभ्राणि विदारयन् प्रगजश्चास्ते (पञ्चतन्त्र १।१) —दीमर्षों के घर के शिखरों को दहाता तथा बड़ी जोर से गगजता रहा। गीतसमाप्त्यवसर प्रतीक्षमाणस्तन्मो—(काट०)—गीत की समाप्ति के अवसर की प्रतीक्षा करता रहा।

१४६—हिन्दी के “से” का बोध कराने के लिये प्रायः लज्ज, ही और इप् धातुओं में शतृ और शानच् जोड़ दिए जाते हैं, जैसे एव निघृण (काट०) न लज्जसे (काट०)—क्या इस प्रकार निर्दयतापूर्वक प्रहार करने से तुम लजाते नहीं हो। स्वय साहस स दशन्ता वाला लिह्ये (काट०)—मैं नौजवान लड़की ऐसी साहसपूर्ण बात स्वय कहने से शरमाती हूँ।

१४७—‘विकार’ अर्थ का बोध कराने के लिए कभी कभी शत्रन्त और शानजन्त शब्दों का प्रयोग ‘मा’ के साथ होता है, जैसे, माजीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जावति (शिशुपाल० २।४५)—जो दूसरों के तिरस्कार के दुःख से आहत होने पर भी जीता है उसे विकार है यानी उसे जीवित नहीं रहना चाहिए बल्कि मर जाना चाहिये।

स्यतृ, स्यमान

१४८—स्यतृ और स्यमान से बने हुए शब्द यह बतलाते हैं कि कोई

व्यक्ति अमुक कार्य करने जा रहा है या करने वाला है , जैसे, करिष्यन्—
करने जा रहा है या करने वाला है। मादयन्—छुटने जा रहा है।
कारिष्यमाणः—इसके ऊपर किया जाने वाला है।

(क) सामान्यभविष्य काल का बोध कराने के अतिरिक्त ये शब्द अभि-
प्राय या इच्छा भी प्रकट करते हैं, जैसे, वन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टमत्त्वान्
स दाव विचचार (रघु० २।८)—उमने जंगल में इसलिए भ्रमण
किया मानो जंगली जानवरो को शिक्षा देना चाहता है, मानो उसका
अभिप्राय यह है कि मैं जङ्गली पशुओं को शिक्षाद्वारा वश में कर लूँ।
करिष्यमाणः सशर शरासनम् (रघु० ३।५२)—अपने वनुष पर
बाण चढाने की इच्छा करता हुआ।

टिप्पणी—‘प्रयाण करने के पहिले उसने थोडा सा जल पिया’—
ऐसे वाक्यों का अनुवाद करने के लिए स्यत् और स्यमान द्वारा निष्पन्न
शब्दों को कर्ता का विशेषण बना देना चाहिए, जैसे, प्रयाण करिष्यन्
स किञ्चिज्जल पपौ।

कसु और कानच्

१४६—कसु और कानच् का प्रयोग बहुत कम होता है। इनका अर्थ होता
है “जो कर चुका है या किया जा चुका है”, जैसे, श्रेयासि सर्वाण्यधि-
जग्मुपस्ते, रघु० ५।३४, —जो पुरुष सारी अच्छी अच्छी वस्तुएँ प्राप्त
कर चुका है उसका। निषेदुर्पासासनबन्धधारः (रघु० २।६)—
जब वह बैठ जाया करती थी तब जम कर वह (भी) बैठ जाते थे।

अभ्यास

१—सा टिट्मि स्वाडभगाभभूता प्रलापान् कुर्वाणा न कथ
चिदतिष्ठत् (पचतन्त्र १।१५)।

२—अथ द्वावापि तौ पुष्पतपलाशाप्रतिमौ परस्परबधकाक्षेणौ

दृष्ट्वा करटको दमनकमाह । भो मूढमते अनयोर्विरोध वितन्वता
त्वया न साधु कृतम् । (पचतत्र)

३—राजा विस्फारितेन स्निग्धेन चक्षुषा पिबन्निवालपन्निव स्पृशन्निव
मनोरथमहस्रप्राप्तदर्शन सस्पृहमीक्षमाणस्तनयानन मुमुदे कृतकृ-
त्यं चान्मान मेने । (काद)

४—साहित्यसगीतकलाविहीन साक्षात्पशु पुच्छविषाणहीन ।
तृण न खादन्नपि जीवमानस्-द्वागवेयं परम पशूनाम् ॥

(भर्तृहरि नीतिशतक १२)

५—मज्जीभूतं साधनम् । प्रशणाभिमुखः सञ्जलः स्कधावारस्त्वा
प्रतिपालयन्नास्ते । तत्किमद्यापि विलादनेन । (काद.)

६—राजाधिगजनदन नगरभ्रगतस्य न गति ज्ञास्यन्नहं च गतः
कदाचित्कलिंगान् । (दशकुमार २।७)

७—अनुयास्यन्मुनिवत्तया सहसा विनयन वारिप्रसरः ।

स्थानादनुच्चलन्नपि गत्वेव पुन प्रतिनिवृत्त ॥ (शकुं १)

८—वामनाश्रमपद तत पर पावन श्रुतमृषेरुपेयिवान् ।

उन्मना प्रथमजन्मचेष्टितान्यस्मरन्नपि बभूव राघव ॥

(रघु० ११। २२)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—आसीच्च मे मनसि । शानात्मनि अन्यस्मिन् जने मा निक्षिपता किमिदमनार्थेण
मदृशमारब्ध मनसिजेन । (काद०) ।

२—अग्रजन्माऽब्रवीत् । महाभाग सुतानेतान् मातृहीनाननैकरूपार्थै रक्षन्निदानी-
मस्मिन् कुदेशे भैक्ष्य सम्पाद्य देवदेतेभ्यो वसामि शिवालयेऽस्मिन्निति ।

(दशकुमार०) ।

३—विवादे दर्शयिष्यत क्रियासकान्तिमात्मन

यदि मा नानुजानासि परित्यक्तोऽस्म्यह त्वया ॥ (मालविका०) ।

४—अविदिताऽत्मन शक्ति परस्य च समुत्सुकः ।

गच्छन्नभिमुखे बहौ नाश याति पतगवत् ॥ (पञ्चतत्र १।८) ।

५—अनलीनस्य दुःखान्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यत ।

उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम् ॥ (उत्तर० १)

६—आदिदेशाथ शत्रुघ्न तेषां क्षेमाय राघवः ।

करिष्यन्निव नामास्य यथार्थमरिनिग्रहात् ॥* (रघु० १५।६) ।

७—कदा वारं यस्यामसरदिनी—रोवसि वसन्

वसानः कौपीन शिरसि निदधानोजलिपुटम् ।

अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शम्भो त्रिनयन

प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥ (भर्तृहरिवैराग्यशतक १०) ।

८—त तस्थिवासा नगरोपकण्ठे

तदागमः रूढगुरुप्रहृषं ।

प्रत्युज्जगाम क्रथकैशिकेन्द्र

, इचन्द्र प्रवृद्धोर्मिरिवोर्मिमाली ॥ (रघु० ५।६१) ।

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

निम्नलिखित वाक्यों का अनुवाद शतृ, शानच्, स्यतृ, स्यमान्, कसु, कानच् इत्यादि द्वारा कीजिये ।

१—एक दूसरे से वार्तालाप करते हुये, धीरे धीरे चलते हुये और अपने सिर पर अन्न का बोझ ढोते हुए बहुत से आदमियों को मैंने सड़क पर देखा ।

२—जहाज में इङ्गलैण्ड जाता हुआ मनुष्य बहुत से सुन्दर दृश्य देख सकता है ।

३—इस चित्र में क्या ही सौन्दर्य है । भिन्न भिन्न अशो को इतना नेत्राकर्षक बनाकर चित्रकार ने अपनी पूर्ण कला दिखलाई है ।

४—तुम्हारे द्वारा मेरे पास इस प्रकार का सन्देश भेजकर क्या वह ज़रा भी नहीं शरमाता ।

- ५—अपने पति के शव को देखती हुई तथा उसके अनेक सद्गुणों को स्मरण करती हुई रति चिरकाल तक रोती रही ।
- ६—जब चन्द्रापीड का यौवराज्याभिषेक होने जा रहा था तो बहुत सी महत्वपूर्ण बातों को और उसका ध्यान आकृष्ट करते हुए शुकनास ने उसको मन्त्रणा दी ।
- ७—न्यायशास्त्र में निपुण होने की इच्छा करता हुआ वह वाराणसी गया और वहाँ बहुत दिनों तक पढ़ता रहा ।
- ८—जो पुरस्कार देने के लिये मैंने गोपाल को वचन दिया था उसे देने के पहिले मैंने उससे पूछा कि क्या आप इसे अपने उद्योगों के अनुपयुक्त समझते हैं ।
- ९—बलशाली शत्रु के सामने झुक जाने वाले वेत के पौधे बच जाते हैं, पर गर्वसहित खड़े हुये विशालकाय बलूत के वृक्ष जल के प्रवाह से बह जाते हैं ।
- १०—सिंह जङ्गल के पशुओं को उनकी पारी पर मारता रहा ।
- ११—चारों शास्त्रों में पारंगत हुए, छहों अंगों में पूर्णरूप से निष्णात, और चारों वेदों को पढ़ चुके हुए इस ब्राह्मण से तुम्हें द्रोह न करना चाहिये ।
- १२—जनक जी ने अपनी कन्या सीता शिव के धनुष को तोड़ देने वाले तथा अपने असाधारण पराक्रम और चातुर्य से दर्शकों के मन को आकृष्ट कर लेने वाले राम को दे दी ।

चतुर्दश पाठ

क्त, क्तवतु

१५०—भूतकालवाची क्रियार्थक विशेषण दो प्रकार के होते हैं। एक कर्मवाच्य में होता है और “क्त” लगाकर बनाया जाता है। दूसरा कर्तृवाच्य में होता है और “क्तवतु” लगाकर बनाया जाता है, जैसे, तेने-दमुक्तम्—यह बात उससे कही गई। इदमुक्तवान्—उसने यह बात कही।

ये दोनों प्रयय भूतकाल के अर्थ में प्रयोग में लाए जाते हैं। प्रचीन काल की संस्कृत में क्रियार्थक विशेषणों का प्रयोग क्रियाओं के प्रयोग की अपेक्षा अधिक चलनसार हो गया। “मया नत् कृतम्” अथवा “अहं नत् कृतवान्”—अधिकतर मिलते हैं। इस क्रियार्थक विशेषण के द्वारा विधेय के बहुत से काम चलते हैं।

१५१—बहुत सी अकर्मक क्रियाओं में भूतकालिक कर्मवाच्यार्थक विशेषण होते हैं। इनका प्रयोग तृतीया के साथ होता है और किसी भी कर्ता या कर्म से कोई भी सम्बन्ध नहीं रखता। अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त सकर्मक धातुओं के क्रियार्थक विशेषणों का भी प्रयोग इसी प्रकार होता है, जैसे, प्रणिबुद्धमिदानीं मरन्दपूर्णचन्द्रेण (मालती० मा० ४)—पूर्णचन्द्रतुल्य मकरन्द ने अब चेतनाशक्ति प्राप्त कर ली। जितम् अपत्यस्नेहेन (उत्तर० ७)—अपत्यस्नेह ने जीत लिया।

विशेष—केवल भूतकालिक क्रियार्थक विशेषण ही नहीं इस प्रकार प्रयोग में लाए जाते। लकारों के रूप भी इस प्रकार कर्मवाच्य में आते हैं, जैसे, मध्याह्नेऽपि वनराजिषु आहिण्डयते (शकु० २)—दोपहर में भी वनपक्षियों में होकर मैं भ्रमण करता हूँ।

आपदा कथित 'पथा इन्द्रियाणामसंयमः।

तद्वज्रयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम्। (चाणक्य) ॥

अर्थात् इन्द्रियों का अनियंत्रण विपत्तियों का मार्ग है। इन्द्रियों पर विजय ऐश्वर्य का मार्ग है। जिस रास्ते से इच्छा हो उससे जाओ।

१५२^१—गत्यर्थक धातुओ, अकर्मक धातुओ, श्लिष् (आलिंगन करना), शी (लेटना, सोना), स्था (ठहरना), आस् (बैठना), वस् (रहना), जन्, रुह् और जू (बुढ़ा होना या पुराना होना)—मे क्त प्रत्यय कर्तृवाच्य में होता है, जैसे,

गतोऽहं कलिगान् (दशकुमार २)—मैं कलिग चला गया।

जल पात यमुनाकच्छमवतीर्णः (पंचतंत्र १।१)—वह पानी पीने के लिए यमुना जी के तीर पर चला गया।

लक्ष्मामाश्लिष्टो हरिः (—सि० कौ०)—हरि ने लक्ष्मी को आलिंगन किया।

शेषमधिशयितः—शेषनाग के ऊपर शयन किया।

शिवमुपासितः—शिव जी की शुश्रूषा या उपासना की।

विश्वमनुनीर्ण—ससार के पीछे बुढ़ा हो गया।

उपरते भर्तरि (काद)—पति के मर जाने पर।

वैकुण्ठमधिष्ठितः, हरिदिनमुपोषितः, वृद्धमारूढ, सुतो जातः इत्यादि।

१—गत्यर्थकर्मकश्लिष्शोड स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च । ३।४७२ ६।

विशेष—कालिदास ने 'स्मृ' धातु में क्त प्रत्यय का प्रयोग कर्तृ वाच्य में किया है, जैसे, मधुकर, विस्मृतास्यना कथ (शकु ५), अन्यसगात् पूर्ववृत्त विस्मृता भवान् (शकु), अहा विस्मृत म हृदयम् (विक्रमो २) ।

१५३^१—कभी कभी 'क्त' प्रत्यय नपुसकलिङ्ग की भाववाचक सज्ञा बनाने के लिए प्रयुक्त होता है, जैसे, जल्पितम् (बोलना), शयितम् (सोना), हसितम् (हँसना), गतम्, स्थितम् (अर्थात् स्थानम्), कस्यैदमालिखितम्—यह किसका चित्र है।

विशेष—ऐसे प्रयोगों में क्तान्त शब्द अपना कर्मवाच्यत्व खो बैठते हैं और तृतीया के साथ नहीं आते, जैसे, उसकी चाल विलासयुक्त है—तस्या (न । क तथा) गत सविलासम्, नृत्तादस्याः स्तन-मतितरा कान्तम् (मालविका २)—उसका चाचल्यहीन चलना फिरना (हिलना डुलना) नृत्य की अपेक्षा कहीं अधिक चित्ताकर्षक है।

१५४^२—मन्, बुध्, पूज् धातुओं में, तथा इन्हीं के समान अर्थ रखने वाली धातुओं में क्त प्रत्यय वर्तमान काल के अर्थ में प्रयुक्त होता है और षष्ठी के साथ आता है। (सेक्शन ११५ भी देखिए।) ।

विशेष—और भी दूसरे शब्द हैं जो कि इसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं। वे निम्नलिखित श्लोको में दिए हुए हैं—

शीलिता राक्षतः क्षात आकृष्टा जुष्ट इत्यपि ।

रुष्टश्च रुषितश्चाभावभिव्याहृत इत्यापि ।

दृष्टतुष्टौ तथा कान्तस्तथोभौ सयताद्यतौ ।

कष्ट भविष्यतीत्यादुरमृता पूर्ववत् स्मृताः ॥ (महाभाष्य)

१—नपु सके भावे क्त । ३ । ३ । ११४ ।

२—मति बुद्धिपूजार्थेभ्य

कृत्य प्रत्यय

(तव्य, अनीय, यत्, एयत्)

१५५—कृत्य प्रत्यय चार होते हैं—तव्य, अनीय, यत्, और एयत् ।
(इनके बनाने का नियम जानने के लिए डाक्टर कीलहोर्नकृत व्याकरण का सेक्शन ५१६—५२० देखिए), जैसे, कर्तव्य, रजनीय, कार्य । सस्कृतभाषा में लाघव लाने में ये कृत्यप्रत्यय बहुत काम देते हैं, और अंग्रेजी में जिन विचारों को प्रकट करने के लिये कई शब्दों की अपेक्षा होती है उन्हें कृत्य प्रत्यय द्वारा एक ही शब्द में प्रकट कर सकते हैं, जैसे, वह मार डाला जाना चाहिए—इन्तव्यः । कृत्यप्रत्यय यह बतलाते हैं कि धातुद्वारा बोधित कार्य अथवा दशा अवश्य की जानी चाहिए, जैसे वक्तव्यम्, वाच्यम्, वचनीयम्—जो कि कहा जाना चाहिए । इस प्रकार कृत्यप्रत्यय से 'योग्यता, धर्म अथवा आवश्यकता का बोध होता है, जैसे, मुझे वहाँ जाना है—मया तत्र गन्तव्यम् । इसे करना मेरा धर्म है—मया तत् कर्तव्यम् ।

१५६—जिस प्रकार में धातुओं के कर्मवाच्य का प्रयोग होता है ठीक उसी प्रकार इन प्रत्ययों का भी वाक्यों में प्रयोग होता है जैसे,

मद्रचनात् म राजा त्वयेन वच्य (रघ० १४।६१)—मेरे कहने से राजा जी में यह बात तुम्हारे द्वारा कह दी जानी चाहिए ।

अजा ग्राम नेतव्या—भेड़े गाँव पहुँचाई जानी चाहिये ।

असौ दुहितु पत्या परिग्रहप्रियमस्माभिः श्रावयितव्य (शकु० ७)
—पति द्वारा (उनकी) कन्या के स्वीकार किए जाने का प्रिय समाचार उन्हें सुना दिया जाना चाहिए । इन प्रत्ययों के योग में धातुओं द्वारा सूचित कार्य का कर्ता षष्ठी अथवा तृतीया में आता है । १०७ सेक्शन देखिए ।

१५७—ये प्रत्यय क्रिया के स्थान में नपुंसकलिङ्ग एकवचन में स्वतन्त्र रूप से (impersonally) भी प्रयोग में आते हैं, अर्थात् इस प्रकार प्रयोग में आते हैं कि किसी भी सज्ञा या सर्वनाम से किसी भी प्रकार सम्बद्ध नहीं होते, जैसे, अभिज्ञानशाकु तलाख्येन नाटकेनोप-स्थातव्यमस्माभिः (शकु ० १) । तत्रभवता तपोवनं गन्तव्यम् (विक्रमो ० ५)—उन पूज्य पुरुष को तपोवन चला जाना चाहिए ।

(२) भवितव्यम् और भाव्यम् का स्वतन्त्र अथवा अकृतृक (impersonal) प्रयोग विशेष ध्यान देने योग्य है । ‘होना’ ‘अवश्य होना चाहिए’ ‘जहाँ तक सम्भावना है’—इन्हीं अर्थों में इनका प्रयोग होता है और ये अनिश्चितता का बोध कराते हैं । ‘होना’ के पूर्व आने वाला सज्ञापद सर्वनामपद, अथवा विशेषणपद, ठीक उसी प्रकार कर्ता का समानाधिकरण होना चाहिए जैसे कि साधारण विशेषण, जैसे, स्वेषु ’स्वेषु पाठेष्वसमूहैर्भवितव्यम् (युष्माभिः) (विक्रमो ० १)—तुम लोगों को अपने अपने पाठ (अभिनय) में सावधान रहना (होना) चाहिए । यहाँ “हेप्ता” के पूर्व “साव-धान” यानी “असमूहै” पठ अ या है, और यह “युष्माभिः” का समाना-धिकरण है जो कि कर्तापद है अर्थात् लिङ्ग, वचन तथा विभक्ति में ‘युष्माभिः’ का अनुगामी है ।

तथाऽस्मिन्नल्लतामण्डपे सान्निहितया भवितव्यम् (शकु ० ३)—उसे इस लतामण्डप में अवश्य उपस्थित रहना (होना) चाहिए । यहाँ ‘होना’ के पूर्व ‘सन्निहितया’ आया है और यह ‘तया’ का समानाधिकरण है जो कि कर्तापद है ।

अस्य शब्दानुरूपेण पराक्रमेण भाव्यम् (पचतत्र १ । १)—जहाँ तक सम्भावना मालूम होती है, इसकी शक्ति इसकी गरज के अनु-रूप अवश्य होगी ।

(ख) कभी कभी ये प्रत्यय भविष्यकाल में निश्चयात्मक अर्थ बोध कराने के लिए प्रयुक्त होते हैं । जैसे, लुब्धकेन मृगमांसार्थिना गन्तव्यम् (हितोप० १)—मृग के मांस का इच्छुक बहेलिया अवश्य ही जायगा । ततस्तेनापि शब्द. कर्तव्यः (हितोप० ४)—तब वह भी अवश्य ही शोर करेगा ।

(ग) कभी कभी ये प्रत्यय केवल भविष्यकाल का बोध कराते हैं, जैसे युवयो पक्षबलेन मयापि सुखेन गन्तव्यम् (हितोप० ४)—तुम्हारे डैनों के बल से मैं भी सुखपूर्वक (सरलता से) चला जाऊँगा ।

अभ्यास

१—अत्रभवता परस्परं ज्ञानसघर्षो जातः । तत्रभवता प्राश्निकपद-
मध्यासितव्यम् (मालविका० १) ।

२—तथार्बद्धयोः कानामत्तोऽय मोक्ष किं देव्या परिजनमतिक्रम्य
भवान् संदिष्ट इत्येवमनया प्रष्टव्यम् (मालविका० ४) ।

३—विश्रान्तेन भवता समाप्येकस्मिन्नायासे कर्मणि सहायेन
भवितव्यम् (शकु० २) ।

४—नास्मि भवत्यारीश्वरन्यागप्रत्यर्थि । स्मर्तव्यस्त्वय जनः ।
[विक्रमो० २]

५—तत्किं मन्यसे राजपुत्रि मृषोद्य तदिति । न हीद सुचित्रियेऽन्यथा
मतव्यम् । भवितव्यमेव तेन । [उत्तर० ४]

६—सर्वथा निष्प्रतीकारेयमापदुपस्थिता । किमिदानी कर्तव्यं का दिशं
गन्तव्यामत्येतं चान्ये च विषण्णहृदयस्य मे सकल्पाः प्रादुरासन् ।
[काद०]

—सततमनिगहितेनाकृत्येनापि परिरक्षणीयान्मन्यन्ते सुहृदसून्हा-
धवः । तदतिहृषणमकृतव्यमप्येतदस्माकमवश्यकर्तव्यतामापतितम्

८—वाणक्षयः—भद्रं प्रथमं तावद्व्यस्थानं गत्वा घातकः सरोषं

दक्षिणाक्षिसकोचसङ्गा ग्राहयितव्यः । तेषु गृहीतसङ्गेषु भयापदे-
शादितस्ततः प्रद्वृतेषु शकटदासो वध्यस्थानादपनीय राक्षस
प्रापयितव्यः । [मुद्रा० १] ।

६—आ-लुद्रा समरभीरव कथमेवं प्रलपतां वः महस्त्वान दीर्घ-
मनया जिह्वया । [वेणी० ३] ।

१०—आपदि येनोपकृत येन च हमितं दशासु विषमासु ।
उपकृदपकृदपि च तयोर्थ्यस्तं पुरुषंपर मन्ये ॥ [पचतंत्र १।१५] ।

११—आपन्नस्थ विषयवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्य-
मित्येष वो धर्म (शकु० ३) ।

१२—अन्तरिते तस्मिन् शबरसेनापतौ स जीर्णशबरस्तंबनस्पति-
मामूलादपश्यत् । उत्क्रान्तमिव तस्मिन् क्षणे तदालोकभीताना
शुककुलानामसुभिः (काद०) ।

१३—अहं तच्छ्रुत्वा चेतस्यकरवम् । मयाधुना म्लेच्छजाति-
भिरपि दूरतः परिहृतप्रवेशं पक्षेण द्रष्टव्यम् । चण्डालैः सहैकत्र
स्थितव्यम् । चण्डालबालकजनस्य चक्रीडनीयेन भवितव्यमिति ।
(काद०) ।

१४—कार्यव्यग्रत्वात् मनस प्रभूतत्वाच्च प्रणिधीना कोऽयमिति
विस्मृतम् । इदानीं स्मृतिरुपलब्धा व्यक्तमाहितुर्निडकच्छेदना
कुसुमपुरादागतेन विराधगुप्तेन भवितव्यम् । (मुद्रा० २) ।

१५—आः दुरातमन्, कुरुकुलपांसुज, एवमतिक्रान्तमर्यादे त्वञ्चि
निमित्तमात्रेण पाण्डवक्रोधेन भवितव्यम् । (वेणी० १) ।

१६—वत्से, साम्प्रतिकमेवैतत् । कर्तव्यानि दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि ।

१७—पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाह प्रतिक्रिया ।
शोकक्षोभ च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते । (उत्तर० ३) ।

१८—तेनाधीत श्रुत तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ।
येनाशा पृष्ठतः कृत्वा नैराशयमवलम्बितम् ॥ (हितो० १)

१९—आरूढ मदीनुदधीन वितीर्णम्
भुजंगमानां वसति प्रविष्टम् ।
ऊर्ध्वगत यस्य न चालुबन्धि,
यशः परिच्छेत्तुमियत्तायाऽलम् । (रघु० ६।७७)

२०—अवसितं हमित प्रसितं मुदा
विलसितं ह्रसितं स्मरभासितम् ।
न समदाः प्रमदा हतसमदाः
पुरहित विहित न समीहितम् ॥ (भट्टि० १०।६) ।

२१—शार्ङ्गरव, त्वया मद्वचनात् स राजा शकुन्तलां पुरस्कृत्य वक्तव्यम् ।
अस्मान् साधु विचिन्त्य सयमधना-
नुच्चैः कुल चात्मनः ।
त्वय्यस्या कथमप्यवान्धवकृतां
स्नेहप्रवृत्ति च ताम् ।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमिय
दारेषु दृश्या त्वया ।
भाग्यायत्नामतः पर न खलु तद्
वाच्य बधूबन्धुभि ॥ (शकु० ४) ।

२२—त्वमर्हतां प्राग्रसर स्मृतोऽसि न
शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया ।
समानयस्तुल्यगुण बधूवरं
चिरस्य वाच्यं न गतः प्रजापतिः ॥ (शकु० ५) ।

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

[क, क्वतु, तव्य, अनीय, यत्, श्यत् का प्रयोग कीजिए]

- १—शक्तिशाली सेनाओं से रक्षित होने पर भी तारक को कार्तिकेय ने हरा दिया ।
- २—ऐ वत्स, ऐसा करके तुमने जामदग्न्य का अपराध हा किया है, न कि उनका कोई उपकार किया है ।
- ३—शत्रु द्वारा उसकी सेना के पराजित हो जाने पर, उसके कुछ सैनिक पहाड़ों पर चढ़ गये (अधि + रुह्), कुछ समुद्र तीर पर उतर गए (अव + तृ) और कुछ शून्य गुफाओं में घुस गए ।
- ४—यदि तुम अपने घनिष्ठ मित्रों का तिरस्कार करोगे तो तुम अवश्य घृणा के पात्र बन जाओगे ।
- ५—यह कौन हो सकता है जो कि मेरा नाम लेकर मुझे पुकार रहा है । हाँ, हाँ, यह अवश्य ही मेरे पुराने मित्र मित्रवर्मा हैं ।
- ६—थोड़ी देर तक मेरे लिए प्रतीक्षा करो । मुझे भी सभा में उपस्थित होना आवश्यक है ।
- ७—ज्योंही वह जागता है, त्योंही, अध्ययन प्रारम्भ करने के स्थान पर खेलने के लिए निकल जाता है ।
- ८—शोक को स्थान न दो, तुम्हारा वच्चा अब तक अवश्य सीधे घर आ गया होगा ।
- ९—अनेक कष्टों को सहन करता हुआ मैं बहुत से देशों में घूम आया हूँ, परन्तु मैंने अपना अभिलषित मनोरथ नहीं पाया ।
- १०—वह तुम्हें नष्ट करने पर तुला हुआ मालूम पड़ता है, परन्तु मैं तुमसे बतलाता हूँ कि उसके प्रयत्न अवश्य निष्फल जायेंगे ।
- ११—यदि तुम सहायता न करोगे तो वह उस देश में कैसे जीवन धारण करेगा ।

- १२—ये वस्तुएँ तुम्हारे द्वारा उस विशाल महल के मालिक के पास पहुँचा दी जानी चाहिएँ ।
- १३—अभी भी मुझे बहुत सी पुस्तके पढनी हैं । अत मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकूँगा ।
- १४—इस महान पुरस्कार से सूचित होता है कि अँगूठी राजा द्वारा बहुत ही पसद की गई होगी (मन् धातु) ।
- १५—बुद्धिमान पुरुषो के लिए कुछ भी दुस्साध्य नहीं है ।
- १६—चू कि उसके पास बहुत धन था, इसलिए उसके बहुत सी पत्नियाँ रही होंगी ।
- १७—हम लोग अपनी सेनाओं के साथ कितनी देर तक युद्ध के लिए तैयार खडे रहे ।

पञ्चदश पाठ

प्रथम भाग

अव्ययार्थक प्रत्यय—क्त्वा, ल्यप्

१५८—जब कोई क्रिया पहिले हो चुकी रहती है और उसके बाद दूसरी क्रिया होती है तब पहिले हो चुकी हुई क्रिया का बोध कराने के लिए धातुओं में क्त्वा और ल्यप् प्रत्यय जोड़ दिए जाते हैं। जैसे, प्रतीहारी समुपसृत्य सविनयमब्रवीत् (काट०)।—समीप में आकर प्रतीहारी नम्रतापूर्वक (ड्योढ़ी पर चौकसी रखने वाली स्त्री) बोली। वैशम्पायनो मुहूर्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत् (काट०)।—मानों कुछ देर तक ध्यान कर वैशम्पायन ने आदरपूर्वक कहा।

परन्तु “गँव जाता हुआ वह रास्ते में तृण छूता जाता है” का अनुवाद “आम गच्छन् पथि तृण स्पृशति” होगा, न कि “आम गत्वा पथि तृण स्पृशति” क्योंकि जाने की क्रिया तथा स्पर्श करने की क्रिया दोनों साथ ही साथ हो रही हैं। ऐसा नहीं है कि जाने की क्रिया पहले हो चुकी है और स्पर्श करने की क्रिया बाद में हुई।

१५९—क्त्वा प्रत्यय सभी धातुओं में जोड़ा जा सकता है। परन्तु ल्यप् प्रत्यय उन्हीं धातुओं में जुड़ता है जिनके पहिले उपसर्ग लगा रहता

है। इनके बनाने के नियमों को समझने के लिए डाक्टर कीलहोर्नकृतव्याकरण के सेक्शन ५०५ से ५१६ तक देखिए।

यह तो पहिले ही बताया जा चुका है कि कृत्वा प्रत्ययान्त और ल्यप् प्रत्ययान्त शब्द किसी पूर्ववर्ती अथवा भूतकार्य के द्योतक होते हैं। इस लिए कृत्वा प्रत्ययान्त और ल्यप् प्रत्ययान्त शब्दों का कर्ता वही होना चाहिए जो कि प्रधान क्रिया का हो। यदि कृत्वा और ल्यप् से बोध होने वाले कार्य का कर्ता प्रधान क्रिया के कर्ता से भिन्न होगा तो उसे दशा में कृत्वा अथवा ल्यप् प्रयोग में नहीं लाया जा सकता, जैसे, तुरासाह पुरोधाय धाम स्वायभुव ययु (कुमार० २।१)—इन्द्र को आगे रख कर वे लोग ब्रह्मा के स्थान पर गए। यहाँ 'रखकर' क्रिया और 'गए' क्रिया का कर्ता एक ही है, भिन्न भिन्न नहीं है, अतः ल्यप् का प्रयोग हुआ है।

परन्तु स त हत्वाऽहमागच्छम् सर्वथा अशुद्ध प्रयोग है। ऐसे स्थलों पर कृत्वा और ल्यप् नहीं आ सकते प्रत्युत 'भावे सप्तमी' का प्रयोग होता है, जैसे, तस्मिन् तेन हतेऽहमगच्छम्। सर्वेः पशुभिर्मिलित्वा सिंहे विज्ञप्त (हितोप० २)—सब पशुओं ने मिलकर सिंह से प्रार्थना की। स एन दोष प्रख्याप्य नगरान्निर्वासयताम् (मुद्रा० १)—इस अपराध की घोषणा करके (आप के द्वारा), वह नगर से निकाल दिया जाय।

१६०—घटनाओं के वर्णन करते समय क्रिया के रूपों और समुच्चय बोधक अव्ययों के प्रयोग में लाघव लाने के लिए कृत्वा और ल्यप् प्रत्यय बहुत काम देते हैं। 'ऐसा करने या किए जाने के बोध' 'जब' और 'बाद' से प्रारम्भ होने वाले प्रयोगों के अनुवाद में 'जब' अथवा 'बाद' इत्यादि शब्दों का अनुवाद करने की कोई आवश्यकता नहीं, प्रत्युत कृत्वा अथवा 'ल्यप्' से काम चल जाता है, जैसे, रावण हत्वा। जब वह वहाँ गया तो उसने कुछ भी नहीं पाया—स तत्र गत्वा न किमपि लेभे।

यदि किसी अंग्रेजी वाक्य में 'having' से प्रारम्भ होने वाले कई

उपवाक्य जुड़े हुए हों तो वह वाक्य बड़ा भद्रा लगेगा । परन्तु सस्कृत में कई क्तान्त अथवा ल्यबन्त शब्द बड़ी सुन्दरता से लाए जा सकते हैं, जैसे, रुधिरेण लिप्य वृक्षस्याय प्रक्षिप्य गम्यता पर्वतमृष्यमूक प्रति (पच तत्र ३)।—मुझे खून से पोतकर और वृक्ष के नीचे फेंक कर, ऋष्यमूक पर्वत पर चले जाओ ।

इसी प्रकार अथ स ब्राह्मणस्त पशु राक्षस मत्वा भयाद्भूमौ प्रक्षिप्य दैव निर्भर्त्य गृहमुद्दिश्य प्रस्थितः (हितो०४)—तब उस पशु को राक्षस समझ कर ब्राह्मण ने डर के मारे उसे जमीन पर फेंक दिया और भाग्य को कोस कर घर को रवाना हो गया ।

विशेष—कत्वान्त और ल्यबन्त शब्दों के प्रयोग में प्राकृतिक क्रम की ओर अवश्य ध्यान रखना चाहिए, जैसे, पक्त्वा भुक्त्वा स्वपिति—वह भोजन पका कर और खाकर सोता है । पर भुक्त्वा पक्त्वा स्वपिति कहना सर्वथा अशुद्ध होगा ।

१६१—सस्कृत में कुछ कत्वान्त और ल्यबन्त शब्द कर्मप्रवचनीय के तौर पर प्रयोग में आते हैं, जैसे, मुक्त्वा—छोड़कर अलावा, अतिरिक्त । उद्दिश्य—तरफ़ । अधिकृत्य—बारे में ।

भाग २

‘अम्’ में अन्त होने वाले कृदन्त

१६०—धातुओ तथा प्रत्ययान्त धातुओ मे ‘अम्’ लगाकर भी “क्त्वा” के अर्थ का बोध कराया जाता है। जब यह प्रत्यय जोड़ा जाता है तो वे ही परिवर्तन होते हैं जो कर्मवाच्य के सामान्यभूत की ‘इ’ के पूर्व होते हैं। डाक्टर कीलहोर्नकृत व्याकरण का सेक्शन ५२६ देखिये। उदाहरण लोपम्—फेककर (क्षिप् से)। वादम्—बोलकर (वद् से)। भोजम्—खाकर (भुज से)।

१६३—जब यह रूप दो बार आता है तो धातु द्वारा बोधित दशा अथवा क्रिया का पौनः-पुन्य द्योतित होता है। “पौनः पुन्य” का अर्थ है “फिर फिर होना”। जैसे, स्मार स्मारं नमति शिवम् (सि० कौ०)—वह बारम्बार शिव जी को स्मरण करके उन्हें नमस्कार करता है।

कलिङ्गनाथो मथिबद्ध वैर इतिश्रावं श्रावं चण्डवर्मा युद्धायोद्यतो बभूव (दशकुमार २। ३)—‘कलिङ्गनाथ मुझसे बैर मानता है, इस बात को बार बार सुनकर चण्डवर्मा युद्ध के लिए तैयार हो गया।

पायं पायम्—बार बार पीकर। दर्श दर्शम्—बार बार देखकर।

१६४^१—अग्ने, प्रथमम् और पूर्वम् के साथ यह रूप अथवा स्तान्त रूप प्रयोग में आता है, जैसे,

अग्ने भोज व्रजति
अग्ने भुक्त्वा व्रजति
प्रथम भोज व्रजति
प्रथम भुक्त्वा व्रजति
पूर्व भोज व्रजति
पूर्व भुक्त्वा व्रजति

} — पहिले खाकर वह चलता है

(क)^२ अन्यथा, एवम्, कथम्, और इत्थम् के बाद, कृ मे णमुल् लगा कर जोड़ देते हैं, परन्तु कृ + णमुल् के जुड़ जाने पर भी अर्थ वही रहता है जो अन्यथा, एवम्, कथम् और इत्थम्, का अर्थ होता है, जैसे, अन्यथाकार भु क्ते — दूसरे प्रकार से खाता है ।

एवकार भु क्ते (सि० सि०) — इस प्रकार खाता है ।

कथकार भु क्ते — किस प्रकार खाता है । परन्तु

शिरोऽन्यथा कृत्वा भु क्ते ।

(ख) जब क्रोधपूर्ण उत्तर दिया जाता है तब यथा और तथा के अनन्तर कृ + णमुल् जोड़ देते हैं, जैसे, तथाकार भादये कि तवानेन (सि० कौ०) — मे इसी प्रकार खाऊंगा । तुम्हें इसमें क्या मतलब ।

१६५^३ — मीठा या स्वादिष्ट अर्थ का बोध कराने वाले शब्दों के अनन्तर कृ + णमुल् = कारम् जोड़ दिया जाता है जैसे, स्वादु कार

१ — विभाषाग्रे प्रथमपूर्वेषु । ३।४।२४।

२ — अन्यथैव कथमित्यसु सद्धाप्रयोगश्चेत् । ३।४।२७।

३ — यथातथयोरस्य प्रतिबचने । ३।४।२९।

४ — स्वादुभि णमुल् । ३।४।२६।

भुंक्ते—वह अपने भोजन को मीठा (स्वादिष्ठ) बनाकर खाता है
लवणंकार भुंक्ते—वह अपने भोजन को नमकीन बनाकर खाता है ।

१६६-दृश् धातु और विद् धातु के कर्म के अनन्तर दृश् + णमुल् = “दर्शम्” और विद् + णमुल् ‘वेदम्’ जोड़ दिया जाता है जब कि उस कर्म की सारी जाति का बोध कराना अभीष्ट होता है, जैसे, कन्यादर्शं वरयति (सि० कौ०)—जितनी कन्याओं को देखता है उन सब को वरण कर लेता है । ब्राह्मणवेदं भोजयति—जितने ब्राह्मणों को जानता है उन सबों को खिलाता है ।

(क०) विद् (पाना) + णमुल् = ‘वेदम्’ और जीव् (जीना) + णमुल् = ‘जीवम् यावत्’ के अनन्तर उपयुक्त अर्थ (साकल्य) का बोध कराने के लिए जोड़ दिये जाते हैं, जैसे, यावद्वेदं भुंक्ते—वह जितना पाता है उतना खाता है । यावज्जीवमधीते—वह जब तक जीता है तब तक अध्ययन करता है ।

(ख०) चर्म और उदर के अनन्तर पूर + णमुल् = ‘पूरम्’ जोड़ दिया जाता है, जैसे, उदरपूरं भुंक्ते—पेट भर खाता है । चर्मपूरं स्तृणाति—चमड़े को ढक लेने भर को फैलाता है ।

१६७-शुष्क, चूर्ण और रूक्ष शब्दों के अनन्तर पिप् (पीसना) + णमुल् = ‘पेषम्’ जोड़ दिया जाता है और साथ ही साथ पिप् धातु भी किसी न किसी लकार में प्रयोग में आती है, जैसे, चूर्णपेषं पिनष्टि—वह यहाँ तक पीसता है कि बिल्कुल चूर-चूर हो जाता है । इसी प्रकार, शुष्कपेषं पिनष्टि रूक्षपेषं पिनष्टि ।

१—कर्मणि दृश्विदोः साकल्ये । ३।४।२९।

२—यावति विन्दजीवोः । ३।४।३०।

३—चर्मोदरयो पूरे । ३।४।३१।

४—शुष्कचूर्णरूक्षेषु पिषः । ३।४।३५।

(क^१) समूल, अकृत और जीव के अनन्तर हन् + णमुल् = 'घातम्', कृ + णमुल् = 'कारम्' और ग्रह् + णमुल् = 'ग्राहम्' जोड़ दिए जाते हैं और साथ ही साथ हन् घातु, तथा कृ घातु तथा ग्रह् घातु भी किसी न किसी लकार में प्रयुक्त होती है, जैसे, समूलघात हन्ति—वह बिल्कुल बढ़ से नाश कर देता है। अकृतकार करोति—वह कभी भी न हुई चीज़ को कर डालता है। त जीवग्राह गृह्णाति—वह उसको जीता बागता पकड़ लाता है।

(ख) इसी प्रकार हन् + णमुल् = 'घातम्' और पिष् + णमुल् = 'पिषम्' सज्ञा के अनन्तर जोड़े जाते हैं और यह सूचित करते हैं कि वह सज्ञा हन् और पिष् क्रिया के सम्पादन में करणभूत या साधनभूत है, जैसे, पादघात हन्ति = पादेन हन्ति—वह पाँव से मारता है। उदपेष पिनष्टि = उदकं पिनष्टि—वह पानी से पीसता है। त हस्तग्राह गृह्णाति—वह उसे हाथ से पकड़ता है।

पाणिग्राहम्, करग्राहम् भी इसी प्रकार प्रयोग में आते हैं।

ह्सावर्त वर्तयति = हस्तेन वर्तयति जीवनाश नश्यति—इस प्रकार नष्ट हो जाता है कि उसका जीवन ही नष्ट हो जाता है अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

ऊर्ध्वशोष शुष्यति वृक्ष—पेड़ ऊपर खड़ा खड़ा ही सूख जाता है।

इसी प्रकार ऊर्ध्वपूर पूर्यते।

१६८^२—कभी कभी तुल्यता या सादृश्य का बोध कराने के लिए णमुलन्त प्रयोग उस सज्ञा के अनन्तर होता है जिससे सादृश्य दिखलाना होता है, जैसे, अजनाश नष्ट—वह बकरे के समान नष्ट हो गया। पार्थसचार चरति—वह पार्थ के समान चलता है। घृतनिधाय निहित जलम्—घी के समान जल रक्खा गया था।

२—समूलाकृतजीवेषु हन्कृञ् ग्रह्. १३।४।३६।

१—उपमाने कर्मणि च १३।४।४५।

१६६^१—हन् तड् इत्यादि हिंसार्थक धातुओं का णमुलन्त रूप सञ्ज्ञाओं के अनन्तर प्रयोग में आता है यदि णमुलन्त का तथा प्रधान क्रिया का कर्म समान हो और कान्त रूप प्रयोग करने की दशा में वह सञ्ज्ञा तृतीया में प्रयुक्त होती हो, जैसे, दण्डोपघातं गाः कालयति—गायों को डण्डे से मारकर वह उन्हें एकत्र करता है। इसका साधारण रूप यों होगा—दण्डेन गा. हत्वा ता. कालयति। यहाँ कालयति तथा हत्वा दोनों ही का कर्म 'गाः' है और चूँकि दण्डसंज्ञा के अनन्तर उपधातु प्रयुक्त हुआ है, इसलिए दण्ड साधारण वाक्य में तृतीयान्त हो जाता है।

(क) इसी प्रकार ब्रजोपरोध गा स्थापयति—वह गायों को इस प्रकार रखता है कि सब की सब बाड़े में आ जाती हैं। पार्श्वोपपीडं शेते=पार्श्वोभ्यामुपपीडयन् शेते।

(ख) तात्कालिक सन्निकर्ष(Immediate Contiguity)सूचित करने के लिए हस्त, केश, इत्यादि शब्दों के अनन्तर ग्रह् + णमुल् = 'ग्राहम्' का प्रयोग होता है, जैसे, केशग्राहं युध्यन्ते—वे लोग एक दूसरे का बाल खूब जोरों से पकड़कर युद्ध करते हैं। हस्तग्राहम्=हस्तेन गृहीत्वा। यष्टिग्राहम्=यष्टिं गृहीत्वा—लाठी या छड़ी लेकर।

१७०^२—शरीरावयवबोधक शब्दों के अनन्तर अवयव की चञ्चलता प्रकट करने के लिए णमुलन्त प्रयोग होता है, जैसे, भ्रूविक्षेपं कथयति (वृत्तान्तम्)—वह अपनी भौं हर दिशा में चलाता हुआ वृत्तान्त कहता है।

१—हिंसार्थानां च समानकर्मकाणाम्। ३।४।४५।

२—स्वागेऽभ्रुवे। ३।४।५४।

(क^१) इसी प्रकार जब किसी कार्य के करने में शरीर का कोई अवयव आहत हो जाता है या पीड़ित होता है, तो उस अवयव के अनन्तर णमुलन्त शब्द का प्रयोग कर्मकारक के अर्थ में होता है, जैसे, उर प्रतिपेष युध्यते—वे लोग इस प्रकार युद्ध करते हैं कि उनका सारा वक्षस्थल पीड़ित हो उठता है (कृत्स्नसुर पीडयन्त) । स्तनसम्बाधमुरो जघान च (कुमार० ४।२६ —स्तनों को चोट पहुँचाती हुई वह अपने वक्षस्थल को पीटती थी ।

१७१^२—आ + दिश् के साथ तथा ग्रह् के साथ णमुल् प्रत्यय 'नामन्' के बाद कर्मकारक के अर्थ में आता है, जैसे, नामदे माचष्टे—वह अपना नाम बताकर कहता है । नामग्राह मामाह्वयत—वह मे नाम लेकर मुझे पुकारता है ।

विशेष—समस्त पद बनाने के लिए णमुलन्त रूप संज्ञाओं के अनन्तर भी प्रयुक्त होते हैं, जैसे, ब्राह्मणवेदम् (न कि ब्राह्मणान् वेदम्) । जीवग्राहम् (न कि जीव ग्राहम्) ।

अभ्यास

१—स दुष्टाशयो वकः क्रमेण तान् पृष्ठमारोप्य जलाशयस्य नातिदूरे शिला समासाद्य तस्यामाक्षिप्य स्वेच्छया भक्षित्वा भूयोऽपि जलाशय समासाद्य जलचराणा मिथ्यावार्तासन्देशैकमनारिरजयग्राहारवृत्तिमकरोन् (पचतत्र १।७) ।

२—ततो आरुशरीरमग्निसान् कृत्वा पुनर्नव कृतवैधव्यदुःखयामया त्वदीय देशमवर्तार्यमे काषाये गृहीते (मालविका० ५)

१—परिक्लिश्यमाने च । ३ । ४ । ५५।

२—नाम्न्यादिशिग्रहोः । ३।४।५५।

३—प्रवृत्ते प्रदोषसमये चन्द्र पीडश्चरणाभ्यामेव राजकुल गत्वा
पितु समीपे मुहूर्ते स्थित्वा दृष्ट्वा च विलासवतीमागत्य स्वभवनं
शयनतलमधिशिष्ये (काद०) ।

४—ते हिमालयमामन्त्र्य पुनः प्राप्य च शूलिनम् ।
मिद्धं चाम्मै निवेद्यार्थं तद्विसृष्टः खमुद्ययु ॥ (कुमार० ६।६४)

५—अहं येनेष्टिपशुमार मारित सोऽनेन स्वाग्नेनाभिर्नयते ।
(शकु० ६)

६—सा कुबेरभवनाभिर्वर्तमाना सम्पत्तिदृष्टेन केशिना दानवेन
चित्रलेखाद्वितीया वदीग्राहं गृहीता (विक्रमो० १)

७—मगधराज प्रक्षीणसकलसैन्यमडल मालवराजं जीवग्राहमभि-
गृह्य दयालुतया पुनरपि स्वराज्यं प्रतिष्ठापयामास ।
(दशकुमार० १।१)

८—मत्तकालो नाम लाटेश्वरो वीरकेतोस्तनया वामलोचनां नाम
तरुणीरत्नमसामान्यलावण्यं श्राव श्रावमधूतदुहितृप्राथनस्य
तस्य पाटली नाम्ना नगरीमरौतमीत् । (दशकुमार० १।३)

९—अनन्तर सूत्रधारो दारुवर्मा वैरोधकपुर सरै पदातिलोकैलोष्ठ-
घातं हतः । (मुद्रा० २)

१०—सप्राप्य राजसमभा चक्रद क्रोधविह्वला ।
नामग्राहमरोदीत्सा भ्रातरौ रावणातिके ॥ (भट्टि० ५।५) ।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—लवानुपान कुसुमान्यगृहणात्

स नद्यवस्कन्दमुपास्पृशच्च ।

कुतूहलाच्चारुशिलोपवेश

काकुत्स्थ ईषत् स्नयमान आसन् । (भट्टि०२।११) ।

२—स्नेहात् सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि

नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान् ।

देव्यास्ततो विमनस परिसान्त्वनाय

धर्मासनाद् विशति वासगृह नरेन्द्रः ॥ (उत्तर०१) ।

३—विश्वासप्रतिपन्नाना वचने का विदग्धता ।

अकमारुह्य सुप्त हि हत्वा विभ्राम पौरुषम् ॥ (हितो०४) ।

४—तामिन्दुसुन्दरमुखीं सुचिर विभाव्य

चेत् कथं कथमपि व्यपवर्तते मे ।

लज्जा विजित्य विनय विनिवार्य धैर्य-

मुन्मथ्यमथरविवेकमकाड एव ॥ (मालतो०१) ।

५—श्रुत्वा वार्ता जलदकथिता ता धनेशोऽपि सद्यः

शापस्यात् सदयहृदय मविधायस्तकोपः ।

सयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ

भोभानिष्यन्विरतसुखान् प्रापयामास शशवत् ॥ (मेघ०११९) ।

६—निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।

न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ (भगवद्गी०१ ३१)

७—राजवाहनो रसालतरुषु कोकिलादीना पक्षिणामालापान् श्रावं श्राव विर्कासनानि

सरासि दर्श दर्शम् अमन्दलीलया ललनासमीपमवाप (दशकुमार०१।५)

- ८—तेनैव दीपदशितेन विलपथेन गत्वा स्थितेऽधरात्रे वासगृहं प्रविष्टो विश्रब्धप्रसुप्तं
सिंहघोषं जीवग्राहमग्रहीषम् (दशकुमार०२।४) ।
- ९—न विप्रदर्शं कृत्वा तयत्ना यातवने रात्रिचरी जुडौके ।
जिवासुवेदं धृत्वा सुखास्त्रा ताडकाख्यां निजवानं राम (भट्टि०२।२३) ।
- १०—विद्युत्प्रणाशं स वरं प्रणष्टो
यद्वोर्वशोषं तृणवद् विशुष्कम् ।
अर्थे दुरापे किमुत प्रवासे
न शासनेऽवास्थि यो गुरुणाम् ॥ (भट्टि०३।१४)
- १०—यो न पथानि जीवनाशमधुना शुश्रूषते स्वामिनः
तेषां वैरिभिरक्षतः कथमसौ स वास्यते राक्षसः ।
इत्थं वस्तुविवेकमूढमतिना म्लेच्छेन नालोचितम्
दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा पूर्वं विपर्यस्यति ॥ (मुद्रा०६) ।

—०—

संस्कृत में अनुनाद कीजिए—

(एमुलन्त, कृत्वान्त तथा ल्यबन्त शब्दों का प्रयोग कीजिये)

- १—अपनी तरफ बहेलिए को आता हुआ देखकर सारे पशु भयभीत होकर भिन्न भिन्न दिशाओं में भाग गए ।
- २—वज्राधिपति से यह समाचार निवेदन करके तुम कब लौट आए ।
- ३—एकचित्त होकर और प्रारब्ध कार्य को बन्द न करने का दृढ़ संकल्प करके अपना कार्य आरम्भ करो ।
- ४—किसी नगर के अड़ोस पड़ोस में भ्रमण करता हुआ सियार अकस्मात् नील के वर्तन में गिर पड़ा और उठने में असमर्थ होकर अपने को मरा हुआ प्रदर्शित कर वहीं ठहर रहा ।
- ५—शठ की बातें सुनकर ब्राह्मण ने बकरे को जमीन पर रख दिया,

- उसे बारबार देखा, फिर अपने कन्धे पर रख लिया और शठ की बातों को सोचता हुआ घर की ओर चल दिया ।
- ६—उसे दरबार में बुलाकर, उपयुक्त उपहारों से उसका सम्मान कर और उसे राजा का सन्देश निवेदन कर मंत्री द्वारा वह आदरपूर्वक बर्खास्त कर दिया गया ।
- ७—जितनी कन्याओं को उसने अपने योग्य देखा उन सबों को वरण कर लिया (कन्यादर्शम् प्रयोग कीजिए) ।
- ८—उसने दवाई को चूर चूर पीसकर उसे आग पर रक्खा और उबाल कर पी लिया (चूर्ण-पेष विध्या) ।
- ९—उनके स्वामी का वध कर डालने के कारण राजा के अनुयायियों द्वारा वह पत्थरों से मार डाला गया (पाषाणघातम्) ।
- १०—मैंने शत्रु के ऊपर एकाएक आक्रमण कर दिया और उसके सारे अनुयायियों को भगाकर उसे जीता जागता पकड़ लिया (जीवग्राहम्) ।
- ११—पाटलिपुत्राधिपति ने वसुदुर्ग नगर ले लिया और वहाँ के निवासियों को बन्दी बना कर पकड़ लिया (बन्दिग्राहम्) ।
- १२—मेरा नाम लेकर मुझे कौन पुकारता है ।

षोडश पाठ

तुमुन् प्रत्यय (The Infinitive Mood)

१७२—जिस कार्यके लिए कोई दूसरा कार्य किया जाता है उसका बोध कराने के लिए, संस्कृत में, धातु में तुमुन् प्रत्यय जोड़ा जाता है। जिस प्रकार से अनद्यतनभविष्य के प्रथम पुरुष के एकवचन का रूप बनाया जाता है उसी प्रकार तुमुनन्त रूप भी बनाया जाता है। तुमुन् प्रत्यय 'के लिए' का अर्थ सूचित करता है और अग्रेजी के जेरण्डियल् इनफिनीटिव् (Gerundial Infinitive) का सा काम करता है। इस प्रकार तुमुन् प्रत्यय सम्प्रदान के अर्थ का बोधक है और आवश्यकता पड़ने पर उसका प्रयोग न कर धातु में कृदन्त प्रत्यय जोड़कर संज्ञा बना कर और उसे चतुर्थी में रखकर काम चला सकते हैं, जैसे, पारसीकांस्ततो जेतु प्रतस्थे (रघु ७।६०)—तब वह फारस देशनिवासियों को जीतने के लिए खाना हो गया। यहाँ पर जेतुम् के स्थान पर जयाय करके वाक्य को इस प्रकार बना सकते हैं—पारसीकाना जयाय प्रतस्थे।

इसी प्रकार, स्वेदसलिलस्नातापि पुनः स्नातुमवातरम् (कादम्बरी)। यहाँ पर स्नातुम् = स्नानाय।

१७३—तुमुनन्त शब्द कर्ता या कर्म के तौर पर प्रयोग में नहीं आ सकता। वाक्य के किसी भी शब्द से इसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। जहाँ अग्रेजी में नाउन् इनफिनीटिव् कर्ता या कर्म के तौर पर आता है,

वहाँ सस्कृत में भाववाचक सज्ञा लानी पड़ेगी, जैसे, To get up early in the morning is wholesome का अनुवाद होगा—प्रातरेव उत्थानमारोग्यवहम् (न कि उत्थातुम्) । I learn to sing का अनुवाद होगा अहं गानमधीये (न कि गातुम्) ।

(क) Seeing (देखना), hearing (सुनना) इत्यादि के बाद आने वाले इनफिनीटिव् का अनुवाद शत्रन्त और शानञन्त द्वारा होगा, जैसे, I heard him speak का अनुवाद होगा भाषमाणं तमश्रीषम् । He saw him study—अधीयानं ददर्श तम् ।

१७४—सस्कृत इनफिनीटिव् का वास्तविक अर्थ है किसी क्रिया का अभिप्राय दिखलाना अर्थात् यह दिखलाना कि अमुक अभिप्राय से अमुक दूसरी क्रिया की गई या हुई । परन्तु कुछ स्थल ऐसे आते हैं जहाँ पर इनफिनीटिव् सज्ञा और विशेषण के साथ आता है जैसे कि अग्रेजी में; जैसे, Fit to do, able to do, time to read, का अर्थ है—करने के योग्य । Able to do का अर्थ है—करने में क्षम । Time to read—का अर्थ है—पढ़ने का समय । ऐसे प्रयोगों का बोध कराने के लिए सस्कृत में कतिपय मुहावरों का प्रयोग होता है, जिनमें कुछ मुख्य मुख्य नीचे दिखाए जाते हैं ।

१७५^१—अब तुमुनन्त शब्द का तथा प्रधानक्रिया का कर्ता एक ही होगा तभी तुमुन् प्रत्यय का प्रयोग हो सकता है । यदि तुमुनन्त क्रिया का कर्ता कोई दूसरा हो और प्रधान क्रिया का कर्ता कोई दूसरा हो तो तुमुन् प्रत्यय कदापि नहीं आ सकता, जैसे, पिनाकपाणिं पतिमाप्नुमिच्छति (कुमार० ५ । ५३)—पिनाकपाणि महादेव जी को अपना पति चाहती है । अत्तु वाञ्छति शाम्भवो गणपतराजु क्षुधार्तं फणी । परन्तु त्वा गन्तुम् अहमिच्छामि—ऐसा प्रयोग कदापि नहीं हो सकता क्योंकि

“गन्तुम्” का कर्ता त्वम् है और ‘इच्छामि’ का कर्ता अहम् है। तो तुमुन्त क्रिया का तथा प्रधानक्रिया का कर्ता भिन्न भिन्न हो गया। अतः त्वा गन्तुम् अहमिच्छामि प्रयोग अशुद्ध है।

१७६—^१शक् (सकना), धृष् (धृष्ट होना, हिम्मत करना), ज्ञा (जानना) ग्ला (थक जाना, मुरझा जाना), वट् (प्रयत्न करना), रम् (आरम्भ करना), लम् (पाना), क्रम् (आरम्भ करना, सह (सहना), अर्ह, अस् (होना)—इन धातुओं का प्रयोग होने पर तुमुन् प्रत्यय आता है, जैसे, न शक्नोमि हृदयमवस्थापयितुम् (उत्तर०४)—मैं अपने हृदय को योंन नहीं सकता। वक्तु मिथ. प्राक्रमतैवमेनम् (कुमार ३।२)—इस प्रकार उससे एकान्त में बोलने चला। जानासि देवी विनोदयितु (उत्तर०१)—रानी का मनोरञ्जन करना जानते हो।

अस्ति-भवति-विद्यते-वा भोक्तुमन्नम् (सि० कौ०)—खाने को भोजन है। न विपहे विपत्तिमवलोकयितुम् (वेणी० ३)—मैं विपत्ति नहीं सहन कर सकता।

१७७^१—पर्याप्त, समर्थ योग्य इत्यादि अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ तथा योग्यता, शक्ति अथवा नैपुण्य या प्रावीण्य अर्थ बोध कराने वाले विशेष्यों के साथ भी तुमुन् का प्रयोग होता है, जैसे, लिखितमपललाटे प्रोक्तिषु कः समर्थः (हितोप० १)—ललाट (मस्तक) पर लिखे हुए को मिटाने के लिए कौन समर्थ है। लोकान्तल दग्धु हि तत्तपः (कुमार० २।५६)—ऋषी की तपस्या लोकों को जला देने के लिए पर्याप्त है। अस्ति मे विभव. सर्व परिज्ञातुम् (विक्रमो०२)—मुझमें सब कुछ जानने की शक्ति है। कोन्यो हुतवहादग्धु प्रभविष्यति (शकु० ४)—अग्नि के अलावा और कौन जलाने में समर्थ होगा। भोक्तुं प्रवीण कुशलः पटुर्वा (सि० कौ०, —खाने में निपुण (या खाने के लिए निपुण)।

१—शक्य धातु ग्ला वट् र ल क्रमसहार्हास्त्यर्थेषु तुमुन्। ३।४। ६५।

२—पर्याप्तिवचनेष्वलसर्थेषु। ३।४। ६६।

१७८^१—समय, काल, बेला, अवसर इत्यादि कालवाची शब्दों के साथ समान कर्ता न होने पर भी तुमुनन्त शब्द प्रयोग में आता है; जैसे अवसरोऽयमात्मान प्रकाशयितुम् (शकुं० १)—अपने आपको प्रकट कर देने का अब यह अवसर है। समयः खलु स्नानभाजने सेवितुम् (विक्रमो० २)—यह नहाने और खाने का समय है।

नाट—जैसे लैटिन भाषा में है वैसे ही संस्कृत भाषा में भी कुछ क्रियाएँ ऐसी हैं जो स्वरूपतः तो कर्मवाच्य में हैं परन्तु अर्थतः कर्तृवाच्य में हैं, जैसे, शक्, युज्, अह् तथा इनमें प्रत्यय लगाकर बने हुए शब्द, जैसे, न शक्यास्त द पा० समंभ तुम् (हितोप० ३)—वे दोष ठीक नहीं किए जा सकते। न युक्तम् अशोको वामपादेन ताडयितुम् (मालविका० ३)—अशोक को बाएँ पाँव से मारना उचित नहीं।

१७९—संस्कृत में तुमुन् के लिए कर्मवाच्य के कोई अलग रूप नहीं होते। एक ही रूप कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य दोनों में प्रयुक्त होता है तुमुनन्त वाले वाक्यों का कर्मवाच्य बनाने में तुमुनन्त के कर्म या उससे सम्बन्ध रखने वाला शब्द ज्यों का त्यों बना रहता है, जैसे,

कर्तृवाच्य

कर्मवाच्य

स मित्राय द्रोणमुमिच्छति

तेन मित्राय द्रोणमुमिष्यते

रामो ग्रामं गन्तुमारेमे

रामेण ग्रामं गन्तुमारेमे

जहाँ पर तुमुनन्त का तथा प्रधानक्रियाका कर्म एक ही होता है वहाँ कर्मवाच्य बनाते समय कर्मपद प्रथमा में रख दिया जाता है और यह समझ लिया जाता है कि उसका सम्बन्ध तुमुनन्त के साथ होता है, जैसे, स ग्रन्थं पठितुमिच्छति—तेन ग्रन्थः पठितुमिष्यते—इस स्थल पर ग्रन्थ पठितुमिष्यते कहना ठीक न होगा क्योंकि यह प्रयोग भाव में हो जायगा, और भावप्रयोग यहाँ हो ही नहीं सकता क्योंकि इष् धातु अकर्मक नहीं है।

सेक्शन १७८ की नोट में उल्लिखित धातुओं के योग में दोनों प्रयोग शुद्ध होंगे, पवनमालिगितु शक्यते अथवा पवन आलिगितु शक्यते । पर ध्यान रहे कि बादवाला प्रयोग अधिक समीचीन समझा जाता है ।

१८०—अर्ध धातु का प्रयोग विशेष ध्यान देने योग्य है । प्रायः यह तुमुनन्त के साथ 'प्रार्थना' वा 'अभ्यर्थना' के अर्थ में प्रयुक्त होता है । अथवा यह उन वाक्यों में प्रयुक्त होता है जहाँ अंग्रेजी में Be pleased (कृपया), अथवा I pray (मैं प्रार्थना करता हूँ) आते हैं । इस अर्थ में तुमुनन्त मध्यम पुरुष तथा प्रथम पुरुष के साथ आता है, जैसे न मा पर सप्रतिपत्ति मर्हसि (कुमार० ५।३६)—मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि मुझे अजनबी (पराया) न समझिए ।

अवहिन्स्नावच्छ्रोतुमर्हति कुमारः (मुद्रा० ४)—ऐ राजकुमार कृपया इसे ध्यानपूर्वक सुनिए ।

प्रिये जानार्क न मामेवविध परित्यक्तुमर्हसि (उत्तर० ३)—ऐ प्यारी जानकी, कृपया इस प्रकार विपत्ति में पड़े हुए मुझको मत छोड़ो ।

१८१—तुमुनन्त शब्द हलन्त मकार से विहीन काम और मन शब्दों के साथ, 'इच्छुक' के अर्थ में, प्रयोग में आता है, और यह प्रकट करता है कि कर्ता धातुद्वारा सूचित कार्य करने का इच्छुक है जैसे, पुनरपि वक्तुकाम इवार्यो लक्ष्यत (शकु० १)—श्रीमान् जी फिर बोलने के इच्छुक जान पड़ते हैं ।

अभ्यास

- १—मध्यस्या भवती नौ गुणदोषत परिच्छेत्तुमर्हति (मालविका० १) ।
- २—न युक्त ते तथा पुराश्रमपदे स्वभावोत्तानहृदयमिमं जन समयपूर्व

प्रतार्यदृशैरक्षरैः प्रत्याचष्टम् । (शकु ० ५)

३—नार्हति तानां गजपुगवधारितायां धुरिर्दम्य नियोजयितुम् ।
(विक्रमो ० ५)

४—न शक्यं दैवमन्यथा कर्तुमभियुक्तेनापि । यावत्तु मानुष्यके शक्य-
मुपपादयितुं तावत्तमर्चमुपपादयताम् । (कादं ०)

५—का गणना मचेननेषु । अप्रगवचेतनान्यपि सवदृयितुमलमयं
मदनः । (कादं ०)

६—अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रु प्रकृतिष्वरुढमूलत्वात् ।
नवसरोहणशिथिलस्तरुखि सुकरः समुद्धर्तुम् ॥ (मालविका ० १)

७—पातयितुमेव तीक्ष्णं परकार्यं वेत्ति न प्रमादयितुम् ।
पातयितुमेव शक्तिर्नाखोरुद्धर्तुमन्नपिडम् ॥ (पचपत्र १।१५)

८—गव्वाग्नीन्विपयान् भोक्तुं चरितुं दुश्चरतपः ।
पर्याप्तोसि प्रजाः पातुमौदामीन्येन वर्तितुम् ॥ (रघु ० १०।१५)

९—वृत्तं रामस्य वल्मीकः कृतिस्तौ किन्नरस्वनौ ।
किं तद्येन मनो हर्तुमलं स्याता न शृण्वताम् । (रघु ० १५।६४)

१०—व्यपदेशमाविलयितुं किमीदृशे जनमिमं च पातयितुम्
(शकु ० ५)

११—व्यालं वाचमृणालतनुभिरसौ गोधट्टु समुज्जम्भते
छेत्तुं वज्रमणीञ्च शिराषकुसुमप्रातेन मन्त्रहृते ।
माधुर्यं मधुविदुनो रचयितुं क्षारबुधेरीहते
नतु बांछति यं खलानं पथि सता सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः ।
(भर्तृहरिनीति ६)

१२—अलमनया कथया । सहियतामियम् । अहमसमर्थः
श्रुतुम् । अतिक्रान्तान्यपि सकीर्त्यमानान्यनुभवसमां
वेदनामुपजनयति सुदृब्जनस्य दुःखानि । तन्नार्हसि कथंकथमपि

तुमुन् प्रत्यय

विधृतानिमानमुलभानसून् पुनः पुनः स्मरणशोकानलेन्धनता-
मुपनेतुम् (काद०) ।

१२—अमात्यकुमारो विज्ञापयति । यद्यपि स्वामिगुणा न शक्यन्ते
विस्मर्तुं तथापि मद्विज्ञापना मानयितुमर्हत्यर्थः । (मुद्रा० २) ।

१३—न खलु न खल्वमगलानि चितयितुमर्हन्ति भवन्तः कौरवाणाम् ।
सन्धेयास्ते आतरो युष्माकम् । (वेणी० १) ।

१४—शमयति गजानन्यान् गन्धद्विपः कलभोऽपि सन्
भवति सुतगा वेगोदग्र भुजगशिशोर्विपम् ।
भुवमधिपतिर्वालावस्थोऽप्यल परिरक्षितु
न खलु वयसा जात्यैवाय स्वकार्यसहोभरः ॥

(विक्रम० ५) ।

१५—अतोऽत्र किञ्चिद् भवतीं बहुक्षमां
द्विजातिभावादुपपन्नचापलः ।

अयं जनः प्रष्टुमनास्तपोधने

न चेद्रहस्यं प्रतिवक्तुमर्हसि ॥ (कुमार० ५।४०) ।

१६—तमर्थमिव भारत्या सुनया योक्तुमर्हमि ।

अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता ॥

(कुमार० ६।७६) ।

१७—न पृथग्जनवच्छुचो वश वशिनामुत्तम गन्तुमर्हसि ।

द्रुमसानुमतां किमन्तर यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः ।

(रघु० ८।६०) ।

१८—अयि सुतपराक्रमानभिज्ञे

धर्मात्मजं प्रति यमौ च कथैव नास्ति ।

मध्येवृकोदरकिरीटभृतोर्बलेन ।

एकोऽपि विस्फुरितमडलचापचक्रं

कः सिन्धुराजमभिषेणयितुं समर्थः ॥ (वेणी० २०) ।

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

- १—उसने यथाशक्ति अपने देशवासियों का उपकार करने का प्रयत्न किया ।
- २—तुम क्यों अपने भाई की जायदाद ले लेना चाहते हो ।
- ३—मैं ने उससे कार्य करने को कहा, पर उसने बड़ी अनिच्छापूर्वक किया ।
- ४—बदला लेना पहिले तो मनुष्य को अच्छा लगता है, पर अन्त में उससे उसी का नाश होता है ।
- ५—मैं गरीब आदमी का भी अपमान होता हुआ नहीं सहन कर सकता ।
- ६—हे कृष्ण, कृपया इस सशय को दूर कर दीजिए ।
- ७—अब तुम्हारे पाठ आरम्भ करने का समय है ।
- ८—तुम्हारे शत्रु भी तिरस्कार किए जाने का पात्र नहीं है (अर्हति) ।
- ९—मैं चाहता था कि वे लोग बम्बई जायें पर उन लोगों ने वैसा करना पसन्द नहीं किया ।
- १०—तुम्हें यहाँ अकेला छोड़ कर दूसरे देश में चला जाना कैसे सम्भव है (शक्य) ।
- ११—गरीबों की तो बात ही क्या है, दुर्भिक्ष में सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करना धनियों के लिए भी मुश्किल हो जाता है ।
- १२—इसके अपराधों के कारण इस दुष्ट को दण्ड देना उचित है (युज्यते) ।
- १३—इस शुभ अवसर पर सब कैदी छोड़ दिए जायें ।
- १४—विपत्तियों से आहत होकर घर में आलसी बनकर बैठे रहने की अपेक्षा अपने आपको सकट में डालना कभी कभी अच्छा होता है ।

- १५—अतः मैं, वे विशाल प्रासाद उन भिन्न भिन्न विशेषों में तुम्हारी तुल्यता करने के लिए समर्थ हैं (अलम्) ।
- १६—यह दूसरों का उपकार करने का इच्छुक था, पर अपने मनोरथ को साधने में ज़रा भी समर्थ नहीं हुआ है ।
- १७—मैं श्रीमान् से इस प्रार्थना को स्वीकार करने की विनती करता हूँ । इसे सर्वदा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करना मेरा परम धर्म होगा ।

— — —

सप्तदश पाठ

काल और वृत्तियों

१८२^१ —संस्कृत में काल और वृत्तियाँ सब मिलाकर १० होते हैं—

१—वर्तमानकाल	✓ लट्	Present tense
२—आज्ञा	✓ लोट्	Imperative Mood
३—विधि	✓ विधिलिङ्	Potential Mood
४—अनद्यतनभूत	✓ लङ्	Imperfect Tense
५—परोक्षभूत	✓ लिट्	Perfect Tense
६—सामान्यभूत	✓ लृट्	Aorist
७—अनद्यतनभविष्य	✓ लुट्	First future
८—सामान्य भविष्य	✓ लृट्	Simple future
९—आशीर्	आशीर्लिङ्	Benedictive
१०—क्रियातिपत्ति	✓ लृङ्	Conditional Mood

१—लट् वर्तमाने लोट् वेदे भूते लृट् लङ् लिट् तथा ।

विध्याशिषोस्तु लिङ् लोटौ लृट् लृट् लृङ् च भविष्यति ।

लेट् लकार केवल वेदों में मिलता है और क्रियातिपत्ति का अर्थ देता है। बहुधा इसे वैदिक क्रियातिपत्ति कहते हैं।

लिङ् लकार दो प्रकार के होते हैं। एक तो विधिलिङ् दूसरा आशीर्लिङ्।

१८३—संस्कृत में प्रत्येक वातु के रूप—चाहे वह मूलरूप में हो, चाहे प्रेरणार्थक हो, चाहे सन्नन्त (इच्छार्थक) हो, चाहे भूशार्थक या यङन्त (पौन पुन्यबोधक)—दसों लकारों में चलते हैं। सन्नन्त और यङन्त वातुएँ वर्तमानकाल के अतिरिक्त अन्य कालों में बहुत कम प्रयोग में आती हैं। प्रायः उनका अर्थ दूसरे प्रकार दिखला दिया जाता है, जैसे, जिगमिषति = गन्तुमिच्छति, अटायते = मृशम् अटति।

१४—कुछ काल और वृत्तियाँ (Tenses and moods) अन्य भाषाओं के काल और वृत्तियों के साथ ठीक ठीक मिलती जुलती हैं, परन्तु कुछ केवल संस्कृत में ही होती हैं। इस पाठ में तथा अगले तीन पाठों में उनके प्रयोग और अर्थ बतलाए गए हैं। इस पाठ में वर्तमान, आज्ञा और आशीर्लिङ् का निरूपण किया गया है।

वर्तमान काल

१८५—वर्तमानकाल का प्रयोग, वर्तमान समय में होने वाले कार्य, अथवा वर्तमान समय में अस्तित्व रखने वाली किसी वस्तुस्थिति का बोध कराने के लिए किया जाता है, जैसे, जगतः पितरौ वन्दे रघु० १।१) — मैं विश्व के मातापिता की वन्दना करता हूँ।

विशेष—वस्तुतः, संस्कृत का वर्तमानकाल प्रगतिशील वर्तमान अर्थात् उत्तरोत्तर होते चलने वाले वर्तमान या अपूर्ण वर्तमानरूप का बोधक होता है जो किसी प्रारम्भ किए हुए कार्य का जारी होना सूचित करता है। पतञ्जलि ने लिखा है प्रवृत्तस्याविरामे शासितव्या भवती—जिसका अर्थ यह है कि वर्तमानकालिक क्रिया द्वारा सूचित कार्य अभी चल रहा है

और अभी बन्द नहीं हुआ है, जैसे, वह त जलमिय; पिनष्टि गन्धानिय (मुद्रा० १)—यह खो जल लाती है (ला रही है), यह सुगन्धित द्रव्यों (पदार्थों) को पीसती है (पीस रही है)।

एतास्तपविकन्यका इत एवाभिवर्तन्ते (शकु० १)—ये तापस-कन्याएँ इसी तरफ आती हैं (आ रही हैं)।

इस जारी रहने वाले कार्य का बोध कराने के लिए मस्कृत में कोई अलग से रूप नहीं है।

परन्तु ध्यान रहे कि किमी विशेष क्रियाविशेषण द्वारा या सन्दर्भ द्वारा ही वर्तमान काल का प्रयोग केवल वर्तमान कार्य का बोध कराने के लिए सामित किया जा सकता है जैसे, देवदत्तो गच्छति (अर्थात् अधुना), अथवा सम्प्रत्यध यावहे।

वर्तमानकाल के प्रयोग का मुख्य अभिप्राय किसी शाश्वत सत्य का बोध कराना है। सर्वकाल के ही अर्थ में यह वर्तमानकाल का बोध कराता है। प्रकृति को नित्य व्यवस्थाएँ और नियम, प्राणियों की विशेष ताएँ और प्रवृत्तियाँ तथा जो वस्तु शाश्वत, नैयमिक (नियमानुसारी), और एक समान अथवा एकरूप है—वह सभी वर्तमानकालद्वारा बताई जाती है, जैसे

सत्संगति. कथय किं न करोति पु साम्—(भट्टहरि, नीतिशतक श्लोक २३)—बताइए, सत्संगति क्या नहीं कर देती।

. अस्त्युत्तरस्यां दिशि हिमालयो नाम नगाधिराज (कुमार० १।१)—उत्तर दिशा में पर्वताधिपति हिमालय है।

नामस्त जीवितादन्यद् भिन्नतरमिह सर्वजन्तूनाम् (काद०)।
श्रीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोनुधावति (उत्तर १)। न खलु
बाहुरुपाधन् प्रातयः सश्रयन्त (मालती० १)।

१८६—साधारण अर्थों के अतिरिक्त संस्कृत का वर्तमानकाल, निम्नलिखित अर्थों का बोध कराने में प्रयुक्त होता है—

(क) कभी कभी यह तात्कालिकभविष्य (Immediate Future) के अर्थ का बोध कराता है, जैसे, अयमहमागच्छामि (शकु० ३)—यह, मैं आता हूँ (आऊँगा) । कदा गमिष्यसि, एष गच्छामि (सि० कौ०) । नन्वय न भवसि (मालती० ५) ।

(ख) जब कोई कार्य अभी ही हो चुका रहता है, तो हाल के (आसन्न) भूत कार्य का बोध कराने के लिए वर्तमानकाल का प्रयोग होता है, जैसे, कदा त्व नगरादागतोऽसि—अयमागच्छामि (सि० कौ०) । तुम गाँव से कब आए, यह मैं आता हूँ (अर्थात् मैं अभी आया हूँ) ।

(ग) कथाओं में और भूतकालिक घटनाओं का वर्णन करने में वर्तमानकाल का प्रयोग होता है मानों वक्ता ने उन घटनाओं को साक्षात् अपनी आँखों के सामने होती हुई देखा हो । हस्ती ब्रूते—कस्वम् (हितो० २)—हाथी पूछता है (पूछा)—कि तुम कौन हो ।

(घ) तक, पूर्व, जब इत्यादि शब्दों के साथ यह भविष्यकाल का बोध कराता है, जैसे, तद् यावन्न परापतति तावदपसर्पतानेन तरुगह्नेन (उत्तर० ४)—इसलिए उसक्रे लौटने के पूर्व ही इस वृक्षमूढ़ के बीच से चले जाओ ।

(ङ) कभी कभी वर्तमानकाल स्वाभाविक कार्य का बोध कराने के लिए प्रयोग में आता है, जैसे, पातु न प्रथम व्यवस्यति जलम् (शकु ४)—बहिले पानी पीने की बात भी न सोचती थी । हिरण्यको भोजन कृत्वा बिले स्वपिति (हितोप० १) ।

१८७—हेतुसूचक या दशासूचक (Conditional) वाक्यों में भविष्य का बोध कराने के लिए कभी कभी वर्तमानकाल का प्रयोग होता है, जैसे, योऽन ददाति (दाता दास्यति वा) स स्वर्गं याति (यात

यास्यति वा)—(सि० कौ०)—जो अन्न देता है (देगा) वह स्वर्ग जाता है (जायगा) ।

१८८—वर्तमान क साथ जब रम जोड़ दिया जाता है तब वह भूतकाल का अर्थ देता है जैसे कस्मिश्चिद् वने भासुरको नाम सिंहः प्रतिवसति रम (पचतत्र १।८)—जंगल में भासुरक नामक एक सिंह रहता था । क्रीणन्ति रम प्राणमूल्यैर्यशांसि (शिशुपाल० १७।१५)—अपने प्राण देकर उन लोगों ने यश खरीदा ।

१८९—प्रश्नवाचक शब्दों के साथ वर्तमानकाल प्रायः भविष्य का अर्थ सूचित करता है, जैसे, किं करोमि क्वगच्छामि (उत्तर० १)—क्या करूँ और कहाँ जाऊँ । क भोजयसि (सि० कौ०), किं गच्छामि तपोवनम् मुद्रा० ६) ।

(क) जब किसी प्रश्न का उत्तर देना होता है, तब वर्तमानकाल ननु के साथ भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त होता है, कटमकार्षीः किम्—ननु करोमि भो (सि० कौ०) ।

१९०—क्रियाविशेषण पुरा और यावत् के साथ वर्तमानकाल निश्चयात्मक भविष्य का अर्थ देता है, जैसे, आलोके ते निपतति पुरः (मेघ० ८८)—अवश्य ही (निश्चय ही) तुम्हारी आँखों के विषय में पड़ेगा । यावदस्य दुरात्मनः समुन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि उत्तर० १)—इस शूठ का नाश करने के लिए मैं अवश्य ही (निश्चय) शत्रुघ्न को भेजूँगा ।

विशेष—निश्चयात्मकता का बोध अनिवार्य नहीं है ।

आज्ञा (लोट्)

१९१—यह लकार मध्यम पुरुष में आज्ञा, प्रार्थना अथवा मृदु उपदेश या मन्त्रणा के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे, शृणुत रे पौराः

(मृच्छकटिक १०)—ऐ पुरवासियो, सुनते जाओ। परित्रायध्वम्
परित्रायध्वम्—बचाओ बचाओ। हा प्रियसखि, कासि, देहि मे
प्रतिवचनम् (उत्तर० १)—हाय मेरी प्यारी, कहाँ हो। उत्तर दो। तृष्णा
छिन्दि, भज क्षमा, जहि मदम् (भट्टहरि नीतिशतक)—लालच छोड़ो,
क्षमा धारण करो, घमण्ड त्यागो।

(क) जब बड़ी विनम्रतापूर्वक कोई बात कहनी होती है तो आज्ञा के
कर्मवचन का रूप प्रयोग में आता है, जैसे, एनदापनमास्यताम्
(विक्रमो० २)—यह आसन है, कृपया बैठ जाइए।

१६२—आज्ञा के प्रथम पुरुष (अन्य पुरुष) और मध्यम पुरुष का
रूप आशीर्वाद का बोध कराने के काम में आता है, जैसे, प्रत्यक्षाभिः
प्रपन्नस्नानुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरिणः (शकुं १)—इन आठ
प्रत्यक्ष रूपों से युक्त शिव भगवान् तुम्हारी रक्षा करे।

पर्जन्यः कालवर्षी भवतु जनमनोनन्दिनो वान्तु वाता (मृच्छ-
कटिक १०)—भगवान् करे समय पर मेघ बरसे, लोगों के मन को अच्छी
लगने वाली हवाएँ बहें।

पुत्रमेवंगुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि (शकु० १)—भगवान् करे,
तुम इन गुणों से युक्त चक्रवर्ती पुत्र पाओ।

पुत्र लभस्वात्मगुणानुरूपम् (रघु० ५।३४)—भगवान् करे, तुम
अपने ही अनुरूप पुत्र पाओ। तात मे चिरजीव (उत्तर० ४)।

१६३—भविष्यकालिक तथा वर्तमानकालिक आज्ञाओं (Comm-
ands) तथा प्रोत्साहनों (exhortations) का बोध कराने के
लिए भी आज्ञा के रूपों का प्रयोग होता है। प्रायः व्यवस्थाओं तथा
नियमों में और उपदेशों का विधान करने में आज्ञा के रूप ठीक उसी
अक्षर प्रयोग में आते हैं जैसे कि विधि के। अष्टादश पाठ देखिये।

१६४—मध्यम पुरुष की आज्ञा का एक प्रयोग कुछ विशेष ध्यान

देने योग्य है। जब 'भृशार्थ' अथवा "कार्यो" का पोनःपुन्य" सूचित करना होता है, तो आज्ञा के मध्यम पुरुष का रूप दोहराया जाता है, चाहे प्रधानक्रिया का कर्ता भिन्न ही हो, और क्रिया किसी भी काल में क्यों न हो, जैसे, याहि याहीति याति (सि० कौ०)—वह बार बार जाता है। यात यातति याथ। अधीष्व अधीष्वेति अधीते।

(क) इसी प्रकार जब एक ही व्यक्ति द्वारा कई कार्य किए जाते हुए दर्शाए जाते हैं तब आज्ञा का प्रयोग होता है (दोहरा प्रयोग नहीं); जैसे, सकून् पिव, धान्ता. खादेत्यभ्यवहरति (सि० कौ०)—भूना हुआ दाग चबाता हुआ, जौ खाता हुआ वह भोजन करता है।

आशीर्लिङ्

१६५—आशीर्लिङ् (भूयात्—भविषीष्ट) हमेशा आशीर्वाद देने में आता है और उत्तम पुरुष में वक्ता की इच्छा प्रकट करता है, जैसे, तत्किमन्यदाशास्महे, कवल वीरप्रसवा भूयाः (उत्तर० १)—तो हम लोग और क्या आशा करे ? ईश्वर करे तुम वीरपुत्र पैदा करो। विधेयांसु देवाः परम रमणीया परिणति (मालती १११)—देवता लोग अन्त को रमणीक बनावें। कृतार्था भूयासम् (मालती०)—ईश्वर से इच्छा करता हूँ कि सफल होऊँ।

अभ्यास

१—क नु खलु सस्थिते कर्मणि सदस्यैरनुज्ञातः श्रमक्त्वान्तमात्मानं विनोदयामि (शकु. ३)।

२—किमधुना करोमि। क गच्छामि। कथ मे शान्तिर्भविष्यति। अथवा पिंगलकं गच्छामि कदाचिच्छरणागतं मां रक्षति न प्राणैर्वियोजयति (पंचतंत्र १। १६)।

३—ततो दिनेषु गच्छत्सु पक्षिशावकानाक्रम्य कोटरमानीय प्रत्यहं
स्वादति स मार्जार (हितोप० १) ।

४—तारापीडो देवीमवदत् । अफलमिवाखिल पश्यामि जीवितं
राज्यं च । अप्रतिविधेये धातरि किं करोमि । तन्मुच्यता देवि
शोकानुबन्धः । आधीयतां धैर्ये च धर्मे च धीः (कादं) ।

५—श्रुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखोवृत्ति सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीप गम ।
भूयिष्ठ भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येव गृहिणीपद युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ (शकु० ४)

पातु न प्रथम व्यवस्यति जल युष्मान्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमडनापि भवता स्नेहेन या पलनवम् ।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्पन्नः
सेयं याति शकु तला पतिगृह सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ (शकु० ४)
अये उदितभूयिष्ठ एष भगवानशेषभुवनद्वीपदीपकस्तपनः ।
तमुपतिष्ठे । (मान्ती० १)

८—अनन्यभाजं पतिमाप्नुहोति
सा तथ्यमेवाभिहिता हरेण ।
न हीश्वरव्याहतयः कदाचित्
पुष्पति लोके विपरीतमर्थम् । (कुमार० ३।६३) ।

९—पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दन
मुषाण रत्नानि हरामरांगनाः ।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली
य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः ॥ (शिशु० १।५१) ।

१०—संतः सन्तु निरतर सुकृतिनो विध्वस्तपापोदया
 राजानः परिपालयंतु वसुधा धर्म स्थिता सर्वदा ।
 काले सततवर्षेणो जलमुच सन्तु स्थिरा पुण्यतो
 मोदना धनवद्धबाधवसुहृद्गोष्ठीप्रमोदाः प्रजा ॥

(मालती० १०) ।

११—वृष्णा छिन्धि भज क्षमा
 जहि मद पापे रति मा कथाः
 सत्य ब्रह्मनुयाहि साधुपदवी
 मेवस्व विद्वज्जनम
 मान्यान मानय विद्विषोऽप्यनुनय
 प्रच्छादय स्वान गुणान्
 कीर्तिं पालय दुःखितेकुरु दयाम्
 एतत्सता चेष्टतम् (भर्तृहरिर्नीति० ७७) ।

१२—कश्चैकांतं सुखमुपगतो
 दुःखमेकान्ततो वा
 नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा
 चक्रनेमिक्रमेण । (मेघ० ११२) ।

१३—जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्
 मानोन्नति दिशति पापमपाकरोति ।
 चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्
 सत्सगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ (भर्तृ नीति. २३)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

- १—वृद्धपर चढ़कर साँप कौआ के बच्चों को खा जाता था ।
- २—अपना धनुष चढ़ा कर अर्जुन कर्ण से कहते हैं 'क्या अब तुम मुझसे लड़ने को तैयार हो ।'
- ३—दो पक्षियों द्वारा कन्धों पर एक कच्छप दियो जा रहा है ।
- ४—तुम मुझे यहाँ क्यों छोड़ते हो ? मैं क्या करूँगी ? मैं किसकी शरण में बाँऊँगी ?
- ५—इस वृद्ध की छाया के नीचे बैठा हुआ मैं उस स्त्री की प्रतीक्षा करूँगा (यावत् का प्रयोग कीजिए) ।
- ६—मैं अभी एक लम्बी यात्रा से लौटा हूँ, क्या तुम मुझे इतनी जल्दी काम करने के लिए कहते हो ।
- ७—भगवान् करे, तुम दोनों अपने सद्गुणों के अनुरूप पुत्र पाओ ।
- ८—माता पिता की आज्ञा मानो विद्वानों का आदर करो, दूसरों की निन्दा में एक शब्द भी न बोलो, और अपनी स्थिति से सन्तुष्ट रहो ।
- ९—ईश्वर करे गाएँ खूब दूध दे, समय पर जल बरसाने वाले बादलों के कारण पृथ्वी सब प्रकार के धान्य से पूर्ण होवे ।
- १०—उसके राज्य की वास्तविक दशा का पता न गाने के लिए यतिवेषधारी गुप्तचर उसके राज्य भर में भेजे जायें ।
- ११—घरों को तहस-नहस करता हुआ, निवासियों को निकालता हुआ, और उनकी सम्पत्ति को जलाता हुआ वह सारे देश को विध्वंस करने लगा ।

अष्टादश पाठ

विधिलिङ्

१६६—नीचैराख्यं गिरिमधिवसे (मेघदूत २६) । कृत्य घटेत सुहृदो यदि तत्कृतस्यात् (मालती ०१)—ये विधिलिङ् के प्रयोग हैं । अब आगे निरूपण किया जायगा कि विधिलिङ् किन किन अर्थों में काम आता है ।

१६७—विधिलिङ् निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है —

(क) सम्भावना, इच्छा, प्रार्थना, आशा और योग्यता ।

(ख) जिन आश्रित उपवाक्यों में उपर्युक्त अर्थ दिखलाया जाता है उनमें भी विधिलिङ् प्रयुक्त होता है ।

(ग) जिन हेतुहेतुमद्भूतात्मक वाक्यों में एक कार्य किसी दूसरे कारणभूत कार्य पर आश्रित रहता है उनमें भी विधिलिङ् प्रयुक्त होता है ।

१६८—सम्भावना, इच्छा, इत्यादि के उदाहरण ये हैं—
लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नत पीडयन् (भर्तृहरि नीतिशतक श्लोक ५)—परिश्रमपूर्वक पेरता हुआ पुरुष, सम्भव है, बालू में से भी तेल पा जाय ।

मौयै भूषणविक्रय नरपतौ को नाम सम्भावयेत् (मुद्रा ०५) —

कौन इस बात की सम्भावना कर सकता था कि मौर्यराज गहने बेंच डालेगा ।

जेतार कार्तिकेयस्य विजयेय (महावीर चरित ३)—मैं कार्तिकेय के जीतने वाले को जीत लूँ ।

मनसिजतरुः कुर्यान्मां फलस्य रसज्ञम् (मालविका०४)—कामदेव वृक्ष मुझे अपने फल का स्वाद चखावे ।

कुर्या हरस्यापि पिनाकपाणेधैर्यच्युतिम् (कुमार ३।१०)—मैं पिनाकपाणि महादेव जी का भी धैर्य छुड़ा दूँ ।

भो भोजनं लभेय (सि०कौ०)—प्रार्थना करता हूँ (चाहता हूँ) कि भोजन पा जाऊँ ।

(क) विधिलिङ् अधिकतर इन बातों का बोध कराने के लिए प्रयुक्त होता है—आज्ञा देने में, उपदेश अथवा पथप्रदर्शनार्थक नियमों के विधान में, धर्म अथवा कर्तव्य का भार दिखलाने में, जैसे, ऊनद्विवर्षं निखनेत् (याज्ञवल्क्य ३।१)—दो वर्ष से कम उम्र वाले बच्चे को गाढ़ देना चाहिए । आपदर्थं धनं रक्षेत् (चाणक्य०२९)—विपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए । सहसा विदधीत न क्रियाम् (किरात० २।३०)—एकाएक (बिना सोचे विचारे) कार्य नहीं कर बैठना चाहिए ।

विशेष—विधिनिमन्त्रणामन्त्रणार्भीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् ।
३।३। १६१—अर्थात् विधिलिङ् तथा लोट् दोनों ही विधान करने में, निमन्त्रण देने में, किसी कार्य को करने की स्वीकृति देने में, किसी अवैतनिक कर्तव्य अथवा पद के बतलाने में, प्रश्न पूछने में, और प्रार्थना करने में प्रयुक्त होते हैं ।

प्रैषातिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च । ३।३। १६३। अर्थात् विधान, स्वीकृति या अनुमति, उपयुक्त समय का बोध कराने में विधिलिङ्

लोट् और कृत्यप्रत्यय (तव्य अनीय, यत्, एयत्)—सभी समानरूप से प्रयोग में लाए जा सकते हैं, जैसे, इह भु जीत अथवा मुं क्ताम् भवान्, इहासीत भवान् अथवा इहास्यताम् आसितव्य भवना—आप यहाँ बैठ सकते हैं। नीचैराख्य गिरिमधिवसेः (मेघ० २६)। पुत्रमध्यापयद् भवान्—आप पुत्र को अवैतनिक कर्तव्य के तौर पर पढ़ा दें। किं मो वेदमधोयीय उत तर्कम्—श्रीमन्, क्या पढ़ें, वेद या तकशास्त्र। भोजनं लभेय अथवा लभै (सि० कौ०)।

अस्तु, उपयुक्त अर्थों में जितना विधिलिङ् का प्रयोग प्रचलित है उतना लोट् अथवा कृत्यप्रत्ययों का नहीं।

१६६—जब योग्यता दिखाना अभाष्ट होता है तब कृत्यप्रत्यय (तव्य, अनीय, यत्, एयत्) अथवा विधिलिङ् प्रयुक्त होता है और कभी कभी तुकारान्त सज्ञा, जैसे, त्व कन्या वहः, त्व कन्याया वाढा अथवा त्वया कन्या वोढव्या (सि० कौ०)—तुम कन्या को व्याहने योग्य हो।

(क) जब क्षमता दिखलानी होती है तब विधिलिङ् अथवा कृत्य प्रत्यय (तव्य, अनीय, यत्, एयत्) प्रयुक्त हो सकते हैं, जैसे, भार त्व वह अथवा भारस्त्वया वोढव्य (सि० कौ०)—तुम बोझा देने में समर्थ हो।

२००^६—कम्, कतर इत्यादि प्रश्नवाचक शब्दों के साथ विधिलिङ् अथवा सामान्यमविष्य निन्दा दिखलाने में प्रयुक्त होता है। जैसे, कः कतरो वा हरि निन्देत् निन्दिष्यति वा—कौन हरि की निन्दा करेगा।

(क^२) जब आश्चर्य दिखलाना होता है और “यदि” शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता, तब विधिलिङ् की अपेक्षा सामान्यमविष्य

१—किं वृत्ते (गर्हाया) लिङ् लटौ। ३।३।१४४।

२—चित्रीकरणे शेषे लङ् लटौ। ३।३।१५२।

प्रयुक्त होता है, जैसे, आश्चर्यमन्धा नाम कृष्ण द्रव्यति (सि० कौ०)—
आश्चर्य है कि अन्धा आदमी कृष्ण को देख ले। परन्तु जब यदि”
शब्द का प्रयोग होगा तब तो विधिलिङ् ही आवेगा, जैसे, आश्चर्य
यद् साऽधीयीत—यदि वह पढ़ ले तो आश्चर्य है।

(ख) सेक्शन १६७ में उल्लिखित आशा प्राथेना इत्यादि अर्थों
का बोध कराने वाले आश्रित वाक्यों में भी विधिलिङ् आता है, जैसे,
आशसेऽधीयीत (सि० कौ०)—आशा करता हूँ कि मैं पढ़ूँगा।
आशासा न हि नः प्रेतर्जावेम दशमूर्धनि (भट्टि० १६।५)—हम
लोगों को आशा नहीं कि हम लोग दशकन्धर रावण के मर जाने पर
जियेंगे।

(क) इनफिनीटिव् मूड के अर्थ में जब कि प्रधानक्रिया तथा
इनफिनीटिव् क्रिया का कर्ता समान हो तो इच्छार्थक शब्दों के साथ,
विधिलिङ् का प्रयोग होता है, भुजायात् इच्छति (सि० कौ०) =
भोक्तुमिच्छति, चाहता है कि खाऊँ अर्थात् खाना चाहता है।

२०२—आश्रित वाक्यों में प्रायः परिणाम अथवा अभिप्राय का
बोध कराने के लिए विधिलिङ् का प्रयोग होता है, जैसे, दोष तु मे
काचत्कथं यन स प्रतिविधायत (उत्तर० १)—मेरा कोई दोष
बतलाओ ताकि वह सुधार जाय।

२०३—जहाँ आशा प्रकट की जाती है, पर कच्चित् शब्द द्वारा
नहीं वहाँ विधिलिङ् का प्रयोग होता है, जैसे, कामा मे भुजित भवान्—
यह मेरी आशा है कि आप खायेंगे। परन्तु जब काचत् का प्रयोग
होगा तब वाक्य इस प्रकार होगा—काचज्जीवति—आशा करता हूँ
कि वह जिन्दा है। कच्चिद्भूतुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियति
(मेघ० ८८)—ऐ रसिके, आशा करता हूँ कि तुम अपने स्वामी को
याद करती हो क्योंकि तुम उनकी बड़ी प्यारी हो।

(क^२) यद् शब्द का प्रयोग किए बिना यदि सम्भावय्, अपि, अथवा अपिनाम शब्दों द्वारा आशा का बोध कराना होता है तो विधिलिङ् अथवा सामान्यभविष्य का प्रयोग होता है, जैसे, सम्भावयामि भुंजीत भोक्ष्यते वा भवान् (सि० कौ०)—आशा करता हूँ आप भोजन करेंगे। अपि नाम भगवतीनीतिर्विजेष्यते (मालती०७)—चाहता हूँ कि श्रीमती जी की नीति सफल होवे। अपि जीवेत् स ब्राह्मण-शिषुः (उत्तर०२)—क्या आशा करूँ कि वह ब्राह्मणबालक जीवित हो जायगा। परन्तु जब यद् शब्द का प्रयोग होता है तब इस प्रकार का वाक्य बनता है—सम्भावयामि यद्भु जीथास्त्वम्।

(ख^२) इप्, कम्, प्रार्थ् इत्यादि इच्छार्थक शब्दों का प्रयोग होने पर विधिलिङ् अथवा आज्ञा के रूप आते हैं, जैसे, इच्छामि सोम पिबेत् पिबतु वा भवान् (सि० कौ०)—चाहता हूँ कि श्रीमान् जी सोम पिएँ।

२०४^३—वाक्य में यद् शब्द का प्रयोग होने पर, काल, समय वेला शब्दों के साथ विधिलिङ् का प्रयोग होता है, जैसे, काल-समयो-वेला वा यद् भवान् भुंजात—आप के भोजन करने का समय है।

(ग)

२०५—जिसमें एक कार्य का होना दूसरे कार्य पर आश्रित द्रश्या जाता है उसे हेतुबोधक या समययुक्त या सोपाधिक (Conditional) वाक्य कहते हैं। ऐसे सोपाधिक वाक्यों में पूर्वगामी उपवाक्य (antecedent) तथा अनुवर्ती या आनुषंगिक उपवाक्य (Consequent) दोनों में विधिलिङ् का प्रयोग होता है। पूर्वगामी

१—विभाषा घातौ सम्भावनवचनेऽयदि । ३।३।१५५।

२—इच्छार्थमुलिङ् लोटौ । ३।३।१५७।

३—(काल समय वेलासु) लिङ्यदि । ३।३।१६८।

उपवाक्य (Conditional) में हेतु का उल्लेख रहता है और अनुवर्ती उपवाक्य (Consequent) में फल का निर्देश रहता है । “अगर” के स्थान पर “यदि” या “चेन्” का प्रयोग किया जाता है; जैसे, यद्यत्र तात सनिहिता भवेन् तत कि भवेन् (शकु ० १, —यदि आज पिता जी यहाँ होते तो क्या होता । देवान् पश्येज्जगत विचर, अल्लया मत्प्रिया चेद् आशवास्यादौ तदनु कथय माधवायामवस्थाम् (मालती ०६)—संसार भर में स्वेच्छानुसार घूमते घामते यदि तुम मेरी प्यारी को देखना तो पहिले आशवासन देना, तब फिर माधव की अवस्था का वर्णन करना । कृत्य घटेत सुहृदा यदि तत्कृत न्यान् । विशेष—यान दीजिएगा कि चेन् कभी भी वाक्य के आरम्भ में नहीं प्रयुक्त होता ।

२०५—समययुक्त या सोपाधिक (Conditional) वाक्यों में प्रायः विधिलिङ् के स्थान पर वर्तमान काल अथवा सामान्यभविष्य का प्रयोग होता है, जैसे, यदि स्थित्वा द्रच्यति, कुप्यति प्रभुः—यदि स्वामी जी उठकर तुम्हें देख लेंगे तो क्रोध करेंगे । न चेद् ब्रवीष्य प्रश्नान् अश्नामि त्वाम् (दशकुमार ० २ । ६)—यदि मेरे प्रश्नों का उत्तर न दोगे तो तुम्हें खा जाऊँगा । कृष्ण नश्यत चेत्, मुख यास्यति (सि० कौ०)—यदि कृष्ण को प्रणाम करेगा तो मुख प्राप्त होगा ।

विशेष—कभी कभी पूर्वगामी उपवाक्य (Antecedent) में वर्तमानकाल का और अनुवर्ती उपवाक्य (Consequent) में विधिलिङ् का प्रयोग आता है, जैसे, यदि तत्र भ्राणविपत्तिरुपजायते नदीपे महदेता भवेन् (काद०)—यदि उसकी मृत्यु हो जाय तो वह भी एक बड़ा पाप होगा । क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ (भवेत्,)—रघु० ८ । ८७ ।

(ख) जब आदर्शपूर्वक या विनम्रतापूर्वक बोलना होता है तो अनुवर्ती वाक्य (Consequent) में विधिलिङ् के स्थान पर आस्ता का प्रयोग

होता है, जैसे, न चेदन्यक्यातिपातो गृह्यतामानिधेयमत्कारः (शकु० १)—यदि ऐसा करने से किसी दूसरे कार्य में क्षति न पहुँचे, तो कृपया अतिथिसत्कार स्वीकृत कर लीजिए ।

(ग) जब समययुक्त अथवा सोपाधिक (Conditional) उपवाक्य विलम्बित स्वीकारसूचक (Affirmative) तथा निश्चयात्मक होते हैं अथवा जब पूर्वगामी उपवाक्य तथा अनुवर्ती उपवाक्य दोनों ही में किन्हीं वास्तविक वस्तुस्थितियों का उल्लेख रहता है तो विधिलिङ् का प्रयोग न होकर वर्तमानकाल का ही प्रयोग होता है, जैसे, यदि वरसेगा तो हम लोग बाहर नहीं जा सकते—यदि देवा वरति तर्हि वयं बहिर्गन्तु न शक्नुम । यहाँ पर देवा वरपत् नही हागा ।

अभ्यास

१—वयस्य किं परमार्थत एव देव्या व्रतनिमित्तायऽमारम्भ स्यात्
[विक्रमो० ३] ।

२—यदि त्वामोदशमैदवाको राजा रामभद्र पश्यत्तदाऽभ्य हृदय
स्नेहेनाभिष्यदेत् [उत्तर० ५]

३—देव यदि चन्द्रमस्युष्मा, दहने वा शीतलत्वमशुमालिनि वा तमः
सम्भाष्यते, तनो शुवराजेऽपि दोष [काद०] ।

४—यदि मे सहसा दर्शनपथान्नापयाति नारोहति वा कैनामशिखर
नोत्पतति वा गगनतल मवमेतदेनामुपसृत्य पृच्छामि [काद०] ।

५—लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियम् श्रिया दुरापः कथमीप्सितो
भवेत् [शकु० ३] ।

६—परोक्षे कार्यहतार प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् ।

वर्जयेत्तादृश मित्रं विषकुम्भ पयोमुखम् ॥ [चाणक्य० १८]

७—अलब्ध चैव लिप्सेत लब्ध रक्षेद्वक्ष्यात् ।

रक्षितं वर्द्धयेत्सम्यग् वृद्ध तीर्थेषु निक्षिपेत् [हितोप० २]

८—उत्सादेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।

सकरम्य च कर्ना स्यामुपहन्यामिमाः प्रजा ॥

[भगवद्गीता ३।२४]

९—भवेदभोष्ममद्रोण धृतराष्ट्रबल कथम् ।

यदि तन्तुल्यकर्मात्र भवान् धुर्यो न युज्यते [वेणी० ३]

१०—तन्नो देवा विवेयासुर्येन रावणवद्वयम् ।

सपत्नाश्चाधिजोयास्म मग्राये च मृषीमहि ॥ [मट्टि. १६।२]

११—आददीध्व महार्हाणि तत्र वासासि मत्सराः ।

उद्धुतायात् सनकेतून् निर्हरेताग्र्यचदनम् ॥ [१]

१२—नावकलप्रमिद ग्लायेद्यत्कृच्छ्रेषु भवानपि ।

न पृथग्जनवज्जातु प्रमुह्येत् पडितो जन ॥ [१]

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अपि नामोयंशी—

गूढा नूपुर शब्दमात्रमपि मे कान् श्रुतौ पातयेत्

पश्चादेत्य शनै कराम्बुजवृते कुर्वीत वा लोचने ।

हर्म्येऽस्मिन्नवतीर्थं साध्वमन्वशात् मन्दायमाना बलात्

आनीयेत पदात्पद चतुरया सख्या समोपान्तिकम् ॥ (विक्रमा०३) ।

२—इति ध्रुवेच्छामनुशामनो सुता

शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात् ।

क ईप्सितार्थसिधिरनिश्चय मनः

पयश्च निम्नान्निमुलं प्रतीपयेत् ॥ (कुमार०५।५)

३—फलाथी नृपतिलो कान् पालयेद्यत्नमास्थित ।

दानमानादिनोयेत मालाकारोऽकुरानिव ॥ (पञ्चतन्त्र १।८)

४—कौर्ऽ सकोचमास्थाय प्रहारानपि मर्षयेत् ।

प्राप्तकाल तु नीतिज्ञ उत्तिष्ठेत् कृष्णसर्पवत् । हितोप०३)

५—किं वा तवात्यन्तवियोगभोवै

कुर्यामुपेक्षा इतजीवितऽस्मिन् ।

स्याद्रक्षणीय यदि मे न तेज

स्त्वदीयमनर्गतमन्तराय ॥ (रघु० १४।६५) ।

६—प्रमथ्य मणिमुद्धरेत् मकरवक्त्रं दूतकुरात्

नमुद्रमपि सतरत् प्रचलद्भिमालाङ्गुलम् ।

सुजगमपि कोपित शिरमि पुष्पवद् धारयेत्

न तु प्रतिनिद्रिष्टमृवंजनचित्तमाराधयेत् ॥ (मनु० हरि० गी० ०४)

७—अप्राज्ञेन च कातरं च गुणं न्यातासुरागेण कः

प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपि हि भवेत् किं भक्तिहीनात् फलम् ।

प्रज्ञाविक्रमभक्त्य समुदिता रूपा गुणा भूतये

ते नृत्या नृपते कलत्रमितरे भवन्तु चापन्तु च ॥ (सुद्रा० १) ।

८—त्रयि यदि जीवितापहा

हृदयं किं निहिता न हति माम् ।

विषमयमृतं वदन्ति भवेद्

अमृतं वा विषमाश्चरच्छया ॥ (रघु० ०८।४६) ।

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—अपना अभीष्ट मनोरथ किस प्रकार सिद्ध करने-वह सोचते ही सोचते सारी रात बीत गई ।

२—इस महान् शोकसागर में निमग्न वह सम्भवतः किस प्रकार स्वस्थ होंगे ।

३—सम्भव है उसकी मानसिक व्यथा कामदेव के प्रभाव से उत्पन्न हुई हो ।

४—तुम्हें अपने गुरुओं की तथा मातापिता की आज्ञा माननी चाहिए,

सत्य बोलना चाहिए, सज्जनों का साथ करना चाहिए, और सदा परमात्मा की महत्ता का चिन्तन करना चाहिए ।

५—यदि तुम इस घोरान्धकार में जाकर बाग्य में मेरे लिए फूल लाओ तो मैं तुम्हें निर्भीक समझूँ ।

६—चाहे उसका हृदय पाषाण का भी बना हो, तो भी इस स्त्री की हृदयविदारिणी दशा देखकर वह करुणा से द्रवीभूत हो जायगा ।

७—उस अद्भुत वृत्तान्त को सुनकर मैं किर्तव्यविमूढ़ तथा क्लिप्तव्यविमूढ़ हो गया ।

८—लोभी आदमी को द्रव्य देकर तथा मूर्ख को उसकी मर्जी के अनुसार आचरण करके वश में करना चाहिए ।

९—मूर्ख के अतिरिक्त और कौन आकाश के नैशान्धकारमालिन्य को दूर कर सकता है।

१०—यदि गरुड भी मुझसे पहिले खाना हुए हो तो रथ के इस वेग से मैं उन्हें भी पकड़ लूँ (पकड़ सकता हूँ) ।

११—चाहता हूँ कि दुष्ट चाणक्य नन्दवश के पक्ष में चला आवे ।

१२—आशा करता हूँ (कञ्चित्) आप की तपस्या निविघ्न चल रही है ।



ऊनविंश पाठ

लङ्, लिट् तथा लुङ्

अनद्यतनभूत, परोक्षभूत तथा सामान्यभूत

२०७—संस्कृत में अतीत समय का बोध कराने के लिए तीन लकार होते हैं—(१)अनद्यतनभूत (लङ्) (२) परोक्षभूत (लिट्) (३) सामान्यभूत (लुङ्) । प्रारम्भ में प्रत्येक का पृथक् अर्थ था । प्राचीन ग्रन्थों में, अथवा जब संस्कृत बोलचाल की भाषा थी उस जमाने में लिखे हुए ग्रन्थों में ये तीनों लकार अपने ठीक ठीक अर्थ में प्रयुक्त होते थे । परन्तु आगे चलकर, जब संस्कृत बोलचाल की भाषा न रह गई, तब ग्रन्थकार इन तीनों कालों का मनमाना प्रयोग करने लगे । जिन अर्थों में ये तीनों लकार मौलिकतया प्रयुक्त होते थे वे ये हैं—

पाणिनि का मत है—अनद्यतने लङ् अर्थात् आज से पूर्व हुए कार्य का बोध कराने के लिए लङ्लकार का प्रयोग होता है ।

परोक्षे लिट्—अर्थात् लिट् लकार आज से पहले हुए या किए हुए ऐसे कार्य का बोध कराता है जिसे वक्ता ने न देखा हो ।

भूतार्थे लुङ्—अर्थात् लुङ् लकार साधारणतया सभी प्रकार के भूत कालों का बोध कराता है । इसका सम्बन्ध किसी विशेष समय से नहीं होता । यह सभी प्रकार की भूत घटनाओं को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त होता है ।

आज से पूर्व किया हुआ कार्य पर क्षभूत अथवा अनद्यतनभूत द्वारा बताया जाता है। तो सामान्यभूत के लिए रह जाता है ऐसा कार्य जो अभी बहुत ही हाल में (जैसे आज ही) हुआ हो अथवा जो किसी वर्तमान कार्य से सम्बन्ध रखता हो। अतः सामान्यभूत से साधारणतया किसी कार्य का किसी भी अतीत काल में, अथवा बहुत ही हाल में (जैसे वर्तमान ही दिन के किसी समय में) होना पाया जाता है। अनद्यतनभूत तथा पराक्षभूत प्रायः सुदूरवर्ती भूतकाल को घटनाओं का वर्णन करने में प्रयुक्त होते हैं। समान्यभूत आसन्न (हाल के) भूतकालिक कार्यों में आये हुए सलाहों में प्रयुक्त होता है, परन्तु निश्चयपूर्वक उल्लिखित भूतकाल का बोध कराने के लिए अथवा घटनाओं का वर्णन करने के लिए यह कदापि प्रयुक्त नहीं होता। इस प्रकार, सारे पुरुषसूक्त (ऋग्वेद १०।६०) में केवल अनद्यतनभूत तथा पराक्षभूत का ही प्रयोग हुआ है और उल्लिखित घटनाएँ अतीत काल से सम्बन्ध रखती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में आसन्न (हाल के) कार्य सामान्यभूत द्वारा दिखलाए गए हैं, जैसे, स भूमि विश्वता वृत्वा अत्यतिष्ठद्गगानुत्तमम्, गावोऽजज्ञिरे तस्मत् इत्यादि। अजनि त वै पुत्रा यवस्य सामनेनति।

परन्तु बाद के संस्कृत-लेखकों ने अनद्यतनभूत, परोक्षभूत तथा सामान्यभूत के इस अन्तर की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया और किसी भी अतीत कार्य का बोध कराने के लिए तीनों का मनमाना प्रयोग किया, चाहे वह अतीताथ हाल का हो, चाहे सुदूर का हो चाहे वक्ता द्वारा देखा गया हो या न देखा गया हो, जैसे, तदाऽहं किमकरव कला-गमं किं व्यत्यपम् इति सर्वमेव नाज्ञामिषम् (कादम्बरी)।

१०८—कभी कभी जब हाल से सम्बन्ध रखने वाला प्रश्न करना होता है तो अनद्यतनभूत का प्रयोग करते हैं, जैसे, अगच्छत् किं स प्रामम्—क्या वह गाँव चला गया। परन्तु जब सुदूरवर्ती भूतकाल

दिखाना हा तो केवल परोक्षभूत ही का प्रयोग करना चाहिए, जेमे, कम जधान किम् (सि० कौ०)—क्या उमने कस को मार डाला ।

२०६—प० चभूत—उत्तम पुरुष मे परोक्षभूत कर्ता के मस्तिष्क की अचेतनावस्था अथवा उन्माद का बोध कराता है । अतः इस अर्थ के अतिरिक्त अन्य किमा भी अर्थ मे परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में नहीं करना चाहिए जैसे, बहु ऋगद पुरस्तात्तस्य मत्ता क्लिप्तम (शिशु० ११।३६)—उन्मत्त होने के कारण उसके सामने बहुत बड़बड़ाया ।

(क) किमी के विरुद्ध जो कहा जाता हो या कहा गया हो उसके विपरीत उसमे कहकर जब उस व्यक्ति मे सच्ची वस्तुस्थिति छिपानी होती है तब परोक्षभूत उत्तम पुरुष का प्रयोग होता है, जैसे, नाहं कलिगान जगाम (सि० कौ०)—मे कलिग देश नहीं गया था । कलिगेष्ववात्सी किम्—क्या तुम कलिग देश में रहे थे ।

२१०—सामान्यभूत—हाल के अतीत काल अथवा अनिश्चित अतीतकाल का बोध कराने के अतिरिक्त सामान्यभूत नैरन्तर्य (Continuousness) का भी बोध कराता है । इस अर्थ मे अनद्यतनभूत कदापि नहीं आ सकता, जैसे, ब्राह्मणोभ्यो यावज्जीवमन्नमदात् (न कि-अददात्)—उसने जिन्दगी भर ब्राह्मणों को भोजन दिया अर्थात् भोजन देना जिन्दगी भर जारी रक्खा ।

(क) 'स्म' से अ-सयुक्त पुरा के योग मे अनद्यतन भूत, परोक्षभूत, अथवा वर्तमान कोई भी प्रयोग में आ सकता है, जैसे, वसतीह पुरा छात्रा अवात्सु, अवसन्, ऊषु वा—यहाँ पहिले विद्यार्थी रहते थे । परन्तु पुरास्म के साथ केवल वर्तमान आता है, जैसे, यजतिस्म पुरा—वह प्रचीन काल में यज्ञ करता था ।

२११—मा या मास्म के अनन्तर सामान्यभूत का अ लुप्त हो जाता

है। जब सामान्यभूत मध्यम पुरुष अपने अ को लोप कर रम के साथ आता है तो आजा का अय देता है, जैसे, वयस्य मा कातरा भू (माल-विका० ४)—मित्र, डरो मत। भुर् विप्रकृतापि राघस्यतया मास्म प्रतीप गम (शकु० ४)—अपमानित होने पर भी क्रोध के कारण पति के बिपरीत आचरण मत करना।

मा मूमुहत् खलु भवतमनन्यजन्मा
मा ते मलीमसविभारघ । मातभूत् ।
इत्यादि नान्वह निरर्थक मेव (मालती० १)

कामदव तुझे मोहित न कर देवे, तेरा मस्तिष्क गन्धे विचारों से न भर जाय—इस विषय में यह कहना अथवा ऐसा ही कुछ और कहना व्यर्थ है।

अभ्यास

- १—तपोवनवासिनामुपरोधो मा भूत् (शकु० १)।
- २—नरपतिराहार निर्वर्त्य आस्थानमडपमयासीत् ।
तत्र चावनिपतिभिरमात्यैर्मित्रैश्च सह तास्ता कथा कुर्वन्
मुहूर्तमिवासा चक्रे । (का० ६०)।
- ३—शुकनासोऽपि महात काल त राज्यभारमनायासेनै प्रज्ञा-
वलेन वभार । यथैव राजा सर्व कार्याण्यकार्षी-त्तद्वदसा-
वपि द्विगुणितप्रजानुरागञ्चकार । (का० ६०) ।
- ४—आविर्भूतज्योतिषा ब्राह्मणाना
ये व्याहारास्तेषु मा सशयो भूत् । (उत्तर० ४) ।
- ५—जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुर ।
अगृध्रु राददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत् ॥ (रघु० १) २१ ।
- ६—अधिगतपरमार्थान् पढितान् मावमस्थास्त्रुणामिव लघुलक्ष्मी

नैव तान् सरुणद्धि । (भर्तृहरि० नीति ०१७) ।

७ - चडवर्मा प्राणैरेन न व्ययूयुजत् । अपि त्वनीयदपनीताशेष-
शल्यमकल्पमवो बन्धनगृहमजीगणञ्च गणकसधैरघैव क्षपाव-
माते विवाहनीया राजदुहितेति । (दशकुमार ० २।१) ।

८—दिश प्रसेदुर्मरुतो ववु सुखा
प्रदक्षिणार्धिर्हविरग्निमददे ।
वभूव सर्वं शुभशसि तत्क्षणम्
भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ॥ (रघु० ३।१४) ।

९ - मा भूदाश्रमगोडैति परिमेयपुर सरो ।
अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव ॥ (रघु० १।३७) ।

१० - भूयस्तपोव्ययो मा भूद्वाल्मीकेरिति सोऽत्यगात् ।
मैथिली तनयोद्गीत निम्पद मृगमाश्रमम् ॥ (रघु० १५।३७) ।

११—क्षौत्र्य मास्मगम पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्र हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परतप ॥ (भगवद्गीता १।३) ।

सस्कृत में आनुवाद कीजये—

१—जब मे ने जाना कि नीद मे बड़बड़ाते हुए मुझे मेरे मित्रों ने सुन
लिया है तो मै लज्जित हो गया ।

२—इस विषय में चिन्तित न होओ, तुम्हारी अनुपस्थिति में मेरे पिता जी
तुम्हारे पुत्र की देख रेख रखेगे ।

३—कभी धमशस्त्रविषयक बातें करते हुए, कभी चित्र खींचने में
सलग्न होकर उसने सारा दिन अपने मित्रों की मण्डली में
बिता दिया ।

४—तुमने मेरी पुस्तक क्यों बरबाद करदी ? नहीं, महाशय जी, मैंने उसे
देखा तक नहीं ।

- ५—जब मैं उनसे मिलने गया तो मैंने उन्हें घर पर नहीं पाया ।
- ६—मेरे पिता जी ने पूर्वजों की सारी सम्पत्ति बँट दी है ताकि हम लोग बाद में एक दूसरे से झगडा न करें ।
- ७—सभी आश्रमों के चारों ओर राजा ने अपने रत्नों को स्थापित कर दिया है ताकि ऋषि लोगों की तपस्या में कोई बाधा न पड़े ।
- ८—मैं यह देखकर प्रसन्न हूँ कि गरीबों की दशा सुधारने में तुम्हारे सारे प्रयत्न सफलीभूत हुए ।
- ९—वादी के सारे गवाह आ गए हैं, अतः अब मुकदमे की सुनवाई आरम्भ होनी चाहिए ।
- १०—कई वर्षों तक आखेट करने में अपना जीवन बिताकर अन्त में वह अकस्मात् एक विकराल व्याघ्र के मुख में जा गिरा ।



विंशतितम पाठ

दोनों भविष्य काल तथा क्रियातिपत्ति

२१२—संस्कृत में भविष्यकालिक क्रिया का बोध कराने के लिए दो भिन्न भिन्न लकार हैं—(१) अनद्यतन भविष्य (लुट्) और (२) सामान्य भविष्य (लृट्)। दोनों में अन्तर वही है जो अनद्यतनभूत और सामान्यभूत में, सिवा इसके कि अनद्यतनभूत और सामान्यभूत भूतकाल से सम्बन्ध रखते हैं और अनद्यतनभविष्य और सामान्यभविष्य भविष्य काल से सम्बन्ध रखते हैं, अर्थात् लुट् लकार (अनद्यतन भविष्य) ऐसी क्रिया का बोध कराता है जो आज न होगी, और लृट् लकार (सामान्य भविष्य) साधारणतया सभी प्रकार की भविष्य क्रियाओं का—हाल में भी होने वाली भविष्य क्रियाओं का—बोध कराता है।

इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकला कि अनद्यतनभविष्य आज न होने वाली किसी दूर्वर्ती भविष्यकालिक क्रिया का बोध कराता है।

सामान्यभविष्य अनिश्चित भविष्य काल—आज का भविष्य काल, हाल का भविष्य काल और निरन्तर भविष्य काल—का बोध कराने में प्रयुक्त होता है, जैसे, पचषैरहाभिर्वयमेव तत्र गन्ताः (सुद्रा०५)—हम लोग स्वयं ही पाँच-छः दिनों में वहाँ जायेंगे। एते... उन्मूलितारः कपिकेतनेन (किरात०३। २२)—वे लोग कपिध्वज अर्जुन के द्वारा नष्ट

कर दिए जायेंगे। यास्यत्यद्य शकुन्तला (शकु ०४)—शकुन्तला आज बिदा हो जायगी। मेविष्यन्ते नयनसुभग खे भवन्त बलाका (मेघ ०६)—आकाश में, नेत्रों को सुन्दर लगने वाले तुभ (मेघ) को बहूले सेएँगे।

ग्रन्थकारों ने इन दोनों लकारों के प्रयोग में इतनी मनमानी नहीं की है जितनी अनद्यतनभूत, परोक्षभूत और सामान्यभूत के प्रयोग में। अनद्यतनभविष्य बहुत कम प्रयोग में आता है। इसका प्रयोग सुदूरवर्ती भविष्य (आज का भविष्य नहीं) का बोध कराने में और सामान्यभविष्य का प्रयोग किसी भी आनिश्चित भविष्य काल का बोध कराने में होता है।

२१३—जब किसी भविष्य क्रिया की अत्यंत घनिष्ठ समीपता दिखानी होती है, तो वर्तमान अथवा भविष्य कोई भी प्रयोग में लाया जा सकता है, जैसे, कदा गमिष्यमि—एष गच्छामि गमिष्यामि वा (सि० कौ०)—कब जाओगे ? अभी जाऊँगा।

२१४^१—जब समययुक्त (conditional) वाक्य में आशा प्रकट की जाती है, तब भविष्य काल का बोध कराने के लिए सामान्यभूत, वर्तमानकाल, या सामान्यभविष्य कोई भी प्रयोग में लाया जा सकता है, जैसे, देवश्चेदवर्षाद्, वर्षात्, वर्षिष्यति वा धान्यमवाप्स्यमि वषामो वष्यामो वा (सि० कौ०)—यदि वर्षा होगी तो नाज बोवेगे।

२१५—कभी कभी जब किसी से कोई कार्य करने के लिए विनम्रानुपूर्वक कहा जाता है तब लोट के अर्थ में सामान्यभविष्य प्रयोग में आता है, जैसे, तदा मम पाशाश्छेत्स्यासि (हितोप०)—बाद में मेरा जाल काट देना। पश्चात् सरः प्रति गमिष्यति मानस तत् (विक्रमो०)।

२१६—जहाँ क्रिया का न होना या न किया जाना दर्शाना होता है वहाँ क्रियातिपत्ति (लृट्) का प्रयोग होता है। या जहाँ पर पूर्वगामी उपवाक्य की असत्यता दर्शाई जाती है वहाँ भी क्रियातिपत्ति का प्रयोग होता है। पूर्वगामी उपवाक्य (Antecedent) और अनुगामी उपवाक्य (Consequent) दोनों में क्रियातिपत्ति के रूप लाए जाने चाहिए, जैसे, यदि सुरभ्रमवस्थन्मुखाच्छ्वाग्मगन्धम्, तत्र रतिर्भवति पुण्डरीके किमग्निम् (विक्रमो० ४)—यदि तुमने उसके साँस की सुगन्धि पाई होती तो क्या तुम्हारे मन में इस कमल के प्रति ज़रा भी रुचि हुई होती।

भट्टि ने क्रियातिपत्ति का प्रयोग बड़े व्यापकरूप में किया है, पर संस्कृत-ग्रन्थकारों की परम्परा में उसको कहीं भी समर्थन नहीं मिलता।

संस्कृत में क्रियातिपत्ति का प्रयोग ऐसे स्थलों पर नहीं किया जाना चाहिए जहाँ केवल यह दर्शाना हो कि अमुक कल्पित दशा में इस-इस प्रकार का परिणाम पैदा होगा, जैसे, यदि वह यहाँ होता तो वीरतापूर्वक अपने देश की रक्षा करता—यदि साऽत्र सन्निहता भवेत्तर्हि स्वदेशं वारवद् रक्षेत्।

कालों तथा वृत्तियों के प्रयोग पर कुछ और विचार

२१७—वर्तमान, भूत तथा भविष्य के भिन्न भिन्न रूपों के विवरण तथा उनकी जटिलताएँ संस्कृत में नहीं मिलतीं। एक प्रधान काल होता है और भिन्न-भिन्न रूप उसी काल द्वारा प्रकट किए जाते हैं। इसी लिए संस्कृत के विद्यार्थियों को इन कालों के भिन्न भिन्न रूपों का ठीक उन्हीं के समकक्ष संस्कृत लकारों द्वारा अनुवाद करने में बड़ी अड़चन पड़ती है। निम्नलिखित सेक्शनों में इस विषय पर कुछ नियम दिए जाते हैं और पूर्वगामी तीन पाठों में जो कुछ लिखा गया है, इनमें उसी का अधिक विस्तार के साथ निरूपण किया गया है।

वर्तमान, भूत तथा भविष्य

२१८—जैसा कि पहिले ही कहा जा चुका है, संस्कृत का वर्तमान काल बहुत से उन्हीं अर्थों का बोध कराता है जिनका अंग्रेजी का वर्तमान काल (सेक्शन १८६)। अतीत कालिक क्रिया से सम्बन्ध रखने वाले तीनों भूतकालों में से किसी भूतकाल के द्वारा भूतकालिक क्रिया प्रकट की जा सकती है। भविष्यकालिक क्रिया साधारणतया दोनों भविष्य कालिका रूपों द्वारा प्रकट की जाती है, हाँ, कभी कभी विधिलिङ् द्वारा भी प्रकट की जाती है। (सेक्शन १८८)।

२१९—सातत्यबोधक अथवा नेरन्तय-बोधक (Continuous) रूपों का अनुवाद संस्कृत में केवल सामान्यरूपों द्वारा किया जा सकता है। सातत्य-बोधक वर्तमान काल (Present Continuous), सातत्यबोधक भूतकाल (Past Continuous), और सातत्य बोधक भविष्यकाल (Future Continuous)—इतने सातत्यबोधक काल होते हैं। 'वह अपना पाठ पढ़ रहा है' का अनुवाद "स पाठमधीते" होगा, न कि 'साऽधीयानोऽस्ति'। सातत्यबोधक वर्तमान (Continuous form) वस्तुतः अथवा सच्चे अर्थों में वर्तमानकाल है (बेनकृत व्याकरण पृष्ठ १८६)। "इस समय लड़के खेल रहे हैं" का अनुवाद 'बालका अयुना क्रीडन्ति' होगा। "सूर्य चमक रहा था" का अनुवाद "विरतपत्" होगा (न कि तपन्नासीत्)। "वह पाठ तैयार करता रहेगा" का अनुवाद "स पाठ मध्देऽयत्" होगा।

विशेष—सेक्शन १४५ में जैसा नियमित सातत्य (regular Continuity) बताया गया है, वैसा नियमित क्रियासातत्य जहाँ प्रकट करना अभीष्ट होता है वहाँ आप् धातु में शानच् जोड़ कर काम चलाते हैं। जब ये सातत्यबोधक रूप (Continuous forms) आश्रित वाक्यों में आते हैं तब शत्रन्त तथा शानजन्त की भावसतभी का रूप

बड़े मजे में प्रयोग में लाया जा सकता है। 'जब मंत्री बोल रहा था, उस समय सभा में एक दूत ने प्रवेश किया' का अनुवाद 'भाषमाणेऽमात्ये कश्चिद् दूत सभा प्राविशत्' होगा।

२२०—बलबोधक रूपों (Emphatic forms) का अनुवाद पव, नूनम्, खलु अथवा ऐसे ही किसी निश्चयबोधक शब्द को साधारण रूपों के साथ जोड़कर कर सकते हैं, जैसे, "मैं तुम्हें अपराधी समझता तो हूँ" का अनुवाद अहं त्वामपराधिनं मन्ये खलु-।४ अथवा नूनमहं त्वामपराधिनमन्ये। "उसने असत्य भाषण तो किया" का अनुवाद "सोऽसत्यमभाषत ए-खलु।"

पूर्ण तथा उसके सातत्य बोधक रूप

Perfect and its Continuous Forms

२२१—पूर्ण वर्तमान (Present Perfect) की क्रिया लुङ् लकार (सामान्यभूत) अथवा क्तवतु द्वारा प्रकट की जाती है, जैसे, 'जो कुछ पाप मैंने दिन में किया है' का अनुवाद 'यद्द्वि पापमि धर्म' होगा। "मैंने अपना काम कर डाला है" का अनुवाद 'अहं स्वकार्यं सम्पादितवान्' होगा। कभी-कभी अनद्यतनभूत द्वारा और कभी-कभी परोक्षभूत द्वारा भी इसका अनुवाद किया जाता है, जैसे, "उसने अपना भाषण समाप्त कर दिया है" का अनुवाद 'स भाषणमवसिन्नवान्' अथवा भाषणाद् व्यरसीत् अथवा व्यरमन् अथवा विरराम।

२२२—आश्रित वाक्यों में आने वाले पूर्णभूत भावसप्तमी द्वारा प्रकट किए जाते हैं, जैसे, "जब वह विदा हो गया तब मैं लौटा" का अनुवाद तस्मिन्मपक्रान्ते ऽहं प्रत्यागच्छम् होगा। 'जब मैं अपना पाठ पढ़ चुका तब पाठशाला गया' का अनुवाद 'पाठानधीत्य शालामगच्छम्' होगा। कभी-कभी केवल क्त और क्तवतु द्वारा अनुवाद होता है, जैसे, ऐसा कह चुकने वाले से मैंने कहा—अब जाओ—इत्युक्तवन्तं वृज्

माधयेत्यदमब्रूम । जो क्षत हो चुका था उसको उसने अच्छा कर दिया—स तमचिकित्सत ।

२२३—धातु में क्त और क्तवतु लगाकर भू धातु के विधिलिङ् के रूप द्वारा अथवा कर्म वाच्य या भाव वाच्य द्वारा पूर्ण भविष्य प्रकट किया जा सकता है । वह वहाँ अब तक चला गया होगा—अनन समयन स तत्र गत। भवेन् अथवा तेन तत्र गन्तव्यम् ।

२२४—पूर्ण सातत्यबोधक रूपों (Perfect Continuous forms) के उदाहरण ये हैं—मैं करता रहा हूँगा, मैं करता रहा था, मैं करता रहा हूँ । इनका अनुवाद तीन प्रकार से किया जा सकता है (१) काल वाचक शब्दों के साथ साधारण लकारों का रूप रख कर, जैसे, तच्चिन्निवन्त (दर्पचरित) (१) आस्, वस्, अथवा स्या (सेक्शन १४५) के सदृश (Corresponding) लकारों के रूपों के साथ शत्रन्त और शानजन्त शब्द रखकर, जैसे, गत। भाग्यवत्तर प्रताक्ष-मण्मन्स्यौ (काठ) अथवा (३) शत्रन्त और शानजन्त की षष्ठी का रूप चलाकर और कर्ता को भी षष्ठा में रखकर, जैसे, मैं इसे तीन दिन से करता रहा हूँ—इदं कुर्वन्तो मम दिनत्रयं जानम् । वह वहाँ कितने समय तक ठहरता रहा था—तत्र स्थितस्य तस्य कियान् कालो व्यतीतः ।

२२५—बढ़ करने जा रहा है या वह करने वाला है, वह करने वाला था, वह करने वाला होगा—ऐसे वाक्यों का अनुवाद तुमुनन्त के साथ काम या मनः जोड़कर किया जाता है (सेक्शन १८६), जैसे, कर्तुं कामोऽन्ति-बभूव-भविष्यान् वा । आश्रित वाक्यों में इनका अनुवाद स्थवृ स्थमान द्वारा भी किया जा सकता है, जैसे, जब वह जाने वाला था तो मैंने उससे इस प्रकार कहा—गामिष्यत अथवा गन्तुकाम तमहमवाचम् ।

Will and Shall

गा, गी, गे,

२२६—साधारण भविष्यकाल का बोध कराने वाला उत्तम पुरुष के साथ Shall (गा) तथा मध्यम और प्रथम पुरुष के साथ Will सामान्य भविष्य अथवा विधिलिङ् द्वारा अनूदित किया जा सकता है, जैसे, मैं इसे करूँगा—अहं तत् कुर्याम् अथवा करिष्यामि । वह वहाँ जायगा—स तत्र गच्छेत् अथवा गमिष्यति ।

२२७—दृढ़ सकल्प अथवा इच्छा का बोध कराने वाला Will उत्तम पुरुष के साथ आने पर इच्छार्थक वातुओं के वतमान काल द्वारा अथवा एव या इसी प्रकार के निश्चय-बोधक शब्दों को सामान्यभविष्य के रूपों के साथ लगा कर अनूदित किया जा सकता है, जैसे, I will do it—अहं तत् तु निश्चिन्नाम अथवा अहं तत् करिष्याम्येव । Even if death be the result, I will do it—यद्यपि तत् मृत्युपर्यन्तमायि भवेत् तथापि अहं तत् कारिष्याम्येव ।

२२८—मध्यम पुरुष तथा प्रथम पुरुष के साथ आने वाले Shall से वक्ता की आज्ञा, धमनी अथवा अनुज्ञा-निश्चय प्रकट होता है । ऐसे वाक्या का अनुवाद विधिलिङ् द्वारा अथवा आज्ञापय्—सरीखे किसी आज्ञार्थक शब्द द्वारा, अथवा वातु के प्रेरणार्थक रूप के भविष्य काल के साथ, वक्ता को प्रेरणार्थक का कर्ता बना कर किया जाता है, जैसे, The son shall obey his father—पुत्रः पितुराज्ञामनुष्येत् । Thou shalt go to the castle—का अर्थ है I command thee to go to the castle—दुर्गं गन्तुं त्वामाज्ञापयामि* । He shall do it अहं तत् तत् कारयिष्यामि अहं तत् गर्मायिष्यामि ।

अनुवादक की राय में यह प्रयोग अशुद्ध है—समानकर्तृकेषु तुमुनू सत्र का उल्लंघन होता है ।

कभी-कभी ऐसे वाक्यों का अनुवाद किया जाता है, तव्य, अनीयर
यत् एयन् प्रत्ययों के साथ एव, अवश्यम् आदि लगा कर, जैसे,
Thou shalt not kill him—त्वया स नैव हन्तव्य, Thou
shalt not move over a step from this place
—त्वयास्मात्स्थानात् पदात् पदमपि न दातव्यम् ।

(२) जब Shall से प्रतिज्ञा का बोध होता है तब किसी निश्चय-
बोधक शब्द के साथ विधिलिङ् अथवा सामान्यभविष्य का रूप रखकर
अनुवाद किया जा सकता है, जैसे, He shall be my prime
minister—स मम प्रधानसचिवो भवेत् (भविष्यति) इत्यह
निश्चयेन कथयामि अथवा त प्रधानसचिव करिष्याम्येव ।

२२६—अप्रत्यक्ष कथन (Indirect Speech) में आया हुआ
Shall सभी पुरुषों के साथ साधारण भविष्य काल का बोध कराता है
और सामान्य भविष्य अथवा विधिलिङ् द्वारा अनूदित किया जा सकता
है, जैसे, You say you shall do it—वय तत् करिष्यामः कुर्याम
वा इति यूय भणथ ।

कर्ता का दृढ सकल्प प्रकट करने वाला तथा सभी पुरुषों के साथ
प्रयुक्त हाने वाला Will सेक्शन २२७ में बताई हुई विधि द्वारा
अनूदित किया जा सकता है, He says he will write—
अहमवश्य लेखिष्यामीति वदति ।

२३०—प्रश्नवाचक वाक्यों में, उत्तमपुरुष को छोड़ कर सभी पुरुषों
के साथ आने वाले तथा प्रष्टव्य पुरुष की इच्छा प्रकट करने वाले Will
और Shall का अनुवाद लोट् अथवा विधिलिङ् द्वारा किया जा
सकता है । जब वाक्य के कर्ता की इच्छा दिखलाना अभीष्ट हो तब
इच्छार्थक घातुओं के द्वारा अनुवाद किया जाता है । Shall I or he
go ?—गच्छयाम् किम् अथवा गच्छानि किम्, गच्छेत् किम्, गच्छतु
किम् । Shall you go ? गच्छेत किम् अथवा गन्तुं शक्नुमः

किम् । Will you or he go ?—गन्तुमिच्छथ किम् अथवा गन्तुमिच्छति किम् ।

परन्तु जब will प्रश्नवाचक वाक्यों में आता है और साधारण भविष्य काल का बोध कराता है तब वह सामान्यभविष्य द्वारा अनूदित होता है, जैसे Will he go there ? तत्र गमिष्यति इति । Will you come to my house ? मम गृहमागामिष्यथ किम् ।

Should and Would

२३१—अतर्कितोपपन्न अथवा आपातिक (Contingent) भविष्य काल, कर्तव्यता अथवा धर्म का बोध कराने वाले Should का अनुवाद विधिलिङ् (सेक्शन १६३) अथवा कृत्यप्रत्ययों से होता है । परन्तु जब चाहिए Should से कोई सन्देह अथवा अविश्वास सूचित होता हो तो 'इति मे वितर्कः' अथवा 'इति' मे मति कद कर अनुवाद किया जाता है । उदाहरणार्थ I Should think so से अविश्वास प्रकट होता है ।

२३२—दैवयोग या यहच्छा (Contingency) अथवा इच्छा बोध कराने वाले Would का अनुवाद विधिलिङ् द्वारा होता है (सेक्शन १६८) । जब Would से किसी स्वाभाविक या आभ्यासिक कार्य (habitual action) का बोध होता है तो केवल वर्तमान काल का प्रयोग होता है, जैसे, काल नयान—अपना समय व्यतीत किया करता था । पातु न प्रथम व्यवस्थिति जलम (शकुं०४)—वह पहिले जल नहीं पीती थी । यदि वह यहाँ उपस्थित हुए होते तो क्या ही अच्छा हुआ होता—याद सोऽत्र सनिहतः स्यान् तर्हि अहा शोभन भवेत् ।

(क) प्रश्नवाचक वाक्यों में आने वाले Would और Should का वैसा ही अनुवाद किया जाता है जैसे Will और Shall का, जैसे, Should I or he go out ? बहिर्गच्छेयम्—गच्छानि किम्

(गच्छेत् अथवा गच्छतु किम्)। Would you do this ?
यूयमेतत् करिष्यथ किम् अथवा कर्तुमिच्छथ किम्।

May (might) and Can (could)

२३३—सम्भावना, स्वीकृति, अभिप्राय का बोध कराने वाला may विधिलिङ् से अनूदित होता है, जैसे, अक्षौर्दिव्ययमिति प्रत्यहमत्रायामि—यहाँ मैं प्रतिदिन इस लिए आता हूँ कि जुआ खेलूँ (अभिप्राय सूचित करता है)। परन्तु जब may से इच्छा का बोध होता है तब वह विधिलिङ् अथवा आज्ञा अथवा आशीर्वाद से अनूदित होता है।

२३४—Can (could) सकृन्—शक्ति का बोध कराता है, न कि स्वीकृति का। प्रधान क्रिया में तुमुन् जोड़कर तथा सकृन्-अर्थ वाली किसी क्रिया का प्रयोग कर के इसका अनुवाद किया जाता है, जैसे, मैं इसे कर सकता हूँ—तत् कर्तुं शक्नोमि—पारयामि—समर्थ वा।

२३५—Might का अनुवाद साधारणतया विधिलिङ् से होता है, जैसे It might be so—ऐसा हो सकता है—एव स्यात्। कभी कभी कृत्य प्रत्यय द्वारा अनुवाद करते हैं, जैसे He might be my friend—सम्भव है वह मेरा मित्र हो—कदाचिदनन मम मित्रेण भवितव्यम्।

(क) यदि पूर्णकाल (Perfect tense) के साथ आया हुआ might सम्भावना सूचित करता हो तो वह विधिलिङ् अथवा क्त प्रत्यय द्वारा अनूदित होता है, जैसे, He might have done it—सम्भव है उसने यह कार्य किया हो—तेनैतन् कृत स्यात्-कृतव्यम्। इसी प्रकार I could have done it—मैं इसे कर सका होता—मयैतत् कर्तुं शक्यमासीत् (किन्तु न कृतम्)।

Must and Ought

२३६—प्रावश्यकता, बाह्य शक्ति, निश्चय अथवा अवश्यम्भावो परि-

एगाम का बोध कराने वाला must सर्वदा कृत्यप्रत्यय द्वारा अनूदित होता है, जैसे, You must go त्वया गन्तव्यम् । He must obey me—अहं ते नानुरोद्धव्यः ।

२३७—Ought भी उसी प्रकार अनूदित होता है, जैसे, You ought to learn it—त्वयेद् (अवश्यम्) अध्येतव्यम् । कभी कभी तुमुनन्त के साथ अर्ह्न् धातु के रूप जोड़ देते हैं, जैसे, इदमध्येतुमर्हसि ।

पूर्णकाल (Perfect tense) के साथ आए हुए must और ought का अनुवाद क्त प्रत्ययान्त के साथ विधिलिङ् का रूप जोड़कर अथवा कृत्य प्रत्यय से किया जाता है, जैसे He must have come home—स गृहमागतो भवेत् अथवा तेन गृहमागन्तव्यम् । एवमनया प्रवृत्तव्यम् (मालविका ० ४)—उसको तुमसे ऐसा पूछना चाहिये था । इद् त्वया मह्य कथायतव्यम्—तुम्हें मुझसे यह बात कह देनी चाहिये थी ।

२३८—मैं आज्ञा देता हूँ कि उसे फाँसी दे दी जाय, मैं आशा करता हूँ कि मैं इस काय में कृतकार्य होऊँ, उमे बचाओ, कहीं ऐसा न हो कि उसका विकार बढ़ जाय—इन वाक्यों में दे द जाय, होऊँ, और बढ़ जाय क्रियाएँ ध्यान देने योग्य हैं । ऐसे वाक्यों का अनुवाद विधिलिङ् अथवा लोट् से किया जाता है । उपर्युक्त वाक्यों का अनुवाद क्रमशः इस प्रकार होगा—स शूलमारोप्येत अथवा स शूलमारोप्यताम् इत्यहमाज्ञापयामि । अस्मिन् कार्ये विजयी भवत्यमित्याशसे अथवा अपि नाम विजयी भवेयम् (सेक्शन २०३) परित्रायतामेना भवान् । मा अस्या विकारो वर्धताम् ।

२३९—सोपाधिक वाक्यों (Conditional sentences) में जिनमें दोनों ही उपवाक्यों में वर्तमान काल प्रयुक्त रहता है, हेतुहेतुमद्भूत (Subjunctive) का अनुवाद सेक्शन २०६ के अनुसार किया जा सकता है, जैसे, यदि तुम जाते हो, तो मैं जाता हूँ—यदि यूय गच्छथ

(गमिष्यथ अथवा गच्छेत), तर्हि अहं गच्छामि (गमिष्यामि अथवा गच्छेयम्) । यदि वृष्टि होती है तो हमलोग बाहर नहो जा सकेंगे—याद् देवा वर्षन्तु (वर्षात वर्षिष्यति वा) तर्हि वयं बहिर्गन्तु न शक्नुयाम (शक्याम) ।

२४०—यदि हेतु-हेतुमद्भूत (Subjunctive Mood) भूतकाल के साथ आवे तो दोनों उपवाक्यों में विधिलिङ् का प्रयोग किया जाता है, जैसे If he were here he would accompany me—यद्यः स भवन् तन्मया महागच्छेत् ।

परन्तु जब भूतकालिक हेतु हेतु मद्भूत से प्रत्ययान अथवा पूर्वगामी उपवाक्य का मिथ्यात्व सूचित होता है तो विधिलिङ् कदापि नहीं आवेगा, बल्कि क्रियातिपत्ति आवेगी (सेक्शन २१६), जैसे, If the book were in the library (as it is not), it should be given to you—यद्दत्तपुराक ग्रन्थालयेऽभिहितं तद् युष्मभ्यन् अदास्यत ।

ऊपर लिखे हुए पूरे विवरण को पढ़ने से यह निष्कर्ष निकलता है कि हेतु-हेतु मद्भूत (Subjunctive Mood) का प्रयोग तीन प्रकार से होता है—

- (१) If the book is (as I know it is) in the library, you may take it
- (२) If it be (I am uncertain) there, you may take it.
- (३) If it were (as I know it is not) there, you might take it

प्रथम दो का अनुवाद वर्तमानकाल अथवा विधिलिङ् द्वारा किया जायगा । तीसरे का अनुवाद क्रियातिपत्ति द्वारा होगा ।

२४१—Pluperfect Conditional को सर्वदा क्रियातिपत्ति से सूचित करते हैं (सेक्शन २१६) ।

अभ्यास

१—तदाकर्ण्य ढमनकरिचन्तयामास । युद्धाय कृतनिश्चयाऽय
दृश्यते दुरात्मा । तद् यदि कदाचित्तीक्ष्णशृङ्गाभ्यां स्वामिन
प्रहरिष्यति तर्हि महाननर्थं सम्पत्स्यते । (पचतत्र १) ।

२—युवराज, किं न जितं देवेन तारापीडेन यद् जेष्यसि । कानि
द्वीपान्तराणि नात्मीकृतानि यान्यात्मीकरिष्यसि । कानि
रत्नानि नोपार्जितानि यान्युपार्जयिष्यसि । (कादम्बरी) ।

३—तौ चेद्राजपुत्रौ निरुपद्रवाववर्धिष्येतामियता कालेन तवेमा
वयोवस्थामस्प्रक्ष्येताम् । (दशकुमार० २।३) ।

४—तया देवतयास्मै स्वप्ने समादिष्टम् । उत्पत्स्यते तवैक पुत्रो
जनिष्यते चैका दुहिता । स तु तस्या पाणिग्राहकमनुजीवि-
ष्यति । (दशकुमार २।६) ।

५—गामधास्यत् कथं नागो मृणालमृदुभिः फणैः ।

आरसातलमूलात्त्वमवालंबिष्यथा न चेत् ॥

(कुमार० ६।६८)

६—राजन्प्रजासु ते कश्चिदपचारं प्रवर्तते ।

तस्मिन्विष्य प्रशमये भवितासि ततः कृती ॥ (रघु० १५।४७) ।

७—अकरिष्यदसौ पापमतिनिष्करुणैव सा ।

नाभविष्यमहं तत्र यदि तत् परिपथिनी ॥ (मालती० ६) ।

८—सिद्ध्यंति कर्मसु महत्त्वपि यन्नियोज्या,

सम्भावनागुणमवेहि तमीश्वराणाम् ।

किं वाऽभविष्यदरुणस्तमसां विभेत्ता

तं चेत् सहस्रकिरणो धुरि नाकरिष्यत् ॥

(शकुं० ७) ।

९—भागुरायण.—कुमार, न कदाचिदपि शकटदासोऽमात्यराज्ञ-

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

- १—समस्त प्रजा को सूचित कर दिया जाय कि आज से चन्द्रगुप्त स्वयं ही राज्य के सारे कार्यों की देखभाल करेंगे ।
- २—यदि तुम केवल प्रयत्न करो तो तुम अपना अभीष्ट मनोरथ प्राप्त कर लोगे ।
- ३—ऋषि ने कहा—यह सब आने वाले कलियुग में होगा और लोग नाना प्रकार के पाप करेंगे ।
- ४—यदि बाल्यकाल से ही सावधानी के साथ वह लड़का पाला पोसा गया होता तो, मुझे पूर्ण विश्वास है, अब तक वह इस लड़के के समान बड़ा हो गया होता ।
- ५—ऐश्वर्य के दिनों में मनुष्य के सैकड़ों मित्र हो जाते हैं परन्तु विपत्ति में वे त्याग देते हैं ।
- ६—यदि अपराधियों को दण्ड देने में राजा शीघ्रता न करता तो बलवान् लोग निर्बलों को सता डालने ।
- ७—यदि तुम और गोपाल यहाँ होते तो तुम उस भयंकर दृश्य का देखना सहन न कर सकते ।
- ८—एक बारहसिंगे ने एकवार अपने मन में कहा—यदि मेरी टाँगें मेरी सींगों के समान होती तो इस पृथ्वी पर कोई भी पशु सौन्दर्य में मेरी तुलना न कर सकता ।
- ९—यदि राम ठीक उस समय पर न गए होते तो सारा घर जल गया होता ।
- १०—यदि मैं उस समय बिल्कुल तटस्थ न रहा होता तो मैं महाराज के भोव का भाजन हो गया होता ।

- ११—यह असम्भव है कि अब वह लौटकर आवेगा और हम लोगों के साथ आनन्दपूर्वक समय बितावेगा ।
- १२—जिस उत्साह से मैं ने राजा की सेवा की यदि उसके आगे उत्साह से भी परमात्मा की सेवा की होती तो उसने मुझे नग्न कर मेरे शत्रुओं के हाथों में न सौंप दिया होता ।
-

एकविंश पाठ

अग, अय, अधिकृत्य, अपि, अयि, अये, अहह, अहो

२४२—पाणिनिको अष्टाध्यायी, अमरकोश तथा वर्धमानकृत गण-
रत्न महोदधि में अव्यय के अन्तर्गत बहुत से शब्द गिनाए गए हैं।
उनमें से बहुतेरे संयोजक का काम देते हैं। उनके अर्थों को ठीक ठीक
समझ लेना आवश्यक है। जो अव्यय प्रायः काम में आते हैं उनपर इस
पाठ में तथा आगामी सात पाठों में विचार किया जायगा।

२४३^१—अग शब्द सम्बोधन करने के काम में आता है, जैसे, तन्मन्ये
कचिदग भृगतर्गुणैनाम्बादिता मातृती (गणरत्न महोदधि)—श्रीमन्,
इसीलिए मैं समझता हूँ कि मालती पुष्प कहीं पर किसी तरुण भ्रमर द्वारा
आस्वादित कर लिया गया है। व्रजजनौकसां व्यक्तिरग ते, वृजिनहन्त्र्यलं
विश्वमंगलम् (श्रीमद्भागवत दशस्कन्ध पूर्वार्ध-इकतीसवाँ अध्याय
श्लोक १८)। अग क चचत् कुरालो तात (काद०)। प्रभुगपि जनकाना-
मग भो याचकस्ते (महावीर चरित ३)।

कभी-कभी अग शब्द आदर या श्रद्धा दिखलाने के लिए आता है,
जैसे, अग विद्वन्मणवक मध्यापय (गणरत्न महोदधि)—ऐ विद्वान्
महापुरुष, माणवक को पढाइए।

(क) कभी कभी अग 'किम्' के साथ आता है और प्रायः उसी अर्थ में प्रयुक्त होता है जिसमें किमुत अथवा किम्पुन, जैसे, तृणेन कार्यं भवतीश्वराणां । कमग वाग्धन्वता नरेण (पचतत्र १।१)—धनी लोगों का तृण से (भी) काम पड़ जाया करता है, अगर वाणी तथा हाथों से युक्त मनुष्य की तो क्या कहना है ।

२४४—अथ इन अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है—(१) मगल का चिह्न, अथातो ब्रह्माज्ज्ञामा (शकरभाष्य)—अब इसके आगे ब्रह्म के बारे में विवेचन । (२) किसी वक्तव्य या कथन के प्रारम्भ में, अथदमारभ्यते । द्वितीय तन्त्रम् (पचतत्र) —अब दूसरा तन्त्र आरम्भ होता है । (३) इसके बाद या तब के अर्थ में, अथ प्रजानामधप प्रभात वनाय धेनुं ममोच (रघु० २।१)—इसके बाद नराधिप ने प्रातः काल गाय को बन जाने के लिए खोल दिया या छोड़ दिया । प्रायः इसी अर्थ में यदि अथवा यद् का इतरेतरसम्बन्धी (correlative) बनकर आता है, न चेन्मुनिकुमारोऽपमथ काऽस्य व्यपदेशः (शकु ०७) । (४) प्रश्न पूछने में, अथ शक्तोऽसि भक्तुम् (गणरत्नमहोदधि) ।

प्रायः प्रश्नवाची शब्द के साथ ही अथ आता है, अथ सा । कम, खदस्य राजर्षे पत्नी (शकु ०७) । (५) 'और' तथा 'भी' के अर्थ में, मामाऽथाजुन (गणरत्नमहोदधि)—भीम और अर्जुन । गणितमथ कला काशिकाम् (मृच्छकाटक १)—गणित और कौशिकी कला भी । (६) 'यदि' के अर्थ में, अथ कौतुकमावेदयाम (काद) — यदि तुम्हें कौतुक है तो कहूँगा । अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः (वेणा ०३)—यदि मनुष्य की मौत होना निश्चित (अवश्यम्भावी) है । (७) साकल्य, पूर्णता ;

१—मगलान्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्यवथा अथ । (अ) अथोच स्यात् । समुच्चये ।

मगले सशयारम्भाधिकारान्तरेण च ।

अन्वादेशे प्रातिताया प्रश्नसाकल्ययोरपि ॥ (हे)

अथ धर्म व्याख्यास्यामः (गणरत्न महोदधि)—हम पूरा-पूरा धर्म वर्णन करेंगे । (८) सशय या अनिश्चय, शब्दो निःप्रयोजनान्त्य (गणरत्नमहोदधि)।

विशेष—कोशो मे अधिकार' अर्थ मे भा अथ का प्रयोग बताया गया है, जैसे, अथ समामः । परन्तु ऊपर लिखा हुआ (१) और (२) और अधिकार एक ही वस्तु है, क्योंकि वे सभी वाक्यारम्भ मे आते हैं । इसी प्रकार अन्वादेश और प्रतिज्ञा (affirmation, proposition) । अन्वादेश का अर्थ है—एक ही वाक्य में किसी शब्द का एक बार प्रयोग करके दोबारा प्रयोग करना ।

२४५—'अथकिम्' का अर्थ है—'और क्या', 'हाँ', 'ठीक ऐसी ही बात है', जैसे, शकार —चेट प्रवहणमागतम् । चेट —अथकिम् (मृच्छकटिक ८)—शकार—क्या गाड़ी आ गई । भृत्य—हाँ ।

(क)'अथवा' विभाजक के तौर पर प्रयुक्त होता है । परन्तु प्रायः किसी पूर्व कथन मे परिवर्तन करने के लिए या उसमें सशोधन करने के लिए 'अथवा' आता है, जैसे, दोर्ये कि न सहस्रधाहमथवा रामेण नि दुष्कम् (उत्तर०६,—मैं हजारों ठुकड़ों मे क्यों नहीं फट जाती, अथवा राम के द्वारा किस काम का किया जाना मुश्किल है ।

२४६—'अधिकृत्य' का अर्थ है "बारे मे" । इसके योग में द्वितीया आती है, जैसे, अथ कतम पुनर्ऋतुमधिकृत्य गास्यामि (शक० १)—किस ऋतु के बारे में गाऊँ ।

'उद्दिश्य' का अर्थ है "बारे मे", 'तरफ' स्वपुरमुद्दिश्य प्रतस्थे (हितो०४)—वह अपने नगर की तरफ खाना हो गया । किमुद्दिश्यामी ऋषयो मत्प्रकाश प्रेषिता स्युः (शक०५)—किस उद्देश्य से ये ऋषि जोग मेरे पास भेजे गए होंगे ।

२४७^१—अपि के ये अर्थ होते हैं—(१) यद्यपि, चाहे—पातितोऽपि कराघातै (भर्तृहरिनीति श्लोक ८५)—यद्यपि हाथ के प्रहारों से गिरा दिया जाता है तब भी । (२) भी—इयमधिकमनोज्ञा बलकलेनापि तन्वी (शकु ११)—यह पतले शरीर वाली कन्या बलकल पहिनने पर भी बहुत सुन्दर लगती है । (३) और भी, राजा प मुनिवाक्यमगीकृत्यातिष्ठत् (दशकुमार १११)—और राजा भी ऋषि की बात मान कर ठहर गए । विष्णुर्मणापि राजपुत्राः पाठिताः (पञ्चतन्त्र १—और विष्णुशर्मा ने भी राजपुत्रों को पढ़ाया । अपि सिच अपि स्तुति (सि० कौ०)—सीचो और स्तुति करो । अस्मि मे सोदरस्नेहोपेतेषु (शकु ०१)—मेरे हृदय में इन के प्रति सगों-जैसा स्नेह भी है । ४) प्रश्न पूछने में भी अपि आता है, पर इस दशा में वह वाक्य के आरम्भ में आता है, जैसे, अपि त गोबधते (शकु ०१)—क्या तुम्हारी तपस्या वृद्धि कर रही है । अप्येतत्तपावनम् (उत्तर ०२)—क्या यह तपोवन है । (५) सशय—अपि चागे भवेन् (गणरत्नमहोदधि)—क्या यह चोर तो नहीं है (अर्थात् मुझे इस विषय में निश्चयात्मक ज्ञान नहीं है) । (६) आशा, सम्भावना अर्थ में—अपि जीवेन् म ब्राह्मणशिशुः (उत्तर ०२)—आशा करता हूँ कि वह ब्राह्मणशिशु जी जाय ।

विशेष—आशा या सम्भावना अर्थ में अपि के साथ प्रायः नाम जुड़ा रहता है, जैसे, तदपि नाम रामचन्द्र. पुनरपि वनमलकुर्यात् (उत्तर ०२)—तो मैं आशा करता हूँ कि श्री रामचन्द्र जी फिर इस वन को (अपनी उपस्थिति द्वारा) सुशोभित करेंगे ।

तिप्पणी—‘अपि के’ और भी बहुत से अर्थ बताए गए हैं, जैसे

१—गर्हा समुच्चयप्रश्नशकासम्भावनास्वपि (अ)

अपि सम्भावनाप्रश्नशकागर्हासमुच्चये ।

तथायुक्त पदार्थेषु कामचार त्रियासु च ॥ (वि०)

गर्हा । निन्दा, धिग्देवदत्तमपि स्तुयाद् वृषलम् (मि० को०) — देवदत्त को धिक्कार है जो शूद्र की भी प्रशंसा करता है ।

‘पदार्थ’ अर्थ में भी अपि का प्रयोग होता है । पदार्थ का अर्थ है — किसी अप्रत्यक्ष यानी परोक्ष शब्द का अर्थ । सर्पिषोऽपि स्यात् (सि० कौ०) — घी का एक बूँद भी ।

कामचारक्रिया अथवा अन्यत्र ग (किसी का इच्छालुसार स्वीकृति दे देना), अपि स्तुह — यदि चाहे तो स्तुति कर सकते हो । अपि स्तुह अपि सेधाम्मास्तुष्टमक्त नराशन (भट्टि० ८।६२) ।

(क) सख्यावाची शब्दों के बाद अपि का ‘सम्पूणता’ अर्थ होता है, जैसे, मयै रणि राज्ञां प्रयजनम् (पंचतत्र । १) — राजाओं को सभी से मनलब्ध रहता है । इसी प्रकार - तूर्णामप वर्णानाम् — चारों वर्णों का ।

(ख) प्रश्नवाचक सर्वनामों और प्रश्नवाचक सर्वनाम-निष्पन्न शब्दों के अनन्तर जुड़ने पर अपि का अर्थ ‘कोई’ होता है और कभी-कभी अवर्णनीय अर्थ होता है । सेक्शन १३५ देखिए ।

(ग) यद्यपि — तथापि ये जोड़ी के शब्द हैं और साथ-साथ आते हैं ।

२४८ — अयि ‘ऐ मित्र’ के अर्थ में । नम्रता पूर्वक अथवा मृदु-लतापूर्वक सम्बोधन करने में प्रयुक्त होता है जैसे, अयि विवेक वशान्त-मभिहतम् । मालविका० १) — ऐ मित्र, तुमने विवेकहीन बात कही है । अयि मातर्देव्यऽनसम्भवे देवि सीते (उत्तर० ४) — देवताओं के पूजन से पैदा हुई ऐ प्रिय सीते । अयि जायतन य जीवस (कुमार ४०३) — ऐ प्राणनाथ क्या तुम जीवित हो ।

२४६ — अये प्रधानतया आश्चर्य का बोध कराता है, अये

भगवत्यरुन्धती—(उत्तर०५)—ओ हो, यह तो पूज्य अरुन्धती जी हैं ।
अये मय्येव भ्रुकुटीवर. स वृत्तः (उत्तर०५) ।

‘अये’ शोक खेद अथवा भय का भी बोध कराता है, अये देवपाद-
पद्म पञ्जीविनोऽवस्थेयम् (मुद्रा०२)—खेद है, महाराज के चरणकमलों
के नौकर की यह दशा है ।

२४०—^१अहह—१ हर्ष, आश्चर्य अथवा विस्मय और (२)शोक
अथवा बलवती वेदना का बोध कराता है । अहह महतां नि सीमान
चरित्रविभूतयः (भट्टरि नीति० श्लोक ३५) ओहो, महापुरुषों के चरित्र
का विभूति असीमित हानी है । अहह ठारुणो वज्रनिर्घात (उत्तर०२)
—हा काट, यह तो महा भयकर वज्रप्रहार है । अहह कष्टमपडितता
विधे (भट्टहरि वैराग्य १) — हाय रे ब्रह्माकी मूर्खता ।

२५१—अहो^२ सम्बोधन का शब्द है, जैसा अहो राजान—ऐ राजाओ ।
हर्ष अथवा विपादसूचक ‘आहा या ‘क्या ही’ के अर्थ में यह शब्द
विशेषणों तथा सजाओं के साथ भा आता है । अहो मधुरमासां कन्य-
कानां दर्शनम्—(शकु १) आहा, इन कन्याओं का दर्शन क्या ही सुख
कर है । अहो सर्वास्ववस्थास्वनय्यता रूपस्य । मालविका २०)—
आहा, हर दशा में सौन्दर्य की अनिन्द्यता । अहो विपाक (उत्तर०४)—
आ हो अवस्था का यह परिवर्तन । अहो उन्मीलन्ति वेदनाः
(उत्तर० ४) ।

(३) किसी वस्तु या व्यक्ति से अकस्मात् भेट हो जाने पर जो आश्चर्य
पैदा होता है उसका भी बोध कराने के लिए कभी-कभी अहो का प्रयोग
होता है, जैसे, अहो बकुलावलिका (मालविका० ४)—अरे, यह बकुला-
वलिका है ।

१—अहहेत्यद्भुते खेदे परिवर्तेश्च न प्रयोज्यम् । (मे०)

२—अहो धिगर्थे शोकं च कथयार्थविषययोः । सम्बोधने प्रशंसाया विस्मये
पादपूरणे ॥ (मे०)

अभ्यास

- १—अहो सर्वास्ववस्थासु चारुना शोभा पुप्यति । (मालविका० २) ।
 २—सर्वं कान्तमात्मीयं पश्यति । अहं तु तामेवाश्रमललामभूता
 शकृतलामधिकृत्य त्रवीमि । (शकु० २) ।
 ३—अहो दीप्तिमतोऽपि विश्वसनीयतास्य वपुषः । अथवोपपन्न-
 मेतदस्मिन् ऋषिकल्पे राजनि । (शकु० २) ।
 ४—अपि ज्ञायते कतमेन दिग्भागेन गतं स जालम् इति ।
 (विक्रमो० १) ।
 ५—अयि जातं कथयिन्नञ्च कथय । (उत्तर० ४) ।
 ६—रुथमीदृशेन सह वत्रास्य चन्द्रकेतोर्द्वन्द्वमप्रहारमनुजा-
 नीयाम् । अथ वा इक्ष्वाकुगृहवृद्धा वयम् । प्रत्युपस्थिते च
 का गतिः । (उत्तर० ५) ।
 ७—अतिप्रबलपियामावसन्नानि गन्तुमप्यस्य मे नालमग-
 कानि । अलमप्रसुरस्यात्मनः । खीर्णानि मे हृदयम् । अन्वहार-
 तासुपयाति चक्षुः । अपि नाम खण्डा विधिरनिच्छतोऽपि मे
 मरणमद्यैवोपपादयेत् । (कादम्बरी)
 ८—अहो प्रभावो महात्मनाम् । अत्र शाश्वतं विरोधमपहायोपशां त-
 त्रात्मानस्तिर्ययोऽपि तपोवनवसतिमुखमनुभवति । (काद०) ।
 ९—अपि नाम तयोः कल्याणिनोर्भूर्निवसुदेवरातापत्ययोर्मालती
 माधवयोरभिमतं पाणिग्रहं रयान् । (मालती० १) ।
 १०—अहो मे मूर्खतायाः प्रकारः । अहो यत्किञ्चनकारितायाभावर-
 अहो निरर्थकव्यापारेण्वभिनिवेशः । अहो बालिशचरितेष्व-
 सक्तिः । (काद०) ।
 ११—चा०—भद्र उपवर्णयेदानीं कुसुमपुरवृत्तांतम् । अपि वृषता
 मनुरक्ता प्रकृतयः । चर—अथ किम् । आर्येण तेषु तेषु

अग, अथ, अधिकृत्य इत्यादि

विरागकारणेषु परिहृतेषु देवे चद्रगुप्ते दृढमनुरक्ताः प्रकृतयः ।

१२—अये अश्वमेध इति विश्वविजयिना क्षत्रियाणामूर्जस्वलः
सर्वक्षत्रियपरिभावी महानुत्कर्षनिकष । (उत्तर० ४) ।

१३—ता स्वचारित्र्यमुद्दिश्य प्रत्याययतु मैथिली ।
तत पुत्रवतीमेना प्रतिपत्स्ये त्वदाज्ञया ॥ (रघु० १५।७३) ।

१४—भगवति, मदीयेषु लेखेषु तत्रभवते त्वामुद्दिश्य सभाजनान्क्ष-
राणि पातयिष्यामि । (मालविका० ५) ।

१५—हा कथं सीतादेव्या ईदृश जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि ।
अथ वा नियोगं खल्वीदृशो मन्दभाग्यस्य । (उत्तर० १) ।

१६—चाणक्य —अपि प्रचीयन्ते सव्यवहाराणां लाभा व ।
चन्द्रगुप्त —आर्य, अथ किम् । (मुद्रा० १) ।

१७—अथ धर्मानुरोधादितरपक्षावलम्बनद्वारेण मृत्युमगीकरोमि ।
एवमपि प्रथमं तावत् स्वयमागतस्य तत्रभवतः कपिजलस्य
प्रणयप्रसरभग । पुनरपरं यदि तस्य जनस्य मत्कृतादाशा-
भगात् प्राणविपत्तिरुज्जायते तदपि मुनिजनबधजनितं
महदेनो भवेत् । (काद०) ।

१८—चाणक्य —अगृहीते राज्ञसे किमुत्पातं नन्दवशस्य किं वा
स्थैर्यमुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्या । अहो राज्ञसस्य नन्दवशे
निरतिशयो भक्तिगुण । स कस्मिंश्चिदपि जीवति नन्दान्व-
यावयवे वृषलस्य साचिव्यं ग्राहयितुं न शक्यते । (मुद्रा० १) ।

१९—यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि
किं पितुरुत्कलया त्वया ।

अथ तु वेत्सि शुचित्रतमात्मनः

पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् ॥ (शकुं० ५) ।

- २०—अप्यग्रणीमत्रकृताम् ऋषीणाम्
कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते । (रघु० ५।४)
- २१—विललाप स वाष्पगदगद
सहजामप्यपहाय धीरताम् ।
अभितप्तमयाऽपि मार्दव
भजते कैव कथा शरीरिषु ॥ (रघु० ८।४३) ।
- २२—अपि क्रियार्थं सुलभं समित्कुश
जलान्यपि स्नानविधिद्वयाणि ते ।
अपि स्वशक्त्या तपसि प्रवर्तसे
शरीरमाद्य खलु धर्मसाधनम् ॥
(कुमार० ५।३३) ।
- २३—अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥
(भगवद्गीता २।२६)
- २४—सरस्विजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्
मलिनमपि हिमाशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥
(शकु० १) ।

संस्कृत में अनुवाद कीजिए

- १—मूर्ख का भी अपमान नहीं किया जाना चाहिए, विद्वान् पुरुष का तो दर किनार ।
- २—परन्तु यदि तुम मुझे वहाँ ज़बदस्ती ले चलो, तो भी मेरा मन अपनी प्रिया के प्रति लगा रहेगा जो कि मेरे प्रेम का एकमात्र आस्पद है ।

३—स्वामी—क्या जो काम मैं ने तुमको करने के लिए कहा था उसे कर लिया ।

भृत्य—उसे किए हुए मुझे बहुत समय हो गया ।

४—अपनी प्रजाओं की सम्यक् रूप से रक्षा करने के कारण यह राजा प्रशंसा का पात्र है, अथवा, क्यों, ऐसा करना तो राजाओं का कर्तव्य ही है ।

५—जिस लडके के बारे में मैं कह रहा हूँ वह बड़ा कुशाग्रबुद्धि है ।

६—जो पुरुष किसी निश्चित कारण पर क्रोध करता है वह उस कारण के दूर होते ही शान्त होजाता है ।

७—इस पर भगवान् विष्णु गरुड के निवासस्थान पर गए । वह अपने माननीय स्वामी का स्वागत करने के लिए तुरन्त निकल आए ।

८—क्या यह सम्भव है कि मेरी आकाक्षाएँ पूर्ण हों ।

९—इन विपद्ग्रस्त पुरुषों की क्या ही दयनीय दशा है । यह पाषाण-हृदय को भी द्रवीभूत कर देगी ।

१०—आहा, इस रमणीक उद्यान की ऐसी सौम्य सुन्दरता ।

११—अभीष्ट मनोरथ की पूर्ति कितने विघ्नों से भरी हुई होती है ।

१२—हाय, मैंने अपना सारा समय जुआ खेलने में बिता दिया, इसके लिए अपने अतिरिक्त और किसको दोष दूँ ।

१३—ओ हो यह तो मेरी ही अगूठी है । मैं आज आठ दिन से इसे खोज रहा हूँ । आप ने इसे कहाँ पाया ।

१४—मैं चलते-चलते थक गया हूँ । कृपया, अब चलिए, घर चले ।

१५—आशा है कि जिस पुरुष के विषय में मैंने आप से एक मास पूर्व कहा था उसका स्मरण आप को है ।

द्वाविंशतितम पाठ

आ, आ, आ, इति, इव, उत्, एव, एवम्, ओम्

२५२—आ का अर्थ 'तक' और 'से' तो होता ही है, इसके अतिरिक्त इसका अर्थ 'थोड़ा थोड़ा' 'कुछ कुछ' भी होता है। यह विशेषणों के पहिले जुड़ा रहता है, जैसे, आपिगल-थोड़ा थोड़ा चितकबरा। आसत्ताना कोकिलाना कूजितै (मालविका० ३) —कुछ-कुछ मतवाली कोयलों के कूजन से।

आ का प्रयोग क्रियाओं के साथ होता है—उह तो सभी को भलीभाँति विदित है।

(क) 'आ' अतीत घटनाओं को स्मरण करने में प्रयुक्त होता है, जैसे, आ एवं किल तडासीत् (उत्तर० ६) —अच्छा, तो बात ऐसी थी। कभी-कभी केवल पादपूरण अथवा वाक्यालंकार (expletive) के तौर पर प्रयुक्त होता है, जैसे, आ एव मन्यसे (गणरत्न महोदधि)।

२५३—आ भी अतीत घटना को स्मरण करने में प्रयुक्त होता है और कभी कभी दृढ सकल्प का बोध कराने के लिए

१—आडोषदर्धेऽमेव्याप्ती सामान्य धनुर्भाजि ।

२—आ प्रगृह्य स्मृतौ वाक्ये । (अ०) ।

१—आ स्मृतौ वावधारणे । (वि०)

प्रयुक्त होता है, जैसे, कि नाम दडकेयम् — (सर्वतो-
विलोक्य) — आ (उत्तर० २) — क्या सचमुच यह दडकारण्य है।
(चारों ओर देखकर) । हॉ हॉ (अब मुझे स्मरण आ रहा है) । आं चिर-
स्य प्रतिबुद्धोऽस्मि (गणरत्नमहो, धि) — सचमुच, मैं तो बहुत देर बाद
जागा हूँ ।

(क) कभी-कभी आ का प्रयोग 'हॉ'—ऐसा उत्तर देने में होता है, जैसे,
आं देव्या पार्श्वगतोऽसौ जनश्चित्रे दृष्ट (मालविका० १ — हॉ, रानी
के पास खड़ा हुआ पुरुष एक चित्र में देखा गया था ।

२५४-^१ आ पीड़ा या क्रोध सूचित करने के लिए प्रयोग में आता है;
जैसे, आ शीतम् (गणरत्न महोदधि) — ओ हो, कैसा जाड़ा है । आः
कथमद्यापि राज्ञसत्रास (उत्तर० १ — अरे, क्या अब भी राज्ञसो से
भय है ।

२५५ — किसी के कथन को वक्ता के ही शब्दों में सूचित करने के
लिए इति का प्रयोग होता है और वक्ता के कथन के बिल्कुल बाद में
रक्खा जाता है, जैसे, आज्ञप्तोऽस्मि राजश्यालकेन । स्थावरक प्रवह्णं
गृहीत्वा जीणोऽद्यानमागच्छेति मृच्छकटिकम् ६) — मुझे राजा के
साले द्वारा आज्ञा मिली है कि वे स्थावरक, गाड़ो लेकर पुरानी बाग में आओ ।
तयोर्मुनिकुमारकयोरन्यतरं कथयति अक्षमालामुपयाचितुमागतो-
स्मीति काद०) — मुनिकुमारों में से एक कह रहा है कि अक्षमाला
माँगने आया हूँ ।

विशेष — अप्रत्यक्ष कथन (Indirect narration) का
अनुवाद करने में यह देखना चाहिए कि यदि यह कथन प्रत्यक्ष कथन
(Direct narration) में रक्खा गया होता तो इसका क्या स्वरूप
होता । प्रत्यक्ष कथन (Direct narration) में वक्ता जिन शब्दों का

(७ इति का अर्थ 'मत' या 'विचार' भी होता है, जैसे, इत्यापिशलि (गणरत्न महोदधि)—यह आपशलि का मत है ।

(८) 'उदाहरण' देने में भी इति का प्रयोग किया जाता है, जैसे, इन्दुरिन्दुरिव श्रीमानित्यादौ तदन्वय (चन्द्रालोक) ।

विशेष—प्रकार और स्वरूप—ये दोनों अर्थ एक समान ही हैं । प्रत्यक्ष, प्रकाश और अवधारण के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं ।

(क) बलयुक्त प्रश्न करने के लिए 'किमिति' प्रयुक्त किया जाता है, जैसे, किमित्यपास्याभरणानि यौवने धृत त्वया वार्धकशोभि बलकलम् (कुमारः ५ ४४)—ज्यों तुमने युवावस्था में आभूषणों को त्याग रक्खा है और बलकलवल्ल धारण कर रक्खा है जो केवल वृद्धावस्था में ही शोभा देता है ।

२५७—इव प्रायः उद्गमा देने में प्रयुक्त होता है और उपमान के अनन्तर आता है, जैसे वैनतेय इव विनतानन्दजनन. (काद०)—वह वैनतेय के समान था जो कि विनता को सुख देते थे (अथवा उनका सुख देते थे जो उनके सम्मुख झुक जाते थे—हार मान लेते थे) । संसार अर्णव इव—समुद्र-तुल्य समार ।

विशेष—इव से जुड़े हुए शब्द एक ही कारक में होने चाहिए । जैसे, महीमिव जलभृतदेहा कन्यका बद्धर्षा (कादम्बरी)—जसने पृथिवी के समान एक कन्या देखी—ऐसी पृथिवी जिसका घरातल जल से भरा हो (कन्यापक्ष में—जसने अपना शरीर जल द्वारा धारण कर रक्खा था, । दिवसेनेव मित्रानुवर्तिना विलासिजने नाधिष्ठिता (कादम्बरी)—सूर्य का अनुसरण करने वाले दिन के समान जो अपने मित्रों का अनुसरण किया करते थे ऐसे विलासा जनो से बसा हुआ (भरा हुआ) ।

(क) इव के और भी अर्थ ये हैं—(१) थोड़ा सा, कुछ कुछ,)

२—इषदर्थोपमो त्रंक्षा वाक्यभूषणयोरिव (गणरत्नमहोदधि

कहार इवायम् (गणरत्न महोदधि) — बड़ थोड़ा थोड़ा (कुछ कुछ) चितकवरा है । (२) मानो गोया कि, जैसे, मृगानुसारिणपिनाकिनमिव पश्यामि (शकु० १) — मानों मृग का अनुसरण करने वाले पिनाकी (शिव) को देखता हूँ । यो जहासेव वासुदेवम् काद०, — जो मानों वासुदेव की हँसी कर रहा था ।

(ख) 'सम्भवत', अथवा 'वस्तुत' का अर्थ सूचित करने के लिए इव प्रश्नवाचक सर्वनामो तथा प्रश्नवाचक सर्वनाम-निष्पन्न शब्दों के साथ जोड़ दिया जाता है, जैसे, विना सीतादेव्या किमिव हि रघुपते (उत्तर० ६) — महारानी सीता से विमुक्त श्री रामचन्द्र जी को, सम्भवत, क्या चीज दुःखदायी प्रतीत न होगी । परायत्त प्रीते कथमिव रस वेत्तु पुरुष (मुद्रा० ३) — सम्भवत पराधान पुरुष कैसे सुख का आनन्द (स्वाद) जाने ।

२५८—^१उत्त पाय 'अथवा' के अर्थ में आता है और साधारणतया किम् का इतरेतरसम्बन्धी बनकर प्रयुक्त होता है । कभी-कभी उत्त के स्थान पर आहो या उताहो या आहोस्वित् भी प्रयोग में आते हैं, जैसे, न जाने किमिह वल्कलाना रुद्रश्चमुताहो जटानां समुचित कि तपसोनुरूपमाहोस्वित् धर्मोपदेशांगमिदम् (कादम्बरी) — मेरो समझ में नहीं आ रहा है कि यह तुम्हारे वल्कलवस्त्रों के लिए उचित है, अथवा तुम्हारी जटाओं के योग्य है, या तुम्हारी तपस्या को शोभा देता है, अथवा तुम्हारे धर्मोपदेश का एक अंग है ।

(क) जब उत्त की पुनरुक्ति होती है तब उसका अर्थ होता है, 'या तो—या', जैसे, एकमेव वर पुंसांमुतराज्यमुताश्रम (गणरत्न-महोदधि) — मनुष्य को एक ही चीज अमोघ होती है, या तो राज्य या आश्रम ।

२५६—उत्त जन अकेला आता है तब उसके ये अर्थ होते हैं । (१) सन्देह अनिश्चय, अन्दाज या अनुमान, जैसे स्थाणुरयमुत्त पुरुष. (गणारत्नमहोदधि)—यह या तो खूँटा हो सकता है या पुरुष । (२) प्रश्न में उत्त आता है, उत्त ढड. पतिष्यति (गणारत्नमहोदधि)—क्या डडा गिर जायगा ।

विशेष—अत्यर्थ अर्थ में उत्त बहुत कम आता है ।

२६० किसी शब्द द्वारा सूचित भाव को पुष्ट करने और उस पर जोर देने के लिए एव का प्रयोग होता है । इस अर्थ में इसका अनुवाद इन शब्दों द्वारा किया जा सकता है—ठीक, वही, केवल, अकेला पहिले ही, तत्क्षण, मुश्किल से, जैसे एवमेव—ठीक ऐसा ही । अर्थोष्मणा विरहित पुरुष स एव (भर्तृहरि नीति० श्लोक ४६)—धन की गर्मी से रहित वही पुरुष । सा तथ्यमेवाभिहिता भवेन (कुमार० ३।६३) शिव द्वारा उसको सच्ची बात मात्र बतला दी गई । नाम्नैव निर्भिन्नाराति-हृदय (कादम्बरी)—जो नाम से ही शत्रुओं के हृदय को विदीर्ण कर देता था (भेद देता था) । उपस्थितेय कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत् (रघु० १।८७)—चूँकि वह स्त्री यहाँ है, अत एव जिसी क्षण (ज्योंही) उसका नाम लिया गया । भवितव्यमेव तेन (उत्तर० ४)—यह तो होवेगा ही ।

२६१—'एवम्' का अर्थ साधारणतया 'ऐसा' या 'इस प्रकार' होता है । इसका सम्बन्ध किसी पूर्व कथित वस्तु अथवा बाद में आने वाली वस्तु से होता है, अथवा किसी कार्य को करने के लिए आदेश देने में इस शब्द का प्रयोग होता है, एवमुक्त कपिजल प्रत्यवादीत् (काद०)—(मुझसे) इस प्रकार कहे जाने पर कपिजल ने उत्तर दिया ।

(क) स्वीकृति—अर्थात् 'हाँ' का भी बोध कराने में इसका प्रयोग होता है, जैसे एवमेतत् (उत्तर० १)—हाँ, यह ऐसा ही है । एवं कुर्मः—हाँ, हम लोग ऐसा करेंगे ।

१—एव प्रकारोपमयोरगीकारेऽवधारणे । (वि०)

विशेष—‘सादृश्य’ अथवा ‘दृढसकल्प’ का बोध कराने में एवम् बहुत कम आता है ।

२६२—^१ओम् बहुत ज्यादा प्रयोग में नहीं आता । प्रायः यह शब्द शुभ-प्रारम्भ का बोध कराने के लिए आता है, जैसे, ओम् अग्निमीडे पुरोहितम् । अथवा धार्मिक विधि या क्रिया का प्रायश्चित्त की समाप्ति का बोध कराने के लिये भी इसका प्रयोग होता है, जैसे ब्रह्म भू भुव स्वरोम् ।

(क) गरुडत में यह शब्द अनुमति के अर्थ में प्रयुक्त होता है ; जैसे, ओम् शुच्यतासमाप्त्य (मालति-६)—मन्त्रात् तं कृत्वा किं मै ऐसा ही करूँगा । द्वितीयश्चेदोमिति ब्रूम ।

अध्यात्म

- १—भर्तृहारिके, आर्षाया पातितपौशिक्या ऽथ स्वरसदो ग श्रूयते । (मालति ग ५) ।
- २—उत्खातिगी भूमिरिति ज्ञाना रश्मिचरिताद्भ्यः सन्दीकृतो वेग । (शकु १) ।
- ३—प्रथमभिति प्रेक्ष्य दुहितृजनस्यैकोऽपराधो भगवता मर्पयितव्य । (शकु ४) ।
- ४—अतिभूमि गतेन रणरणवेनार्यपुत्रशून्यमिवात्मान पश्यामि । (उत्तर ०१) ।
- ५—सखे करटक किमित्ययमुद्धर्थां स्वामी पानीयमपीत्वा रुच-कितो मदमदमवतिष्ठते । (हितोप०) ।
- ६—सखे पुण्डरीक, सुविदितमेतन्मम केवलमिदमेव वृच्छामि यदेतद्वारब्धं भवता किमिदं गुरुभिरुपदिष्टम् उत धर्मशास्त्रेषु पठितमुत मोक्षप्राप्तियुक्तिरियमाहोस्विदन्यो नियमप्रकार । (कादम्बरी) ।

- ७—सीता—एते चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिता यूयम् । अहो जाने तस्मिन्नेव प्रदेशे तस्मिन्नेव काले वर्ते इति । राम—एवम् ।
- ८—पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् । सतः परीक्ष्यान्यतरद् भजते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः (मालविका १) ।
- ९—यदभावि न तदभावि भावि चेन्न तदन्यथा । इति चित्ताविपन्नोऽयमगदः किं न पीयते ॥ (हिनोप ०)
- १०—प्रकृत्यैव प्रिया सीतः रामस्यासीन्महात्मनः । प्रियभावः स तु तथा स्वगुणैरेव वर्धितः ॥ तथैव रामः सीतायाः प्राणैर्भ्योऽपि प्रियोऽभवत् । हृत्य त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ॥ (उत्तर ० ६)
- ११—यगातेरिव शमिष्ठा भर्तुर्बहुमता भवः । पुत्रं त्वमपि सन्नाजः सेवः परमवानुहि ॥ (शकु ४)
- १२—लिपतीव तमोगानि वर्त्तीवाजनं नभः । अमत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलता गता ॥ (मृच्छकटिकम् ५) ।

अभ्यासार्थं अतिरिक्त-वाक्य

- १—किमिव दुष्करमकरणा यतः सोऽयं नैव पादपमभिरः कैकशः कलानीव तस्य वनस्पतेः शागासधिभ्यः कोटगतरेभ्यः शुक्रशायकानम्रपादपगतासूत्रं कृत्वा क्षितावपानयत् (कादम्बरी) ।
- २—स मद्रवनांतरमत्र न वेक्षि किमसद्वावृत्तेर्मदनज्वरस्य येगादुत सद्योविपाकस्यात्मनो । दुष्कृतम्यगौरवादाहोस्त्विन्मद्रचस एव सामर्थ्यादाच्छिन्नं मूलसारुरिव क्षितावपनत् (कादम्बरी)
- ३—पात्रविशेषन्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः । जलमिव नमुदशुक्लौ मुक्तकलता पयोदस्य । २ ल २ वा १)

- ७—सारा ससार मुझको शक्तिहीन समझता है क्योंकि मैं किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता ।
- ८—मेरी बातों को सुनते ही वह असमीक्ष्यकारी पुरुष केवल एक अनुचर लेकर प्राणों को सकट में डालने को तैयार हो गया ।
- ९—मे नहीं जानता कि अब आगे क्या करना चाहिए, मैं इसी नगर में रहूँ अथवा यहाँ से चला जाऊँ ।
- १०—वह यही सोचता रह गया कि सामने खड़ा हुआ पुरुष मेरा शत्रु है, अथवा यतिवेपथरी कोई चर है अथवा शरण की इच्छा रखने वाला कोई भिखम गा है ।

त्रयोविंशतितम पाठ

कच्चित्, क-क कामम्, कि,
(किमु, किमुत्, किपुनः),
किल, केवलम्, खलु

२६३^१—कच्चित् से वक्ता द्वारा व्यक्त की गई हुई किसी आशा का बोध होता है, और इसका अर्थ हुआ करता है “मैं आशा करता हूँ कि”। स्वरूपतः यह प्रश्नवाचक हुआ करता है और प्रश्न करने के दंग के अनुसार इसका प्रत्याशित उत्तर ‘हाँ’ या ‘नहीं’ होता है, जैसे, शिवानि वस्तीर्थजलानि कच्चित् (रघु० ५।८)—आप के तीर्थजल विघ्नरहित तो हैं ? अर्थात् मैं आशा करता हूँ कि आप के तीर्थजल विघ्नरहित हैं। कच्चिन्न वाटवादिरुपप्लव आश्रमपादपानाम् (रघु०)—मैं आशा करता हूँ कि आश्रमके वृक्षों के ऊपर आँधी-तूफान जैसी कोई उपद्रव या दुर्घटना तो नहीं बीती। (नहीं, कोई दुर्घटना नहीं बीती)।

२६४^२—‘क’ का अर्थ है ‘कहाँ’ जब यह दो या दो से अधिक उपवाक्यों में दोहराया जाता है, तो इसका अर्थ होता है ‘बहुत बड़ा अन्तर’ अथवा ‘बहुत बड़ी अयोग्यता’, जैसे, क सूर्यप्रभवो वंश क चाल्प-विषया मति (रघु० १।२)—कहाँ तो सूर्य से पैदा हुआ वंश, और कहाँ स्वल्प ज्ञान वाला मेरी बुद्धि (अर्थात् दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है क्योंकि

१—कच्चित् वामप्रवेने । (अ०)

२—द्वौ ब्व शब्दो महदन्तर सूचयत (रघु० १।२ की मल्लिनाथ कृतटीका)

‘मेरी बुद्धि उस वश का वर्णन करने के लिए विलकुल अयोग्य हैं)। तप क वत्से क च तावक वपु (कुमार ५।४)—तपस्या तथा तेरे शरीर में कितना जबरदस्त अन्तर है (अर्थात् तेरा कौमल शरीर तपस्या करने के लिए उप-युक्त नहीं है) ।

२६५^१—‘कामम्’ का अर्थ है स्वेच्छानुसार, ‘अग्नी इच्छा भर’ । परन्तु जिन अर्थों में इसका प्रयोग साधारणतः होता है वे ये हैं—“माना कि” “थोड़ी देर के लिए कलना करते हुए” । ऐसे प्रयोगों में “कामम्” के बाद ‘तु’ या ‘तथापि’ अवश्य आता है जैसे, काम न तिष्ठति मढानन् समुखी सा भूयिष्ठमन्यविपया न तु दृष्टिरस्या (शकु ८)—माना कि वह मेरे सामने मुँह करके नहीं खड़ी होती तब भी उसकी दृष्टि अधि-काशतः किसी अन्य वस्तु की तरफ नहीं है ।

२६६^२—“किम्” प्रश्न करने में प्रयुक्त होता है और ‘क्यों’ ‘किस कारण से’ अर्थों को प्रकट करता है, जैसे, तत्रैव कि न चपले प्रलय गतासि (मुद्रा० २)—ऐ चपल देवि, तू उसी स्थान पर नष्ट क्यों नहीं हो गई ।

कभी-कभी ‘किम्’ शब्द ‘खराब’ या ‘कुत्सित’ के अर्थ में समास में आता है, जैसे, स किसखा साधु न शास्ति योऽधिपम् (किरात० २।५)—जो स्वामी को उचित राय नहीं देता वह क्या मित्र है (अर्थात् वह बुरा मित्र है) ।

२६७—‘किम्’ के बाद जब वा, उत, आहो इत्यादि आते हैं तो ‘कि’ का अर्थ होता है ‘कि.. या’ जैसे, ज्ञायतां किमेतदारण्यक ग्राम्य वेति (पंच)—इस का पता लगा लिया जाय कि वह पशु जगली है या पालतू । उत के साथ किम् का प्रयोग समझने के लिए सेक्शन २५८ देखिए ।

१—काम प्रकामाऽनुमतावस्यानुगमेपि च । (वि०)

२—किं पृच्छया जुगुप्सन् । (अ०)

(क) ^१ जब किम् शब्द उ, उत् अथवा पुनः के साथ जोड़ दिया जाता है तब उसका अर्थ होता है—क्या कहना है, उसकी तो बात ही क्या है, जेमे, एकेकमायनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्—एक भी अनय कारी हैं, जहाँ चारो हो वहाँ तो कहना ही क्या है। चाणक्येनाहूतस्य निर्दोष-स्यापि शका जायते किमुत सद्योपस्य (मुद्रा०१)—चाणक्य द्वारा बुलाए जाने पर ता निर्दोष व्यक्ति रुभा हृदय में शका पैदा हो जाती है, तो फिर अपराध पुरुष का तो कहना ही क्या है।

मयि नातकोऽपि प्रमु प्रहर्तुं किमुतान्यहिम्ना (रघु० २।६२)—यमराज भा मुझे मारने में समर्थ नहीं ह, अन्य हिंसक जतुओं का भला क्या मजाल है।

स्थथ रेपिनेषु उ पद्यते स्नेह कि पुनरगसभवेऽपत्येषु (काद०)—अपने लगाए हुए वृद्धों के प्रति तो स्नेह उत्पन्न ही हो जाता है, फिर अपनी सन्तानों के प्रति तो नहना ही क्या है।

भवाद्दशस्य त्रैलोक्यमपि न क्षम परिपथोभवितु किं पुनर्युधि-ष्ठिरबलम् (वेणी० ३)—आप जैसे पुरुषों के सामने तीनों लोक तो अडचन डाल ही नहीं सकते, फिर भला युधिष्ठिर की सेना की क्या मजाल।

विशेष—अनिश्चयात्मकता अथवा सन्देह बतलाने के लिए भी किमु शब्द का प्रयोग होता है, जैसे, किमु विषविस्पर्ष किमु मद (उत्तर०१)—क्या यह विष का प्रसार है अथवा अत्यन्त हर्ष।

२६८—किल का साधारण अर्थ है 'सचमुच', 'वस्तुतः' 'निश्चय ही।' किल शब्द उसके बाद आता है जिस पर जोर देना होता है, जैसे, अर्हति किल कितव उपद्रवम् (मालविका)—निश्चय ही इस शठ का उपद्रव होना उचित है। प्रत्यूह सर्वसिद्धिनामुत्ताप प्रथमः

१—किमु सम्भावनाया रथात् विमर्षे चापि दृश्यते।

किमुतातिशये प्रश्ने विकल्पे च प्रयुज्यते।

किल—(हितोप०)—पहिले से ही बहुत ज्यादा जोश का होना सारे मनोरथों की प्राप्ति में निश्चय ही बाधक होता है ।

२६६^१—किल निम्नलिखित अर्थों में भा आता है । (१) कहते हैं, लोग कहते हैं, जैसे, बभ्रूव योगी किल कार्तवीर्य —लोग कहते हैं कि कार्तवीर्य नामक एक योगी था । जघान कसं किल वासुदेव (महाभाष्य) ।

(२) नकली कार्य को चोत्ति करने के लिए जैसे, प्रसह्य सिंह, किल ता चर्कष (रघु० २।२७)—एक नकली सिंह ने उसे जबर्दस्ती खींच लिया । पयस्यगाधे किल जातसरम्भा किरात० ८।४८) ।

(३) आशा प्रकट करने के लिए, जैसे पार्थ किल विजेष्यति कुरुन् —मे आशा करता हूँ कि पार्थ कुरुओं को जीत लेगा ।

विशेष—अरुचि और न्यक्करण (घृणा)—इन दोनों अर्थों का उल्लेख वर्धमान ने किया है (एव किल केचित् वदति, त्व किल योत्स्यसे) । जब किल शब्द किम् के साथ जोड़ दिया जाता है तब अरुचि और न्यक्करण का अर्थ निकलता है, जैसे, न श्रद्द कि किल त्वं शूद्रान्न भोक्ष्यसे (सि० कौ०)—मे यह विश्वास नहीं कर सकता कि तुम शूद्रों का अन्न खाओग ।

हेतु का अर्थ बहुत कम देखने में आता है ।

२७०—केवलम् क्रियाविशेषण अव्यय है । इसका अर्थ होता है 'सिर्फ' । परन्तु कभी-कभी यह शब्द विशेषण के तौर पर भी प्रयुक्त होता है, जैसे, निषेदुषी स्थडिल एव केवले (कुमार० ५।१२)—सिर्फ स्थडिल पर बैठती थी (अर्थात् स्थाडिल पर कोई चीज बिछाती नहीं थी)

(४) 'अपि' अथवा 'किन्तु' के साथ न केवलम् का प्रयोग साधारणतया देखने में आता है, जैसे, वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना (रघु० ८।३६)—न सिर्फ उसकी सम्पत्ति ही

{ १ —वार्ता सम्भाव्योः किल

किल इत्यागमासुचिन्यक्करणसम्भाव्यहेत्वर्त्तान्केषु (गसरलमभेदधि)

बल्कि उसमे अच्छे अच्छे गुणों का होना भी दूसरों की भलाई के लिये था।

(ख) कभी-कभी 'अपि' के स्थान पर प्रत्युत का प्रयोग होता है, जैसे, अय वत्सो न केवल प्रियते प्रत्युत प्राजलिना गरुडेन पर्युपास्य-मानस्तिष्ठति (नागानन्द ५) — मेरा बच्चा न सिर्फ जीवित ही है बल्कि हाथ जोड़ कर गरुड जी उसकी सेवा भी कर रहे है।

२७१^१ — खलु निम्नलिखित अर्थों में आता है—

(१) व तुत., निश्चय ही। किसी बात पर जोर देने के लिए, जैसे, मार्गे पठानि खलु ते विपसीभवन्ति (शकु ४) — सचमुच तेरे कदम रास्ते में अट शरट पड़ते हैं।

(२) प्रार्थनासूचक शब्द के तौर पर, न खलु न खलु वाण सन्निपात्योऽयमस्मिन् (शकु ० १) — इसके ऊपर वाण न छड़ा जाया न खलु न खलु सुगवे साहस कार्यमेतत् (नागा ० २)।

(३) शेषतापूर्ण तथा मृदुलतापूर्ण प्रश्न करने में, न खलु तामभिक्रुद्धो गुरु (वेणी ० ३) — मैं जानना चाहता हूँ कि क्या गुरु जी उस में क्रुद्ध हो गए ?

(४) निषेधार्थक क्त्वान्त शब्दों के साथ, जैसे, अलम् (सेक्शन ५७ देखिए), निर्धारितार्थ लेखेन खलूक्त्वा खलु वाचिकम् (शिशु-२।७०) — जब कोई मामला पत्रद्वारा निर्णीत किया जाता हो तो मौखिक सन्देश मत जोड़ दो (अर्थात् मौखिक सन्देश कहलाना अनावश्यक है)।

(५) कारण, न विदीर्ये कठिना खलु स्त्रिय (कुमार ४।५) — मैं टुकड़े टुकड़े नहीं हो जाती हूँ, क्योंकि स्त्रियों कड़ी होती हैं (वर्धमान ने विषाद के उदाहरण के तौर पर इसका उल्लेख किया है)।

१—निषेधवाक्यालकारजिज्ञासानुनये खलु । (भ्यु०)

खलु इति निषेधवाक्यालकारजिज्ञासानुनयनिश्चयहेतुविधाऽपु (गणरत्न महोदधि)

विधिना जन एष वचिस्तत्त्वदधीन खलु देहिना सुखम्
(कुमार ४ । १०) ।

(६) कभी-कभी यह केवल वाक्यालंकार के तौर पर प्रयुक्त होता है ।

विशेष—गणरत्नमहोदधि में उल्लिखित नियम और निश्चय करीब करीब एक ही हैं ।

अभ्यास

१—विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भ प्रतीकारस्य (शकु० ३) ।

२—न खलु विद्वितास्ते तत्र निवसतश्चाणक्यहतकेन —अथ किम्
(मुद्रा ० २) ।

३—भर्तृगतया चित्तयात्मानमपि नैषा विभावयति कि
पुनरागतुकम् (शकु ० ४)

४—द्वावपि किलागमिनौ प्रयोगनिपुणौ च । किन्तु शिष्यागुण
विशेषेण गणदास उन्नमितोपदेश (मालविका ० ३) ।

५—अनुत्सेक खलु विक्रमालंकार (विक्रमो ० १) ।

६—भो, न केवलं रूपे, शिल्पेऽप्यद्वितीया मालविका ।
(मालविका ० २)

७—वत्से सीते स्वहस्तावचितै पुष्पै सवितार देवमुपतिष्ठस्व । न
च त्वामवनिपृष्ठचारिणीमस्मत्प्रभावाद्नदेवता अपि द्रक्ष्यति
कि पुनर्मर्त्या । [उत्तर ० ३]

८—गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति
महतीय खल्वनर्थपरंपरा । सर्वाविनयानामेकैकमप्येषामायतनं
किमुत समवाय । [काण्ड]

९—भो कामं धर्मकार्यमनतिपात्य देवस्य । तथापीदानीमेव
धर्मासनादुत्थितस्य पुनरुपरोधकारि कएवशिष्यागमनमस्मै
निवेदयितुं नोत्सहे । [शकु ० ५]

१०—एव कदलीढलेनानवरत वीजयत समुद्भन्मे मनसि चिता ।
नास्ति खल्वसाध्य मनोभुव । काथ हरिण इव वनवासनिरत.
स्वभावमुग्धो जन क च विविधविलासरसराशिर्गधर्वराजपुत्री
महाश्वेता [कादं ०]

११—निवार्यतामालि किमयं बटु पुनर्विवक्षु स्फुरितोत्तराधर ।
न केवलं यो महतोऽपभापते शृणोति तस्मादपि य स
पापभाक् ॥ [कुमार १३६]

१२—किमपेक्ष्य फल पयोधरान्ध्वनत प्रार्थयते मृगाधिप ।
प्रकृति खलु सा महीयस सहते नान्यसमुन्नतिं यया ।
[किरात ० २।२१]

१३—कच्चिदेतच्छ्रुत पार्थ त्वयैकाग्रेण चे तसा ।
कच्चिदज्ञानसमोहं प्रनष्टस्ते धनजय ॥ [भगवद् ० १८।७२]

१४—काम नृपा सतु सहस्रशोभ्ये राजन्वतीमाहुरनेन भूमिम् ।
नक्षत्रताराग्रहसकुलापि ज्योतिष्मती चद्रमसैव रात्रि ॥
[रघु ० ६।२२]

१५—क वय क परोक्षमन्मथो मृगशावै सममेधितो जन ।
परिहासविजल्पित सखे परमार्थेन न गृह्यता वच ॥
[शकु ० २]

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—वयस्य मया न साधु मनयित्वापत्प्रतीकार किल प्रमदवनोद्यानप्रवेश इति
(विक्रमो ०)

२—भगवन् जाबालिमवलोक्याहमविनयम् । तपस्विना प्रतनुतपसामपि तेजः प्रकृत्या
दु सहं भवति किमुत सकलभुवनवर्द्धितचरणानां मुनीनाम् । एवविधानामवक्ष्य
कारणानि पुण्यानि नामग्रहणान्यपि महामुनीनां कि पुनर्दर्शनानि । (काद ०)

३—आजन्मन शास्त्रमशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य ।

परानिर्वाणमधीयते यैर्विद्येति ते सतु किलासवाच ॥ (शकु ५)

४—यदृच्छया त्वं सक्तः प्यवध्ययो पयि स्थिता सुन्दरि यस्य नेत्रयो ।

त्वया विना सोऽपि समुत्सुकोविभवैस्खीजनस्ते म्मु रूढसोहृदः । (विक्रमो १)

५—न केवलं दरीसंस्थं भास्वता दर्शनेन व ।

अतर्गतमपास्तं मे रजसोऽपि परं नमः ॥ (कुमार ६ । ६०)

६—न केवलं तद्गुम्फैकपायिष्व ।

क्षिणावभूदैक धनुर्धरोपि सः । (रघु ३ । ३)

७—सुहृश्च वा मंगलतूर्यनिस्पृणा प्रमोदेनैवै सद् वारयोषिताम् ।

न केवलं सन्नानि मागं पीपते पयि व्यजुर्भा दिशोक्तानामपि ॥ (रघु ३ । २१)

८—रघुमेव निवृत्तयौवनं तन्मन्यत नरेश्वरं प्रजा ।

स हि तस्य न केवला श्रियप्रतिपेदे सकतान्गुणानपि । (रघु ८ । ५)

९—मेवालोतं भवति सुखिनोप्यन्यथावृत्तिं चेत

कठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरस्थे । (मेघ ३)

१०—दृष्टे मयै पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेष

मदायते न खलु सुहृदामभ्युपेयाय कृपायाः ॥ (मेघ ३०)

११—स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु

सदृशं ते किमुन याः प्रणिगेत्यन्य ।

प्रागतरीक्षगमनात्स्वमन्त्रजान-

मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयति ॥ (शकु ५)

१२—करुणा हृदयप्रमाथनी वचं च ते विश्वमनीयमायुधम् ।

मृदुतीक्ष्णतरं यदुच्यते तदिदं मन्मथं दृश्यते तत्रयि ॥ (मेघ ३१)

१३—कामं प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावं दर्शनादयासः ।

अकृतार्थोऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थनां कुर्वते ॥ (शकु २५)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए :—

- १— कहा जाता है कि हम लोगों को अनवगानता न करण राजा हम लोगों से बहुत हो क्रुद्ध हो गए हैं ।
- २— केवल एक बार भी देखे हुए व्यक्ति को भे नह भूल सकता , भला फिर पुराने मित्र को कैसे भूल सकता हूँ ?
- ३— इस तपोवन में निर्जीव पदार्थ भा एक पावन शक्ति से युक्त मालूम पड़ते हैं , भला फिर सजीव पदार्थों की क्या कहना है ।
- ४— जब मैं उसके पास पहुँचा तो उसने न केवल मेरी ही, अपितु आचार्य की भी निन्दा की । (निर -- भर्त्सु अथवा गद्ह, निन्द)
- ५— न केवल इतनी ही बात है कि कोई भी आदमी मुझसे घृणा नहीं करता, प्रत्युत लोग मुझे भोजन भी कराते हैं ।
- ६— मैं आशा करता हूँ कि यह बात राजा के कान तक नहीं पहुँची है कि कौमुदी-उत्सव को तत्काल बन्द करने की आशा मैंने ही दी है ।
- ७— हम लोग देखते हैं कि जो लोग धनी पैदा होते हैं व भी इस संसार में पूर्ण रूप से प्रसन्न नहीं हैं , जिन्हें नाना प्रकार के कष्टप्रद व्यवसायों द्वारा अपनी जीविका उपार्जन करना पड़ता है उनकी तो बात ही क्या है ।
- ८— मैं दृढ़ आशा करता हूँ कि आप इस असहाय पुरुष का प्राण मुक्त कर देंगे । सज्जन पुरुष अपने शत्रु तक को मा ने में सहचरते हैं, फिर भला इस शिशु जैसे निरपराध जीव का क्या कहना है ।
- ९— मैं आशा करता हूँ कि आप लोगों की तपस्याय निर्विघ्न चल रही है ।
- १०— माना कि आप में सभी उत्तम गुण विद्यमान हैं , तथापि आप को उपदेश देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ ।

- ११—वस्तुतः मुझे नहीं स्मरण है कि मैंने इसे व्याश था । पर इसे देखकर मेरे मन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है ।
- १२—क्या तेरी पवित्र विद्या तथा हृदय की इस चंचलता में कोई सगतता (सादृश्य) है ?
- १३—कहाँ तो प्रकृत्या अपरिमेय राजाओं के कार्य और कहाँ स्वल्प ज्ञान वाले सुभक्त जैसे पुरुष ।

चतुर्विंश पाठ

च (च-च) जातु, तत्, ततः, तथा, तावत्, तु

१७२^१—“च” सयोजक समुच्चयबोधक अव्यय है और शब्दों अथवा वक्तव्यों (उक्तियों) को जोड़ता है । जिन जिन शब्दों अथवा वक्तव्यों को जोड़ता है उनमें से प्रत्येक के साथ, अथवा सब में अन्त वाले के साथ यह आता है । परन्तु यह कभी भी वाक्य में पहिले नहीं आ सकता, जैसे, रामश्च गोविन्दश्च अथवा रामो गोविन्दश्च । तण्डुलानानयति च तान् पचति चौदन भुक्ते च अथवा तण्डुलानानयति तान् पचत्योदनं भुक्ते च । परन्तु सब से अन्त वाले के साथ ही च को रखना अधिक अच्छा मालूम पड़ता है । प्रत्येक शब्द अथवा प्रत्येक वक्तव्य के साथ “च” को लगाना सुन्दर नहीं मालूम होता । कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानै (खु० ६।७६)

(क) प्रायः ‘च’ वाक्य के प्रथम शब्द के अलावा किसी भी भाग में रख दिया जाता है, जैसे, अथ गजस्तं प्रणम्य प्रस्थित । शशकाश्च

१—चान्वाचये समाहारेण्यन्योन्यार्थे समुच्चये ।

पक्षान्तरे तथापाद पुरणेप्यवधारणे ॥

तद्विनादारभ्य सुखेन तिष्ठन्ति (पचतन्त्र ३।१)—तब उसे प्रणाम करके हाथो चला गया, और उस दिन म खरगोश सुखपूर्वक रहने लगे।

(ख) जब “च” “न” के साथ आता है तो उसका अर्थ “न तो” “न” होता है, जैसे, न च न परिचितो न चाप्यगम्य (मालविका ०१) —न तो वह अप्रसिद्ध ही है, न अगम्य ही है।

(ग) कभी कभी इससे विरोधात्मक भाव अथवा विभेदात्मक भाव सूचित होता है। ऐसी दशा में इसका अनुवाद ‘परन्तु’ ‘तथापि’ आदि से किया जाता है, जैसे, शान्तमिदमाश्रमपद स्फुरति च बाहु (शकु ० १)—यह आश्रम तो शान्त है, तथापि मेरी भुजा पड़क रही है।

विशेष—इस अर्थ में च दो बार आता है। अगला ‘मेव’ शन देखिए।

(घ) बहुत विरल स्थलो पर ही इसका अर्थ ‘सचमुच’ ‘वस्तुतः’ होता है, जैसे, अतीत पथान तव च महिमा वाङ्मनसयो (गणरत्न-महोदधि)—आप की महिमा वस्तुतः वाणी और मन के मार्ग से परे है।

(ङ) यह कभी-कभी “शर्त” सूचित करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है, जैसे, जीवित चेच्छसे मृढ हेतु मे गदत शृणु (महाभाष्य) अर्थात् जीवितमिच्छसे चेत्।

(च) यह वाक्यालंकार के तौर पर अथवा पादपूरण के लिये भी प्रयोग में लाया जाता है, जैसे, भीम पार्थस्तथैव च (गणरत्न महोदधि)।

विशेष—कोषों में “च” के ये अर्थ दिए गए हैं, अन्वाचय, समाहार, इतरेतर, समुच्चय। अन्वाचय का अर्थ है—किसी आश्रित घटना या इतिवृत्त को किसी प्रधान घटना या इतिवृत्त के साथ जोड़ना, जैसे, भिक्षामट गा चानय—भीख मागने जाओ और (ऐसा करने के साथ ही साथ) गाय लेते आना।

‘समाहार’ सामूहिक (समष्टिगत) ऐक्य को कहते हैं, जैसे, पाणी पादौ च पाणिपादम्।

“इतरेतर” पारस्परि सम्बन्ध को कहते हैं, जैसे, प्लुतश्च न्यग्रोधश्च
ऽक्षन्यग्रोधौ ।

“समुच्चय” समूह को कहते हैं । अथवा यो कहिए कि समुच्चय से
समूह सूचित होता है, जैसे, पचति च पठति च ।

२७३—“च” प्रायः दोनों वक्तव्यों के साथ दोहराया जाता है ।

(१) एक अर्थ तो है -- एक तरफ दूसरी तरफ, यद्यपि
—तथापि, जैसे, न सुलभा सकलेन्दुमुखी च सा किमपि
चेदमनगविचेष्टितम् (विक्रमो० २) — एक तरफ तो यह कि पूर्णचन्द्र
समान मुखवाली स्त्री मिलना सुलभ नहीं है, दूसरी तरफ यह कि कामदेव
की यह अवर्णनीय चेष्टा हो रही है ।

(२) दो घटनाओं का साथ होना अथवा अविलम्ब से होना सूचित
करने के लिए ‘च’ प्रयोग में आता है, जैसे, तेन च प्राप्नुदन्वन्नुबुधे
चादिपुरुष (रघु० १०।६) — ज्योंही वे लोग समुद्र पर पहुँचे त्यों
ही आदिपुरुष (विष्णु) जाग पड़े ।

२७४— जातु का अर्थ होता है — जरा भी, सम्भवतः,
कदाचित्, स्यात्, जैसे, कि तेन जातु जातेन (पचतत्र १।१)
— सम्भवतः उसके पैदा होने से क्या लाभ ?

न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिम् (कुमार० ५।५५) — उस
कुमारी ने जरा भी सुख नहीं भोग पाया ।

विशेष— पाणिनि का कहना है कि जातु का प्रयोग ‘नहीं
मानना’ के अर्थ में विधिलिङ् के साथ किया जाता है, जैसे, जातु
यत्त्वाद्दृशो हरिनिन्देश मर्षयागि (सि० कौ०) — मैं नहीं मानता
कि आप का सा व्यक्ति हरि की निन्दा करेगा ।

२७५— तद् सर्वनाम (सेक्शन १३२ देखिए) तथा क्रियाविशेषण
अव्यय भी है । क्रियाविशेषण की दशा में इसका अर्थ है — इस

कारण से, इसलिए, जैसे, राजपुत्रा वयं, तद्विग्रह श्रोतु नः कुतूहलमस्ति (हितो प० ३) — हम लोग राजपुत्र हैं, इसलिए, हमें संग्राम के विषय में सुनने की इच्छा है।

(२) तो, उस दशा में— इस अर्थ में यदि का इतरेतरसम्बन्धी बन कर आता है जैसे, तदैहि विमर्दक्षमां भूमिमवतराव (उत्तर० ५) — तो आओ, युद्ध के लिए उपयुक्त किसी स्थान पर चले। तथापि यदि महत् कुतूहलं तत् कथयामि (काद०)—तो भी यदि बड़ी जबरदस्त जिज्ञासा हो तो मैं कहूँ।

२७६—तत् तद् की पंचमी के रूप के स्थान पर आता है, जैसे, तस्मात्, तस्या, ततोऽन्यत्रापि दृश्यते (सि० कौ०) = तस्मादन्यत्रापि। पर यह क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर बहुत आता है। प्रवानत इसका अर्थ है “वहाँ से”, “उस स्थान से”, पर साधारणतः इसका अर्थ है ‘तव’, ‘बाद में’, “इसके बाद”, जैसे, तत् कतिपयदिवसापगमे (कद०)—बाद में कुछ दिनों के भीत जाने पर।

इसका अर्थ (१) “इस कारण से”, “इसलिए”, “फलस्वरूप” भी होता है और यत् का इतरेतरसम्बन्धी बनकर वाक्य में आता है (२) तो, उस दशा में, यदि का इतरेतरसम्बन्धी बनकर आता है; जैसे, यदि गृहीतमिदं तत् किम् (काद० १२०)—यदि यह पकड़ लिया गया तो क्या होगा? (३) कभी कभी तत् का अर्थ होता है उसके परे, आगे, इसके अतिरिक्त, जैसे, तत् परतो निर्मानुपमरयम् (काद०)—उसके परे एक निर्जन वन है।

(क) ततस्तत् (तत् + तत्) सवादों में आता है। इसका अर्थ है—फिर इसके आगे, कहते चलिए, आगे कहिए, जैसे, राक्षस—उभयोरप्यस्थाने प्रयत्न। ततस्तत् (मुद्रा० २)—राक्षस—दोनों का प्रयत्न अनुचित था, अच्छा, तो आगे क्या हुआ, कहते चलिए।

२७७—तथा^१ का अर्थ है “इस प्रकार,” “वैसा ही”, जैसे, तथा मा वचयित्वा (शकु ० ५)—इस प्रकार मुझे धोखा देकर। सूतस्तथा करोति (विक्रमो० १)—सारथि वैसा ही करता है। तथा च श्रुति (शक्र भाष्य)—और वेद ऐसा (इस प्रकार) कहता है।

(क) यह इन निम्नलिखित अर्थों में भी प्रयुक्त होता है —

(१) और भी, इसी प्रकार से यह भी, जैसे, अनागत-विधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा (पचतत्र १। १३)—जो भविष्य के लिए व्यवस्था करता है और भी जो प्रत्युत्पन्नमति होता है।

(२) हाँ, ऐसा ही हो, इसी प्रकार होगा। ऐसी दशा में यह स्वीकृति, अथवा प्रतिज्ञा सूचित करना है और ‘इति’-परक रहता है, जैसे राजा—एन तत्रभवत सकाश प्रापय। प्रतीहारी—तथेति निष्क्रान्ता। राजा—इमं श्रीमान् जी के पास ले जाओ। प्रतीहारी—अच्छा, ऐसा ही होगा (अपनी आज्ञा मानो जायगी)। ऐसा कहती हुई निकल गई।

(३) शपथ लेने में, इसका प्रयोग “यथा”—पूर्वक होता है और इसका अर्थ होता है—इतने निश्चयपूर्वक जितने, जैसे, यथा-हमन्य न चितये तथाय पतता परासु—जितना यह निश्चय है (सत्य है) कि मैं किसी भी दूसरे पुरुष के बारे में नहीं सोचता हूँ उतने ही निश्चयपूर्वक यह घटना भी घटे कि यह व्यक्ति मर जाय।

जब यथा का परस्परसम्बन्धी होकर तथा आता है तो इसके अर्थ कुछ और ही होते हैं—इसके लिए सत्ताईसवाँ पाठ देखिए।

विशेष—तथाहि का अर्थ होता है क्योंकि, ऐसा कहा गया है, उदाहरणार्थ—तथाच का अर्थ होता है “और इसीप्रकार”। इन

शब्दों का प्रयोग प्रायः किसी को उक्ति का उद्धरण करने में होता है।

१७८—तावत् का प्रयोग इन अर्थों में होता है —

(१) इसका जो शब्दार्थ है उस अर्थ में, यानी “पहिले”, और कुछ करने के पहिले, जैसे, प्रिये इतस्तावदागम्यताम् (शकु० १) —मेरी प्यारी, पहिले इधर ता आओ। आह्लाढ्यस्व तावच्चन्द्रकर् श्रन्द्रकान्तमिव (विक्रमो० ५) —पहिले तो मुझे प्रसन्न करो जैसे चन्द्रमा की किरण चन्द्रकान्तमणि को प्रसन्न करनी है।

(२) रही बात, इसी बीच में, तब तक, जैसे सखे स्थिर-प्रतिवन्द्यो भव। अह तावत् स्वामिनश्चित्तवृत्तिमनुवर्तिष्ये (शकु० २) —मित्र, विरोध करने में दृढ़ बन रह्ये, रही बात मेरी, सो मैं तो अपने स्वामी की इच्छा के अनुसार आचरण करूँगा।

(३) अभी, जैसे, गच्छ तावत्—अभी जाओ।

(४) किंसा वक्तव्य पर बल देने के लिए वस्तुतः के अर्थ में, जैसे, त्वमेव तावत् प्रथमो राजद्रोही (सुद्रा० १)—तू ही पहिला राज-द्रोहा है।

(५) रही, विषय में, जैसे, एवकृते तव तावत् प्राणयात्रा क्लेश विना भविष्यति (पञ्चतन्त्र १। ८) —रही बात तुम्हारी, सा ऐसा हो जाने पर, तुम्हारी जीविका बिना किसी कष्ट के हो जाया करेगी।

विग्रहस्तावदुपस्थित (हितोप० ३) —रही बात युद्ध की, सो तो सामने उपस्थित है।

जब यावत् का इतरेतरसम्बन्धी होकर तावत् आता है तब उसके जो अर्थ होते हैं वे सत्ताईसवें पाठ में लिखे जायेंगे।

१७९—तु^१ प्रायः विरोधवाची बनकर प्रयोग में आता है। इस दशा में इसका अर्थ होता है—परन्तु, इसके विरुद्ध, जैसे, स सर्वेषां सुखानां प्रायोऽन्तं ययौ। एक तु सुतमुखदर्शनसुखं न लेभे (काद०) —इह सभी सुखों को पूर्णरूप से भोगता था, परन्तु

१—तु पादपूरणे भेदे समुच्चयेऽवधारणे (चि०)

उसने पुत्रमुखदर्शन का सुख कभी भी नहीं भोगा। इस अर्थ में यह किम् या परम् में जुड़ा हुआ रहता है।

टिप्पणी—तु वाक्य के आरम्भ में कभी भी नहीं आता, पर परन्तु और किन्तु सदा ही वाक्यारम्भ में आते हैं।

(क) “तु” प्रायः “और अब” “अब” “तो” के अर्थ में आता है और कोई भी विशेषवाची भाव सूचित नहीं करता, जैसे एकदा तु नातिदूरोदिते सहस्रमरीचिमालिनि प्रतिहारी समुपसृत्याब्रवीत् (काठ०)—अब, एक बार, जब सहस्रकिरणधारी भगवान् सूर्यदेव बहुत ऊँचे नहीं चढ़े थे, कि इतने ही में द्वारपाल ने समीप आकर कहा। “अबनिर्पतिस्तु तामनिमेषलोचनो ददर्श” (काठ०)—महाराज तो उसकी तरफ टकटकी लगाकर देखने लगे। यत्तु आसन् शब्दस्यामन्नादेश इति काशिकायामुक्तं तत् प्रामादिकम् (सि०कौ०)। निर्वापित तु परिस्मयवपुर्न नाम (मालती० ८)।

(ख) कभी कभी तु शब्द विभिन्नता या उत्तमतर गुण सूचित करता है, जैसे, मृष्ट पयो मृष्टतर तु दुग्धम् (गणरत्न महोदधि)—पानी निर्मल होता है, परन्तु दूध और भी निर्मल होता है।

कभी कभी बल देने के लिए भी इसका प्रयोग होता है, जैसे, भामस्तु पाण्डवाना रौद्र (गणरत्न महोदधि)—भीम पाण्डवों में सबसे मयकर हैं।

अभ्यास

१—तद्यदि नातिखेदकरमिव तत् कथनेनात्मानमनुग्राह्यमिच्छामि।

[काठ०]

२—अपसृते च तस्मिन् स विहगराजो राजाभिमुखो भूत्वा राजानमुद्दिशयामिमां पपाठ। राजा तु तां श्रुत्वा सजातविस्मयोऽमात्यमब्रवीत्।

[काठ०]

च (च-च), जातु, तत्, तत.

२५३

३—आये तत कि विलंब्यते । त्वरितं [त] प्रवेशय
[उत्तर० १]

४—अनेन क्रमेण तस्य सर्वेष्वरण्यवासिष्वाधिपत्य बभूव । ततस्तेन
स्वजातिभिरावृतेनाधिकं प्रभुत्वं साधितम् । [हितोप ० ३]

५—आर्ये कृतपरिश्रमोस्मि चतु षष्ठ्यं मे ज्योतिःशास्त्रे । तत्प्रवर्त्यतां
भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाक । चद्रोपराग प्रति तु केनापि
विप्रलब्धासि । [मुद्रा ० १]

६—भगवन् कुसुमायुध त्वया चद्रममा च विश्वसनीयाभ्यामति-
सधीयते कामिजनसार्थं । [शकु ० ३]

७—तात लतागिनी वनज्योत्स्नां तावदामत्रयिष्ये । [शकु ० ४]

८—करटक उवाच । भद्र कि कृत तत्र भवता । दमनक आह । मया
तावन्नीतिवीजनिर्वापण कृत परतो दैवविहितायत्तम् ।
[पचतत्र १ । १५]

९—दृष्ट्वा मेघनाद दूरत एव कृतनमस्कार तमप्राक्षीत् । तिष्ठतु
तावत्पुरस्तात्पत्रलेखागमनवृत्तातप्रश्नो वैशपायनवृत्तातमेव तावत्
पृच्छामि [कादं ०]

१०—अयमेकपदे तथा वियोगः सहसा चोपनतः सुदुःसहो मे ।
नववारिधरोदयादहोभिर्भवितव्यं च निरातपत्वरस्यै ॥
[विक्रमो ० ४]

११—प्रतिग्रहीतु प्रणयिप्रियत्वात्त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च ।
समोहन नाम च पुष्पधन्वा धनुष्यमोघं समधत्त बाणम् ॥
[कुमार ० ३ । ६६]

७२—न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ [मनु ० २ । ६४]

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—अत्र भवत्या प्रसवादस्मदगुहै तिष्ठतु । कुत इदमुच्यत इति चेत् त्वं साधुभिरुपदिष्टः
प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति । स चेत्तल्लक्ष्णोपपन्नो भविष्यति अभिर्नद्य
शुद्धाग्नेना प्रवेशयिष्यसि । विपर्यये तु पितुरस्या समीपनयनमवस्थितमेव ।
(शकु ५)

२—कथारंभकाले राजपुत्रा ऊचुः । आर्य मित्र लाभः श्रुतस्तावदस्माभि । इदानीं
सुहृदभेदं श्रोतुमिच्छामः । (हितोप २)

३—सुखमापति सैव दुःखमापतिं तथा ।

चक्रवर्त्परिवर्तते दुःखानि च सुखानि च ॥ (हितोप)

४—लब्धावरा सावरण्येपि गेहे योगप्रभावो न च लक्ष्यते ते ।

विभिर्भि चाकरमनिवृत्तानां मृणालिनी हैममिवोपरागम् ॥ (रघु० ६ । ७)

५—मुनिसुताप्रणयस्मृतिरोधिना मम च मुक्तमिदं तमसा मनः ।

मनसिजेन सखे प्रहरिष्यता धनुषि चूतशरश्च निवेशितः ॥ (शकु ० ६)

६—देव परावृत्तेषु कण्वक्षिप्येषु—

सा निदती स्वानि भाग्यानि बाला बाहूक्षेप क्रदितु च प्रवृत्ता ।

स्त्रीसंस्थान चाप्सरस्वीर्यमारुदुत्क्षिप्यैना ज्योतिरेक जगाम ॥ (शकु० ५)

७—धर्मं तावदमुच्यते लब्धं कुच्छ्रेण रक्ष्यते ।

लब्धनाशो यथा मृत्स्वस्वस्मादेव च नितयेत् ॥ (हितोप)

८—सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहन च ।

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृदेविदेव नहि ॥ (भगवद् गीता १५ । १५)

९—न खलु न खलु बाणः सन्निपातोऽयमस्मिन्

मृदुनि मृपक्षरीरे दूलराशाब्जिवाग्निः

क्व क्व हरिषक्त्रमां जीवितं चास्मिन्नो

क्व च निश्चितनिपाता कज्रसाराः क्षयस्ते । (शकु १)

- १०—अपूर्णश्च कलाभिरिदुरमलो यातश्च राहोर्मुखं
 सजातश्च घनाघनो जनधर शीर्णश्च वायोर्जवात् ।
 निवृत्तश्च फलेग्रहिर्द्रुमवरो दग्धश्च दावाग्निना
 त्व चूडामणिता गतश्च जगतो यानञ्च मृत्योर्वशम् ॥ (मालती९)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

- १—जो लोग धर्मानुकूल आचरण करते हैं और परोपकार में लगे रहते हैं, वे ही परमात्मा की कृपा के पात्र होते हैं ।
- २—मैं बम्बई से आठ रेशमी वस्त्र, पाँच चाँदी के पात्र, और कई उपयोगी वस्तुएँ लाया हूँ ।
- ३—एक तरफ तो यह कि मैंने उन्हें कभी पहिले नहीं देखा है, दूसरे यह कि उनकी वाणी वज्राघात के समान कठोर है, सम्भवतः यह कौन पुरुष हो सकता है ?
- ४—ज्योंही ये वीर योद्धा अपने स्वामी का पक्ष त्याग देंगे, त्योंही मैं उसके राज्य में विद्रोह उभाड़ दूँगा ।
- ५—तुमने युद्ध के लिये बड़ी अच्छी तैयारियाँ कर ली हैं, इसलिये तुम्हें किसी बात की भी कमी न होगी ।
- ६—दुर्योधन—उस युवा वीर के शौर्य पर बड़ा आश्चर्य है । मैं समझता हूँ कि उसके अद्भुत वीरकृत्यों को देखकर सभी योद्धा थोड़ी देर तक आश्चर्य के मारे स्तब्ध हो गये होंगे । अच्छा, आगे कहो ।
- ७—अपने मधुर-वाक्यों से इस प्रकार मुझे ठगकर क्या तुम अब मुझे त्याग कर शरमाते नहीं हो ।
- ८—अपनी सहचरी के क्षणिक वियोग से तुम इतने व्यथित हो, और इतने पर भी मुझ-जैसे कामाभिभूत व्यक्ति को अपनी खोई हुई प्रिया के विषय में कोई भी समाचार बतलाने से इतना हिचकते हो ।

६—ज्योंही उसने घर की देहरी पर पाँव रक्खा त्योंही तीन आदमी उस पर झपट पड़े और उसे बन्दी कर ले गये ।

१०—अब आप धन, प्रतिष्ठा, सन्तति, और मनुष्यों द्वारा अभिलषित और भी अन्य वस्तुएँ प्राप्त कर लुके । अब आप और क्या चाहते हैं ? अथवा, हाँ, हाँ, ठीक ही कहा है कि मनुष्य को तृष्णाएँ (इच्छाएँ) कहाँ तक फलाँ हे इसका कोई ठिकाना नहीं है ।

११—यज्ञरामा के पास जाओ और उससे पूछो कि तुम इतनी देर क्यों रुक गए, तब तक मे जाकर दूसरे ब्राह्मणों का जुला लाता हूँ ।

१२—बड़े प्रातः काल उठकर राम अव्ययपन करना आरम्भ कर देता है, तुम तो विस्तर पर खराब मारते रहते हो ।

१३—जहाँ तक मित्रगुप्त के ज्येष्ठ पुत्र का सम्बन्ध है, उसका विश्वास तो किया जा सकता है, परन्तु मे उसके अन्य पुत्रों के विषय मे कुछ भी नहीं जानता ।

१४—याद यह हो जाय तो आप स्वयं ही निर्विघ्न अपना कार्य करते चलेगे और हम लोग भी अपना अपना कार्य कर सकेंगे ।

— — —

पंचविंश पाठ

दिष्ट्या, न, नाम, नु, ननु, नूनम्,

२८०—दिष्ट्या हर्षभूचक अव्यय है । इसका अर्थ है—मैं प्रसन्न हूँ, हर्ष की बात है, सौभाग्य की बात है, भगवान् को धन्यवाद है । जैसे, दिष्ट्या प्रतिहत दुर्जातम् (मालता० ४)—हर्ष की बात है कि दल गया । दिष्ट्या कोपव्याजेन देव्या परित्रातो भवान्

(मालविक ० १)—भगवान् को धन्यवाद है कि आप महारानी द्वारा क्रोध के बहाने बचा लिए गे ।

(क प्राय दिष्ट्या वृध् घातु न साथ आता है । दिष्ट्या वृध् का अर्थ है—बधाई देना । जिसको बधाई दी जाती है वह वृध् घातु का कर्ता कारक होता है, जिस कारण से बधाई दी जाती है वह तृतीया विभक्ति में रक्खा जाता है, जैसे, दिष्ट्या महाराजो विजयेन वर्धते (विक्रमो ० १)—मै श्रीमान् को आप की विजय पर बधाई देता हूँ । दिष्ट्या सुहृद्-बुद्ध्या वर्धितोऽसि (मालती ० ४)—आप के मित्र मूर्च्छा से उठकर होश में आए इस पर मै आप को बधाई देता हूँ ।

२८१—“न” क्रिया वशेषण अव्यय के तौर पर प्रयुक्त होता है, जैसे, न दृष्टोऽय मया—वह मुझसे नहीं देखा गया । न कोऽपि नरो मामायात—मेरे पास कोई भी मनुष्य नहीं आया था । योगिनां न किमपि भयम्—योगियों को कोई भी भय नहीं है ।

निषेधार्थक वाक्यों में अनिश्चय वाचक रूपों से समष्टि का बहिष्करण सूचित होता है, जैसे, मरणान्न कोऽपि विभेति—मौत से कोई भी नहीं डरता ।

(क) अनेक स्थलों पर न न का प्रयोग बहुत ही बलशाली वक्तव्य सूचित करने के लिए किया जाता है, जैसे, नेय न वक्ष्यति मनोगत-माधिहेतुम् (शकु ० ३)—वह निश्चय ही अपनी मनोव्यथा का गूढ कारण बता देगी (यह बात नहीं है कि वह नहीं बतावेगी) ।

२८२—“नाम” प्राय. “नामक” के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे, रावणो नाम लकेश—रावण नामक लका का राजा । पुष्पपुरी नाम नगरी—पुष्पपुरी नामक नगरी ।

१—नामप का अर्थसम्भाव्यक्रोधोपगमकुत्सने (म्यु ०)

नामप्राकाश्यकुत्सयो

सम्भाव्याभ्युपगमयोरलीके विस्मये क्रुधि । (हे ०)

विशेष—नाम शब्द के पूर्व आने वाला शब्द उसी विभक्ति में होना चाहिए जिस विभक्ति में वह सज्ञा होगी जिसका कि वह गुण है, जैसे, मेघनादो नाम मित्रम् (पचतत्र)—मेघनाद नामक मित्र । तन्नन्दिनीं सुवृत्तां नामोपयम्य (दशकुमार १।१) । अस्ति पाटलिपुत्रे नाम नगरे बलभिन्नाम वणिक् (दशकुमार २।६)।

यह नाम शब्द किसी के साथ समस्त नहीं होता । नामन् के साथ इसे गड़बड़ाना नहीं चाहिए । नामन् शब्द बिल्कुल पृथक् वस्तु है और समस्त होता है, जैसे, दशरथ नाम राजा बिल्कुल अशुद्ध प्रयोग है । या तो दशरथो नाम राजा होना चाहिये, या दशरथनामा राजा होना चाहिये (दशरथो नाम यस्य सः) ।

२८३—नाम शब्द का एक दूसरा अर्थ है—वस्तुतः, निश्चय ही: सत्यतः जो साधारणतया प्रयोग में आता है, जैसे म या नाम जित (विक्रमो० १) —मै वस्तुतः जीत गया हूँ । विनीतवेषेण प्रषेष्टव्यानि तपोवनानि नाम (शकु ०)—अवश्य ही, आश्रमों में बहुत सीधा-सादा वस्त्र पहन कर घुसना चाहिए ।

विशेष—जब नाम शब्द क, किम्, कथम् इत्यादि के साथ आता है तब इसका अर्थ होता है—सम्भवतः मैं जानना चाहूँगा (२५७ सेक्शन के इव के साथ तुलना कीजिये), जैसे, को नाम राज्ञां प्रियं (पचतत्र) —सम्भवतः राजाओं का कौन प्रिय है । को नाम पाकाभिमुखस्य जलद्वाराणि देवस्य पिधातुमीष्टे (उत्तर० ७) —मैं जानना चाहता हूँ कि जब भाग्य अपनी शक्ति दिखलाने पर तुला हो तो भला उसके दरवाजे को कौन बन्द कर सकता है ? अथि कथ नामैतत् (उत्तर० ६ —वस्तुतः यह कैसी बात है ?

२८४—(१) बहाना सूचित करने के लिये भी नाम शब्द का प्रयोग होता है, जैसे, कार्तान्तिको नाम भूत्वा (दशकुमार २।६)—ज्योतिषी का बहाना करके ।

(२) आशा (लोट) के रूपों के साथ नाम शब्द आता है। इस दशा में इसका अर्थ होता है—मानलिया, सम्भव है कि, यदि आप चाहे; जैसे, यत् खन्वनालोचितावधि दुःखावसानमेव दुःख तन्मरण-भीरोर्भवतु नाम शोकावेगाय (काद०) —मानलिया कि (हो सकता है कि) अनिश्चित काल तक टिकने वाली विपात्त जिसका अन्तिम परिणाम शोक ही हुआ करता है मृत्यु से डरने वाले पुरुष के हृदय में शोक की ही भावनाएँ पैदा करेगी। एवमस्तु नाम—अच्छा, ऐसा ही हो।

(३) आश्चर्य, अन्धो नाम पर्वतमारोहति (गणरत्नमहोदधि) —आश्चर्य की बात है कि अन्धा आदमी पर्वत पर चढ़ता है।

(४) क्रोध, और कभी कभी निन्दा, जैसे, कि नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि (उत्तर० ४)—आँ हो, क्या अस्त्र-शस्त्र चमक रहे हैं ? ममापि-नाम दशाननस्य परै परिभव (गणरत्नमहोदधि)—ऐ, क्या मुझ दशानन रावण की भी दूसरो से पराजय हो ?

२८५^१—नु प्रश्न करने में प्रयुक्त होता है और सन्देह अथवा अनिश्चय सूचित करता है, जैसे, स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु (शकु ०६)—क्या वह स्वप्न था, अथवा धोखा, अथवा मस्तिष्क का पागलपन ?

(क) नु प्रायः प्रश्नवाचक सर्वनाम तथा प्रश्नवाचक सर्वनाम नष्पन्न शब्दों के साथ समस्त कर दिया जाता है और “सम्भवतः” “वस्तुतः” इन अर्थों को द्योतित करता है (सेक्शन २५७ के इव से तुलना कीजिए), जैसे, कि न्वेतत् स्यात् किमन्यदितोऽथवा (मालती० १)—यह सम्भवतः क्या हो सकता है ? अथवा इसके अतिरिक्त और दूसरा क्या हो सकता है ? कथं नु गुणवद् विन्देयं कलत्रम् (दशकुमार २।६) —सचमुच मैं गुणवती स्त्री कैसे पाऊँ ?

२८६^१—नु प्राय न के साथ जोड़ा जाता है. और ननु पृथक् शब्द ही माना जाता है। ननु निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है—

(१) 'क्या वस्तुतः यह बात नहीं है कि', 'अवश्य ही यह ऐसी ही बात है', जैसे, यदाऽमेधाविनी शिष्योपदेश मलिनयति तदाचार्यस्य दोषो ननु (मालविका १)—जब मन्दबुद्धि शिष्या उपदेश को नष्ट कर देती है तो क्या वस्तुतः आचार्य का दोष नहीं ?

(२) ननु सशोधक शब्द के तौर पर प्रयुक्त होता है, जैसे, ननु पदे परिवृत्य भण (मृच्छकटिक ६)—मैं कहता हूँ, कि शब्दों को बदल कर कहो। ननु भवानग्रतो मे वर्तते (शकुन्तला ०२)—क्यों, आप मेरे सामने हैं ? (क्या यह बात सच नहीं है कि आप मेरे सामने हैं ?) ननु विचिनोतु भवांस्तदस्मिन्नुद्याने (विक्रमो ०२)—उसे तुम्हें इस बगीचे में खोजना चाहिए।

(३) "प्रार्थना करता हूँ" "कृपया" इन अर्थों में, जैसे, ननु मा प्रापय पत्युरन्तिकम् (कुमार ०४।३२)—कृपया मुझे मेरे पतिदेव के पास पहुँचा दीजिए।

(४) सम्बोधन करने में। इस दशा में इसका अर्थ होता है "ओहो, आहा", जैसे, राजवाहनोऽभाषत। ननु, मानव, अत्र भवानेकाकी किमिति निवसति (दशकुमार १।२)—राजवाहन ने कहा, "ऐ मनुष्य, तुम यहाँ अकेले क्यों रहते हो ?" ननु मूर्खा पठितमेव युष्माभिस्तत्काण्डे (उत्तर ४)—"हे मूर्खों, तुमने उस अव्याय में यह विषय पहिले ही पढ़ लिया है।"

(५) प्रश्न करने में, जैसे, ननु समाप्तकृत्यो गौतम (उत्तर ४)—क्या गौतम ने अपना कार्य समाप्त कर लिया ?

(क) तार्किक शास्त्रार्थों में आपत्ति अथवा विरोधी सिद्धांत उपस्थित

करने के लिए ननु का प्रयोग होता है और अत्रोच्यते अथवा केवल उच्यते उम वक्तव्य के साथ जोड़ दिया जाता है जिसमें आपत्ति का उत्तर रहता है अथवा सिद्धांत की काट रहती है, जैसे, 'ननु एकाधिकं हरेज्ज्येष्ठ इति' वचनेन विषमो विभाग दर्शित इति । अत्रोच्यते । सत्यमय विषमो विभाग सशास्त्रस्तथापि लोक-विद्विष्टत्वान्नानुष्ठेय (मिताक्षरा)—अब यह आपत्ति की जा सकती है कि ज्येष्ठ पुत्र को दो भाग मिलना चाहिए इस वचन से पैतृकसम्पत्ति का विभाग विषम है इसका उत्तर यह है—यह बात सत्य है कि यह विषम विभाग शास्त्रसंगत अथवा शास्त्रविहित है तथापि उसका अनुसरण नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह लोकव्यवहार के विरुद्ध है ।

ननु अचेतनान्येव वृश्चिकादिशरीराण्यचेतनानां च गोमयादीनां कार्याणीति उच्यते (शाकर भाष्य ४२८) । और भा अन्य उदाहरण ये हैं— ननु चेतनमपि कार्यकारण स्वामिभृत्यन्यायेन भोक्तुरूप-करिष्यति । न । (शाकर भाष्य ४२३) । ननु जगदप्यप्रकृतमसंशब्दित च । सत्यमेतत् (शाकर भाष्य ३८३) ।

विशेष—आपत्ति उपस्थित करने में कथं तर्हि (तो यह कैसे), और इति चेत् (अब कोई ऐसा कहे कि) का प्रयोग होता है, जैसे, कथं तर्हि 'कासि हे सुभ्रु'—प्रमाद एवायमिति भागुरि. (सि० कौ०)—अब कोई भी यह पूछ सकता है कि यह 'सुभ्रु' कैसे होता है ? इस के उत्तर में हमारा निवेदन है कि भागुरि के विचार से यह अशुद्ध है ।

२८७—नून का प्रधान अर्थ है "निश्चय ही", "वस्तुतः" "अवश्य ही," जैसे, स नून तव पाशाश्छेत्स्यति (हितोप० १)—वह अवश्य ही तुम्हारे जालों को काट देगा । अद्यापि नून हरकोपवह्निस्त्वयि ज्वलति (शकु० ३)—निश्चय ही हर की क्रोधाग्नि तुममें आज भी जल रही है ।

अभ्यास

- १—ननु समानेऽपि ज्ञानवृद्धभावे वयोवृद्धत्वात् गणदास पुरस्कारमर्हति (मालविका-०२) ।
- २—मया नाम मुग्धचातकेनेव शुष्कघनगर्जितेऽतरिक्षे जलपानमिष्टम् । (मालविका-२)
- ३—अनियत्रणानुयोगो नाम तपस्विजन । (शकु० ६)
- ४—अल रुदित्वा । ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्तव्या शकुतला । (शकु. ४)
- ५—दिष्ट्या धर्मपत्नीसमागमेन पुत्रमुखदर्शनेन चायुष्मान्वर्धते । (शकु ७)
- ६—निशम्यैतन्नियतिबलान्नु तत्पाटवान्नु स्वबुद्धिमाद्यान्नु स्वनियममनादृत्य तस्यामसौ प्रासजत् । (दशकुमार २।२)
- ७—एतद्वचनं श्रुत्वा बद्धकलकले महाजने पितुरंगे प्रदीप्तशिरसमाशीविषं न्यक्षिपम् । अहं च भीतो नामावहृत्य तातस्य विषं क्षणादस्तभयम् । (दशकुमार २।४)
- ८—इमं ललनाजन सृजता विधात्रा नूनमेषा घुणाक्षरन्यायेन निर्मिता । नोचेदब्जभूरेऽविधनिर्माणनिपुणो यदि स्यात् तर्हि समानलावण्यामन्या तरुणी किं न करोति । (दशकुमार० १।५)
- ९—यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुरा पुरुषाः
अथि विद्युत्प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि ॥
(मृच्छकटिक १)
- १०—प्रश्नोत्तरं नु हरिचदनपल्लवानां
निष्पीडितेदुकरकदलजो नु सेक ।
आतप्तजीवनमनः परितर्पणो मे
संजीवनौषधिरसो नु हृदि प्रसिक्त ॥

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तमभिज्ञानशाकुन्तल नामापूर्वनाटक प्रयोगेणाधिक्रिय-
तामिति । (शकु ० १)

२—अनुपपन्न खलवीदृश त्वयि । न कदाचित्तत्पुरुषा शौरपात्रात्मानो भवति । ननु
प्रवातेपि निष्कंपा गिरयः । (शकु ० ६)

३—सखि लवगिके दिष्ट्या वद्धसे । ननु भणामि प्रतिबुद्ध एव ते प्रियवयस्यः प्रतिपन्न-
चेतनो मन्त्राभागे मकरन्द इति । (मालवी ० ४)

४—आर्य ननु रामभद्र इत्येव मा प्रत्युषचार शोभते तातपरिजनस्य । तद्यथाभ्यस्नमभि-
धीयताम् । (उत्तर ० १)

५—स शक्तिकुमारो नाम श्रेष्ठिपुत्रोऽष्टादशवर्षदेशीयश्चितामापेदे । नास्त्यदाराणां स-
ननुदाराणां वा सुख नाम । तत्कथं नु गुणवद्विन्देय कलत्रमिति । अथ परवत्य-
यादृतेषु दारेषु यादृच्छिङ्गी सपत्तिमनभिसमीक्ष्य कार्तातिको नाम भूत्वा भुव
वभ्राम । (दशकुमार २. ६)

६—विधिप्रयुक्ता परिगृह्य सत्क्रिया परिश्रम नाम विनीय च क्षणम् ।

उमा स पश्यन्नृजुनैव चक्षुषा प्रवक्रमे वक्तुमनुजिह्वनक्रम ॥ (कुमार ५।३२)

७—नियमयसि विमार्गप्रस्थितानात्तद्वद

प्रशमयसि विवाद कल्पसे रक्षणाय ।

अतनुषु विभवेषु ज्ञातय सतु नाम

त्वयि तु परिसमाप्त बहुकृत्य प्रज्ञानाम् ॥ (शकु ५)

८—वपुषा करणोज्झितेन सा निरतती पतिसम्पत्पातयत् ।

ननु तैलनिषेकबिन्दुना सह दीपाचिरुपैति मेदिनीम् ॥ (रघु ० ८।३८)

९—अस्या सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चद्रो नु कांतिप्रद

शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ।

वेदाभ्यासजड कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो

निर्मातु प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनि ॥ (विक्रमो ० १)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

- १—मणिपुर नामक नगर में धनमित्रनामक धनी वणिक् रहता था ।
- २—बड़े बड़े ऋषियों के लिए भी अप्रतर्क्य परमात्मा की महत्ता को कौन सा मर्त्य सम्भवतः जान सकता है ?
- ३—अन्य गुणी राजपुत्रों के होते हुये भी अशुभ लक्ष्मणों से युक्त वह व्यक्ति राजा करके अभिषिक्त कर दिया गया ।
- ४—कौन ऐसा है जो अपने ही हाथों अपने सिर पर विपत्ति लाने की चेष्टा करेगा ?
- ५—अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि पर आप सब लोगों को बधाई देता हूँ ।
- ६—भगवान् को धन्यवाद है कि दीर्घकालिक वियोग के बाद तू फिर मुझसे देखा जाता है ।
- ७—मित्र, कृपया मेरे लिये इतना तो करो । मैं स्त्री का वेष धारण कर आप की पुत्री बन जाऊँगा, तब आप मुझे राजा के पास ले चलिएगा और उनसे इस प्रकार कहिएगा ।
- ८—क्या यह सच्चा बाध हो सकता है अथवा बाध का चमड़ा पहिने हुये कोई दूसरा जानवर है ?
- ९—गोविन्द—राम, गुरु जी की सेवा करने कब जाओगे ?
राम—क्यों, आज गुरु जी की सेवा करने की तुम्हारी पारी है ।
- १०—तुम कहते हो कि रुपया खर्च करने में गोविन्द बहुत ही अपव्ययी है । क्यों, तुम स्वयं ही उससे इस बात में तथा अन्य बहुत सी बातों में मिलते जुलते हो ।
- ११—तो यदि वह मित्र पूछे कि ब्रूटस (गोपाल) सीज़र (विष्णु) के विरुद्ध क्यों उठ खड़ा हुआ तो मेरा उत्तर यह है कि मैं सीज़र को कम नहीं प्यार करता था, परन्तु मैं रोम को अधिक प्यार करता था ।

षड्विंश पाठ

पुनः, प्रायः (प्रायेण), बत, बलवत्, मुहुः, यत्, यत्सत्यम्

२-८—साधारणतया “पुन” का अर्थ हुआ करता है ‘फिर’, जैसे, पुनर्विवक्षु (कुमार५।८२)—फिर से बोलने का इच्छुक। परन्तु प्राय इसका अर्थ हुआ करता है ‘परन्तु’, ‘इसके विरुद्ध’, जैन, तदेव पंचवटीवन, स एव आर्यपुत्र। मम पुनर्मन्दभाग्याया दृश्यमान-मपि सर्वमेवैतन्नास्ति (उत्तर२३)—यह वही पंचवटी का जगल है, और आर्यपुत्र भी वही हैं, परन्तु, मुझ अभागिनी के लिए यह सब दिखाई पड़ते हुए भी कुछ भी नहीं है।

(क) “पुन. पुन” अकेले “पुन” से अधिक बलशाली होता है। इसका अर्थ होता है ‘बार बार’, जैसे, स्वपाठान् पुन पुनर्पाचय—अपने पाठा को बार बार पढो।

किम् के साथ पुन का उल्लेख पहिले ही किया जा चुका है (सेक्शन २०७ देखिए)।

२८६—प्राय. अथवा प्रायेण का अर्थ है “साधारणतया” और यह साधारण नियम बनाने में काम आता है, जैसे, प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभव स्वामिन सेवमाना (मुद्रा० ४)—जब स्वामी की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तब साधारणतया उसकी सेवा करने वाले नौकर उसको त्याग देते हैं। प्रायेणैते रमणविरहेष्वगनाना विनोदा. (मेघ-८७)—प्राय अपने प्रेमियों से वियोग हो जाने पर स्त्रियों के ये ही मनोरञ्जन हुआ करते हैं।

२६०--वत^१ निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है—

(१) अफसोस, जिससे दुःख, शोक अथवा कष्टाणा प्रकट की जाती है, जैसे, अहो वत महत् पाप कर्तुं व्यवसिता वयम् (भगवद्गीता १।४५)—हाय, शोक की बात है, हम लोग कैसा बड़ा पाप करने जा रहे हैं ।

(२) हर्ष अथवा आश्चर्य, इन अर्थों में यह प्रायः अहो के साथ आता है, जैसे, अहो बतासि स्पृहणीयवीर्यः (कुमार ३।२०)—ओहो, तेरी वीरता कैसा स्पृहणीय है । अहो वत महच्चित्रम् (काद०) । हता वत वराकी सा (गणरत्न महोदधि) । सम्बोधन के तौर पर, जैसे, वत वितरत तोय तोयवाहा नितान्तम् (गणरत्न महोदधि)—ऐ बादलो, खूब जल दो । त्यजत मानमलं वत विप्रहै. (रघु ६।४७) ।

२६१---“बलवत्” का अर्थ है “बलशाली” । यह क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर प्रयुक्त होता है और इसका अर्थ होता है “बड़े जोरों से” “अत्यन्त ही” “खूब”, जैसे, शिव इन्द्रियक्षोभं बलवन्निजग्राह (कुमार० ३। ६६)—शिव जी ने बड़े जोरों से अपनी इन्द्रियों के क्षोभ को दबाया । बलवदस्वस्थशरीरा शकुन्तला (शकु० ३)—शकुन्तला की तन्वित बहुत ही खराब है (शकुन्तला का शरीर बहुत ही अस्वस्थ है) ।

२६२—मुह का अर्थ है प्रायः, जैसे, बालो मुहू रोदिति—बच्चा प्रायः रोया करता है । इस अर्थ में यह प्रायः दोहरा दिया जाता है । इसका यह भी अर्थ होता है—किसी समय, दूसरे समय, कभी—कभी । इस अर्थ में यह प्रत्येक उपवाक्य के साथ प्रयुक्त होता है, जैसे, मुहुर्भश्यद्वीजा मुहुरपि बहुप्रापितफला । अहो चित्राकारा नियतिरिव नीतिनयविद (द्रा० ५)—एक समय तो उसके बीज छुट होते हुए मालूम पड़ते हैं, दूसरे समय वह बहुत से फल देती है ओहो,

भाग्य के समान राजनीतिज्ञ की नीति कितने विचित्र-विचित्र प्रकार की होती है।

२६३—यत् से प्रत्यक्ष कथन का प्रारम्भ होता है, प्रत्यक्ष कथन के अंत में इति कभी रक्खा जाता है और कभी नहीं रक्खा जाता, जैसे, सत्योऽयं जनप्रवादो यत् संपत् संपदमनुबध्नातीति (काद०)—यह लोकोक्ति सत्य है कि एक सम्पत्ति के बाद दूसरी सम्पत्ति चली आती है।

तस्य कदाचिच्चिन्ता समुत्पन्ना यदर्थोत्पत्त्युपायाश्चिन्तनीयाः कर्तव्याश्च (पंचतत्र)—उसके मस्तिष्क में एक विचार आया कि धन प्राप्त करने के लिए उपाय सोचा जाना चाहिए और किया जाना चाहिए।

(क) यत् का अर्थ है 'कि', जैसे, कि त्वं मत्तोऽसि यदेवमसंबद्ध प्रलपसि। इसका अर्थ "क्योंकि" भी होता है, जैसे, कि शेषस्य भरण्यथा न वपुषि द्मां न क्षिपत्येष यत् (मुद्रा० २) — क्या शेषनाग को अपने शरीर पर बोके का भारीपन नहीं मालूम पड़ता ? क्योंकि वह अपने सिर से पृथ्वी को फेंक नहीं देते। प्रियमाचरितं लते त्वया मे यदियं पुनर्मया दृष्टा (विक्रमो १)—ऐ लते, तुमने मेरी एक भलाई की है, क्योंकि यह मेरे द्वारा फिर एक बार देख ली गई।

विशेष—यत-अत चूँकि—इसलिए, इसलिए, अतः का अर्थ रखने वाले व क्यो का अनुवाद करने में तत् अथवा ततः का प्रयोग होता है, अथवा यत् वा यत के द्वारा सारा वाक्य अनूदित किया जा सकता है, जैसे अहं आतरं गृहान्निष्कासयामि यत् (यवः) सोऽतीव दुर्वृत्तः—मैं अपने भाई को घर से निकाल दूँगा क्योंकि वह बहुत ही दुराचारी है।

२६४—यतः का अर्थ है 'जिस जगह से'। यह यस्मात् के स्थान पर प्रयोग में आता है, जैसे, यतस्त्वया ज्ञानमशेषमाप्तम् (रघु० ५४) — जिससे (अर्थात् जिस गुरुजी से) तुमने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया।

जब कारण प्रकट रहता है तब इसका अर्थ होता है “क्योंकि”, जैसे, किमेवमुच्यते महदतर यत कर्पूरद्वीप स्वर्ग एव (हितोप)—तुम ऐसा क्यों कहते हो ? बड़ा भारी अन्तर है क्योंकि कर्पूरद्वीप साक्षात् स्वर्ग ही है ।

२६५—यत्सत्यम् एक शब्द है, अलग-अलग दो शब्द नहीं हैं । इसका अर्थ है “निश्चय” ही “अवश्य ही” “सच पूछिये तो,” “सत्यतः,” जैसे, अमगलाशसयास्य वो वचनस्य यत्सत्यं कम्पित-मिव मे हृदयम् (वेणी० १)—तुम्हारे अमगलसूचक वचन से, सत्यतः, मेरा हृदय कॉपता है ।

अभ्यास

- १—यद्वेतस कुञ्जलीला विडबयति तत्किमात्मनः प्रभावेण ननु नदीवेगस्य । (शकुं २)
- २—इदं तत्प्रत्युत्पन्नमिति ह्येणमिति यदुच्यते । (शकुं)
- ३—निराकरणविकृतवाया प्रियाया समवस्थामनुस्मृत्यः बलवदशरणोऽस्मि । (शकुं ६)
- ४—सर्वथा न कचिन्न खलीकरोति जीविततृष्णा यदीदृगस्वस्थमपि मामायासयति जलाभिलाष । (कादम्बरी)
- ५—पुण्यभाजः खल्वमी मुनयो यदहर्निशमेन भगवतः पुण्यां कथां शृण्वन्तः संमुपासते । (कादम्बरी)
- ६—कस्मान्मया निष्प्रयोजनमिदमश्वमुखद्वयमनुस्मृतमिति विचार्यमाणे यत्सत्यमात्मैव मे परिहासमुपजनयति । (कादम्बरी)
- ७—अहं तं समादिशम् । सैषा सज्जनाचरिता सरस्विर्यदणीयसि कारणेऽनखीयानादरः सदृश्यते । (दशकुमार २।७)
- ८—अलमन्यथा गृहीत्वा न खलु मनस्विनि मथा प्रयुक्तमिदम् ।

पुनः, प्राय (प्रायेण), बत

प्रायः समानविद्या परस्परयशः पुरोभागाः ॥ (मालविक)
६—अयि कठोर यशः किल ते प्रियं किमयशो ननु घोरमतः परम् ।
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः कथय नाथ कथं बत मन्यसे ॥

(उत्तर० ३)

१०—यत्सत्यः काव्यविशेषवेदिन्याः परिषदि प्रयुजानस्य ममापि
चेतसि सुमहान् परितोषः प्रादुर्भवति । यतः

११—चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः ।

न शालेः स्वकरिता वस्तुर्गणमपेक्षते ॥ (मुद्रा १)

अभ्यासाथ अतिरिक्त वाक्य

१—अथ तेषां मन्वात् काकः प्रीवाच । स्वामिन्वयः तावत्सर्वत्र पर्यटितः परं न किञ्चित्
स्वमासादिनं दृष्टं वा । तद्वत् सा भक्षयित्वा प्राणान्धारयतु स्वामी येन
देवस्याप्यायना भवति । मम पुनः स्वर्गप्राप्तिरिति (पञ्चतन्त्र) ।

२—इह (पचने प्रकोष्ठे) गधर्वसुरगणैरिव विविधालंकारशोभितैर्गणिकाजनैर्बधुलैश्च
यत्सत्यः स्वर्गायन इदं गे.म् । (मृच्छकटिक, ४)

३—आपारगोपाद्विदुषः न मधुः सन्त्ये प्रथाविज्ञानम् ।

तत्रैवपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं धेनः ॥ (शकु. १)

४—ज्वलति चलिते धनोग्निविप्रकृतं पञ्चगणः कृष्णं कुर्वते ।

प्रायः स्वमहिमानं क्रोधात्प्रतिपद्यते जतु (शकु. ६)

५—अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगणयात्मनः ।

उपस्थितेय कल्याणी नान्नि कीर्तिता एव यत् ॥ (रघु. १८७)

६—अथवा मम भाग्यविघ्नवादशनिः कल्पित एव वेधसा ।

अदन्तेन नरनः पातितः क्षपिता तद्विदपाश्रिता लता ॥ (रघु. ८४७)

७—खलवायो दिवसेश्वरस्य किरणैः सनापिनो मस्तके

वाङ्मन्देशमनातप विधिवशात्तालस्य मूल गत ।

तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्न सशब्द शिर

प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यात्यापद ॥ (भर्तृहरि० २।१०)

सकृस्त में अनुवाद कीजिए—

१—मैं इस विषय पर कुछ भी बोलना उचित नहीं समझता, क्योंकि मैं इसके विवरण से परिचित नहीं हूँ ।

२—चूँकि कल रात में तुम लोगों ने मेरे घर में सेवा मारी, इसलिए मैं तुम लागा को बन्दो बनाता हूँ और जाँच पड़ताल के लिये तुम्हें न्यायालय में ले चलता हूँ ।

३—क्या सम्बन्धी मामलों में यह स्थिति लोग प्रायः अपनी पत्नियों के नेत्रों से देखते हैं ।

४—आहा, इस स्थान का अनुपम वैभव ! मच बात ता यह है कि सौन्दर्य में यह द्रुद्र के बगीचे से भी स्पर्धा करेगा ।

५—जिम जगह से तुम आये हो क्या वह जगह प्रचुर अन्न में युक्त है ?

६—मैं स्वामी की आज्ञा पालन करने जा रहा हूँ, पर तुम कहाँ जा रहे हो ?

७—इस प्रकार लकड़हारे ने अपना प्राण और धन बचाया, पर पिशाच पूरे बारह वर्ष काम में लगा रहा ।

८—सुवदना मुझमें कहती है कि उसकी स्वामिनी चन्द्रलेखा जिस दिन दुर्गा के मन्दिर में नाची थी उसी दिन से बहुत बामर है । अब मैं अवश्य यह पूछने जाऊँगी कि उसकी तबियत कसा है ।

९—यह साधारण नियम है कि मालिक लोग नौकरों के प्रति जो सम्मान प्रदर्शित करते हैं वह श्रुतियों द्वारा कगये जाने वाले कार्य के प्रभाव के अनुसार बदलता रहना है ।

१. —क्या तुम समझते हो कि सूर्य नहीं थकता है, क्योंकि वह अपने आकाशमार्ग में कभी-भी स्थिर नहीं रहता ।

११—मित्र, बहुत जल्द मेरे जालों को काट कर मुझे बचाओ, क्योंकि यह सच ही कहा गया है कि विपत्ति मित्रता की कसौटी है ।

सप्तविंश पाठ

यथा-नथा; यावत्-तावत्

२६६—यथा शब्द का अर्थ है (१) 'जैसे' 'उक्त प्रकार से', जैसे, यथाज्ञापयति देव (शकु १)—जिस प्रकार महाराज आज्ञा देते हैं, अर्थात् आप की आज्ञा पालन की जायगी।

(२) अर्थात्, निम्नलिखित रीति से, इस प्रकार, जैसे, तद्य-
थानुश्रूयते (पञ्चतन्त्र)—जैसा नीचे कहा जाता है वह इस प्रकार है याना
यह निम्नलिखित प्रकार से है ।

(३) समान, इव के समान तुलना सूचित करता है, जैसे, आसोदिर्यं
दशरथस्य गृहे यथा श्री (उत्तर०४)—यह दशरथ के घर में लक्ष्मी के
समान था ।

(४) यह प्रत्यक्ष कथन के प्रारम्भ में भी प्रयुक्त होता है, जैसे, विदित
खलु ते यथा स्मर क्षणमप्युत्सहते न मा बिना (कुमार०४, ३६)—
यह तो आप को पहिले ही से मालूम है कि कामदेव मेरे बिना एक क्षण
भर रु लिए भा चैन नहीं पाता । इस अर्थ में अन्त में यथा के बाद
इति जोड़ देते हैं, जस, सदिष्टास्मि तातेन । यथा वत्स मित्रावसो
जीमूतवाहनात् याग्यतरो वरो न लभ्यते । तस्मादस्मै मलयवती
प्रतिपाद्यतामिति (नागानन्द २)—मेरे पिता जी ने मुझ से यह सन्देश

कहा है कि—ऐ मित्रावसु, जीमूतवाहन से बढकर दूल्हा नहीं मिल सकता ।
इसलिए मलयवती को उसके हाथ में अर्पण कर दो ।

(५) जैसे, उदाहरणार्थ, जैसे, यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः यथा
महानसे (तकसग्रह)—जहाँ जहाँ धुआँ रहता है वहाँ-वहाँ आग रहती
है, जैसे (उदाहरणार्थ) रसोई घर में ।

(३) ताकि, जिसमें, प्रायः इस अर्थ में यथा के स्थान पर येन
का प्रयोग पाया जाता है, जैमे, त्वं दर्शय त चौरसिंह यथा व्यापादयामि
(पचतत्र)—तुम मुझे उस बटमाश सिंह को दिखलाओ ताकि मैं उसे
मार डालूँ । स्वामिन्, मम प्राणैः प्राणयात्रा विधीयता येन
ममोभयलोकप्राप्तिर्भवति (पचतत्र)—स्वामिन्, मेरा प्राण लेकर
आप अपना जीव (प्राण) धारण करें ताकि मैं दोनों लोक पा जाऊँ ।

२६७—यथा—तथा क निम्नलिखित अर्थ हुआ करते हैं—

(१) जैसा—वैसा, इस अर्थ में कभी-कभी तथा के स्थान में तद्वत्
का प्रयोग होता है, जैसे, यथा वृक्षस्तथा फलम्—जैसा वृक्ष वैसा फल ।
यथा बीजाकुरः सूक्ष्मः प्रयत्नेनाभिरक्षितः । फलप्रदो भवेत् काले
तद्वत्लोकः सुरक्षितः (पचतत्र) --जैसे अच्छे प्रकार से रक्षा किया हुआ
बीज का अकुर उचित समय पर फल देता है, उसी प्रकार भली भाँति
रक्षा की हुई प्रजा ।

(२) इस प्रकार कि, इस अर्थ में इस प्रकार के स्थान
पर तथा आता है और कि के स्थान पर यथा आता है, जैसे, यदि वामनु
मत तथा वर्तेथा यथा तस्य राजर्षेरनुकम्पनीया भवामि (शकु ३)
—यदि आप इसका अनुमोदन करें तो इस प्रकार आचरण कहें कि मैं
राजर्षि जी की दया का पात्र बन जाऊँ । अहं स्वामिन् विज्ञाप्य
तथा करिष्ये यथा स वधं करिष्यति (पचतत्र) —मैं श्रीमान् जी से निवेदन
करके इस प्रकार व्यवस्था करूँगा कि वह उसे मार डालेगा ।

विशेष—ईदृश, तादृश, तावत्, एतावत्, इयत् शब्दों का प्रयोग “तथा” के स्थान पर होता है, और सम्बन्धवाचक सर्वनामों के रूप, प्रायः येन, दूसरे उपवाक्य के साथ प्रयुक्त होते हैं, जैसे, ईदृशी अहं मन्दभागिनी यस्या न केवलमार्यपुत्रविरहो पुत्रविरहोऽपि (उत्तर०३)—मे ऐसी मन्दभागिनी हूँ कि मैं न केवल अपने पतिदेव से वियुक्त हूँ, अपि तु अपने पुत्र से भी ।

मम चैतावान् लोभविरहो येन स्वहस्तगतं सुवर्णकंकणमपि यस्मै कस्मैचिद् दातुमिच्छामि (हितोप)—मेरा लोभाभाव इतना (इस प्रकार का) हो गया है कि मैं अपने हाथ में स्थित सोने के कंकण को भी किसी भी व्यक्ति को दे देना चाहता हूँ ।

(३) चूँकि—इसलिए, जैसे, यथाय चलिमलयाचलशिलासचयः प्रचढो नमस्वास्तथा तर्कयामि आसन्नीभूत पक्षिराजः (नागानन्द ४)—चूँकि मलय पर्वत पर स्थित प्रस्तर-समूह को हिला देने वाली यह हवा बड़ी प्रचण्ड (भयंकर) है, इसलिए मैं समझता हूँ कि पक्षिराज आ गए हैं ।

(४) यदि . . तो यदि . . . तर्हि के समान प्रयुक्त होता है । अथवा बहुत कड़ी शपथ के तौर पर यथा . तथा का प्रयोग होता है, जैसे,

वाङ्मनःकर्मभिः पत्यौ व्यभिचारो यथा न मे ।

तथा विशम्भरे देवि मामतर्धातुमर्हसि ।

(रघु ० १५।८१)

—यदि अपने पतिदेव के प्रति मेरे आचरण में मनसा, वाचा, कर्मणा कोई भी बुराई न हो, तो ऐ विश्वव्यापिनी पृथ्वी देवी, कृपा कर मुझे अपने अन्दर ले लो ।

(५) जितन . . उतना, उतन . . जितना—इस दशा में तथा का अर्थ

होता है 'उतना' और 'यथा' का अर्थ होता है 'जितना' और विवक्षितार्थ समानता सूचित करता है, जैसे, न तथा बाधते शीतं यथा बाधति बाधते (सुभाषित रत्नाकर ०)—जाड़ा मुझको उतना नहीं सता रहा है, जितना 'बाधति' शब्द। इस अर्थ में यथा और तथा दोनों के साथ अथवा एक ही के साथ एव शब्द प्रायः जोड़ दिया जाता है ताकि समानता और भी अधिक बलवती हो जाय, जैसे, वधूचतुष्केऽपि यथैव शान्ता प्रिया तनूजास्य तथैव सीता (उत्तर०४)—चारों बहुओं में सीता उन्हें इतनी प्यारी थी जितनी कि उनकी कन्या शान्ता।

(क) यथा यथा . तथा तथा—जितना जितना ..उतना उतना, जितनाही... उतनाही का अर्थ देते हैं, जैसे, यथा यथा यौवनमतिचक्राम तथा तथा अनपत्यताजन्मा महानवर्धतास्य संताप (काद०)—ज्यो ज्यो वह जवान होता गया त्यों त्यों सन्तान-हानताजनित उसका संताप बढ़ता ही गया। यथा यथा मृतपुत्र न चिन्तयिष्यसि तथा तथा तव दुःख शमयेष्यति अथवा यथा यथा अल्पीयसी पुत्रचित्ता तथा तथा अल्पीयो दुःखम्।

२६८—^१जब "यावत्" शब्द अकला प्रयुक्त होता है तो इसका अर्थ होता है "जहाँ तक", "तक", और यह काल को अवधि अथवा मार्ग (दूरी) व्योक्त करता है। ऐसी दशा में इसके योग में द्वितीया आती है; जैसे. स्तनत्याग यावत् पुत्रयोरवेक्षस्व (उत्तर० ७)—इन पुत्रों की तब तक देख रेख करो जब तक य स्तन का दूब पीना छोड़ न दें। कियतम-वर्धि यावदस्मच्चरित चित्रकारेणालिखितम् (उत्तर० १)—चित्रकार द्वारा हमारा जीवन घटना कहीं तक चित्रित की गई है।

(क)—यावत् का कभी-कभी अर्थ होता है 'अभी' 'तो' और इससे तत्काल किए जाने वाले कार्य का बोध होता है; जैसे, तद् यावद्

गृहिणीमाहूय सगीतकमनुतिष्ठामि (शकु ० १) —तां अग्नी त्री को बुलाकर मे सगीत प्रारम्भ करता हूँ । यावदिमां छायामाश्रित्य प्रतिपालयामि ता (शकु ०३)—इस छाया का सहारा लेकर, मे उसकी प्रतीक्षा करता हूँ ।

२६६—इतरेतरमम्बधी के तौर पर यावत् - तавत् के ये अर्थ होते हैं —

(१) उतना ही . जितना, इस दशा में तवत् का अर्थ होता है उतना ही और यावत् का अर्थ होता है 'जितना' जैसे, पुरे तवत्-मेवास्य तनोति रविरातपम् । दीर्घिकाकमलोन्मेषो यावन्मात्रेण साध्यते (कुमार० २।३३)—उसके नगर में सूर्यदेव उतना ही घाम करते हैं जितने से तालाबों में के कमलो को कलियों खिल जाय ।

(२) सब, इस दशा में दोनों (यावत्—तावत्) मिलकर साकल्य (सब) का अर्थ देते हैं, जैसे यावद् दत्त तवत् मुक्तम् (गणरत्न महोदधि) —जितना मुझे दिया गया उतना सब मैंने खा डाला । यावन्मानुष्यके शक्यमुपपादयितुं तवत् सर्वमुपपाद्यताम् (काठ०) ।

(३) जब तक तब तक—इस दशा में यावत् का अर्थ होता है 'जब तक' और तवत् का अर्थ होता है 'तबतक', जैसे, यावद्विक्तो-पार्जनशक्तस्तावन्निजपरिवारो रक्त (मोहमुद्गर) = जब तक मनुष्य धन कमाने के योग्य रहता है तब तक उसका परिवार उसमें अनुराग करता है (उसमें अनुरक्त रहता है) ।

विशेष—जिन स्थलों में जब तक, तब तक, प्रयुक्त होते हैं उनमें यावत् और तवत् दोनों का प्रयोग करना पड़ता है । यावत् का प्रयोग क्रियाविशेषण उपवाक्य के साथ होगा और तवत् का प्रयोग प्रधान उपवाक्य के साथ होगा, जैसे, यावद्वाज्यभारो मयि विन्यस्तस्तावद्दहं प्रजा अनुरक्ता करिष्यामि—जब तक राज्य का भार मुझको सौंपा जाता है, तब तक मैं प्रजा को सन्तुष्ट रखूँगा । सूत तवद्वत्थ स्थापय

यावद्दहमवतरामि—ऐ सारथि, जब तक मैं उतर न आऊँ तब तक रथ को रोक रखो ।

(ख) पहिले ही, पूर्व ही का अनुवाद 'यावन्न' से किया जाता है, जैसे, सरोवर से इनके उडजान के पूर्व ही मुझे इनमें समाचार प्राप्त कर लेना चाहिये—यावदेते मरसो नोत्पतन्ति तावदेनेभ्य प्रवृत्तिरवगमयितव्या (विक्रमो०४) ।

३००—कभी कभी यावत् तावत् का केवल जब-तब अर्थ होता है; जैसे, यावदसौ पान्थ उत्थायोर्ध्व निरीक्षते तावत्तेनावलोकितो हसकांडन हतो व्यापादितश्च (हितोप)—जब पथिक उठकर ऊपर की ओर देखने लगा तब हस उसका द्वाग देखा जाकर बाण से मार दिया गया ।

कभी कभी यावत् का अर्थ होता है 'ज्योंही' और तावत् का अर्थ होता है 'त्योंही,' जैसे, एकस्य दुःखस्य न यावदत्त गच्छामि तावद् द्वितीय समुपस्थित मे (हितोप)—ज्योंही मैं ने एक अवपत्ति का पार पाया त्योंही मर ऊपर दूसरी आ उपस्थित हुई ।

अभ्यास

१—भगवन्सकल्पयोनं प्रतिबधत्स्वपि विषयेष्वभिनिवेश्य तथा प्रहरसि यथा जनोय कालातरक्षमो न भवति । (मालविका ३)

२—अकथितोपि ज्ञायत एव यथायमाभोगस्तपोवनस्येत । (शकु १)

३—आश्रमवासिनो यावदवेक्ष्याहमुपावर्ते तावदार्द्रपृष्ठा क्रियन्त वाजिन । (शकु १)

४—बहुवल्लभा राजान श्रूयते । तद्यथा नौ प्रियसखी बधुजन-शोचनीया न भवति तथा निर्वाह्य । (शकु. ३)

५—संजोवक आह । मा मित्र कथं ज्ञेयो मयामा दुःखमुद्धिरिति ।
इयत्तं कालं यावदुत्तरात्तरम्नेहेन प्रमादेन चाह दृष्ट ।

(पचतत्र)

६—यद्येव नकुलस्य विलद्वारात्सर्पकोटर यावन्मत्स्यमासशकलानि
प्रक्षिप यथा नकुलस्तन्मार्गेण गत्वा त दुष्टभर्ष विनाशयति ।

(पञ्चतत्र)

७—अयि मातर्देवयजनसभवे देवि स्मृते ईदृशस्ते निर्माणभाग.
परिणतो येन लज्जया म्वच्छदेनाक्रादितुमपि न शक्यते ।

(उत्तर ४)

८—ततो यावदमौ पाथस्तद्वचसि प्रतीता लोभात्मरसि स्नातु
प्रविशति तावन्महापके निमग्न पलायितुमक्षम । (हितोप)

९—यथा यथेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जलम-
लिनमेव कर्म केवलमुद्रमति । (काद)

१०—यावत्सर्वंधिनो न परापतति तावद्वत्सया मालत्या नगरदेवता-
गृहं गतव्यमित्यादिशति भगवतीनिदेशवर्तिनोऽमात्यद्वारा ।

(मालती ६)

११—यथेतोमुखागतैरपि महान् कलकल श्रुतोऽस्माभिस्तथा
तर्कयामि । अन्यदपि पारक्य बलमुपगतमिति । (मालती ० ८)

१२—क्रोध प्रभो सहर सहरति यावद्दिगर म्व मरुता चरान्त,
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेष मदन चकार ॥

(कुमार ३ । ७२)

१३—यथैव श्लाघ्यते गगा पदेन परमेष्ठिन ।

प्रभवेण द्वितीयेन तथैवोच्छिरसा त्वया ॥ (कुमार ६ । ७०)

१४—अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधस ।

क्रिया सर्वा विनश्यति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ (हितोप०)

१५—यावत् कुरुने जतु मन्वान्मनस प्रियान् ।

तावन्तो प विलिख्यन्ते हृदये शोकशकवः ॥ (हितोप०)

१६—स तावदभिषेकांते स्नातकेभ्यो ददौ वसु ।

यावतैषां समाप्येरन् यज्ञा पर्याप्तदक्षिणा ॥ (रघु० १७ । १७)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

१—यावत्तत्र भवान्वयस्यः कार्यमनादुत्तिष्ठति तावदन्विम्विरलजनसपाते विमानो-
त्सवपरिसरे स्थास्यामि (विक्रमो० २) ।

२—तदैव भायेऽनिकुटिभकष्टवेष्टासहस्रशक्य राज्यतत्रेऽस्मिन् महामोहाधकारकारिणि
च यौवने कुमार तथा प्रयत्नया यथा नोपहस्यसे जनैर्नोपालभ्यसे सुहृद्भिर्नाक्षिप्यसे
विषयैर्न क्रुध्यसे रागेण नापह्रियसे सुखेन (काद) ।

३—यथा यथा चलितजलयत्रविगलिताभिरबुधाराभिराह्न्यते सा तथा तथा वैद्युतानल
सहोदर इव स्फुरति मदनपावक । (काद) ।

४—चद्रापीड प्रातरेव किवदती शुश्राव यथा किल दशपुरी यावन् परागते स्क्धावा-
हति (काद) ।

५—वत्स यावदय ससारस्वावत्सिद्धवैव लोकयात्रा यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेष्वनुव-
नीया इति । (वेणी० ३) ।

६—अपि दृष्टवानसि मम प्रिया वने कथयामि ते तदुपलक्षणं शृणु ।

पृथुलोचना सहचरी ययैव ते सुभग तयैव खलु मापि वीक्षते ॥ (विक्रमो० ४)

७—वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्या यथैव तथा जडे

न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहति वा ।

भवति च पुनर्भूयान् भेद फलं प्रति तद्यथा

प्रभवति शुचिर्विभोदयाहे मणिर्न मृदा चयः ॥ (उत्तर०)

८—यथा कालकृतोद्योगात्कृषिः फलवती भवेत् ।

तद्वन्नोतिरिय देव चिरात्फलति न क्षणात् ॥ (हितोप०)

९—काडीकोशिमं यथा जातमानस्यता ।

धात्रीव जननी पश्चात् या शोकस्य क क्रम ॥ (नागानन्दः १)

१०—यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयाता महोदधौ ।

समेत्य च व्यपेयाता तदद्भूतसमागम ॥ द्वितीय०)

११—उभयोर्न तथा लोकं प्रावःण्येन विसिष्मिये ।

नृपते प्रतिदानेषु वातस्पृहयथा यथा ॥ (रघु १५ ६८)

१२—यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा

यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहाता यावत्क्रिया नायुषः ।

आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यं प्रयत्नो महान्

प्रोदीप्ते भवने तु कपलननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥ (भर्तृहरि० ३ । ८८)

१३—यथा प्रदीपः ज्वलनं पतगां विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।

तथैव नाशाय विशन्ति लोकान्मवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः । (भगवद्गीता ११।२९)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—अपने मित्रों के पगमर्थ से मेरे द्वारा उसके नाश के लिए सैकड़ों उपाय सोचे गए हैं, वे निम्नलिखित हैं ।

२—मैं समझता हूँ कि आपने पहिले ही से सुन रक्खा है कि स्वर्ग में अप्सरा नाम की वारागनाओं का एक बग रहता है ।

३—शूरता में तो वह भीम के समान है, पर हृदय की दुष्टता में वह निर्दय से निर्दय राजसूय को भी मात करता है ।

४—रावण ने अपनी तपस्या द्वारा शक्र जी को ऐसा प्रसन्न कर लिया कि उन्होंने उसे कई वरदान दिये ।

५—वह राजा अपने देश के ऊपर ऐसी अच्छी तरह शासन करता है कि इसकी असंख्य प्रजाओं में से कोई भी इसके प्रति शत्रुाहीन नहीं है ।

६—चूँकि युद्ध की सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं, इसलिए शत्रु के

साथ सन्धि करना में उचित नहीं समझता ।

७—मे जितना ही अधिक इस ससार के बारे में सोचता हूँ उतना ही मेरा मन इससे विरक्त होना जाता है ।

८—ज्योंही वह अपने मकान में घुसा त्योंही उसकी स्त्री यह चिल्लाती हुई उससे पास भपट कर आई कि—एक सॉप ने मेरे बच्चे को काट खाया है ।

९—मैं आशा करता हूँ कि आप यहाँ तब तक ठहरे रहेंगे जब तक गोविन्द अपनी तीर्थयात्रा से लौट नहीं आवेंगे ।

१०—जब तक मुझ में जरा भी दम है (सॉस है) तब तक मैं अपने प्राण को सड़क में डालकर भी अपने देश को बचाऊँगा, ताकि अपमान से दूषित (मलिन) नाम छोड़कर मैं न मरूँ ।

११—उसने इक्कास दिन डाक्टर की दवा खाई, पर कुछ भी लाभकर परिवर्तन न पाकर उसने वह दवा लेना बन्द कर दिया ।

१२—अध्यापक ने बच्चे का छुड़ी से इतनी करीं मार मारी कि वह बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ।

१३—दार्शनिक लोग जितना ही अधिक ईश्वर के बारे में सोचते हैं उतना ही कम उसे जान पाते हैं ।

१४—वह अपने आचरण की शुचिता के कारण उतना ही विख्यात है जितना कि अपने गुणों के कारण, और परोपकार करने में उतना ही तत्पर है जितना कि अपनी इन्द्रियों का नियंत्रण करने में ।

१५—क्या तुम नहीं जानते कि सभी मासाहारी पशुओं के पजे होते हैं (थावत्-तावत् का प्रयोग कीजिए) ।

१६—जितना ही अधिक परिश्रम से पढ़ोगे, तुम्हारी असफलता की उतनी ही कम “गु जाइश” रहेगी और सुधार की सम्भावना उतनी ही अधिक होती चलेगी ।

अष्टाविंश पाठ

वरं-न, वा, स्थाने, हन्त, हा, हि

३०१—“वरम्—न” के पीछे प्राय च, तु, अथवा पुन आता है। इसका अर्थ होता है—अच्छा है. . .न कि, अच्छा है. . . परन्तु नहीं। वरम् उस उपवाक्य के साथ आता है जिसमें अधिक वाञ्छित वस्तु रहती है वह अधिक वाञ्छित वस्तु कर्ता कारक से रक्खी जाती है, और न च, न तु अथवा न पुन उस उपवाक्य के साथ रक्खा जाता है जिसमें कम वाञ्छित वस्तु रक्खी जाती है (कम वाञ्छित वस्तु भी कर्ता-कारक से रक्खी जाती है), जैसे, वर कन्या जाता न चाविद्रांस्तनयः (५ अतः) —अच्छा है कि कन्या पैदा होवे, परन्तु मूर्ख पुत्र नहीं। वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगम (हितोप) —प्राण छोड़ देना अच्छा है, परन्तु नीचों का सम्पर्क (सांनिध्य) अच्छा नहीं।

(क) कभी कभी “न” अकेला हो आता है च, तु अथवा पुन के साथ जुड़ा हुआ नहीं आता, जैसे, याच्या मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्ध-कामा (मेघ ५) —श्रेष्ठ पुरुष से की हुई याचना चाहे असफल भी हो जाय तो भी अच्छा है, परन्तु अधम पुरुष से की हुई याचना चाहे सफल भी हो जाय तो भी अच्छा नहीं। वर भ्रान्त वनचरै सह, न मूर्खजन-सपर्क (भट्टहरि नीति. १४) —जङ्गली जानवरों (अथवा मनुष्यों) के साथ भ्रमण करना अच्छा है परन्तु मूर्खों के साथ सम्पर्क रखना अच्छा नहीं।

०२—वा का अर्थ है “या” (शेखन २७२ देखिए), जैसे, राम

या गोविन्द—रामो गोविन्दो वा अथवा रामो वा गोविन्दो वा । इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि जमे 'च' या तो प्रत्येक शब्द या प्रत्येक वक्तव्य के साथ जोड़ा जाता है या केवल शब्दों अथवा वक्तव्यों के अन्त में जोड़ा जाता है, उसी प्रकार "वा" भी या तो प्रत्येक शब्द या प्रत्येक वक्तव्य के साथ जोड़ा जाता है या शब्दों अथवा वक्तव्यों के केवल अन्त में ।

(क) वा के निम्नलिखित अर्थ भा हाते हैं —

(१) और, भी, जैसे, पत्रलेखो, कथय महाश्वेताया कादम्बर्याश्च कुशल कुशली वा सकल परिजन इति (कादम्बरी)—अलेखा, मुझसे बताओ कि महाश्वेता और कादम्बरी सकुशल तो हैं, और यह भी बताओ कि सारा मृत्यवग सकुशल तो हैं ।

(२) वा शब्द समान और इव का भा अर्थ देता है, जैसे, जाना मन्ये तुहि नमथिता पद्मिनी वान्यरूपाम् (मेघ० ८६)—मैं उसे पाले से मारा हुई कमलिनी के समान विकृत आकार वाली (परिवर्तित आकार वाली) समझता हूँ ।

(३) विकल्प से, प्रायः व्याकरण-सम्बन्धी नियमों में, जैसे, दोषोऽणौ । वा चित्तविरागे (पाणिनि० ६।४। ६०—६१।) - प्रेरणार्थक में दुष् का उ दीर्घ कर दिया जाता है, परन्तु जत्र इसका अर्थ होता है 'मस्तिष्क को उलट पुलट देना' तत्र विकल्प करके उ को दीर्घ किया जाता है ।

(ख) इव या नाम के समान सम्भवतः के अर्थ में वा शब्द प्रश्नवाचक सर्वनामा के साथ और प्रश्नवाचकसर्वनाम-निष्पन्न शब्दों के साथ जोड़ दिया जाता है, जैसे, मृत को वा न जायते (पञ्चतन्त्र)—सम्भवतः कौन सा मरा हुआ व्यक्ति फिर से पैदा नहीं होता । कस्य वान्यस्य वचसि मया स्थातव्यम् (कादः)—दूसरे किस व्यक्ति के

कहने के अनुसार मे व्यवहार करूँ । कथ वा गम्यने (उत्तर० ३)—
सचमुच तुम केमे जा सकते हो या जाओग ।

३०३—वा वा का अर्थ होता है 'या तो या' जैसे,
उभे एव क्षमे वोढुमुभयार्वीजमाङ्कितम् । मा वा शम्भोस्तदीय वा
मूर्तिर्जलमयी मन (कुमार० २ । ६०)—हम दोनों के वीर्य को केवल
दो ही धारण करने मे समर्थ हैं, या तो शम्भु जी के वीर्य को पार्वती, या
मेरे वीर्य को उनकी जलमयी मूर्ति ।

तत्र कविपरिश्रमानुरोधाद् वा उत्तानकथावस्तुगोरवाद् वा
नवनाटकदर्शनकुतूहलाद् वा भवज्जिरवधान दीयमान प्रार्थये
(वेणी० १)—मे प्रार्थना करता हूँ कि आप लाग इवर व्यान द, चाहे
कवि के परिश्रम का आदर करके, चाहे उच्चन कथावस्तु के महत्व का
विचार करके, चाहें नए नाटक के अभिनय का देखने का इच्छा से ।

३०४—न्यायत, औचित्यत, यह सर्वथा उचित ही है कि—इन
अर्थों मे स्थाने शब्द का प्रयोग क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर होता
है, जैसे, स्थाने प्राणा कामिना दूत्यवाना (मेघ० ३)—यह उचित ही
कहा गया है कि प्रेमियों (कामियों) का प्राण दूतियों के अर्पित होता है ।
स्थाने तपो दुश्चरमेतदर्थमपर्णया पेलवयापि तप्तम् (कुमार० ७ ।
१५)—यह सर्वथा उचित ही है कि कोमलांगी होते हुए भी अपर्णा ने
उन (शिवजी) के लिए बहुत ही कठिन (घोर) तपस्या की ।

(क) अस्थाने का अर्थ है "अनुपयुक्त" "अनवसर", जैसे,
अस्थाने द्वयोरपि प्रयत्न (मुद्रा० २)—दोनों का प्रयत्न अनवसर
अथवा अनुयुक्त था ।

३०५—^१"हत" निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है—

(१) हर्ष, आश्चर्य, जैसा कि हिन्दी के 'अरे' और 'ओह' शब्दों

१—हर्ष हर्षेऽनुकम्पायां वाक्यारम्भविपादयो । (अ०)

से प्रकट किया जाता है, जैसे, हत प्रवृत्तं सगीतकम् (मालविका०१)
—अरे, संगीत आरम्भ हो गया ।

(२) अनुकम्पा, खेद, जैमे, पुत्रक, हत तें धानाका* (गणरत्न
महोदधि)—ऐ पुत्र, खेद (शोक) का विषय है कि तुम्हारे पास केवल
धानाक हैं ।

(३) विषाद मूचक ओह, या हाय, जैसे, हत, धिङ् मामधन्यम्.
(उत्तर०१)—हाय, सुम्न अभाग को धक्कार है ।

(४) यह कभी कभी वाक्यारम्भ करने के लिये प्रयुक्त होता है;
जैसे, हत ते कथयिष्यामि (गमायण १।४८।१४)—अच्छा, अब
मैं आप से कहूँगा ।

३०६—^१“हा” शोक, विषाद, खेद, व्यथा, वेदना का अर्थ सूचित
करता है, जैसे, हा प्रिये जानकि (उत्तर०३)—हाय प्यारी जानकी ।
हा हा देवि स्फुटति हृदयम् (उत्तर०३)—हाय, देवी मेरा हृदय
विदीर्ण होता है ।

कभी कभी यह आश्चर्य या विस्मय भी सूचित करने के लिये
प्रयोग में लाया जाता है, जैसे, हा कथ महाराजदशरथस्य धर्मद्वाराः
प्रियसखी मे कौसल्या—(उत्तर०४)—ओहो, यह तो वस्तुतः महाराज
दशरथ की वनपत्नी मेरी प्रिय सखी कौसल्या हैं ।

द्वितीया के साथ ‘हा’ का प्रयोग समझने के लिए सेक्शन
३४ देखिए ।

विशेष—हा के प्रयोग जुगुप्सा (धिकारना, डाटना) के अर्थ
में बहुत कम मिलते हैं ।

३०७—^२“हि” कदापि वाक्य के प्रारम्भ में नहीं प्रयुक्त होता है !
यह निम्नलिखित अर्थों में प्रयुक्त होता है —

१—हा इति विस्मयविषादशु जुगुप्सातिषु (ग० म०)

२—हि पाद पूरणे हेतौ विशेष्यबन्धारे (वि०)

(१) क्योंकि, बहुत ही शुद्ध और सुदृढ़ तार्किक युक्ति सूचित करता है, जैसे, अग्निरिहास्ति धूमो हि दृश्यते (गणरत्न महोदधि) —यहाँ आग है क्योंकि धुआँ दिखाई पड़ता है । अपि महर्षिणा त्वं गृहयानुमत । कालो ह्यय सक्रमितुं द्वितीयमाश्रमं (रघु० ५।१०)—क्या तुम गृहस्थ बनने के लिए महर्षि से स्वीकृति पा चुके हो, क्योंकि यह द्वितीय आश्रम में प्रवेश करने का समय है ।

विशेष—किसी प्रयोग विशेष के सबन्ध में जो सधारण वचन या कथन कहे जाते हैं उनमें “हि” का यह अर्थ छिपा रहता है ।

(२) वस्तुतः, सत्यतः, जैसे, देव, प्रयोगप्रधानं हि नाट्यशास्त्रं किमत्र वाग्व्यवहारेण (मालविका० १)—महाराज, नाट्यशास्त्र में वस्तुतः प्रयोग ही प्रधान वस्तु होता है, इस विषय में मौखिक वादविवाद से क्या लाभ ? न हि कमलिनी दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मर्तगजः (मालविका० ३)—वस्तुतः कमलिनी को देखकर हाथी ग्राहकी परवाह नहीं करता ।

(३) इसका प्रायः ‘स्फुटार्थ’ ‘उदाहरणार्थ’ अर्थ हुआ करता है । अब तथाच के अर्थ में कोई बात किसी पूर्वोक्तलिखित वचन के उदाहरण रूप में कही जाती है उस समय भी ‘हि’ का प्रयोग होता है, जैसे, प्रजानामिव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् । सहस्रगुणमुत्सृष्टुमादत्तं हि रस रवि (रघु. १।१८)—वह केवल प्रजाओं का हित करने के लिये उनसे कर लेता था, उदाहरणार्थ सूर्यदेव जल को हजारगुना बढ़ाकर लौटालने के लिए ही जल को पीते हैं ।

(४) केवल, अकेला । किसी बात पर बहुत बल देकर कहने में हि शब्द का प्रयोग होता है, जैसे, मूढो हि मदनोनायास्यते (कादं.)—केवल मूर्ख पुरुष कामदेव से सताया जाता है ।

अभ्यास

- १—शकु तला—सखि कस्य वान्यस्य कथयिष्यामि । कित्वा-
यासयित्रीदानी वा भविष्यामि ।
- २—उभे—अत एव खलु निर्वन्ध । स्निग्धजनसविभक्त हि दु ख
सह्य वेदन भवति । (शकु० ३)
- ३—हन्त भो. शकुतला पतिकुल विसृज्य लब्धमिदानी स्वास्थ्यम् ।
(शकु० ४)
- ४—स्थाने खलु प्रत्यादेशविमानिताप्यस्य कृते शकुतला क्लाम्यत ।
(शकु० ६)
- ५—अचिनीत कि नोऽपत्यनिर्विशेषाणि सत्त्वानि विप्रकरोषि । हत
वर्धते सरभ । स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतना-
मधेयोसि । (शकु० ७)
- ६—स्थाने खलु नारायणमृषि विलोभयत्यस्तदूरुसभवामिमा दृष्ट्वा
ब्रोडिता सर्वा अप्सरस इति । (विक्रमो० १)
- ७—भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम् । अपगतमले हि
मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरणभस्तयो विशति सुखमुप-
देशगुणा । (काद-)
- ८—तदेषा भवत काता त्यजैना वा गृहाण वा ।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी ॥ (शकु० ५)
- ९—अनतरन्तप्रभवस्य यस्य हिम न सौभाग्यविलोपि जातम् ।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीदो किरणेष्विव वाक
(कुमार १।३)
- १०—बहूनामप्यसाराणा समवायो हि दुर्जयः ॥
तृणैरावेष्ट्यते रज्जुर्यथा नागोपि बध्यते (पचतत्र १।१४)

११—कुसुमान्यपि गात्रसगमात्प्रभवत्यायुरपोहिंति यदि ।
न भविष्यति हत साधन किमिवान्यत्प्रहरिष्यतीति विवे ।।

(रघु० ८ । ४४)

१२—सेवां लाघवकारिणीं कृतधिय स्थाने श्ववृत्तिं विदुः (मुद्रा० ३)।

१३—वर मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृत
वर क्लैव्यं पुसा न च परकलत्राभिगमनम् ।
वर प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचि-
वर भिक्षाशित्वं न च परधनाभ्यादनसुखम् ॥

(हिताप ०)

अभ्यासार्थं अतिरिक्त वाक्य

१—वरमावाभ्या कतिपयदिवसानन्त्योऽप्यदृश्यं कृतां छेदा अनुभूता न पुनरस्तु
वैशपायनानवलोकनदुःखदीनं दिने दिनं सुखमीक्षितम् (काद०)

२—असंशय क्षत्रपतिश्च हक्षमा सुदृशं सुखासुखिलाभि मे मनः
सता हि सदेवपदेषु वस्तुषु प्रमाणमतः करणप्रवृत्तयः ॥ (शकु० १)

३—सुतनु हृदयात्प्रत्यादेशव्यलीकमपैतु ते
किमाप मनस समाहो मे तदा वचनवानभूत् ।
प्रबलतमसामेव प्राया शुभेषु हि वृत्तयः ।
न जमपि शिरस्थे धि क्षिप्ता धुनोर्विधाकया ॥ (शकु० ७)

४—राजा—एवमादिभिरनुपक्रम्योऽयमप्यतः पदेकं
कुलुपशयनं न अस्थग्रं न च चद्रमलीवकाः
न च अशयजः सर्वाभीष्टा ज्ञाताः सुखियश्च यः ।
मनसि जकृत् स वाः शिरस्थे असौलभ्यो हि न
रह लघयेदारब्धा वा तदाश्रयिणी कथा ॥ (विक्रमो० ६)

५—स्थाने स्वा स्वावरास्मान् बिष्णुमाहुस्तथाहि ते ।

चराचराणा भूताना कुक्षिराधारता गत ॥ (कुमार ६ । ६७)

६—आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा

मत्सादृश्य विरहतनु वा भावगम्य लिखति ।

पृच्छती वा मधुरवचना सारिका पजरस्था

कच्चिद्भर्तु स्मरसि रसिके त्व हि तस्य प्रियेति ॥ (मेघ० ८८)

७—अरुषती—हा वस्ते

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा ।

विशुद्धेऽन्तर्कषस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रव्यति ॥

८—शिशुत्व खौण वा भवतु ननु वद्यासि जगतो

गुणा. पूजास्थान गुणिषु न च लिंगं न च वय ॥ (उत्तर ०४)

९—स्थाने भवानेकनराधिप सन्नकिंचनत्व मखज बिभर्ति ।

पर्यायपीतस्य सुरैर्हिर्मांशो कलाक्षय श्लाघ्यतरो हि वृद्धे ॥ (रघु० ५। १६)

१०—प्रेष्यभावेन नामैर्यं देवीशब्दक्षमा सता ।

स्नानीयवस्त्रक्रियया पत्नोर्णो वोपजुज्यते ॥ (मालविका०५)

११—नृपते प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान् पक्तिरथो विलंध्य यत् ।

अपथे पदमर्पयति हि श्रुतवतोपि रजोनिमीलिताः ॥ (रघु० १० । ७४)

१२—तमपेक्ष्य करोद सा भृक्ष स्वनसबाधसुरो जवान च ।

स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृत्तद्वारमिवोपजायते ॥ (कुमार० ४ । २६)

१३—व्यतिषन्नपि पदार्थानां ततः कोपि हितु- नं छल्य बहिरुपाधीन्प्रीतयः सम्रथते

विकसति हि पर्वतश्चोदये पुण्डरीकं द्रवति च हिमरश्मावुद्गमै चद्रकांतः ॥

(मालती०१)

१४—अहंस्त्वेन (दात्राग्निं) शमयितुमल वारिधारासहस्र -

रापञ्चातिप्रशमनफला सपदो ह्युत्तमानाम् । (मेघ०५४)

१५—स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।

रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धमघा ॥ (भगवद्गीता

११ । ३६)

१६—राक्षस —अदो सुश्लिष्टोऽभूदथ प्रयोग ।

लेखोय न ममेति नोत्तरमिदं मुद्रा मदाया यत

सौहार्दं शकटेन खडितमिति श्रद्धेयमेतत्कथम् ।

मौरो भूषणविक्रय नरपतौ को नाम संभावयेत्

तस्मात्सप्रतिपत्तिरेव हि वरं न ग्रान्यमत्रोरारम् ॥ (मुद्रा०५)

१७—स्वसुखनिरमिलाषं खिद्यसे लोकहृतो- प्रतिदिनमथवा त वात्तरेव विधेव ।

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तात्रमुष्णं शमयति परितापं ह्यायसः सश्रितानाम् ॥

—उचित प्रणयो वर विहृतु बहवः खडनहेतवो हि कृष्टा ।

उपचारविधिर्मनस्विनानां न तु पूर्वान्यधिकोपि भावस्तस्य ॥ (मालविका०३)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे पर भीख माँग कर जीविका निर्वाह करना अभिमाना धनाढ्यों की सदैव खुशामद करने की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा है ।

२—या तो वह या उसके दोनों भाई इसे करने में समर्थ हैं परन्तु अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं ।

३—यह उचित ही है कि द्रव्य को मितव्ययता-पूर्वक खर्च करने के

- १४—सैकड़ों राजाओं में से उसने केवल इस राजा को पति चुना, क्योंकि
मन अपने पूर्व सम्बन्धों को जानता रहता है।
- १५—सम्भवतः दुष्टों के फन्दे में फँस कर कौन सा पुरुष सरलता से
बच पाया है। और कौन सा कमजोर आदमी मजबूतों के साथ
संघर्ष करने के प्रयत्न में असफल नहीं हुआ है।

— — —

उनत्रिंश पाठ

आत्मनेपद और परस्मैपद

सूचना—इस पाठ में तथा तीसरे पाठ में जिन उद्धरणों के सामने
कुछ नहीं लिखा गया है वे सिद्धान्त कैमुदी के हैं।

३०८—संस्कृत में दो पद होते हैं—आत्मनेपद और परस्मैपद।
आत्मनेपद यह सूचित करता है कि क्रिया का फल कर्ता के लिए है
(कर्तृगामि फलम्), जैसे, कुरुते का अर्थ हुआ “अपने लिए करता
है”। परस्मैपद यह सूचित करता है कि क्रिया का फल दूसरे के लिए है,
जैसे, गच्छति का अर्थ हुआ “दूसरे के लिए जाता है”। पर यह भेद
कार्यरूप में नहीं माना जाता। इन शब्दों के मौलिक अर्थ यही हैं जो
कि अभी बताया गए हैं, पर सर्वत्र इनका पालन करना असम्भव हो जाता
है। संस्कृत लेखक दोनों पदों को बिना किसी भी भेद भाव के प्रयोग में
लाते हैं, जैसे निदेशमिदानीं श्रोतुमिच्छामि (मालविका ७१)—अब
मैं संदेश सुनना चाहता हूँ। उत्कण्ठासाधारण परितोषमनुभवामि
(शकु. ४)।—यावद् यते साधयितुं त्वदर्थम् (रघु. ५। १५)

यदि यह कहा जाय कि यह भेद उभयपदी धातुओं के विषय में हो माना जाता है, तो यह बात भा प्रयोगों तथा उदाहरणा से सिद्ध नहीं होती, जैसे, राजा स्वसूनोश्चन्द्रापीड इति नाम चकार । शुक्रनासोऽपि विप्रजनोचित वैशंपायन इति नाम चक्रे (काद०) । यहाँ पर दोनों पद एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं ।

३०६—कुछ धातुओं के रूप केवल एक ही पद में चलते हैं, जैसे, नम्, भ्रम्, रुच्, भाष् । कुछ धातुओं के रूप दोना पदों में चलते हैं, जैसे कृ, चि, चूर्, दुह्, । कुछ परस्मैपदा धातुएँ उपसर्गयुक्त होने पर सर्वथा आत्मनेपदी हो जाती हैं, तथा कुछ आत्मनेपदा धातुएँ उपसर्गयुक्त होने पर अपना पद छोड़कर सर्वथा परस्मैपदी हो जाती हैं अथवा वे किसी विशेष अर्थ में प्रयोग में आती हैं, जैसे, गम् धातु परस्मैपदी है, परन्तु सम् उपसर्ग पूर्वक गम् धातु आत्मनेपदी हो जाता है । शास् (शासन करना) परस्मैपदी धातु है, परन्तु आ उपसर्ग पूर्वक शास् धातु (आशावाद देना) आत्मनेपदी हो जाती है । इस प्रकार की कुछ धातुओं का उल्लेख इस पाठ में तथा अगले पाठ में होगा ।

भादिगणी धातुएँ

३१०—उपसर्ग रहित रहने पर क्रम् धातु उभयपदी होती है । परन्तु जब यह आत्मनेपद में रहती है तब यह नैरन्तर्य अथवा बाधाभाव, शक्ति, विकास या उत्थिति का अर्थ सूचित करती है, जैसे, क्रममाणोऽस्मि संसदि (भट्टि काव्य ८ । २२) -शत्रु की सभा में निर्बाध घूमता हुआ । अध्ययनाय क्रमते—अध्ययन के लिए स्फूर्ति दिखलाता है । क्रमतेऽस्मिन् शास्त्राणि—इसमें शास्त्र विकसित होते हैं ।

१—वृत्तिसर्गावायेषु क्रमः । उपपराम्याम् । आङ्० उद्गमने । बे० पादविहरणे ।

प्रोपाभ्यां सप्तर्थाभावम् । अनुपसर्गाद् वा (१ । ३ । ३८-४३)

(क) उप तथा परा पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है और वही उपरिलिखित अथ सूचित करती है, जैसे, इत्युक्त्वा खे पराक्रस्त (भट्टि ८। २२) - ऐसा कह कर उसने आकाश में अपनी शक्ति (पराक्रम) दिखाई। परीक्षितुमुपाक्रस्त राज्ञसी तस्य विक्रमम् (भट्टि० ८ २२) - उस राज्ञे ने उसके शौर्य का परीक्षा लेने की धृष्टता की।

(ख) आ पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है और किसी नक्षत्र का उदय होना सूचित करता है, जैसे, आक्रमते सूर्य (महाभाष्य - सूर्य उदित होता है। दिवमाक्रममाणेव (भट्टि० ८। २३)। परन्तु आग्रामति धूमो हर्म्यतलात् - महल के ऊपर से धुआँ निकलता है। अथवा आक्रामति धूमो हर्म्यतलम् (महाभाष्य) - धुआँ महल के ऊपरी भाग को ढक लेता है।

(ग) चलने अथवा कदम रखने के अर्थ में वि उपसर्ग पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, विष्णुस्त्रेधा विचक्रमे - विष्णु ने तीन कदम लिए। वाजी विक्रमते। परन्तु विक्रामति सन्धि - सन्धि फट रही है (जोड़ टूट रहा है)।

(घ) आरम्भ करने के अर्थ में प्र तथा उप पूर्वक क्रम् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, वक्तु मिथ प्राक्रमतैवमेनम्। (कुमार० ३। २) - इस प्रकार एकान्त में बातचीत करने लगा। परन्तु प्रक्रमति - जाता है, उपक्रमति - आता है।

३११ - 'क्रोड् धातु परस्मैपदा है, पर अनु, सम्, परि तथा आ पूर्वक क्रीड् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे अनु-परि-आ-क्रीडते माणवक., सक्रीडते मणिभि यत्र कन्या (मेघ० ७) - जहाँ कन्याएँ मणियों से खेलती हैं। परन्तु माणवकमनुक्रीडति (महाभाष्य) - माणवक के साथ खेलता है।

(क) शोर करने के अर्थ में सम्पूर्वक क्रीड् धातु परस्मैपदी होती है, जैसे, सक्रीडन्ति शकटानि (महाभाष्य)—छकड़े आवाज करते हैं (शोर करते हैं) ।

३१२^१—‘मिलजाने’, ‘जुड़जाने,’ के अर्थ में सम्पूर्वक गम् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, अक्षधूतै समगंसि (दशकुमार २ । २) ।—मैं जुआड़ियों में मिल गया । इसी प्रकार सम्पूर्वक ऋ या ऋच्छ् धातु आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे, समारन्त ममाभीष्टा (भट्टि० ८ । १६) ।

३१२^२—उद् पूर्वक चर् (चलना) धातु जब सकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है तो आत्मनेपदी होती है, जैसे, पानशौंढा पथ क्षीवा वृन्दैरुदचरत च (भट्टि ८।३१)—नशे में मतवाले पियकड़ भुण्ड के भुण्ड मार्ग से भटक गए । धर्ममुच्चरते—धर्म (कर्तव्य) का उल्लंघन करता है । परन्तु बाष्पमुच्चरति—भाप ऊपर उठती है ।

(क) तृतीयान्त वाहन के योग में सम्पूर्वक चर् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, यानै. समचरतान्ये (भट्टि० ८।३२)—अन्य लोग रथों से गए । क्वचित् पथा सचरते सुराणाम् (रघु० ६३।१६)—कभी कभी देवताओं के मार्ग से होकर जाता है ।

३१३^३—वि तथा परा पूर्वक जि धातु जीतना, विजयी होना, हरादेना—इन अर्थों में आत्मनेपदी होती है, जैसे, चक्षुर्मचकमम्बुज विजयते (विद्वशालभजिका)—उसकी (नीली नीली) आँखें नील कमल को जीत लेती हैं । विजयता देव (मालविका ०१)—महाराज की जय हो (महाराज विजयी हों); ख पराजयमानसौ (भट्टि० ८।६)—आकाश को हराते हुए ।

१—समो गमृच्छिभ्याम् (१ । ३ । २९)

२—उदश्चरः सकर्मकात् । समस्तृतीयायुक्तात् (१।३।५३—५४)

३—विपराम्यां जे (१।३।१९)

३१५^१—जब वि अथवा उद् पूर्वक तप् धातु अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है, अथवा जब शरीर का कोई अवयव उसका कर्म होता है तो वह आत्मनेपदी होती है, जैसे, रविर्वितपतेत्यर्थम् (भट्टि० ८।१४)—सूर्य बहुत जोरों से तप रहा है। तीव्रमुत्तपमानोयमशक्य सोढुमातप. (भट्टि० ८।१५)—यह अत्यन्त ही झुलसाने वाला घाम असह्य है। उत्तपते वितपते पाणी (महामाध्य)—वह अपने हाथों को सेंकता है। परन्तु उत्तपति सुवर्ण सुवर्णकार (महामाध्य)—सोनार सोने को तपाता है। इसी प्रकार चैत्रो मैत्रस्य पाणिमुत्तपति।

विशेष—तप् धातु स्वतः अकर्मक है, जैसे, तमस्तपति घर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति (शकु० ५)—सूर्य के चमकते रहते भला अन्वकार कैसे प्रकट होगा।

३१६—उद्, उप, वि, पूर्वक नी धातु अथवा इन उपसर्गों से रहित नी धातु निम्नलिखित अर्थों में आत्मनेपदी होती है—

(१) उपदेश देना अथवा आदेश देना, जैसे शास्त्रे नयते—शास्त्र का उपदेश देता है।

(२) उठाना, जैसे, ढडमुन्नयते—डडा उठाता है।

(३) धार्मिक सस्कार की दीक्षा देना, जैसे, माणवकमुपनयते—माणवक का यज्ञोपवीत सस्कार करता है।

(४) ज्ञान, अन्वीक्षण, जैसे, तत्त्व नयते—मत्य की जाँच पड़ताल करता है।

(५) मजदूरी पर लगाना या नियुक्त करना, किराए पर लगाना, जैसे, कर्मकरानुपनयते—मजदूरों को किराए पर रखता है।

१—उद्भिः तप (१।३।२७) स्वांगकर्मकाच्चेति वक्तव्यम्। (वातिष्क)

(६) ऋण या कर देना, जैसे, कर विनयते—राजकर देता है ।

(७) व्यय करना, काम में लगाना, जैसे, शत विनयते—सौ रुपया (दान) खच करता है ।

(क) जब शरीरावयव के अतिरिक्त अन्य कोई चीज कर्म हो तो वि पूर्वक नी धातु आत्मनेपदी होता है, जैसे विनेष्ये क्रोधमथवा (भट्टि० ८।२२) —अथवा मैं अपना क्रोध दूर कर दूँगा । परन्तु गंड विनयति —अपना गाल फेर लेता है ।

विशेष—शिक्षा देना, पालतू बनाना—इन अर्था में वि + नी परस्मैपदी होती है, जैसे बन्यान् विनेष्यन्निव दुष्टसत्वान् (रघु० २।८) —मानो जगल के दुष्ट पशुओं को पालतू बनाने की इच्छा करते हुए ।

३१४ —आ पूर्वक यम् धातु जब अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है अथवा जब शरीरावयव या शास्त्रातिरिक्त (ग्रन्थातिरिक्त) कोई वस्तु इसका कर्म हो तो यह आत्मनेपदी होती है, जैसे, आयच्छते— फैलाता है, पाणिमायच्छते—अपना हाथ फैलाता है, यस्त्रमायच्छते—कपड़ा फैलाता है ।

(क) जब सम् + उत् पूर्वक यम् धातु का कर्म शान्त्र नहीं होता बल्कि शास्त्रातिरिक्त अथवा साहित्यातिरिक्त कोई दूसरी वस्तु कर्म हो तो यह आत्मनेपदी होती है, जैसे, व्रीहीन् सयच्छते—चावल इकट्ठा करता है, भारमुद्यच्छते—बोझा उठाता है । परन्तु उद्यच्छति वेदम्—वेद पढ़ने के लिये घोर परिश्रम करता है ।

(ख) उप पूर्वक यम् धातु विवाहार्थ अथवा स्वीकारार्थ में आत्मनेपदी होती है, जैसे, सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमै

यदन्याम् (रघु० १४।७१)—सीता को त्याग कर दशमुख के शत्रु (श्री रामजी) ने जो दूसरी स्त्री नहीं ब्याही।

३१८^१—रम् (रमण करना, विहार करना साधारणतः आत्मनेपदी है, परन्तु वि, आ, परि उपसर्ग पूर्वक रम् भात परस्मैपदी हो जाती है, जैसे, विरम 'विरम वह' (रत्न ५)—ऐ अग्निदेव, रुको, रुको। आरमति उद्याने—बगीचे में आराम करता है। क्षणं पर्यरमत्तस्य दर्शनात् (भट्टि ८।५३)—उसको देखकर क्षण भर के लिए प्रसन्न हो गया।

(क) उप पूर्वक अकर्मक रम् धातु उभयपदी होती है, जैसे उपारसीच्च सम्पश्यन् वानरस्त चिकीर्षितात् (भट्टि० ८। ५४)—वानर जो कुछ करना चाहता था उसे देखकर उसने बन्द कर दिया। नात्र सीतेत्युपारस्त (भट्टि १।५५)—सीता यहाँ नहीं है वह देखकर वह रुक गया।

३१९^२—वद् धातु स्वतः ता निम्न लिखित अर्थों में आत्मनेपदी है—

(१) किसी चीज में मेधावित्त्व अथवा बुद्धिवैचक्षण्य दिखलाना, जैसे, शास्त्रे वदते,

(२) शान्त करना, पुचकारना, (इस अर्थ में प्रायः उप पूर्वक रहता है), जैसे, भृत्यानुपवदते अपने नौकरों में मेल मिलाप कर लेता है अर्थात् उन्हें शान्त कर देता है।

(३) ज्ञान; जैसे, शास्त्रे वदते—शास्त्रों को जानता है।

१—व्याङ् परिस्थो रमः। विभाषाऽकर्म काण। (१।१।८३-८५)।

२—भासनीयसभाषा ज्ञान-यत्न-विपत्युपमश्रयोः वदः। व्युत्पत्त्यां सप्तच्चाऽर्थे।

अनोरकर्मकाण। विभाषा विप्रलापे (१।३।४७-४८)।

(४) प्रयास, उद्योग, जैसे, क्षेत्रे वदते - खेत में खूब कड़ी मिहनत करता है ।

(५) 'मतभेद', 'विवाद'(प्रायः इस अर्थ में यह वि पूर्वक रहती है), जैसे परस्पर विवादमानाना शास्त्राणाम् (हितोप०)—आपस में बाद विवाद करने वाले शास्त्रों का ।

(६) चापलूसी करना, प्रार्थना करना, जैसे, दातारमुपवदते—दाता की चाटुकारी करता है [यह न०२ के समान ही है]

(क) सम्प्र पूर्वक वद् धातु मनुष्या के समान जोर से तथा स्पष्ट बोलने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है, जैसे, सम्प्रवदन्ते ब्राह्मणाः—ब्राह्मण लोग बड़े जोरो से बोल रहे हैं । परन्तु वरतनु, सम्प्रवदन्ति कुक्कुट्टा (महाभाष्य)—ऐ सुन्दर शरीर वाली स्त्री, मुझे बोंग दे रहे हैं ।

(ख) उपयुक्त परिस्थिति में अनु पूर्वक वद् धातु अकर्मकदशा में आत्मनेपदी होती है, जैसे, अनुवदते कठ कलापस्य—कठ कलाप की नकल करता है । परन्तु उक्तमनुवदति—कहे हुए को फिर से कह देता है । अनुवदति वीणा—वीणा बोलती है ।

(ग) वि + प्र पूर्वक वद् धातु "भगड़ा करने" के अर्थ में उभयपदी होती है जैसे, विप्रवदते वैद्या अथवा विप्रवदति वैद्या—वैद्य लोग वाद विवाद करते हैं । ऐद् विप्रवदमानैस्ता संयुक्ता ब्रह्मराक्षसैः (मट्टि० ८ । ३०)—भगड़ते हुए ब्रह्मराक्षसों से भरी हुई उस (स्थली) क पास गया ।

(घ) धिक्कारने, अथवा डाटने के अर्थ में अप्र पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, न्यायमपवदते, नृभ्योऽपवदमानस्य (मट्टि० ४५) ।

३२०^१—अपना अभिप्राय प्रकट करने के अर्थ में, अथवा किसी को न्यायाधीश या पंच के तौर पर स्वीकार कर लेने के अर्थ

में स्था धातु स्वत आत्मनेपदी होती है, जैसे, गोपी कृष्णाय तिष्ठते— गोपी वृष्ण से अपने सारे मनोगत भावों को प्रकाशित कर देती है। सशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः (किरात० ३। १४)—मशय आ पड़ने पर जो व्यक्ति कर्ण आदि को अपना पंच मान लेता है।

(क) सम्, अव, प्र और वि पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न संतिष्ठते (मृच्छ-कटिक १—गरीबी के कारण बान्धव लोग (भी) मनुष्य के कड़ने में नहीं रहते। क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तु (रघु० ८। ८७)।—यदि जोब क्षण भर के लिए भी सँव लेता है। हरिहरिप्रस्थमथ प्रतस्थे (शिशुपाल ३। १)—तब हरि हरिप्रस्थ को चल दिए। इसी प्रकार, अत्रापरे प्रत्यवतिष्ठन्ते (शाकरभाष्य ४५), अग्नेर्ज्वलत विस्फुलिगा विप्रतिष्ठेरन् (शाकर भाष्य ४५)।

(ख) केवल प्रतिज्ञा के अर्थ में आ पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, जल विष वा तव कारणादास्थास्ये (महाभारत,—तेरे कारण मैं अवश्य जल अथवा विष का आश्रय लूँगा)।

३२१^२—उठने के अर्थ में उत् पूर्वक स्था धातु परस्मैपदी होती है, परन्तु आलंकारिक अर्थ में यह आत्मनेपदी हो जाता है, जैसे, उत्तिष्ठमान मित्रार्थे कस्त्वा न बहु मन्यते (भट्टि० ८। १२)—मित्र के लिए प्रयत्न करने वाले तुमको कौन नहीं मानता या पूजता। मुक्तावुत्तिष्ठते—मुक्ति के लिए उठता है (उच्चाकादा रखता है)। (किरात ११। १३ तथा शिशुपाल १४। १७ देखिए)। परन्तु पीठादुत्तिष्ठति और ग्रामाच्छत-मुत्तिष्ठति—गाँव से एक सौ मिलता है।

३२२^३—धार्मिक विधि के अनुसार सेवा करने या देवता जैसे पूजा करने के अर्थ में उप पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे,

१—समवप्रविश्य. स्थ। प्रकाशन स्थेयाख्य बोधव। (१। ३। २२—२३)

२—उदोऽनूध्वकर्मणि (१। ३। २४)

३—उपान्मन्त्रकरणे (१। ३। २५)

ये सूर्यमुपतिष्ठन्ते मंत्रैः (भट्टि० ८ । १३)—जो लोग मंत्रों द्वारा सूर्य को पूजते हैं । न त्र्यम्बकादन्यमुपास्थितासौ (भट्टि० १ । ३)

विशेष^१—साधारण सेवा करने या पूजा करने के अर्थ में यह धातु साहित्य में उभयपदी पाई जाती है, जैसे, उपतस्थुर्महात्मान चर्मपुत्र युधिष्ठिरम् (महाभारत २ । ४ । ७) । स्तुन्य स्तुतिभिरर्ध्याभिरुपतस्थे सरस्वती (रघु० ४ । ६)

३२३^२—उप पूर्वक स्था धातु निम्नलिखित अर्थों में भी आत्मनेपदी होती है—

(१) मिलना, सम्मिलित होना, जैसे, गगा यमुनामुपतिष्ठते—गगा यमुना में मिल जाती है ।

(२) किसी के साथ मैत्री करना, जैसे, रथिकानुपतिष्ठते (महाभाष्य)—सारथियो से मैत्री करता है ।

(३) जाना, जैसे मार्ग चला जाता है, अथ पन्था साकेतमुपतिष्ठते (महाभाष्य)—यह मार्ग साकेत (अयोध्या) को चला जाता है ।

(क) जब किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा विवक्षित होती है तब उप पूर्वक स्था धातु उभयपदी होती हैं, जैसे, भिक्षुको ब्राह्मणकुलमुपतिष्ठति—उपतिष्ठते वा (महाभाष्य)—भिक्षु कुछ पाने की इच्छा

१—इस पर महाभाष्य का यह वचन है—

बहुनामण्यचित्तानामेको भवति चित्तवान्

पश्य वानरसैन्यैऽस्मिन् यदर्कमुपतिष्ठति ॥

यैव मस्थाः सचित्तोयमेवोपि हि यथा वयम् ।

एतद् व्यस्य कापेयं यदर्कमुपतिष्ठति ॥

२—उक्तं देवपूजासमातिद्वर्यामित्रकरणाधिभित्ति वाच्यम् ।

से ब्राह्मण के घर पर जाता है। जब यह अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होती है तब भी आत्मनेपदी होती है, जैसे, भोजनकाले उपतिष्ठते—भोजन के समय तैयार होकर खड़ा हो जाता है।

३२४^१—निरन्तर अभ्यास करने के अर्थ में अनुपूर्वक हे धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, पैतृकमश्वा अनुहरन्ते—घोड़े सदा अपने पुरखों की गति (चाल) का अभ्यास करते हैं। परन्तु “मिलना जुलना” अर्थ में यह परस्मैपदी होती है, जैसे, रामभद्रमनुहरति (उत्तर०)।

३२५—ललकारने के अर्थ में आ पूर्वक हे धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, कृष्णश्चाणूरमाह्वयते (सि० कौ०)। आह्वयत चेदिराद् मुरारिम् (शिशु० २०।१)। परन्तु इत एवाह्वयै नमायायुष्मन्तं (उत्तर० ६)—इस चिरजीवी बालक को भी यहाँ बुलाओ।

अभ्यास

१—राज्य नाम शक्तित्रयायत्तम्। शक्तयश्च मन्त्रप्रभावोत्साहा।

परस्परानुगृहीता कृत्येषु क्रमते। (दशकुमार० २।८)

२—असौ पाप क्रमेण शाखातरै सचरमाण कोटरमागत्य तातम-
पगतासुमकरोत्। (काद०)

३—एव भो संततिविच्छेदनिरवलबाना मूतपुरुषावसाने सपद
परमुपतिष्ठति। (शकु० ६)

४—उषसि स्नात्वा कृतमगलो मन्त्रिभि सह समगच्छे।
(दशकुमार० २।३)

५—अये वनदेवतेय फलकुसुमपल्लवाद्यैण मसुपतिष्ठते।
(उत्तर० २)

१—हरतेगतच्छीह्ये। (वातिक)

२—स्पर्धायाभाहः (१।३।३१)

- ६—विजयेता रामलक्ष्मणौ कुभकर्णमेघनादौ । (अनर्घ्यराघव६)
 ७—तत प्रतस्थे कौबेरी भास्वानिव रघुर्दिशम् । (रघु० ४।६६)
 ८—वक्तु धीर, स्तनितवचनैर्मानिनी प्रक्रमेथा । मेघदूत १०११
 ९—बलिर्बबधे जलधिर्ममथे जहेऽमृत दैत्यकुल विजिग्ये ।
 कल्पांतदु स्था वसुधा तथोहे येनैष भारोऽतिगुरुर्न तस्य ॥
 (भट्टि० २।३६)

- १ —उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्य पथ्यमिच्छता ।
 समौ हि शिष्टैराम्नातौ वत्स्यतावामय स च ॥
 (शिशु० २।१०)
 ११—अयमपि च गिर नस्त्वत्प्रबोधप्रयुक्ता-
 मनुवदति शुकस्ते मजुवाक् पजरस्थ । (रघु० ५।७४)
 १२—यावत्प्रतापनिविराक्रमते न मानु-
 रह्वाय तावदरुणेन तमो निरस्तम् । (रघु० ५।७१)
 १३—अथ सर्वस्य धातार ते सर्वे सर्वतोमुखम् ।
 वागीश वाग्भिरर्थ्याभि प्रणिपत्योपतस्थिरे ॥ (कुमार २।३)
 १४—स मानसी मेरुसख पितृणा कन्या कुलस्य स्थितये स्थितिज्ञ ।
 मेना मुनीनामपि माननीयामात्मानुरुपा विधिनोपयेमे ॥
 (कुमार २।१८)
 १५—पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे
 निकृतभर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति । (उत्तर० ४)
 १६—फलान्यादत्स्व चित्राणि परिक्रोडस्व सानुयु ।
 साध्वनुक्रीडमानर्बनि पश्य वृढानि पक्षिणाम् ॥
 (भट्टि० ८।१०)
 १७—कच्चिन्नोपावद्विष्टासौ केनचिद् व्यवदिष्ट न ।
 शखन् सप्रवदमानाद्रावणस्य गुणाब्जनात् ॥
 (भट्टि० ८।२८)

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

- १—एते भगवत्या भूमिदेवाना मूलमायतनमतर्वेदि पूर्वेण कृष्णागरमलयवरसमगरागम-
न्योन्यस्य कुर्वाण्ये कलिदकन्यामंदाकिन्यौ सगच्छेते । (अनर्घ्यराघव ७)
- २—इत्युक्त्वा शुक्तासो हेमतकालोत्थलिनीमिवोद्भाष्य दृष्टिमुद्वहन् द्वेपिताधरश्च
बहिलं धनिर्गमेण स्फुटन्निवातमङ्गुपूरेण निश्चसन्नेवावतस्थे । (काद ०)
- ३—वयोवेषविसर्वादि रामस्य च तथोस्तदा ।
जनता प्रेक्ष्य सादृश्यं नाक्षिकप व्यतिष्ठत ॥ (रघु० ६७)
- ४—तत्रैन हेमकुम्भेषु सभृतैस्तीर्थवारिभि ।
उपतस्थुः प्रकृतयो भद्रपाठोपवेशिनम् (रघु० १ १०)
- ५—इति दक्षितविक्रिय सुत मरुतः कोऽपरीतमानसम् ।
उपसात्वयितु महीपतिर्द्विरदं दुष्टमिवोपचक्रमे ॥ (किरात० ० । २५)
- ६—पारसीकास्ततो जेतु प्रतस्थ स्थलवर्त्मना ।
ऽद्रियाख्यानिव रिपूस्तत्त्वज्ञानेन सयमी ॥ (रघु० ४ । ६०)
- ७—विनयते स्म तद्योधा नधुभिर्विजयश्रमम् ।
आस्तीर्णाजनरत्नासु द्राक्षावलयभूमिषु ॥ (रघु० ४ । ६५)
- ८—श्रुतमप्यधिगम्य ये रिपून् विनयन्ते न शरीरजन्मन ।
जनयत्यचिराय सपदामयशस्ते खलु चापलाश्रयम् ॥ (किरात० २ । ४१)
- ९—प्रियप्राया वृत्तिविनयमधुरो वाचि नियम
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीत परिचय ।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरम
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥ (उत्तर० २)
- १०—क्षणं भद्रावतिष्ठस्व तत प्रस्थात्यसे पुन ।
न तत्प्रस्थास्यते कार्यं दक्षे णोरीकृत त्वया ॥ (मट्टि० ८ । ११)

११—द्रष्टु प्रक्रममाणोसौ सीतामंभोनिषेस्तटम् ।

उपाकंस्तानुनं घोरैः क्रममायैर्निशाचरैः ॥ (भट्टि ८ । २५)

१२—जलितोत्क्रुशसगीतप्रनृत्तस्मिनवलितैः ।

घोषस्यान्ववदिष्टेव लका पूतक्रनो पुरः ॥ (भट्टि । ८ २९)

१३—व्यरमत्पथनायस्मात्परित्रस्त, सइस्तट्टक् ।

क्षय पर्यरमत्तस्य दर्शनान्मारुतात्मज ॥ (भट्टि० । ५३)

१४—यावदर्थपदा वाचमेवमादाय माधव ।

विरराम महोवासः प्रकृत्या मितभाषिण ॥ (बिशु० २ । १३)

१५—विषमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा ।

अनीत्वा यक्रना धूलिमुदकं नावतिष्ठते (शिशु-२ । ३४)

१६—समगध्व पुर शत्रोर्भेदयध्वं रघूत्तमम् ।

मोयध्वं भयं सीता नोपायंस्त दशानन ॥

तत प्रास्थिषनाद्रौद्रं महैद्रं वानरा द्रुतम् ।

सर्वे किन्नकिलाय तो धैर्यं चाधिषताधिकम् ॥ (भट्टि० ७ । १०१)

संस्कृत में अनुवाद कीजिए—

१—आधी रात को जब मैं अपने विस्तरे पर गहरी नीद में सो रहा था तो परस्पर विवाद करते हुए पुरुषों की तरफ से आने वाले कोलाहल से जाग पड़ा ।

२—कुटुम्ब की रक्षा ज्येष्ठ पुत्र को सौंप कर बुढ़्दा आदमी तीर्थ-यात्रा के लिये चल दिया (प्र+स्था) ।

३—योग्यतम सेनापति से आशुत फ्रांसीसियों ने दुर्ग पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया (उप+क्रम्), परन्तु चीन-निवासियों ने उन्हें सरलता-पूर्वक हरा दिया (परा+जि) ।

४—ज़ोर ज़ोर आते करते ही करते दोनों युवक एक दूसरे पर प्रहार करने

लगे और दोनों में अधिक उग्र प्रकृति वाले युवक ने दूसरे को द्वन्द्व-युद्ध के लिये ललकारा (आ+हे) ।

५—केवल धन प्राप्त करने की इच्छा से धनाढ्यो की सेवा करने वालों (उप+स्था) तथा चापलूसी करने वालों को धिक्कार है ।

६—यमुना जी प्रयाग में गङ्गाजी में मिल जाती है, (सम्+गम्) और यह स्थान हिन्दुओं द्वारा बहुत ही पवित्र माना जाता है ।

७—क्रोध रोको (वि+रम्) और लोभ छोड़ो, किसी भी प्रकार अनर्थ करने की चेष्टा न करो ।

८—जब परशुराम जी एक उरुसत्त्व घोड़े पर चढ़ कर सचरण कर रहे थे (सम्+चर्) तो घोड़ा एक जलाशय देखकर चकित हो गया और अश्वारोह बड़े वेग से नीचे गिर पड़ा ।

९—इङ्गलैण्ड के युवराज ने डेनमार्क की राजकुमारी से विवाह कर लिया (उप+यम्) ।

१०—जो व्यक्ति बालक का उपनयन कराता है, (उप+नी) और ब्रह्म-विद्या पढ़ाता है वह आचार्य कहलाता है ।

११—यह मार्ग सीधे नदी को जाता है, पर दूसरा बिल्कुल टेढ़ा मेढ़ा है, जिसे चाहो उसे चुन लो ।

१२—जब कि घाम इतना तपाने वाला है तो तुम बिना छाता के कैसे बाहर जा सकते हो ।

१३—ब्रह्मण की प्रकृति मृदु होती है । चाहे वह थोड़ी देर के लिये लुब्ध भी हो जाय, परन्तु बहुत जल्द ही वह अपनी मौलिक स्थिति पर आ जाता है (सप्तमी के साथ अव+स्था) ।

१४—कृपा के इच्छुक हम लोगो ने दुष्ट के व्यग्रों को तथा अभिमानियों द्वारा किए हुए अपमानों को बहुत देर तक क्लीबवत् सहा, तो, ऐ आशे, तू अपना कार्य कब बन्द करेगी ?

१५—शुकनास चन्द्रापीड के पास गया (उप+स्था) और उसे कई महत्त्वपूर्ण विषयो पर मन्त्रणा (परामर्श) देकर प्रसन्नचित्त हो घर लौट आया ।

—०—

त्रिंशत्तम पाठ

अदादिगणी धातुएँ

३२६—पहिचानने के अर्थ में सम् पूर्वक विद् (जानना) धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, पितरावपि मा न प्रतिसंविदाते (दशकुमार० २।३)—मेरे माँ बाप भी मुझे नहीं पहिचानते ।

(क) “जानने” के अर्थ में अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होने वाली सम् पूर्वक विद् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, के न संविदन्ते वायोमैनाकाद्रिर्यथा सखा (भट्टि० ८।१७)—कौन नहीं जानता कि मैनाक पर्वत वायु का मित्र है ।

३२७—आशीर्वाद देने के अर्थ में आ पूर्वक शास् धातु और प्रार्थना करने या माँगने के अर्थ में प्र पूर्वक शास् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, ऋक्छन्दसाशास्ते (शकु० ४)—एक ऋक् द्वारा उसे आशीर्वाद देता है । इदं प्रशास्महे (उत्तर० १)—हम लोग यह माँगते हैं या प्रार्थना करते हैं ।

३२८—हन् साधारणतः पस्मैपदी होती है, पर अकर्मक के तौर पर प्रयोग में आने पर और अपने ही शरीर से सम्बन्ध रखने पर आ पूर्वक हन् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, आघ्नान इव स दीप्तै-

रलातै सर्वतो मुहु (भट्टि० ८।१५) — मानों चारों ओर जलते हुए आग के अगारो से मारते हुए । परन्तु परस्य शिर आहति (सि०कौ०) ।

विशेष—यह नियम सदा नहीं माना जाता, आजन्ने विषमविलोचनस्य वक्ष (किरात० १७।३३) ।

जुहोत्यादि, दिवादि तथा स्वादि गण की धातुएँ

३२६—दा धातु स्वतः तो उभयपदी होती है, परन्तु आ पूर्वक दा धातु 'लेने' के अर्थ में आत्मनेपदी होती है, जैसे, नादत्ते भवतीं स्नेहेन या पल्लवम् (शकु० ४) — जो प्रेम के कारण आप लोगों के पक्षियों को नहीं तोड़ती थी । परन्तु मुख व्याददाति—मुँह बाता है (फैलाता है) । और भी विपादिका व्याददाति—अपने पाँव पर की फोड़िया को फोड़ता है । नदी कूलं व्याददाति । परन्तु व्याददते पिपीलिका. पतंगस्य मुखम् (महाभाष्य) ।

३३०—सम् पूर्वक नह् धातु तैयार होने, या तैयार करने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है, जैसे, छेत्तुं वज्रमणीन् सनह्यते (भट्टहरि० २।६) — वज्रमणियों को काटने के लिये तैयार होता है । युद्धाय संनह्यते (महाभाष्य) युद्ध के लिए तैयारी करता है ।

३३१—सम् पूर्वक श्रु धातु जब सकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होता है तो परस्मैपदी होती है, जैसे, मद्बचनं न श्रुणोति—मेरी बातें नहीं सुनता (मेरी बातों की परवाह नहीं करता) । परन्तु अकर्मक के तौर पर प्रयुक्त होने पर आत्मनेपदी होती है, जैसे, स शृणुष्व कपे (भट्टिकाव्य ८।१६) — ऐ वानर, सुनो ।

तुदादिगणी धातुएँ

३३२—अपपूर्वक कृ धातु 'ऊपर फेंकना' या जीविका के लिए

अथवा घर बनाने के लिए 'हर्ष के मारे खरोचना' के अर्थ में आत्मनेपदी होती है, जैसे, छायापस्किरमाणविष्किर (उत्तर० २)—छाया में भोजन प्राप्त करने के लिए जमीन को खरोचते हुए पशु। अपस्किरते कुक्कुटो भक्षार्थी, श्वा आश्रयार्थी। परन्तु अपस्किरति कुसुमम्—फूलों को बिखेरता है।

३३३—अच पूर्वक गृ धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, अवगिरते प्रासम्—कौर निगल जाता है।

(क) प्रतिज्ञा करने के अर्थ में सम् पूर्वक गृ धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, सगिरते शब्दम्। परन्तु सगिरति प्रासम्।

३३४—विदा होने के अर्थ में आ पूर्वक प्रच्छ धातु आत्मनेपदी होती है, आपृच्छस्व प्रियसखसमुम् (मेव० ६)—अपने इस प्रिय मित्र से बिदा होना।

३३५—नि पूर्वक विश् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, किष्किन्ध्याद्रि न्यविशत (भट्टि२ ६।१४३)—किष्किन्धा पर्वत में प्रवेश किया।

(क) अभि पूर्वक विश् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, भयतावत् सेव्यादभिनिविशते सेवकजनम् (मुद्रा०)—पहिले तो नौकर के हृदय में स्वेय पुरुष का भय घुस जाता है।

रुधादिगणी धातुर्

३३६^१—केवल दूरक्षयार्थ के अतिरिक्त अन्य अर्थों में भुज् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, ओढनं भुक्ते—भात खाता है। सद्य बुभुजे स मेदिनीम् (रघु० ८।७)—उसने दयापूर्वक पृथ्वी को भोगा। वृद्धो जनो दुःखशत्रानि भुक्ते—बूढ़े लोग सैकड़ों दुःख भोगते हैं।

३३७^१—यज्ञपात्रो के अतिरिक्त अर्थों में प्र तथा उप पूर्वक अथवा किसी भी स्वरान्त या स्वरादि उपसर्ग पूर्वक युज् धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, प्रयुजान प्रिया वाच । भट्टि० ३६) —प्रियवाणी का प्रयोग करता हुआ । आश्रमधर्मे नियुक्ते शकु ० १ । तमन्वयुक्त (रघु० ८।१८) । पणबन्धमुखान गुणानज पडुपायुक्त (रघु० ८।२१) —अज ने शम आदि छद्मे उपायो का प्रयोग किया ।

तनादिगणी धातुएँ

३३८—कृ (करना) धातु षवत उभयपदी होती है, परन्तु उपसर्गपूर्वक कृ धातु निम्नलिखित अर्थों में आत्मनेपदी होती है—

- (१) किसी को चोट पहुँचाना, जैसे, उत्कुरुते—किसी के विरुद्ध समाचार देता है ।
- (२) निन्दा, या विजय, जैसे श्येनो वर्तिकासुढाकुरुते—बाज बटेर को जीत लेता है ।
- (३) सेवा करना, जैसे, हरिसुपकुरुते—हरि की सेवा करना है ।
- (४) धर्षणा या बलात्कार करना, जैसे, परदारान् प्रकुरुते—दूसरे की स्त्री के साथ बलात्कार करता है ।
- (५) तैयार करना, जैसे, एधो ढकस्योपस्कुरुते—ईधन पानी को तैयार करता (उबालता) है ।
- (६) कहना, जैसे, गाथा प्रकुरुते—कहानियाँ कहता है ।
- (७) लगाना, काम में लगाना, जैसे, शत प्रकुरुते—(किसी धार्मिक कृत्य में) एक सैकड़ा लगाता है । इसी प्रकार उपकुर्वन्तमत्यर्थ प्रकूर्वाणोऽनुजोविषत् (भट्टि० ८।१८) ।

१—प्रोपाभ्या युजेरयज्ञपात्रेषु । (१ ३ ६४)

स्वर छन्तोपसर्गादिति वक्तव्यम् । (वार्तिक)

(क) उपकार करने के अर्थ में उप पूर्वक कृ धातु उभयपदी होती है, जैसे, नहि दीपौ परस्परस्योपकुरुत (शाकर भाष्य ४२०)—दो दीपक आपस में एक दूसरे का उपकार नहीं करते। किं वा भूय प्रियमुपकरोमि (मुद्रा० ७)। सा लक्ष्मीरुपकुरुते यथा परेषाम् (किरात० ७।२८)—लक्ष्मी वह है जिससे लक्ष्मीवान् पुरुष दूसरे का उपकार करता है।

(ख)^१ अनु तथा परा उपसर्ग पूर्वक कृ धातु परस्मैपदी होती है; जैसे, परापकरोति वानम्—दान को अस्वीकार कर देता है। अनुकरोति भगवतो नारायणस्य (काद०)।

३३६^२—सहन करने अथवा अभिभूत करने के अर्थ में अधिपूर्वक कृ धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, शत्रुमधिकुरुते—शत्रु को क्षमा कर देता है अथवा पराभूत कर देता है।

परन्तु मनुष्यानधिकरोति शास्त्रम् (शाकर भाष्य)—शास्त्र मनुष्यों को अधिकार देता है।

३४०^३—बोलने के अर्थ में जब विपूर्वक कृ धातु का कर्म शब्द होता है, तो यह आत्मनेपदी होती है, जैसे स्वरान् विकुरुते—स्वर (आवाज) पैदा करता है—बोलता है। परन्तु चित्तं विकरोति काम—कामदेव चित्त में विकार पैदा कर देता है।

(क) जब वि पूर्वक कृ धातु अकर्मक के तौर पर प्रयोग में आती है, तो आत्मनेपदी होती है, जैसे, विकुर्वे नगरे तस्य (भट्टि० ८।२१)—उसके नगर में मैं स्वेच्छापूर्वक आचरण करूँगा। (विविध चेष्टे)।

१—अनुपराभ्या कृज । (परस्मैपदम्। १।३।७०)

२—अधे प्रसहने । (१।३।३३)

३—वे शब्दकर्मण । अकर्मकाच्च (१।३।३४-३५)

क्रयादिगणी धातुएँ

३४१^१—परि, वि तथा अव पूर्वक क्री (खरीदना, धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, कृतेनोपकृतं वायो परिक्रीणानम् (भट्टि० ८।८)—वायु द्वारा किए हुये उपकारों का बदला कार्य द्वारा करते हुये को। यस्तानि विक्रीणीते (याज्ञवल्क्यस्मृति व्यवहाराध्याय)—जो उन्हें बेचता है।

३४२^२—स्यत ज्ञाधातु उभयपदी है, जैसे, जानासि विनोदयितुम् (उत्तर० १)। जानीते हि भवान् (विक्रमो० २)।

अपपूर्वक जा धातु, छिपाने, इनकार करने के अर्थ में आत्मनेपदी होती है, जैसे, शतमपजानीते—एक सैकड़ा इनकार करता है।

(क) सोचने, विचारने या ध्यान करने के अतिरिक्त अर्थों में अपपूर्वक तथा प्र पूर्वक जा धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, शत सजानीते—एक सैकड़ा खोजता है। हरचापारोपणेन कन्यादान प्रतिजानीते (प्रसन्न राघव ४)—हर के धनुष की डोर चढ़ा देने की शर्त पर कन्या प्रदान करने की प्रतिज्ञा करता है। परन्तु मातर म तुर्वा सजानाति—अपनी माता के विषय में सोचता है।

(ख) अनु पूर्वक ज्ञा धातु उभयपदी होती है, जैसे, अनुजानीहि मां गमनाय (उत्तर० ३)। ततोऽनुजज्ञो गमन सुतस्य (भट्टि० ३।३)—तब पुत्र को जाने की अनुमति दे दी।

(ग) सन्नन्त ज्ञाधातु सर्वदा आत्मनेपदी होती है, जैसे, जिज्ञासमानानुचरस्य भावम् (रघु० २।२६)—अपने अनुचर का भाव जानने की इच्छा करती हुई।

१—परिव्यवश्य क्रिय (१३।१८)

२—अपह्वे ज । स प्रतिभ्यामनाध्याने (१।३।४४, ४५)

चुरादिगणी और प्रेरणार्थक धातुएँ

३४३—चुरादिगण की धातुएँ तथा प्रेरणार्थक धातुएँ उभयपदी होती हैं। परन्तु इस नियम के अनेक अपवाद भी हैं।

(क)^१ जब सकर्मक धातुओं के प्रेरणार्थक रूप प्रयोग में आते हैं, अथवा जब मूल रूप का कर्म प्रेरणार्थक में कर्ता हो जाता है तब आत्मनेपद का प्रयोग होता है, परन्तु उत्कण्ठापूर्वक स्मरण करने के अर्थ में नहीं, जैसे, भक्ता भव पश्यन्ति—भक्त लोग भव को देखते हैं। भवो भक्तान् दर्शयति—भव अपने आप को भक्तों को दिखा देते हैं। दर्शयसे नित्य मनुष्यान् (महाभारत २।५।८६)। परन्तु स्मरयति वनगुल्म कोकिलम्—उत्कण्ठापूर्वकस्मृतौ विषयो भवति (सि० कौ०)। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रेरणार्थक के साधारण प्रयोग से यह प्रयोग सर्वथा भिन्न है, भक्तान् भव दर्शयति देवदत्त।

(ख) साधारणतया, जब क्रिया का फल कर्ता के ऊपर आता है, तब प्रेरणार्थक आत्मनेपद में होता है, जैसे, कट कारयते—अपने लिए चटाई बनवाता है। स्वार्थ कारयमाणाभि (भट्टि० ८।४८—अपना मतलब साधन करवाने वाली (स्त्रियो) से।

३४४^१—बुध्, युध्, नश्, जन्, अधि+इ, प्रु, द्रु, क्षु परस्मैपदी होती हैं, जैसे, बोधयति पद्मम् नाशयति दुःखम्, जनयति सुखम्।

(१) भक्षणार्थक, निगिरणार्थक, तथा कम्पनार्थक धातुएँ परस्मैपदी होती हैं। जब अद् धातु की क्रिया कर्ता के लिये नहीं की जाती उस दशा के अतिरिक्त अन्य अर्थों में यह अपवाद—स्वरूप है।

१—प्रेरणार्थक यत्कर्मणौ चेत् स कर्ताऽनाध्याने (१।३।६७)

२—बुधयुध नशजनेड् प्रु द्रु क्षु भयोणे (१।३।८६)

३४५^१—पा (पीना) का प्रेरणार्थक रूप, ढप्, आ + यम्, आ + यस्, परि + मुह्, रुच्, नृत् और अभि + वद् धातुओं का फल जब कर्ता के लिये होता है, तब ये आत्मनेपदी होती हैं, जैसे, पिबत्यसौ पाययते च सिन्धू (रघु० १३) ।

(क) सम्बोधन करने तथा विदा होने या विदा करने के अर्थ में आ पूर्वक मन्त्र धातु आत्मनेपदी होती है, जैसे, आमन्त्रयस्व सहचरम् (शकु० ३)—अग्ने मित्र से विदा होओ ।

अभ्यास

- १—सा दूरस्थितैव पाणिना वेगुलतामादाय नरपतिप्रबोधनार्थं सकृत्सभाकुट्टिममाजघान । (काद) ।
- २—सखे सोरध्वज हृदयमेवामत्रयस्व किमर्थं कृतार्थमसीति । (अनर्ध्याराधव १३) ।
- ३—सखे सैव धन्या गणिकादारिका यामेव भवन्मनोभिनिविशते (दशकुमार २।२) ।
- ४—इयमतिक्रम्य स्वकुलधर्ममर्थनिरपेक्षा गुणेभ्य एव स्व यौवन विचिक्रीषते (दशकुमार २।२) ।
- ५—राज्ञा च तथानुशिष्टा सत्यप्यनाश्रवैव सा यदासीत्तदास्या स्वसा माता च निर्वधेन राज्ञे समगिरेताम् । (दशकुमार २।२) ।
- ६—मानी मानसारो महेश्वर रुमाराध्यास्माद्भयदा गदा लब्ध्वा आत्मानमप्रतिभट मन्यमानो महाभिमानो भवंतमभियोक्तुमुद्युक्ते (दशकुमार १।१) ।
- ७—तत प्रवृत्तासु प्रीतिस कथासु सुहृदा वृत्तात श्रोतु कृतप्रतावन्ताश्च तदुक्तावन्वयुक्ता । (दशकुमार २।१) ।

१—न पादभ्याङ्ग्यमाङ्ग्यसपरिमुह रुचिर्नृतिवद्वस. (१।३ ८९)

८—तथास्मासु प्रतिविधाय तिष्ठत्सु राजापि विज्ञापितोऽन्तो
जातानुताप पारम्यामिकान् प्रयोगान् प्रायः प्रायुक्त ।

(दशकुमार २।४) ।

९—मदसिक्तमुखैर्मृगाधिप करिभिर्वर्तयते स्वयं हतै ।

लघयन् खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यत ॥

(किरात० २।१८) ।

१०—उज्ज्वलसु स हार इवास्तसख्यमहाय तेजस्विषु जीवितानि ।

लोकत्रयास्वादनलोलजिह्व न व्यादगत्याननमत्र मृत्यु ॥

(किरात १६।१६) ।

११—मृदुव्यवहित तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते ।

प्रदीप्त स्नेहमादत्ते दशयाभ्यतरस्थया ॥ (शिशुपाल २।८५) ॥

१२—षाड्गुण्यमुपयुजोत शक्यपेक्षी रसायनम् ।

भवन्त्यस्यैवमङ्गानि स्थासूनि बलवति च ॥ (शिशुपाल १।६८) ॥

१३—कृतसीतापरित्याग स रत्नाकरमेखलाम् ।

बुभुजे पृथिवीपाल पृथिवीमेव केवलाम् ॥ (रघु० १५।६) ।

१४—कुलभार्या प्रकुर्वाणमह द्रष्टु दशाननम् ।

यामि त्वरावाञ् शैलेद्र मा कस्यचिदुपस्कृथा ॥

योऽपचक्रे वनात्सीतामधिचक्रे न य हरि ।

विकुर्वाण स्वराण्य बल तस्य निहन्म्यहम् ॥ (भट्टि० १६।२०) ॥

१५—आत्मानमपजानान शशमात्रोऽनयद्दिनम् ।

ज्ञास्ये रात्राविति प्राज्ञ प्रत्यज्ञास्त क्रियापटुः ॥

१६—सजानानान् परिहरन् रावणानुचरान् बहून् ।

लका समावशद्रात्रौ बहमानोऽरिदुर्गमाम् ॥

(भट्टि० १६।२६-२७) ॥

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

- १—अथ कुपितोऽथपतिर्व्यवहर्तुमर्थगर्वाद्भियोक्ष्यते । त च भूयश्चित्रैरुपाये ।
कौपीनावशेष करिष्याव । (दशकुमार २।२) ।
- २—प्रजाभिस्तु बधुमतो राजानो न ज्ञातिभिः । तदु त्पठ कुरुष्व पुरेव सर्वा क्रिया ।
कृताहारे त्वय्यहमपि सुखमुपभोक्ष्ये पथ्यमित्येवमभिहितस्यास्य दिक्षन्निन
हृदयमनितरा शोकानल सङ्कुक्षे । (हर्ष चरित ५) ।
- ३—सभाजने मे भुजमूर्ध्वाद्वा सन्धेतर प्राधमिन् प्रयुक्तं । (रघु० १३।४३) ।
- ४—स किसखा साधु न शास्ति योषिप हिनान्न य सश्रुते स किप्रसु ।
सदानुकुलेषु हि कुर्वते रति नृपेश्वरमात्येषु च सर्वसंपदः ॥ (किरात १५) ।
- ५—सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीवन समानमानान् सुहृदश्च बधुभिः ।
स सनत दर्शयते गतस्मयः कृताधिपत्यामिव साधु बधुताम् ॥ (किरात १।१०)
- ६—मदमानसमुद्धत नृप न विद्युक्ते नियमेन मूढगा ।
अतिमूढ उदस्यते नयान्नयदीनादपरज्यते जन ॥ (किरात २।४९) ।
- ७—स राजलोक कृतपूर्वस वदारभभिद्धो समयोपलभ्यम् ।
आदास्यमान प्रमदामिष तदावृत्य पन्थानमजस्र तस्थो ॥ (रघु० ७।३१) ।
- ८—अस विद्वानस्य समेश सविदां तितिक्षितु दुश्चरित त्वमहंसि ।
विरोध्य मोहात्पुनरभ्युपेयुषा गतिर्भवानेव दुरात्मनामपि ॥ (किरात १८।४२) ।
- ९—तत्प्रतीपपञ्चनादि वैकृत प्रेक्ष्य शातिमधिकृत्य कृष्यवित् ।
अन्वयुक्त गुरुमीश्वर क्षिते स्वतमित्यलघयस्स तद्व्ययाम् ॥ रघु० ११।६२) ।
- १०—नृपति प्रवृत्तारवेक्षितु व्यवहारासनमाददे युवा ।
परिचेतुगुणशु धारणा कुशपूत प्रवयास्तु विष्टरम् ॥ (रघु० ८।१८) ।
- ११—समनद्ध किमपि भूयतिर्यद सविस्तुरसो सहायुना ।
हरिराक्रमणेन सन्नति किल बिभ्रोत भियेत्यमभय ॥ (शिशुपाल १६।३४) ।
- १२—न्यस्तक्षरामक्षरभूमिकाया कात्स्न्येन गृहानि लिपि न यावत् ।
सर्गाणि तावच्चतुर्वृद्धयोगान् फलान्युपायुक्तं न दडनीते । (रघु० १८।४३) ।

१३—नैनच्चित्रं यद्वयमुदधिश्यामसीमा ध रत्रा-

मेक कृत्स्ना नगरपरिघप्राशुवाहुर्भुनक्त ।

आशननं समितिषु सुग सक्तवैरा हि दैत्यै-

रस्याधिज्ये धनुर्व विजय पीरूहते व वज्रे ॥ (शकु० २)

१४—यन्मा विधेय वषये स भवाच्चिर्युक्ते

स्नेहस्य तत्कलमसौ प्रणयस्य स र' । (मालती० १)

१५—अवाद्राशु शनैरस्या लता नर्तयमानवत् ।

न यासयत संवस्ता ऋतवोऽग्न्योन्वसपदः ॥

ज्योत्स्नामृतं शशी यस्या वापीर्निकसितोत्पला' ।

अपाययन संपूर्णं सदा दशमुखान्नया ॥

प्रादमर्द्यंत पुष्पेषु यस्या बन्धः समाहृता ।

परिमोहयमाणाभी राक्षसीभि समावृता ॥

यस्या वासयते सीता केवल स्म रिपु' स्मरात् ।

न त्वरोचयतात्मान चतुरो वृद्धिमानपि ॥ (भट्टि० ८ । ६१-६४)

१६—उत्क्षिप्तगात्र स्म विडम्बयन्न स मुत्पतिष्यन्तमर्गोद्रमुच्चकै' ।

आकु चितप्रोहनिरूपितक्रमं करेणुरारोहयते निषादिनम् (शिशु० १२ । ५)

संस्कृत में अनुवाद कीजिये—

१—ऋष्यशृंग ने सीता जी को आशीर्वाद दिया (आ + शास्) कि तू वीर पुत्र पैदा कर ।

२—जब इस द्वन्द्व युद्ध को तैयारी करना (सम् + नह) तो अपने साथ अपने सर्वात्तम अस्त्रशस्त्रों को ले लेना (आ + दा) ।

३—महाराज, सुनिए--चाहे आप मेरे ऊपर अत्याचार कर ले, चाहे मेरी सारी सम्पत्ति छीन ले, पर सत्य के प्रति मेरी आस्था मुझसे आप नहीं ले सकते ।

- ४—वाघचर्म से ढका हुआ गदहा क्षेत्र में चरने वाले पशुओं को डराता था (भी + णिच्) ।
- ५—छद्म उपायो से मेरे साम को पवदा पल्ले काम से लाना चाहिये (प्र + युज्), उसके अउफल से जाने पर अन्य उपायों का अवलम्बन करना चाहिये ।
- ६—गङ्गा अपनी गावा को तालाब का निर्माण जल पिता कर (पा णिजन्त) स्ति - समय प्रपने घर गया ।
- ७—जय मुकुन्द दूर जाने लगा है, ताव अपने गुरुजनो से विदाई लेता है (ता + णिज्) और प्रप कुलदेवता को प्रणाम करता है।
- ८—मैंने अपने गुरुओं से पाठित गेहूँ काथा तुरन्त अगाध जल वाले तालाब में डुबा दिया ।
- ९—गंगा की प्रजा को अनानयत् रक्त करने वाला (भुज्) राजा स्वयं ही अना सुख भोग्य है और सिंहासन के प्रति प्रजा की श्रद्धा प्राप्त नहीं करता ।
- १०—एक जलाशय के ऊपर एकता हुई मछुली की परछाई का नीचे से देखकर उभे धवरेने वाले का द्रुपदराज ने कन्धाशन को प्रतिज्ञा की ।
- ११—यज्ञाय प्रशन्न को खाजते खोजते मार पुत्रा ने कपिल मुनि को देखा और उनके ऊपर गश्वापहक का अभियोग लगाया (अभि + युज्) ।
- १२—पद्मगुणशाली अबाधुन्य (सरभस) मगदउ में, त्वरा से अघी मता ने अपने पिता शिशु का धिर एक पस्तरखड से टकरा कर (आ + हन्) उसे मार डाला ।
- १३—कौवा गेटी के तथा अन्य ग्वाघ पदार्थों के टुकड़ों को चुन चुनकर

(अष+ट्) अपना प्राण धारण करता है।

१४—एकबार फारसदेश के एक राजा ने किसी दार्शनिक से पूछा (अनु+युज्) कि आप राजाओं में किस चीज को सब से अधिक सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। उसने उत्तर दिया—तृष्णा का अभाव।

१५—इस कलियुग में माँ बाप प्रायः अपनी कन्याओं को द्रव्य के लिये बेच डालते हैं (वि+क्षी) और वृद्धावस्था से दोहरे भुके हुए पुरुषों के साथ उनका व्याह कर देते हैं। क्या यह गान्धर्वा कर्म नहीं हैं।

चतुर्थ भाग

वाक्य विश्लेषण तथा वाक्य संकलन

३४६—वाक्यविश्लेषण से संस्कृतनिबन्ध-लेखन में बड़ी सहायता मिलती है। अतः इस विषय का निरूपण भी आवश्यक है।

प्रथम सेक्शन

वाक्य-विश्लेषण

३४७—किसी पूर्ण विचार को भाषा में व्यक्त करने को वाक्य कहते हैं।

केवल एक विचार मात्र का अभिव्यक्ति को पद (word) कहते हैं, उद्देश्य तथा विधेय से रहित दो या दो से अधिक पदों का समूह को पदसमुच्चय (Phrase) कहते हैं। किसी पूर्ण विचार तथा प्रधान क्रिया सूक्ष्मोक्त करने वाले शब्द-समूह को वाक्य कहते हैं, जैसे,

रामः, सुवर्णम्, नोति.—ये पद हैं । रामविवासेनम् अग्निं तप्तं सुवर्णम्, जनहितावहा नोति —ये पद-समुच्चय हैं । रामविवासेन कैकेय्या अभिमतम्, अग्निं तप्तं सुवर्णं विलिनाति, जनहितावहा नोति: राजा अनुसृज्यते—ये वाक्य हैं ।

टिप्पणी—वाक्य चाहे साधारण हो, चाहे आज्ञा (लौट्) में हो, चाहे आशीर्वादात्मक हो, चाहे प्रश्नवाचक हो, तत्त्वतः सब एक ही हैं ।

३४८—एक वाक्य में दो भाग होते हैं—उद्देश्य तथा विधेय । जिसके विषय में कुछ कहा जाता है वह उद्देश्य कहलाता है । उद्देश्य के विषय में जो कुछ कहा जाता है वह विधेय है । जैसे, सविता उदेति—सूर्य उदित होता है । यहाँ सविता उद्देश्य है और उदेति विधेय है ।

३४९—वाक्य तीन प्रकार के होते हैं—साधारण, मिश्रित (संकीर्ण) तथा संयुक्त ।

साधारण वाक्य वह है जिसमें एक उद्देश्य और एक प्रधान क्रिया हो अथवा जो भी विधेय का काम करता हो वह हो (और आगे देखिए), जैसे, अहं पापकारिणी महाभागमद्राक्षम् (काद०), धिक् ताम् (भर्तृहरि)।

मिश्रित (संकीर्ण) वाक्य वह है जिसमें केवल एक प्रधान उद्देश्य (कर्ता) और एक ही प्रधान विधेय होता है, परन्तु दो या तीन-परिमित क्रियाएँ (finite verbs) होती हैं, जैसे, या चिंतयामि सततं मयि सा विरक्ता (भर्तृहरि), यदि गर्जति वारिधरो (स) गर्जतु (माल विका० ५) ।

संयुक्त वाक्य वह है जिसमें दो या दो से अधिक प्रधान उपवाक्य हों,

जैसे दुबोहूँ गा स यत्राय शरणाय सबवा डिवं (दुबोहूँ व) -
खु० १।२६।

साधारण वाक्य

३५०—साधारण वाक्य में एक कर्ता और एक परिमित क्रिया (finite verb) होता है।

साधारण वाक्य का यहाँ तब पारम्भिक स्वरूप अथवा मूल स्वरूप है। आगे उन विनियमों का पता होता जायगा जिन से वृहत्तर तथा पेचाद स्वरूप बनते हैं।

३५१—साधारण वाक्य में नूनतया—उद्देश्य और अवयव—में और भी गौण अवयव जाड़कर उनका व्यापकता बढ़ाया जा सकता है, और उन गौण अवयवों में से आगे न्यानव अवयव जोड़कर वे भी बढ़ाए जा सकते हैं।

उद्देश्य

३५२—उद्देश्य सत्ता (साधारण अथवा सकर्ण) अवयव सर्वनाम हो सकता है।

‘आत्मा’ तपःयायोजित (काद०) ‘शुकनास’ अविरत-रमुवाच (काद०), ‘भरतशत्रुघ्नो’ हृन्द वभूयतु (खु० १०।८१), ‘त्रैलोक्यमपि’ पीडितम्, ‘पटुत्वा’ कथायोगेन बुध्यते (रतोर०); ‘भरण’ प्रकृति शरीरिणाम् (खु० ८।८७), ‘गो’ प्याचचक्षे (दशकुमार० २।८)।

विशेष—(क) क्रिया से स्वयं ही कर्ता का अचन और पुरुष मालूम हो जाता है। अतः प्रायः उसे (कर्ता को) बिल्कुल ही प्रकट नहीं करने, जैसे, (भवान्) अपनयतु न कुतूहलम् (काद०), कथं

मन्दभाग्य करोमि (अहम्) (उत्तर० ३), (त्व) ब्रूहि रामचरितम् (उत्तर० २) ।

(ख) प्राय विशेषण अपने विशेष्य के बिना हो प्रयुक्त होता है, जैसे, 'भिद्वान्' सर्वत्र पूज्यते, 'द्वावपि' आगमिनौ (मालविका० ३) ।

(ग) प्राय सख्यावाचक शब्द वाक्य के उद्देश्य के तौर पर प्रयुक्त होते हैं, जैसे, शरदाम् अयुत ययौ (रघु० १० । १), शतम् अनूच्य-मायुष्कामस्य ।

३५३—सज्ञा अथवा सर्वनाम का विशेषता बनाने वाले भिन्न भिन्न साधना से साधारण कर्ता बढ़ाया जा सकता है—

(१) विशेषण द्वारा—विशेषण चाहे सार्वनामिक हो, चाहे कृदन्तीय हो, चाहे गुणबोधक हो, चाहे परिमाण-बोधक हो,

'स' राजा किमारम्भ' सप्रति (उत्तर० २), का 'इयमन्या' विभीषिका (उत्तर० ४), व्रजश्च (स) समर्थयामास (काद०), एवम् 'अभिधीयमान' स प्रत्यवादीत् (काद), पदपक्तिर्दृश्यते अभिनवा (शकु ३), 'चतुर्दश' सहस्राणि रत्नसा भीमकर्मणाम् हतानि (उत्तर० २) ।

(२) षष्ठ्यन्त सज्ञापद अथवा सर्वनामपद से, जैसे, 'रामस्य' करुणो रस (उत्तर० ३), अपि कुशली 'ते' गुरु (रघु० ५ । ४); अन्यविषया न तु दृष्टिः 'अस्या' (शकु० ३) ।

(३) समानाधिकरण सज्ञाद्वारा, जैसे, तस्मिन् 'भोजवशभूषण' 'संभावयित्वा बुधान्' पुण्यवर्मा नामाग्नीन् (दशकुमार०) ।

विशेष—सकर्मक क्रियाओं से बने हुए कृदन्तीय विशेषणों के योग में कर्म कारक भी आता है जैसे,

'आसेदिवान्' रत्नवत् 'आसनं' स गुहेनोपमेयकान्तिरासीत्

(२धु० ६।४), 'अनुयास्यन् मुनितनया' (अह) विनयेन वारित-
प्रसर (शकु२ १), 'रसिकमनासि समुल्लासयन्' वसन्तममय
समाजगाम (दशकुमार) ।

३५४—संस्कृत में प्रायः समासों द्वारा विस्तार किया जाता है, समास संस्कृत का सार है, और समासहीन अनुच्छेद पा जाना बड़ा कठिन हो जाता है । इन समासों के लम्बान की कोई भी सीमा निर्धारित नहीं है । यदि यह देखना हो कि संस्कृत-लेखकों ने इस अधिकार को कितनी स्वतन्त्रता—पूर्वक प्रयुक्त किया है तो दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट तथा भव-भूति की कृतियों देखिए (मलनीमाधव के तृतीयांक में लवणिका की उक्तियाँ तथा पंचमांक में सुप्रसिद्ध दण्डकच्छन्द देखिये) । उचित लम्बान वाले समासों में वाक्य की शोभा बढ़ जाता है, और शब्दों के प्रयोग में बहुत किरायात भी हो जाती है ।

३५५—सज्ञा और सर्वनाम के विस्तार में सब से अधिक प्रयोग तत्पुरुष तथा बहुव्रीहि समासों का होता है ।

(१) स घ र ण विशेषण के स्थान पर व्यधिकरण तत्पुरुष, कर्मधारय, उपपद तत्पुरुष और बहुव्रीहि का प्रयोग किया जा सकता है ।

क्षपिता तद्विदपाश्रिता लता (२धु० ८।४७), अबलाविप्रयुक्तं कनकवलयभ्र शरिक्तप्रकोष्ठ स कामी (मेघ० २); उदजद्वारविरूढम् नोषावलिम् (शकु० ४), ताम्बूलकरं कवाहिनी तरलिका (काद०), गृहीतप्रतिमुक्तस्य तस्य (२धु० ४।४३), कुल्याम्भोभि पवनचपलै (शकु० १) ।

षष्ठीतत्पुरुष प्रायः सम्बन्ध सूचित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है

कौत्स प्रपेदे वरतन्तुशिष्य (२धु० ५।१), नष्टाशका हरिण-
शिशव चरन्ति (शकु० १) ।

३५६—उपर्युक्त विधियों में से दो या दो से अधिक को एक साथ मिलाकर उद्देश्य का और भी आगे विस्तार किया जा सकता है, और यदि वे विस्तार वाले शब्द सजा या सर्वनाम हों तो उनका विस्तार और भी आगे किया जा सकता है

एकदा तत्रस्थ एव मृगयानिर्गतो विचरन् [विशेषण] काननं किन्नरमिथुनमद्राक्षीत् (काद) । तत्तनयश्च (षष्ठोत्पुंष) हारीत-नामा (विशेषण) तापसकुमारक (समानाभिन्नण सजागद) मनत-कुमार इव सर्वविद्यावद्वातचेता (अन्वोहि) सिन्हासु (विशेषण) उपागमत् (काद) । ताभिरष्टाभि प्रत्यक्षाभि (तनुभि० का विशेषण) तनुभिः पन्न० कर्ता का विशेषण ईशो व अवत (शक् १) । ममन्त्रा पूर्णभद्रबोधितार्था (विशेषण) तादृशेपि व्यसने (आगेवाले का क्रिया-विशेषण) नातिविह्वलः (विशेषण) कुलपरिजनानुयाता (विशेषण) मत् पितुरुत्तमांगम् उत्संगेन धारयन्ती (कर्म सहित कुदन्तीय विशेषण और क्रियाविशेषण) राज्ञे समादिदेश (दशकुमार २।४) । इसी प्रकार 'तस्य' 'त्रय', 'पुत्रा' 'परमदुर्मेधस वसुशक्तिरुग्रशक्तिरनेकशक्तिश्चेति नामानो बभूवु (पंचतन्त्र) । दु खेन तयन्ते 'त्रयो' 'न' पितर' 'अपरे' (उ० र ५) ।

विशेष—आण, सुबन्धु और दण्डी ने पुरुषो, स्थानो, नगरो, नदियों आदि के वर्णन में इस विस्तार की पराकाष्ठा कर दी है । वस्तुतः विस्तार उसी सीमा तक किया जाना चाहिए जहां तक वाक्यार्थ जटिल अथवा दुरूह न हो जाय । जब वाक्यार्थ जटिल होता हुआ दिखाई पड़े, तो वाक्य को दो या दो से अधिक वाक्यों में विभक्त कर देना चाहिए ।

कर्म अथवा विधेय की पूर्ति

३५७—यदि विधेय कोई सकर्मक क्रिया, या गत्यर्थक क्रिया हो, या कोई ऐसी क्रिया हो जो कर्मप्रवचनीय के बल से सकर्मक हो जाती हो, तो

वह कर्म द्वारा पूरी को जाती है। वह कम या तो सज्ञापद हो सकता है, या सर्वनाम पद या कोई भी ऐसा शब्द जो सज्ञा का काम कर सकता हो,

जाबालिम् अपश्यम् (काद.)^१, आखडल कामसिद बभापे (कुमार० ३।२)। याति अस्त-शिखर पतिरोषधीनारम् (शकु ४) विचचार ढावम् (रघु० २।८)। पत्ति पदातिम् अभ्यपतन् (रघु० ७।३७)।

३५८—कम का भा। विस्तार उभी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार कर्ता का—त्रयम्बक सयमिन ददर्श (कुमार ३।४४)। विलपत कपिजलमश्रौपम् (काद.)। त तस्थिवास नगरोपकण्ठे (विशेषण का क्रिया विशेषण) प्रत्युज्जगाम क्रथकेशिकेन्द्र (रघु० ५।६१)। प्रकृतिवक् स कस्य अनुनय प्रतिगृह्णाति (शकु ४)। इदम् अव्याजमनोहर वपु तप नम साधयितु य इच्छति (शकु १)। मेघम् आश्लिष्टसानुम् वप्रक्रीडा-परिणतगजप्रेक्षणीय ददर्श (मेघ० २)। अबनिपतिस्तु प्रतीहार्या निर्दिश्यमानां तां प्रावृषमिव वनकेशजालाम् अलकोद्भासिनीम् अचिरोपरूढयौवनाम् अतिशयरूपाकृतम् अनिमेषलोचनो ददर्श (काद.)।

३५९—वनाना, नाम रलना, पुकारना, सोचना, विचारना नियुक्तकरना—इन अर्थों का द्योतित करने वाली वातुओं का, मुख्यकर्म के अतिरिक्त, एक पूरक कर्म भी होता है, जैसे,

तमात्मजन्मानम् अज चकार (रघु० ५।३६)। आज्ञामपि वरप्रदान मन्यन्ते, दर्शनप्रदानमपि अनुग्रह गणयन्ति (काद.)। प्रत्याख्यानमपि ईर्ष्या सभावयति आक्रोशमपि परिहासम् आकलयति

दोपसकीर्तनमपि, स्मरणोपायम् अवगच्छति, अवज्ञाऽपि अनिय-
त्रण प्रणयम् उत्प्रेक्षते (काद)

३६०—दुह्, याच्, शान्, ना इत्यादि धातुएँ दो कर्म लेती हैं।
उनमें से एक प्रधान कर्म कहलाता है, दूसरा गाण कर्म अथवा एक
प्रत्यक्षकर्म, दूसरा अप्रत्यक्ष कर्म अथवा अकथित कर्म (संस्कृत ४० देखिये)

३६१—अर्थदृष्टि से सकर्मक की श्रेणी में गिनो जानी वाली धातुएँ
कर्मा कर्मी नियम-विशेष के कारण चतुर्थ्यन्त, अथवा पचम्यन्त
अथवा षष्ठ्यन्त अथवा सप्तम्यन्त पद लेती हैं। ऐसे प्रयोगों को विधेय का
पूर्वक समझना चाहिए, क्योंकि उनके बिना अर्थ पूर्ण नहीं होता,

स्पृहयामि दुर्ललिताय अस्मै' (शकु ७ ७)। कुपयन्ति हितवा-
दिने' (काद०)। असूयन्ति मद्य प्रकृतय (विक्रमो० ४)। पापात्
जुगुप्सते (महाभाष्य)। स्मरसि वा तस्य प्रदेशस्य' (उत्तर० ६)।
स म्निह्यति आवयो (उत्तर० ६)।

३६२—देना, बतलाना, प्रतिज्ञा करना, भोजना—इन अर्थों का बोध
कराने वाली धातुओं के याग स चतुर्थी होता है, और चतुर्थी स वह
व्याक्त रक्था जाता है जिसे कोई चीज दी जाता है अथवा जिसमें कोई
चाज बनाई जाती है। इस चतुर्थ्यन्त पद को अप्रत्यक्ष कर्म अथवा अक-
थित कर्म समझना चाहिए,

'विप्राय' गा प्रतिशृणोति, भोजन दूतो 'रघवे' विमृष्ट (रघु० ५।
३०), 'तस्मै' प्रस्तुतमाचचक्षे (रघु० ५।१६)।

विशेष—एक दूसर दृष्टिकोण में ये विधेय के विस्तार कहे जा सकते
हैं, और उनसे इन प्रश्ना का उत्तर मिलता है—'किसको', 'कहाँ'।

विधेय

३६३—'विधेय में अवेली क्रिया हो सकती है, जैसे, आज्ञापयतु'
भवान् (शकु ४)। त्वया सह गौतमी 'यास्यति' (शकु ४)।

३६४—गम्यमान अथवा प्रत्यक्ष 'अस्'—वातु—युक्त कोई विशेषण पद या विशेष्यपद या सज्ञापद भी विधेय हो सकता है, जैसे,

अविवेक परमापदा 'पठम्' (किरान० २। ३०)। त्वम् असि महत्मा 'भाजनम्' (म लती० १)। वत्से, किमेव 'कातरा' 'असि' (शकु ४)। गृहीत 'सन्देश' (शकु ४)। 'अवहितोस्मि' (शकु ७)। तेन हि श्रेयासे 'अनतिक्रमणीयानि' (शकु ७)। 'दूषिता २१' 'परिभूता स्थ' रामहतकेन (उत्तर० १, व्यावर्तितनुरगश्च पुनः चितितवान् (काद०)।

(क) अस् वातु अपूर्ण विधेया वातु है, अतः अर्थ को पूरा करने के लिए इसे एक सज्ञापद अथवा सर्वनामपद की अपेक्षा होती है, जैसा कि ऊपर के उदाहरणों में है। परन्तु जब यह 'अस्तित्व' अर्थात् 'सत्ता' का बोध कराती है, तब यह अकेली ही आती है, जैसे,

हिमालयो नाम नगाधिराज अस्ति (कुमार० १। १)।

इसी प्रकार, भू धातु भा जब अस्तित्व का बोध कराती है तब अकेली ही आती है, परन्तु जब 'होना' अर्थ में आती है तब अपूर्णविधेया रहती है, जैसे, 'बभूव' योगी किल कार्तवीर्य (रघु० ६। ३८)।

(ख) कभी कभी अस्, विद्, और वृत् बिल्कुल ही नहीं प्रकट रहती, मातले कतमस्मिन् प्रदेशों मारीचाश्रम (शकु ७)। इस वाक्य में अस्ति अथवा विद्यते छिपा हुआ है।

३६५—प्रपूर्ण विधेया धातुएँ और भी हैं, जैसे, भू, वृत्, होना) जन् (होना), भा (मालूम पड़ना), दृश् कर्मवाच्य (मालूम पड़ना), लब्ध् कर्मवाच्य (मालूम पड़ना)। विधेयको पूर्ण करने के लिए इन्हें भी सज्ञापद अथवा विशेषणपद की अपेक्षा होती है, जैसे,

तेऽपि 'यथोक्ता' 'सवृत्ता' (पञ्चतन्त्र)। तव प्रजासु विडौजाः 'प्राज्यवृष्टिर्भवतु' (शकु ७)। ईदृशाना विपाकोऽपि 'परमाद्भुतो' जायते' (उत्तर० ३)। स्वात्या सागरशुक्तिसंपुटगत (पयः)

सन्मौक्तिक जायते' (भर्तृहरि० नीति० ६७) । अयं पाण्ड्य-
'अद्विराज' इवाभाति (रघु० ६ । ६०) । 'मदनक्षिप्टा' इयमाल-
क्ष्यते (शकु ३) ।

(क) मन् (समझना, सोचना) तथा कृ घातु जब कर्मवच्य में
रहती हैं तब उनका भी प्रयोग इसी प्रकार होता है, जैसे,

नलिनी 'पूर्वनिदर्शन' मता (रघु० ८ । ४५) । व्याघ्र
'कुक्कुट कृत' (हितोप०) । स 'सेनापति. नियुक्तः' ।

इसलिए जब विवेक सज्ञापद अथवा विशेषणपद होता है तब उसी
विभक्ति में रखा जाता है जिस विभक्ति में कर्ता रहता है, अथवा वह
प्रथमा विभक्ति में रखा जाता है ।

३२६—कभी कभी अव्ययो का प्रयोग करके 'वाक्य' सङ्क्षिप्त रूप में
प्रकट किया जाता है और उद्देश्य तथा विवेक दोनों ही गम्यमान रहते हैं,
प्रकट नहीं रहते, और उन्हीं अव्ययो में से निकालकर प्रकट किए जाते हैं,
जैसे

'धिक' ता च त च = 'सा' च 'स' च 'निन्द्यौ' स्त ।

शिवाय 'नम' = शिव प्रणम्यते ।

अल यत्नेन = प्रयत्नेन न 'किमपि' ग्राह्यम् इत्यादि ।

३२७—प्रायः अव्यय पद विधेय का काम देते हैं, जैसे,

विषवृक्षोऽपि छेतुम् असाह्यतम् (कुमार २ । ५५) = न युज्यते ।

पवन आलिङ्गितु 'शक्यम्' (शकु ३) = शक्यते । 'कष्ट' खलु
अनपेक्ष्यता (शकु ६) । मनसिजरुजं सा वा दिव्या मम अलम्
अपोहितुम् (विक्रमो० ३) ।

विधेय ३। विस्तार

३६८—विधेय का विस्तार निम्नलिखित साधनों से हुआ करता है—

(१) अव्यय द्वारा

(२) जिस क्रिमी में क्रियाविशेषण अव्यय की क्षमता हो उसके द्वारा

(३) जो भा क्रियाविशेषण अव्यय के तुल्य हो उसके द्वारा

काल—स्थान—प्रकार—वाचक क्रियाविशेषण अव्यय, विस्मयादि बोधक अव्यय, बहुत से सुबन्त पद प्रथमा, द्वितीया, पण्ठी, और सम्बोधन के अतिगिर्ग) इसी प्रकार का कार्य करत है अर्थात् विधेय के विस्तार के काम में आत है । सज्ञापदों के साथ परमर्गों (कर्म प्रवचनीयों) अथवा क्रियाविशेषण का जुट जाना भी विधेय के विस्तार के काम में आत है, मया सार्धम्, रामाद् विना, वृक्षाणामध, राज्ञ समक्षम् आदि ।

३६९—विधेय के विस्तार का चार श्रेणियों में वर्गीकरण हो सकता है—

(१) समय वाचक

(२) स्थानवाचक

(३) प्रकारवाचक

(४) कार्य तथा कारणवाचक

कालवाचक क्रियाविशेषण विस्तार

३७०—कालवाचक क्रियाविशेषणवाले विस्तारों से निम्नलिखित वस्तुएँ प्रकट होती हैं—

(१) कब —इस प्रश्न का उत्तर प्रकट होता है, जैसे,

द्वय गत सम्प्रति शोचनीयताम् (कुमार० ५ । ७१) 'तत' प्रविशति कचुकी (शकु ५) । यास्यति 'अद्य' शकुन्तला (शकु ४) । आषाढस्य 'प्रथमदिवसे' मेघ ददर्श (मेघ० २) । 'अनुदिवसम्' परिहीयसे अगै (शकु ३) । गिरिशमुपचचार 'प्रत्यहम्' सा सुकेशी (कुमार० १ । ६०)

‘अस्मात् पर’ को न कुले निवपनानि नियच्छति (गुरु ३) ।

विशेष—(क) भावसत्ता से बने हुए वाक्यात् प्रायः तानवाचक क्रियाविशेषण अग्नय मागे जा सकते हैं,

‘अन्तर्हिते शशिनि नैव कुमुद्वती मे दृष्टि न नन्दयति (शकु ४) । ‘गते च केयूरके’ चन्द्रपादमुवाच (काद०) ।

(ख) इसीप्रकार क्शान्ते ॥ हनन्त ३०३ भा का वाचक क्रियाविशेषण है । व जब न-सर्ग क्रियागो ३-न ॥ ३०३ उन्ना कर्त्त होता है,

‘प्रतिनिवृत्त्य’नं प्रदेश व्यलोकयन् (काद०) । जरावेता तच्छ्रत्या-
सुचिर ‘विचार’ केयूरक प्राहिणात् (काद०) यच्चिगात् पावन
तनय प्रसूय’ मम विरहजा शुच न गणयिष्यासि (भाव १०८)

(२) ‘कथं तव’ ‘कहाँ तव’—इस प्रश्नका उत्तर, जैसे ‘व्यति
द्वयानि’ भजागरकृणो लक्ष्यते (शकु.) । तत्तद्वृष्टि ‘मुचिर’ वचनम्
(काद०) । ‘क्रोश’ कुटेला नदी (सि० कौ०) । स्तन्यत्याग यावत्
अवेक्षस्व (उत्तर० ७) ।

(३) ‘कितनी बार’—इस प्रश्नका उत्तर जय, ‘पारवार निरयति
दृशोक्त्या व. अपूर (मालती० १) । अहो ‘द्वि’ मुह्यते (सि०
कौ०) । तान्यन्तार्ति अस्ति ‘ग्रहश’ चन्द्रपादान् (मालती० ३)

तानवाचक क्रियाविशेषण

३७१—रयानवाचक क्रियाविशेषण तानवाचक तीन बने मूर्चन करते हैं—

(१) किस स्थान में रहना । इससे ‘कहाँ’—इस प्रश्नका उत्तर मलता है, जमे,

अस्ति ‘अवतीपु’ उज्जयिनी नाम नगरी (काद०) । ‘कौशस्त्रिद-

धिष्ठाने कौलिकरथकारौ प्रतिवसतः सम (पंचतत्र) । एष कण्वस्य महर्षे 'उपमालिनीतीरम्' आश्रमो दृश्यते (शकु १ अस्ति 'उत्तरस्या दिशि' नगाधिराज (कुमार० १।१) । निर्मल-नख-लघुमूर्ति 'पादयो' पतति (काद) ।

(२) किसी स्थान की तरफ गति प्रकट करता है, और 'किस तरफ' — इस प्रश्न का उत्तर देता है, जैसे,

सा तरलिका 'क' गता (काद) । 'नीचे' गच्छति 'उपरि' च दशा (मेघ० ११२) । 'गृहाम्निमुख' प्रतस्थे (हितोप०) । मदोद्धता 'प्रत्यनिल' विचेरु (कुमार० ३।३१) ।

(३) किसी स्थान से पृथक्त्व प्रकट करता है, और "कहाँ से" — इस प्रश्न का उत्तर देता है, जैसे, यदि मे 'दर्शनपथात्' नापयाति (काद) । 'वनस्पातमथ कुम्भुमान्याहरत (शकु ४) । 'कुत' इदं मौध-मागतम् (दशकुमार० २।५) ।

विशेष—मारय अथवा आभ्रमाय के अतिरिक्त पचमी क शेष अथ इसा प्रकार प्रकट किए जाते हैं, 'तीक्ष्णात्' उद्विजते (मद्रा० ३) । 'दिवाकरात्' अन्धकार रक्षात (कुमार० १।१२) ।

प्रकारवाचक क्रियाविशेषण विस्तार

३७२—प्रकारवाचक क्रिया-विशेषणविस्तार निम्नलिखित बाते प्रकट करते हैं—

(१) किसी क्रिया का प्रकार या ढग (कैम), चन्द्रापीड 'मविनयम्' अवादीत् (काद०) । माधव 'सलज्जम्' अधोमुखस्तिष्ठति (मालती१) को वा दुर्जनवागुरासु पतित 'क्षेमेणः' यात पुमान् (पंचतत्र) । तद्वि 'कणशो' विकीर्यते (कुमार० ४।२७) । 'त्वरितम्' अपमर्षता तरुगहनेन (उत्तर० ४) । अथवा 'कथ' भवान् मन्यते (माल-

विका० १)। 'अयन्ने नैव' उपहासास्पदतामीश्वरो नयति जनम् (काद०)।
'प्रकृत्या' यद् वक्रम् (शकु० १) ।

(२) मात्रा,

तमवेक्ष्य सा 'भृश' रुरोढ (कुमार० ४।२६)। स राज्य गुरुणा
दत्त प्रतिपद्य 'अधिक' बभौ (रघु० ४।१)। 'यावच्छक्यं' सुहृदस्यो
रक्षणीया (काद०)।

विशेष—तुलनावाचा पचम इन वर्ग में रखी जा सकती है,

'मोहात्' प्रबोध कष्टतरोऽभूत् (रघु० १४।५६)। गृह 'कान्तारात्'
अतिरिच्यते (पचतत्र)।

(३) कर्म क्रिया का करण या साधन,

नचूर्णयामि 'गदया' न सुयोधनोरु (वेणा० १)। क्वचित् 'पथा'
सचरते सुराणाम् (रघु० १३।१६)। विसृजति 'हिमगमै' मयूखै'
आग्निमिदुः (शकु० ३)।

विशेष—किसी क्रिया का कर्ता का बोध कराने वाला तृतीया इस
वर्ग में रखी जा सकता है,

जनपदहितकर्ता त्यज्यते 'पार्थिवेन' (पचतत्र)। 'त्वय'
'चन्द्रमसा' च अतिसन्धीयते कामिजनसार्थ (शकु० ३)
इ३म् 'अशरणे' अद्याप्येव रुद्यते (उत्तर ३)।

अथवा इस प्रकार की तृतीया कर्ता के खाने में रखी जा
सकती है क्योंकि वह क्रिया के कर्ता का बोध कराती है।

(४) सहगामिना परिस्थितियाँ,

'तया सह' निपत्स्यामि (उत्तर० २)। रत्न समागच्छतु 'काच'
नेन' (रघु० ६।७६)। 'जटाभि' तापम (भवति अथवा ज्ञायते)।
'महत्या येनया' निर्जगाम। स्मर क्षणमायुत्सहते न 'मा पिता'
(कुमार० ४।३६)।

कारिकावाचक क्रियाविशेषण विस्तार

३७३—इ प्रसार के विस्तार ने निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

(१) किसी क्रिया का कर्ण, या अभिप्राय (तृतीया तथा पञ्चमी से सूचित होने वाले प्रथम) —

‘दौर्मन्त्र्यात्’ अपत्ति गिनरक्षति (मनु० नीति ४२) ‘अवर्तगत-
चिन्तय। आत्मानं न विनैषा विमानयति (शकु ४) ‘आवेगस्त्रलि-
तया गत्या प्रभ्रष्ट ने पुष्पभाजनम् (शकु) कापुरुष. ‘रत्नलपकेनापि’
तुष्यति (पञ्चन)। लज्जेऽहम् ‘अनेन प्रागल्भ्येन’ (माद ।
‘ह्यप्र’ जगन्नि पुरग नि उक्ता० १)। तथा अन्त ‘त्वया’ लोका
(उत्तर० १)।

(२) किसी क्रिया का अन्तिम कर्ण तथा निमित्त, जैसा कि चतुर्थी से प्रत्ययान्त से सूचित होता है,

‘ममिन्द्राहरणाय’ अस्थिता अयम् (शकु १)। श्रयति बहुशो
‘मृत्यवे’ चन्द्रपादान् (मातृ० -)। प्रवर्तता ‘प्रकृतिदिताय’ पार्थिव-
(शकु ७)। ‘अक्षीया प्राणात् कृते’ कि नारमासि कथय पतम्
(मत् ६२० वेगम्य० ३.)। तद् गच्छ सिद्धये’ (कुमा ० ३। १८)।
‘लोकान् उग्रु’ गत्तपोऽलम् (बमार० । ५२। प्रायद् यते
‘सार्वायतु’ तत्पर्यम् (गु० ५। २०)। ‘हेतु पञ्चमणीन्’ शिरीष-
कुसुमप्रान्तेन सनह्यते (तृ हरि० नीति० ६)।

(३)। रोष (Circulation) पत

‘तथापि घट्टिये (मालविका० १)। नन्दा हता ‘मर्यतो राज्ञमस्य’
(मुद्र० ३)

३७४—एकविंशतितम पाठ से लेकर अष्टाविंशतितम पाठ तक
मे जिन अवयवों का निरूपण किया गया है वे वाच्य-विश्लेषण तथा तो

छोड़ दिए जाते हैं या प्रकारवाचक क्रियाविशेषणविस्तार के खाने में रखे जा सकते हैं।

३७५—ऊपर जो चार विधियाँ बताई गई हैं उनमें से दो को या दो से अधिक को एक में मिलाकर विधेय का विस्तार किया जा सकता है। सेक्शन ३५३ से लेकर सेक्शन ३५६ तक में जिन विधियों का उल्लेख किया गया है उनमें से किसी एक का प्रयोग करके विस्तारों का और भी आगे विस्तार किया जा सकता है।

‘दिष्ट्या’ ‘धर्मपत्नी समागमेन’ ‘पुत्रमुखदर्शनेन’ चायुष्मान् वर्धते (शकु ७)। अयं च ‘मन्दाकिनी चित्रकूटवनविहारे’ ‘सीतादेवी मुद्दिश्य’ रघुपते श्लोक (उत्तर ० ६)। ‘नियत’ ‘स्वयमेव’ इयम् ‘अतिविनीततया’ ‘कतिपयैरेव दिवसै’ कुमारमाराधयिष्यति (काद ०)। ‘प्रत्यूषे’ ‘उत्थाय’ ‘तेनैव क्रमेण’ ‘अनवरतप्रयाणकैः प्रतिप्रयाणकम् उपचीयमानेन सेनासमुदायेन’ जर्जरयन् वसुन्धरां प्रातिष्ठत (काद)।

‘अथ’ राजवाहन ‘पुष्पोद्भवेन सह’ ‘स्वमन्दिरमुपेत्य’ ‘सादर’ ‘बालचन्द्रकामुखेन’ ‘निजवल्लभायै’ ‘सगमोपाय वेदयित्वा,’ कौतुकाकृष्टहृदयः अतिष्ठत् (दशकुमार)।

साधारणवाक्यों का वाक्यविश्लेषण

३७६—साधारणवाक्यों का वाक्य-विश्लेषण करने की यह विधि है —

- १—पहिले वाक्य का कर्ता दूढ़ निकालिए।
- २—तब कर्ता के विस्तारों को दूढ़ लीजिए।
- ३—विधेय (प्रधान क्रिया) को दूढ़िये।

४—कर्म बतलाइए (यदि प्रधान क्रिया सकर्मक है) ।

५—कर्म के विस्तार का लिख डालिए ।

६—ग्रन्थ में, प्रधान क्रिया के क्रियावशेषणात्मक विस्तारों को लिख दीजिए ।

उदाहरण

- (१) विश्व भरात्मजा देवी राजा त्यक्ता महाबने ।
प्राप्तप्रसवमात्मान गङ्गादेव्या विमुचति ॥ (उत्तर० ७)
- (२) एव नम्रेण समारूढयौवनारम परिसमाप्तसकलकलाविज्ञान-
मवगन्धानुभोदितभाचार्यैश्चन्द्रापीडमानेण राजा बलाधिकृत
बलाहकनामान बहुतुरगचलपदातिपरिवृत प्राहिणोत् ।
(कादम्बरी)
- (३) पारस्त्वानेवमागामस्तास्तास्तपढाञ्जयी ।
प्राप तालीवनश्याममुपगृह सहोदधे ॥ (रघु० ४।३४)
- (४) पुराणस्य कवन्तस्य चतुर्मुखपभीरिता ।
प्रवृत्तिराम्भीच्छब्दानां चरितार्था वतुष्टयी । (कुमार २२।१)
- (५) एवगते पत्रिण राजनि च कामवृत्ते चद्रपालितोऽभ्येय
विविगामि कटाभिर्विहारभद्रमात्मसादकरोत् ।
(दशकुमार २।८)
- (६) कौशिकेन स किल द्वितीश्वरो राममध्वरविद्यातशांतये ।
काकपक्षवरमेव याचित (रघु० ११।१)
- (७) धिक् सानुज कुरुपति । (वेणीमहार ३)

वाक्य विश्लेषण तथा वाक्य सङ्कलन

2005

कर्ता	कर्ता वा विस्तार	क्रिया	कर्म	कर्म का विस्तार	क्रिया के क्रिया-विशेषण विस्तार
१. देवी.	विश्वभारतमाता, राज्ञा महा- नने स्यस्ता	विष्णुचति	आत्मानं	प्राप्तप्रभव	गङ्गादेव्या (स्थान)
२. राजा		प्राहियोत्	बलाधिकृत	बहुतरगबलपदाति परिवृत (विशेषण) बनादकनामान	एवं क्रमेण समा-विज्ञा नमवाप्त्य (काल), आ व यत्तुमोदितं चद्रापी हमनैतु (अभिप्राय)
३ जयी	ताम्रान् पौरस्त्यान् जनपदान् वराक्रामन्	प्राप	उपकठ	नाल वनश्याम (विज्ञे) महोदधे (सम्बन्धे षष्ठा)	
४ प्रवृत्ति.	बदाना, चतुर्थी तस्य पुराणस्य कवेश्च मुख- समीरिता	चरितार्था आसीत्			एवम् अभ्येत्य (काल) विविधाभि क्रोडाभि (साधन)
५ चद्र- पालित	स (सर्व) नामिक (विशेषण)	आत्मसात् अकरोत्	विदारगद्ग		एस्य (काल), किल (प्रकार), अक्षर- विधातशतशै (अभिप्राय)
६ क्षितीश्वर कौशिकेन (कर्ता)		याचित	राम (गौण वम)	काकपक्षधरं	
७ कुरुपति	मानुज	धिक- निध			

मिश्रित वाक्य

३७७—मिश्रित वाक्य में एक प्रधान कर्ता होता है और एक प्रधान क्रिया, पर इनके अलावा दो या दो से अधिक आश्रित क्रियाएँ हो सकती हैं।

‘यस्यार्थी’ तस्य मित्राणि (हितोप) । ‘इतश्चेतश्च निर्गतो युवराजः इति’ आकर्ण्य आचकम्पे मेदिनी (कादम्बरी) ।

जिस अंश में प्रधान कर्ता और प्रधान क्रिया होते हैं उसे प्रधान उपवाक्य कहते हैं, शेष को आश्रित अथवा अधीन उपवाक्य कहते हैं।

३७८—आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं—सज्ञा उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य, और क्रिया विशेषण उपवाक्य।

वस्तुतः मिश्रित वाक्य साधारण वाक्य का एक विस्तृत स्वरूप है, जिसमें सज्ञा उपवाक्य सज्ञा का प्रतिनिधित्व करता है, विशेषण उपवाक्य विशेषण का और क्रिया विशेषण उपवाक्य क्रियाविशेषण का।

सज्ञा उपवाक्य

३७९—सज्ञा उपवाक्य सज्ञा के स्थान पर आता है, अर्थात्, वह निम्नलिखित कार्य करता है—

- (१) प्रधान क्रिया का कर्ता
- (२) प्रधान क्रिया का कर्म
- (३) प्रधान उपवाक्यस्थित किसी सज्ञापद का समानाधिकरण
- (४) प्रधान उपवाक्य में आई हुई किसी क्रिया का कर्म —

(१) ‘अयं पुनरविरुद्ध प्रकार इति’ वृद्धेभ्य श्रूयते (उत्तर ४)
‘श्रूयते’ (का कर्ता)

‘स स पापादृते तासां दुष्यत ’ इति घुष्यताम् (शकु. ६)

—‘घुष्यताम्’ का कर्ता

(२) प्रकाश निगतस्तावद्वलोकयामि ‘कियद्वशिष्ट रजन्या. इति’ (शकु. ४)—‘अवलोकयामि’ का कर्म

(३) ‘अप्रतिष्ठे रघुज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य न ’ । इति दु.खेन तप्यन्ते त्रयो न पितरोऽपरे ॥ (उत्तर०५) —दु.खेन का समानाधिकरण। तस्य कदाचित् चिन्ता समुत्पन्ना ‘यदर्थोत्पत्युपायाश्चिन्तनीया’ (पचतन्त्र)—चिन्ता का समानाधिकरण ।

(४) ‘तथापि सुहृदा सुहृदसन्मार्गप्रवृत्तो यावच्छक्तितो निवारणीय इति मनसा अवधार्य अब्रवम् (कादम्बरी)—अवधार्य का कर्म ।

३८०—सज्ञा उपवाक्य प्रधानतया ‘इति’ से सूचित किए जाते हैं, अथवा यथा, यद् से आरम्भ होकर कभी इ त से और कभी बिना इति के समाप्त होते हैं ।

अकथितोपि ज्ञायत एव यथाय तपोवनस्याभोग इति (शकु. १), सत्योय जनप्रवादो यत्स पत् सपदमनुबध्नातीति (कादम्बरी)। अविज्ञातमदनवृत्तान्ता ‘क गच्छामि इति’ नाज्ञासिषम् (कादम्बरी) ।

विशेष—कभी कभी इति का प्रयोग नहीं भी होता, जैसे, कथय ‘सत्सगति पुसा कि न करोति’ (भर्तृहार० नीति० २८) । एतत् कल्याणाभिनिवेशिन श्रुतिविषयेमाप ततमेव ‘यथा विबुधसद्बान्य-प्सरसो नाम कन्यका सन्ति’ (कादम्बरी) ।

विशेषण उपवाक्य

३८१—विशेषण उपवाक्य किसी सज्ञा वा सर्वनाम की विशेषता बताता है, और विशेषणधर्मा होता है । इसका आरम्भ सन्बन्धवाचक सर्वनाम “यद्” के स्वरूप (यावत्, यादृश आदि) से होता है ।

विशेषण उपवाक्य निम्नलिखित के साथ प्रयुक्त हो सकता है—

(१) कर्ता के साथ, 'यदालोके सूक्ष्मव्रजति सहसा तद् विपुल-
ताम् (शकु १) ।

तत्तस्य किमपि द्रव्य 'यो हि यस्य प्रियो जन ' (उत्तर० २) ।

'अहेतु पक्षपातो य ' तस्य नास्ति प्रतिक्रिया (उत्तर० ५)—कर्ता
की विशेषता बताने वाले 'तस्य' की विशेषता बता रहा है ।

(२) कर्म के साथ, 'यस्यागम केवलजीविकायै' त ज्ञानपरय
वर्णज वदन्ति (मालविका १) स तावद्भिषेकान्ते स्नातकेभ्यो ददौ
वसु । यावतैषां समाप्येरन् यज्ञा पर्याप्तर्द्धक्षणा ॥ रघु० १७।१७ ।

(३) प्रधान क्रिया के विस्तार के साथ, युगान्तकाल-
प्रतिषद्दृतात्मनो जगन्ति यस्या मविकाशमासत । तनौ ममुस्तत्र न कैटभ-
द्विषस्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुदः (शिशुपाल० १।२३)—'ममु' का
विस्तारसूचक शब्द 'तनौ' की विशेषता बताता है ।

विशेष—विशेषण उपवाक्य की स्थिति को ध्यानपूर्वक देखिये ।
यह या तो प्रधान उपवाक्य के पहिले आता है या बाद में आता है ।

३८२—प्राय विशेषण उपवाक्य विशेषणधर्मा समासों द्वारा सूचित
किए जाते हैं,

अर्थात् व्यधिकरण तत्पुरुष और कमधारय समास तथा बहुव्रीहि
समास द्वारा और क्तप्रत्ययान्त, क्तवतु-प्रत्ययान्त, कृत्यप्रत्ययान्त,
शब्दों द्वारा—

तन्नन्दिनीं सुवृत्ता नामैतस्मात् द्वीपादागतो रत्नोद्भवो नाम
रमणीयगुणालयो भ्रांतभूवलयो व्यवहारी उपयेमे (दशकुमार)
यहाँ पर आगत और भ्रान्तभूवलय यो द्वीपादागच्छत् और यो
भूवलय बभ्राम—इन विशेषण उपवाक्यों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं ।

क्रिया विशेषण उपवाक्य

३८३—क्रिया विशेषण उपवाक्य क्रियाविशेषण अव्यय का समान-धर्मी होता है और क्रिया की विशेषता बताता है। यह क्रियाविशेषण अव्यय के स्थान पर आता है और उसी की रचना के समान इसकी भी रचना होती है। क्रिया विशेषण अव्यय ही के समान यह भी काल, स्थान, प्रकार, कारण और कार्य सूचित करता है।

३८४—कालवाचक-क्रिया-विशेषण उपवाक्य प्रधान उपवाक्य के अन्दर आई हुई क्रिया का काल बताता है।

मत्वर निवेदय 'यावत् दध्नान्तर्गतो न भवसि' (पञ्च)। अत्रैव तावद्रथ स्थापय यावदवतरामि (शकु १। यदा हर पावती परिणो-यति तदा स्मर स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति (कुमार० ४।४)। यावदसौ पान्थ सरसि स्नातुं प्रविशति तावत् महापके निमग्न (हितोप०)।

३८५—स्थानवाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य किसी स्थान में किसी वस्तु की स्थिति अथवा किसी स्थान के प्रति किसी वस्तु की गति सूचित करते हैं। 'यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र वह्निः'।

३८६—प्रकार-वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य निम्नलिखित बातें सूचित करते हैं—

(१) समानता—यह इव और यथा से द्योतित की जाती है (इव और यथा इतरेतरसम्बन्धी हैं तथा और तद्वत् के), जैसे, पुत्रं लभस्वात्मगुणालुरूपं भवन्तमीड्यं भवतः पिता इव' (अलभत)—रघु० ५।६४। आसीदियं दशरथस्य गृहे 'यथा श्री' (अस्ति)-उत्तर० ४।

यथा काष्ठ च काष्ठ च समेयाता महोदधौ । समेत्य च व्यपेयाताम्' तद्वद् भूत-समागम (हितो प४)

विशेष—यथा अथवा इव से प्रारम्भ किए हुए उपवाक्य प्रायः सञ्चित रहते हैं ।

(२) मात्रा अथवा सम्बन्ध (समानता, अगाधता अदि)—

‘वितरति गुरू. प्राज्ञे विद्या यथैव तथा जडे (वितरति) उत्तर०२
‘यथा यथा अम्बुधाराभिराहन्यते तथा तथा स्फुरति मदन-
पावक (कादम्बरी)

३८७—बहुव्रीहि समासो को क्रियाविशेषण अव्यय के तौर पर प्रयोग करके भी प्रकार-वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्यों को सूचित करते हैं, जैसे, राजा सविलक्ष्मितम् आह यथा विलक्ष्मित स्यात्' तथा आह । ‘उद्योतिताम्बरदिगन्तरम् अशुजाल’ शक्ति पपात हृदि तस्य महासुरस्य (कुमार० १७ ५) ।

३८८—काय-कारण वाचक क्रियाविशेषण उपवाक्य निम्नालखित बाते सूचित करते हैं —

(१) कारण,

‘वत्से कठोरगर्भेति नानीतासि (उत्तर०१) । समापि तर्हि धर्मत-
स्तथैव ‘यत प्रियवयस्य इत्यात्थ’ (उत्तर० ५) इत्यादि नन्विह
निरर्थकमेव ‘यस्मात्कामो जृम्भितगुण’ (मालती. १)
कमपरमवश न विप्रकुर्यु ‘विभुमपि त यदभी स्पृशन्ति
भावा.’ (कुमार६ । ६५) । कञ्चिद् भर्तु. स्मरसि रसिके ‘त्व हि तस्य
प्रियेति’ (मेघ० ८८) ।

(२) शर्त,

श्रूयतां 'यदि कुतूहलम्' (काद)। 'अथ तु वेत्सि शुचित्रत-
मात्मनः' पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम् (शकु ५)। 'जात्या चेद-
वध्योहम् एवा सा जाति परित्यक्ता (वेणी. ३)

(३) Concession,

'काममनुरूपमस्या वपुषो बल्कल' न पुनरलकारश्रिय न पुष्यति
(शकु. १)। 'नेत्रे पुनर्यद्यपि रक्तनीले, तथापि सौभाग्यगण स एव
(उत्तर ६)।

(४) अभिप्राय, प्रयोजन,

द्वोप तु मे काचत् कथय 'येन स प्रतिविधीयेत (उत्तर १)।
'तदागच्छ यथा दर्शयामि' (पचतत्र)। भो धीर गच्छ 'मा खलु
तत्रभवती धारिणी विसवदिष्यति' (मालविका. १) अस्य शरीरस्य
मा विनाशो भूदिति' मयेदमुत्तिष्ठ्य समानीतम् (काद)।

(५) परिणाम,

कुमार, तथा प्रयतेथा 'यथा नोपहस्यसे जने. (कादम्बरी)
स ऋत्विजस्तथानर्च 'यथा साधारणीभूत नामाभ्य धनदस्य च'
(रघु १७। ८०) सा वेणुलतामादाय सभाकुट्टिममाजघान 'येन
सकलमेव तद्राजक तदभिमुखमासीत्' (कादम्बरी)

३८८—सहा, विशेषण, अथवा क्रियाविशेषण उपवाक्य की
द्विरुक्ति कर मिश्रित वाक्य का विस्तार किया जा सकता है। परन्तु उस
दशा में वह वाक्य संयुक्त वाक्य हो जायगा, जिसके प्रत्येक अशभूत वाक्य
मिश्रित वाक्य होंगे।

'कथं स त्वया दृष्टः' 'किं किमभिहितासि तेन' 'क्रियत कालमव-

रिथतामि तत्र' 'कियदनुसरन्नस्मानसावागत' इति पुन पुन पय-
पृच्छम् (काःम्बरी) 'यस्य चेन्द्रियाणि सन्ति' 'य पश्यति वा' 'श्रुतमव-
धारयति वा' स खलूपदेशमर्हति (काद०) ।

३६०—पुनश्च, आश्रित उपवाक्यो में से दो या दो से अधिक एक
ही मिश्रित वाक्य मे आ सकते हैं,

क्रोध प्रभो सहर सहरेति (सङ्क्षेपे) यावद्गिर खे मरुता चरति
(क्रिया विशेषण) तावत् स वह्नि भवनेत्रजन्मा भस्मावशेष मठनं
चकार ॥ (कुमार० ३ । ७२) ।

राष्ट्रमुख्यमाहूयाख्यातवान् । योऽसौ अनंतसीर प्रहारवर्मण
पक्ष इति निनाशियिषित. (विशेषण) सोऽपि पितरि मे प्रकृतिस्थे
किमिति नश्येतेति (सजा)—दशकुमार ।

आश्रित उपवाक्य बनाने वाले शब्द

सज्ञा उपवाक्य—'इति', 'यथा', इति—सहित अथवा इति—रहित
'यद्' ।

विशेषण उपवाक्य—यद् शब्द के रूप ।

क्रियाविशेषण उपवाक्य—(१) कालवाचक—यदा, यावत्, यावत्
न * तावत्, यदा यदा ।

(२) स्थानवाचक—यत्र, यत्र यत्र ।

(३) प्रकारवाचक—इव, यथा—तथा वा तद्वत्, यथैव * तथैव
यथा यथा ।

(४) कारण वाचक (क) इति यतः तत, यद्, यथा
तथा, हि,

(ख) यदि * तर्हि, तद्, तत, चेद्, अथ ।

(ग) यद्यपि, काम (तु, पुन.) ।

(घ) येन, इति, यथा, मा (लृट्, लुट् अथवा लोट् के साथ) ।

(ङ) यथा येन ।

मिश्रित वाक्यों का विश्लेषण

३६१—मिश्रित वाक्यों का विश्लेषण इस प्रकार किया जाना चाहिए मानो प्रत्येक आश्रित उपवाक्य एक शब्द अथवा एक वाक्यांश हो । तदनन्तर, आश्रित उपवाक्यों का अलग से साधारण वाक्यों के समान विश्लेषण किया जाना चाहिए ।

उदाहरण

(१) अथ स निश्चस्य लज्जाविशीर्यमाणविरलाक्षर सखे कपिजल विदितवृत्तातोपि किं मा पृच्छसीति कृच्छ्रेण शनैः शनैरवदत् । (काद०)

(२) एष नामानुगृहीतः यः शूलाद्वतार्य हस्तिस्कन्धे प्रतिष्ठापितः (शकु० ६)

(३) अन्वेषमाणश्च यथा यथा नापश्य त, तथा तथा सुहृत्स्नेह-कातरेण मनसा तत्तदशोभनमाशकमानो निपुणमितस्ततो दत्तदृष्टिः सुचिर व्यचरम् (काद०) ।

वाक्यविश्लेषण की विधि

कर्ता	कर्ता का विस्तार	क्रिया	कर्म	कर्म का विस्तार	क्रिया के क्रियाविशेषणात्मक विस्तार
१. स	"	अवदत्	सखे कपिजल पृच्छसीति (क)	"	अथ (काल) नि श्वस्य (काल) लज्जा विशीर्यमाण - विरलक्षिम् (प्रकार) दुच्छेण शनैः शनैः (प्रकार)
(क) (ख) सखे कपिजल कर्ता के साथ	विदितवृत्तातोपि (विशेषण)	पृच्छसि		मां (मुख्य) किं (तौण)	
२-पृष	य - प्रतिष्ठापित (क)	अनुगृहीत			नाम (प्रकार)
(क) य		प्रतिष्ठापित			इतिस्कधे (स्थान) शूनादवतार्य (काल)
३-(आह)	सुहृत्स्नेह शोकमान. शानजन्त विशेषण निपुण इति शतौ दत्त दृष्टिः (विशेषण)	व्यचरम्			तथा तथा (मात्रा) यथा यथा अन्वेषमाणो नापश्य त (मात्रा) सुवि (काल)
(क) आह	अन्वेषमाणः (शान जन्ता विशेषण)	अपश्य (न)	त		यथायथा (मात्रा)

सयुक्त वाक्य

३६२—सयुक्त वाक्य मे दो य दो से अधिक साधारण अथवा मिश्रित वाक्य होते हैं जो आपस मे एक दूसरे के समानाधिकरण होते हैं ।

सयुक्त वाक्य के अशभूत उपवाक्य निम्नलिखित श्रेणी के हो सकते हैं—

(१) साधारण वाक्य

(२) कुछ तो साधारण वाक्य हो सकते हैं और कुछ मिश्रित

(३) सभी मिश्रित वाक्य हो सकते हैं

१—तथाप्येष प्राण स्फुरति न तु पापो विरमति (उत्तर० ६)

मनो निष्ठाशून्य भ्रमति च किमप्यालिखति च ॥ (मालती० १)

(इसमे प्रत्येक साधारण वाक्य है)

२—दाक्षिण्य नाम बिम्बौष्ठि वैविकाना कुलव्रतम् । तन्मे दीर्घाक्षि ये प्राणास्ते त्वदशानिवन्धना । (मालविका ४)

(इसमे दूसरा अश मिश्रित वाक्य है)

३—यदि यथा वदति क्षितिप तथा त्वमसि कि पितुरुत्कलया त्वया ।

अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मन पतिकुले तव दा यमपि क्षमम् ॥

(शकु ५)

(दोनो अश मिश्रित वाक्य हैं)

इन उदाहरणों में जो पृथक् पृथक् वाक्य हैं वे किसी भी प्रकार एक दूसरे के आश्रित नहीं हैं । प्रत्येक उक्ति स्वतः स्वतंत्र है । परन्तु मिश्रित वाक्य स्वतंत्र अर्थ रखने वाले वाक्यों में विभक्त नहीं किया जा सकता ।

३६३—सयुक्तवाक्य के अशों में परस्पर निम्नलिखित सम्बन्ध हो सकते हैं—

(१) Cumulative relation सामूहिक सम्बन्ध । यह सम्बन्ध च, तथा, अपिच से सूचित किया जाता है और इस में दो या दो से अधिक कथन साथ साथ जोड़े जा सकते हैं ।

(२) Adversative relation प्रतिकूल सम्बन्ध अथवा विरोध-सूचक सम्बन्ध । यह सम्बन्ध वा, तु, पुन, परन्तु आदि सन्तुल्यबोधक अव्ययों से सूचित किया जाता है, और इसमें दूसरा वाक्य पूर्वगामी वाक्य का विरोधी होता है ।

(३) अनुमानिक सम्बन्ध । यह सम्बन्ध अतः, तत्, तत में सूचित किया जाता है और इस में किसी पूर्वगामिनी घटना से किसी परिणाम अथवा कार्य का प्रादुर्भूत होना मिलता या जाता है ।

सामूहिक सम्बन्ध

Cumulative Relation

३६४—सामूहिक सम्बन्ध में उक्तियों का परस्पर सम्मिलन तीन प्रकार से हो सकता है—

(१) उक्ति के ऊपर समान बल देकर—

तटस्थ स्वानर्थान् घटयति 'च' मौन 'च' भजते (मालती० १) ।
त्रिलोचनस्त्वा प्रतिग्रहीतुमुपचक्रमे च' पुष्पवन्वा धनुष्यमोघ बाण
समधत्त 'च' (कुमार० ३ (६६) । तृणमिव यने शम्भे (सा) त्यक्ता न
'चापि' अनुशोचिता (उत्तर० ३)

(२) दूसरे उपवाक्य के ऊपर अधिक बल देकर—

न केवलं तातनियोग एव 'अस्ति मे सोढरस्नेहोऽप्येतेषु' (शकु १)
पुण्यानि नामग्रहणा न्यपि मुनीना 'किं पुन दर्शनानि' (काद)

(३) विचारों में उत्तरोत्तर उत्थान दिखला कर—

उदेति पूर्व कुसुम 'तत' फलम् (शकु. ५) । जगज्जीर्णारण्य
भवति हि विकल्पश्रुपरमे । कुकूलानां राशौ 'तदनु' हृदयं पश्यत
इव । (उत्तर० ६)

विशेष—इस सम्बन्ध में कई समानाधिकरण वाच्य एक दूसरे के
पास पास रखे हुए एक दूसरे के पीछे आते जाते हैं। परन्तु इनका जोड़ने
के लिए कोई भी शब्द इनके बीच में नहीं रखा जाता, उनका
अर्थ गन्धमान रहता है । शुश्रूषात्वं गुरुन् कुरुप्रियमस्वीवृत्ति सपत्नीजने
भूयिष्ठं भव दक्षिणा पारजन माग्येऽनुत्सकिनी (शकु. ४)
(इसमें चार कथन या उक्तियाँ) हैं ।

जाड्यं धियो 'हरात' सिचति' वाचि सत्यम् सा शोऽति 'रि शति'
पापम् 'अपाकरोति' चेत् । 'प्रसादयति' जिष्णु 'तनोत' कीर्तिम्
सत्सगः त (मनुस्मृति० ना. त. २०) ।

दारिद्र्याद् हियमेते ह्यपारगन् प्रश्रयन् तेजसो निस्तेजा
परभूयते परिभवात् निर्वडमापद्यते । निर्विण्ण शुचमेति
शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यत निबुद्धिः क्षयमेयहो । नधनता
सर्वानामास्पदम् (मनुस्मृति० १)

विरोधसूचक सम्बन्ध

३५५—विरोधसूचक सम्बन्ध तीन प्रकार से सूचित किया जाता है—

(१) बहिष्कार सूचक समुच्चयबोधक अव्यया द्वारा, जिनमें पहली
पदास्थात का बाह्यकार व्योमित होता है —

प्रज्ञाहीनोऽयं राजा 'नोचे' । नीतिशास्त्रकथाकौमुदी
वागुल्काभिः कथं तिभिरयति (हिताप. ०) । व्यक्त नास्ति

कथम् 'अन्यथा' वासत्यपि ता न पश्येत् (उत्तर ० ३) । अद्यापि हरकोपवह्निस्त्वयि ज्वलति । 'अन्यथा त्वं भस्मावशेष कथमित्थ-मुष्ण' (शकु ३) ।

(२) **Alternative Conjunction**—द्वारा, वा-वा, किम्—
अथवा, उत, आहो, आहोस्वित् —

तदेषा भवत कान्ता त्यजैनां 'वा' गृहाण 'वा' (शकु ० ५) ।
सूतो 'वा' सूतपुत्रो 'वा' यो 'वा' को वा' भवाम्यहम् (वेणी ० ३) ।
किं धर्मोपदेशागमिदम् 'उत' मोक्षप्राप्तिरियम् 'आहोस्वित्' अन्य
कश्चिन्नियमप्रकार (कादम्बरी) ।

(३) **Arrestive Conjunctions** के द्वारा, तु, किन्तु, परम्
(तु, पन, तथापि, औष (कभी कभी) केवलम्

दैवायत्त कुले जन्म मदायत्तं 'तु' पौरुष (वेणी ३), (अथ कथाप्र-
विभाग.) प्रणीतो न 'तु' प्रकाशित (उत्तर ४), सखे पु डरीक सुविदितमेतन्मम
'किन्तु' इदमेव पृच्छामि (कादम्बरी १५५), न च न परिचितो न चाप्य-
गम्य चकितमुपैमि 'तथापि' पार्श्वमस्य (मालती १), लौकिकानां हि
साधूनामर्थं वागनुवर्तते । ऋषीणां 'पुन' आद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ॥
(उत्तर १), अनुदिवस परिहीयसे अगैः 'केवल' लावण्यमयो छाया त्वा न
मुचति (शकु ३)

३६६—आनुमानिक सम्बन्ध **Illative Relation** निम्नलिखित
शब्दो से सूचित किया जाता है—अतः, तस्मात्, ततः, अनेन हेतुना, एव
च, तेन हि.—

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसश्रया भर्तृमतीं जनोन्यथा विशकते
'अतः प्रमदा स्वबधुभिः परिणेतुः समीपे इष्यते (शकु ५), भो
उपस्थित नयनमधु सनिहिता च मक्षिका । तत् अप्रमत्ता इदानीं पश्य
(मालविका. २), जनकोद्य गतो विदेहान् । 'ततो' बिभनसो देव्या
परिसात्वनाय नरेद्रो वासगृह विशति (उत्तर १), अत्यद्भुतादपि

गुणातिशयातिशयोक्तिस्तस्मात् सखा स्वमसि (उत्तर ५), मध्यस्था नौ गुणदोषतः परिच्छेत्तुमर्हति । 'तेन हि' प्रस्तूयता विवादवस्तु (मालविका० १)

३६७—प्रायः सस्कृत में जब संयुक्त वाक्य के समानाधिकरण भागों का एक ही कर्ता या एक ही क्रिया होती है या कोई भी अश्व उभयनिष्ठ होता है तो उभयनिष्ठ अश्व दोहराया नहीं जाता, और इस प्रकार में वाक्य संहित बना दिया जाता है ।

(१) तदस्थः स्वानर्थान् घटयति च मौनं च भजते

हृदयमशरणं मे पद्मलाक्ष्या कटाक्षे

'अपहृत' 'अपविद्ध' 'पीत' 'उन्मूलित' च

(२) दिष्ट्या न केवल 'उत्सर्ग' चिरान् 'मनोरथोपि' मे पूर्णः

(उत्तर ०)

न मा त्रातु 'तात' प्रभवति' न 'चांवा' न 'भवती'

समानाधिकरण वाक्यों को जोड़ने वाले शब्दों का वर्गीकरण

Cumulative Relation { (१) च, च च, तथाच, अपि, अपिच, अपरच, अन्यच्च
(२) केवल-अपि, किमुत, किपुन
(३) अथ, तदनु, पूर्व-तत, अनंतर तत, पर, ततश्च
अनंतर च

Adversative Relation { (१) अन्यथा, न (नो) चेत्
(२) वा, का-वा, न वा.
(३) तु, किंतु, पर तु, तथापि पुन, केवलं

Illative Relation { तत, तस्मात्, अत, ततः, तथा, एवं च, एव, तेन हि

सयुक्त वाक्यों का वाक्य-विश्लेषण

३१८—सयुक्त वाक्य का विश्लेषण करने में पहिले भिन्न भिन्न समानाधिकरण उपवाक्यों का परस्पर सम्बन्ध बताइए । तदनन्तर इन समानाधिकरण उपवाक्यों का अलग से विश्लेषण कीजिए । यदि वे साधारण वाक्य हो तो साधारण वाक्यों का सा विश्लेषण कीजिए, यदि वे मिश्रित वाक्य हो तो मिश्रित वाक्यों का सा विश्लेषण कीजिए ।

उदाहरण

(१) वर्षं वा गर्जं वा शक्र मुच वा शतशोशनिम् (मृच्छकटिक ५)

(२) उचित प्रणयो वर विदुः बहव खडनहेतवो हि दृष्टा ।
उपचारविधिर्मनस्विनीना न तु पूर्वाभ्यधिकोपि भावशून्य । (मानावका ३)

(३) दृष्टा खलु मया तत्रभवत्या मालविकायाः प्रियसखो वकुलावलिका
श्राविता च तमर्थं भवता याः सदृष्ट (मानावका ३)

१. शक्र (त्व) वर्षं वा (क)—प्रधान वाक्य

(त्व) ग्गा वा (ख)—प्रधान—क का समानाधिकरण

(त्व) शतशोऽशानि मुच वा (ग)—प्रधान—क और ख का समाना-
धिकरण विरोध सूचक सम्बन्ध है

कर्ता	क्रिया	कर्म	क्रियाविशेषण/आत्मक विस्तार
क (त्व) शक्र	वर्षं (वा)		
ख (त्व)	गर्जं (वा)		
ग (त्व)	मुच (ग)	शशनि	शतश (प्रकार)

२—उचित १. प्रणयो विदुः वर बहव खडनहेतवो दृष्टाः हि (क)

न तु पूर्वाभ्यधिकोपि भावशून्यो मनस्विनीनामुपचारविधि वरं (ख)

विरोध सूचक सम्बन्ध है

क—का विश्लेषण जो कि मिश्रित वाक्य है

कर्ता	क्रिया	कर्म	क्रियाविशेषणात्मक विस्तार
(क) प्रणय	वर		विहृतम् (अभिप्रय)
(उचित — विशेषण)			बहव दृष्टा. (का ण)

(क) खडनहेतवः

बहव. (विशे.) दृष्टाः

हि (कारण)

(ख) उपचारविधि

मनस्विनीना (षष्ठो)

पूर्वाभ्यधिकोपि न (वरम्)

भावशून्य (विशेषण)

३—पहिला साधारण वाक्य है, दूसरा मिश्रित वाक्य है, जिसका विश्लेषण ऊपर दे दिया गया है।

अभ्यासार्थ विविध उदाहरण

निम्नलिखित वाक्यों का विश्लेषण ऊपर बताई हुई विधि के अनुसार कीजिए और यह भी बताइए कि वे साधारण वाक्य हैं अथवा मिश्रित अथवा सयुक्त—

१—महत्येव प्रत्यूषे दास्या पुत्रै शकुनिलुब्धकेर्वनग्रहणकोलाहलेन प्रतिबोधितोस्मि । (शकु. २)

२—कुतो धर्मक्रियाविघ्न सतां रक्षितरि त्वयि । (शकु. ५)

३—प्रमाणादाधिकस्यापि गडश्याममदच्युते ।

पद मूर्ध्नि समाधत्ते केसरी मत्तल्लिन ॥ (पचतत्र)

- ४—लघुद्वयां मा लोक कलयिष्यतीति निर्ह्रांकया मया नाक-
लितम् । (काठ)
- ५—दर्शनादारभ्य शरीरस्याप्ययमेव प्रभु किमुत भवनस्य विभवस्य
वा । (काठ)
- ६—स चानुयुक्तो बूर्त सविनयमावेदयत् । विदितमेव खलु वो
यथाह युष्मदाज्जया पितृवनमभिरक्ष्य तदुपजीवी प्रतिव्रसामि ।
(दशकुमार)
- ७—यदा किञ्चित् किञ्चिद् बुवजनमकाशादवगत
तदा सूर्खोस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगत (भट्टहरि २ । ८)
- ८—अहमतिमृदुनि पुलिनवति सरस्तीरेऽवरोप्य सस्पृह निर्वर्ण्यस्ता
मत्प्राणैकवल्लभा राजकन्या कटुकावतीमलक्षयम् ।
(दशकुमार)
- ९—एवमेतत् । किनु न कदाचिदार्थस्य निष्प्रयोजना प्रवृत्तिरित्यस्ति
न प्रश्नावकाश । (मुद्रा० ३)
- १०—विचितयती यमनन्यमानसा तपोधन वेत्सि न मामुपस्थितम् ४
मरिष्यति त्वा न स बोधितोपि सन् कथा प्रमत्त प्रथम
कृतामिव । (शकु ४)
- ११—अये महाराजेति निष्प्रणयमामत्रणपद मौमित्रिमात्रे च
बाष्पस्खलिताक्षर कुशलप्रश्न । तथा मन्ये विदितसीतावृत्ता-
तेयमिति । (उत्तर ३)
- १२—वरेषु यद्बालमृगाक्षि मृग्यते तदास्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने
(कुमार ५ । ७२)
- १३—तद् ब्रूत वत्सा किमित् प्रार्थयध्व समागता ।
मयि सृष्टिर्हि लोकाना रक्षा युष्मास्ववस्थिता ।
(कुमार २ । २८)

१४—काम भवान् प्रकृत्यैव धीर पित्रा च महता प्रयत्नेन समारो-
पितमस्कार । तथापि भवद्गुणसतोपो मामेव मुखरीकृतवान्॥

(कादं)

१५—वध्ये मयि मत्तहती मृत्युविजयो नाम हिसाविहारी
राजगोपुरोपरितलाधिरुढस्य पश्यत उत्तामामात्यस्य शसना-
ज्जनकठरवद्विगुणितघटारवो मडलितहस्तकाड समभ्यधावत्
(दशकुमार)

१६—यज्ञोपवीत नाम

अमौक्तिकमस्त्रौवर्ण ब्राह्मणाना विभूषणम् ।

देवताना पितृणा च भागो येन प्रदीयते ॥ (मृच्छकटिक १)

१७—अत्रातरे ब्राह्मणेन मृतं पुत्रमुत्तिष्ठ्य राजद्वारे सोरस्ताडन-
मब्रह्मण्यमुद्धोषितम् । ततो न राजापराधमतरेण प्रजास्व-
कालमृत्युश्चरतीत्यात्मद्वेय निरूपयति करुणामये रामभद्रे
सहसैवाशरीरिणी वागुदचरत् । (उत्तर २)

१८—अथ कदाचित् पिगलको नाम सिंह सर्वमृगपरिवृत.
पिपासाकुल उदकग्रहणार्थं यमुनातटमवतीर्णं सजीवकस्य
गभीरतरशब्द दूरादेवाशृणोत् । (पञ्चतन्त्र)

१९—यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितोन्यत.
प्रयातुः । अथ मरणमवश्यमेव जतो निमित्ति मुधा मलिनं
यशं कुरुध्वे ॥ (वेणी ३)

२०—प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यात्यापद ।

(भर्तृहरि २ । ६०)

२१—यावत्स्वस्थमिदं कलेवरग्रहं यावच्च दूरे जरा
आन्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यं प्रयत्नो महान्
(भर्तृहरि २ । ८८)

- २२—यथा तिरश्चीनमलातशल्य प्रत्युत्तमत सविषश्च दश ।
तथैव तीव्रो हृदि शोकशकुर्मर्माणि कृतन्नपि किं न सोढ ॥
(उत्तर ३)
- २३—परस्परविरोधीन्योरेकसश्रयदुर्लभम् ।
सगत श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम् ॥ (विक्रमो ५)
- २४—सर्वैरुस्रै समग्रैस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्ति
(मातृविका २)
- २५—अस्त्वमर्षो मा भूद्रा । एतत्तु पृच्छामि दात हि राघव राजान
शृणुम । स किल नात्मना दृष्यति न चाप्यस्य प्रजा ईदृशो
जायन्ते तत् किमस्य मनुष्या राक्षसी वाच वदति । (उत्तर ५)
- २६—यथा नां प्रियसखी बधुजनशोचनीया न भवति तथा निर्वाह्य ।
(शकु ३)
- २७—अथ स बिषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूतवे
नृपतिककुदं वत्त्वा यूने सितातपवारणम् ।
मुनिवनतरुच्छाया देव्या तया सह शिश्रिये
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ॥ (रघु ३ । ७०)

और अधिक अभ्यास करने के लिए विद्यार्थी पूर्व पाठों से वाक्यों को चुन लें और उनका विश्लेषण करें ।

— —

द्वितीय सेक्शन

वाक्यों में शब्दों का क्रम

३६६—प्रथम भाग के भूमिकाश में पहले ही कहा जा चुका है

कि संस्कृत वाक्य में शब्दों का क्रम कोई बड़ा महत्वशाली विषय नहीं है। संस्कृत में अव्ययों के अतिरिक्त सभी शब्दों में प्रत्यय लगे रहते हैं, और प्रत्ययों से स्वयं ही मालूम हो जाता है कि एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ क्या सम्बन्ध है। इस प्रकार, व्याकरण की दृष्टि से क्रम नामक कोई ऐसा विषय नहीं है जिस पर बहुत ध्यान दिया जाय।

“कथमपि तत्याज वनेसीतां लक्ष्मण कठोरगर्भाम्” — इस प्रकार का वाक्य भले ही देखने में बड़ा भद्दा लगता हो, परन्तु व्याकरण की दृष्टि से यह गलत नहीं है। परन्तु यदि व्याकरण-सम्बन्धी क्रम न भी हो, तो भाषा विचारों का एक तार्किक क्रम ऐसा होता है जो एक विशेष रीति के अनुसार एक दूसरे के पीछे आना ही चाहिये। यदि हम किसी भी संस्कृत गद्य ग्रंथ के पृष्ठों को देखें तो हमें उसमें शब्दों का कोई विशेष क्रम अवश्य मिलेगा, उदाहरणार्थ, पहिले विशेषण-सहित कर्ता कारक आता है, चाहे प्रकट रूप में, चाहे अप्रकट रूप में; तब यदि कर्म रहता है, तो वह आता है, और अन्त में क्रिया अथवा विधेय, जैसे,

सा तु महाश्वेताया एव मुखमवलोकितवती (काद०)

महीपति तं विद्येश्वरं सबहुमानं विससर्ज (दशकुमार०)

यद्यपि काव्य और नाटकीय कविताएँ साधारण गद्य के नियमों से मुक्त हैं तथापि उनमें भी इन नियमों का बड़ी कड़ाई के साथ पालन किया जाता है,

रघूणामन्वय वक्ष्ये [रघु० १।८]

तृष्णां छिन्दि, पापे रतिं मा कृथा [भर्तृहरि २।७७]

वदनकमलक शिशो स्मरामि [उत्त० ४]

असिर्गात्र गात्र सपदि लवशस्ते विकिरतु [मालती माधव ५]

अब वाक्यों में शब्दों के क्रम के विषय में कुछ नियम विहित किए जायेंगे ।

४००—गद्य वाक्य में शब्दों की व्यवस्था करने के लिए सर्वोत्तम अनुसरणीय नियम यह है—[१] पहिले विशेषणसहित तथा विशेषण-वाक्याशसहित कर्ता को रखना चाहिए, [२] तब विशेषणसहित कर्म कारक रखना चाहिए, [३] अन्त में विवेक [चाहे वह कृदन्तीय हो, चाहे ताद्वतीय हो] । क्रियाविशेषण तथा क्रियाविशेषणवाक्याश अन्तिम स्थान के अतिरिक्त अन्य किसी भा स्थान पर रखे जा सकते हैं । कुछ समुच्चयबोधक अव्ययों का छोड़ कर शेष सभी कर्ता के पूर्व आते हैं । यदि कोई विद्यार्थी निम्नलिखित वाक्य लिखे या बोले तो वह वाक्य महा भद्दा होगा—“सकाश’ गुरो आशिष राज्ञे अग्रजन्मा प्रयुज्य प्रतीयायेत्थम्” ।

इसके स्थान पर याद वह निम्नलिखित प्रकार से वाक्य को लिखे या बोले तो क्या ही अच्छा लगेगा—

“इत्थ’ राज्ञे आशिष प्रयुज्य अग्रजन्मा गुरो सकाश’ प्रतीयाय [रघु० ५। ३५] ।”

४०१—जब किसी श्लोक का अन्वय किया जाता है, तब उपर्युक्त क्रम साधारणतया पालन किया जाता है । उदाहरणार्थ यह श्लोक लीजिए

अथ प्रजानामधिप प्रभाते

जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम् ।

वनाय पीतप्रतिवद्धवत्सां

यशोधनो धनुमृषेर्भुमोच (रघु० २। १) ।

इसका अन्वय इस प्रकार होगा—

अथ (समुच्चयबोधक अव्यय) यशोधन (वि.) प्रजाना (ष०)

अधिव (कर्ता) प्रभाते (कम का विशेषण का विस्तार) जायाप्रति-
ग्राहितगन्धमाल्या (वि०) पीतप्रतिबद्धवत्साम् (दूसरा वि०) ताम्
(कर्म का वि०) ऋषे (कर्म का वि०) वेनु' (कर्म) वनाय (विधेय-
का विस्तार) मुमोच (क्रिया) ।

इसी प्रकार, अभिहन्ति हन्त कथमेष माधव सुकुमारकायम्
अनग्रह स्मर (मालता माधव ?), हन्त कथमेषोऽनवग्रह स्मर.
सुकुमारकाय माधवमभिहन्ति, अथवा हन्त एष
कथमभिहन्ति ।

अब साधारण नियम को विशेष विशेष उदाहरणों में तोड़कर
दिखाया जा सकता है कि भिन्न-भिन्न शब्दों का परस्पर क्या सम्बन्ध
हाना चाहिए ।

४०२—साधारण नियम से सब से पहिली बात यह सीखनी चाहिये
कि शब्दों का विन्यास इस प्रकार किया जाय कि एक विचार दूसरे
विचार के पीछे अपने प्राकृतिक क्रम में आता चले । अर्थात् आश्रित
शब्द साधारणतया उन शब्दों के पूरे आवे जिन पर वे निर्भर हैं अथवा
जिनके द्वारा वे शासित हैं ।

इस प्रकार, विशेषण और उसका विशेष्य, सङ्गर्भक क्रिया और उसका
कर्म, क्रियाविशेषण तथा क्रियाएँ, कर्म प्रवचनीय तथा सम्बन्ध सूचक
अव्यय तथा उनके द्वारा शासित शब्द ज । तक हों सके बलकुल समाप
में रखे जाय ।

४०३—जब किसी वाक्य में कोई साधारण सा कर्ता और क्रिया
होते हैं, तो कर्ता पहले रखा जाता है, रघुपतिस्तिष्ठति (उत्तर० ६, ।

विशेषण विशेष्य के पहिले आते हैं, 'देवो' रघुपतिस्तिष्ठति
(उत्तर० ६) । 'उपान्विद्य' 'गुरुद्विज्ञाणार्थी' कौत्सः त प्रपेदे (रघु०
५ १) । 'अपगतश्रमः' चाभिमत दिगन्तरमयासीत् (काद०) ।

(क) जब विशेषण विधेय बनकर आता है तब वह अपने विशेष्य के पीछे आता है ।

(ख) जब किसी वाक्य में सार्वनामिक तथा गुणबोधक विशेषण दोनों ही आते हैं तो, सार्वनामिक विशेषण पहिले रक्खा जाता है, गुणबोधक विशेषण बाद में, तस्याम् अतिदारुणायां हर्तनिशाचाम् (काद०)— उस महाभयङ्कर और अभागी रात में । परन्तु कभी-कभी गुणबोधक विशेषण सार्वनामिक विशेषण के पहिले आता है, जैसे, विचक्षणो वशी स (रघु० ५।१६ पर मल्लिनाथ) । यूना 'अनेन' पाथिवेन सह (रघु० ६।३२ पर मल्लिनाथ) ।

४०४—समानाधिकरण सज्ञा पहिले आनी चाहिए —

आसीदशेषनरपतिशिर समभ्यर्चितशासन 'आदर्श सर्वशास्त्राणाम्' 'उत्पत्ति कनाना' 'कुलभवन गुणाना' राजा शूद्रको नाम (काद०) ।

अथ 'मीनकेतनसेनानायकेन' दक्षिणानिलेन मन्मथानलमुज्ज्वल्यन् (दशकुमार १।५) ।

४०५ षष्ठी का जिससे सम्बन्ध होता है, प्रायः उसके पहिले आती है, 'जगत' पितरौ वन्दे (रघु० १।१) । 'अर्थानाम्' ईशिषे (भर्तृहरि-३।३०) ।

(क) जब सज्ञा को विशेषता बताने वाला कोई विशेषण होता है, तो प्रायः यह क्रम रहता है—विशेषण, षष्ठी, तब सज्ञा, जैसे, अयम् अस्या देव्या मन्ताप (काद०) । तस्य एवविधस्य पद्मसरस पश्चिमे तीरे (काद०) ।

४०६—सम्बोधन को वाक्य के एकदम प्रारम्भ में रखना चाहिए, जैसे, 'तात' क एष वाल. (दशकुमार० २।८) । 'सखे पुण्डरीक' नैतद् भवतोऽनुरूपम् (काद०) । 'आर्यपुत्र इयमस्मि' (शकु ० १) ।

४०७—विधेय (चाहे वह कृदन्तीय हो, चाहे तद्धिततीय हो) सर्वदा-वाक्य के अन्त में रक्खा जाता है, वाक्य के द्वारा विवादात्त भाव को वह पूर्ण कर देता है अतः उसका सर्वोत्तम स्थान अन्त में ही है ।

(क) वर्णनों में 'अस्' और 'भू' धातुएँ सबसे पहिले आती हैं,

'अस्ति' गोदावरीतीरे विशाल शाल्मलीतरु (हितोप०) ।

'अस्ति' मगधदेशशेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी (दशकुमार) ।

'अभूत्' अभूतपूर्वों राजा चिन्तामणिर्नाम (वासवदत्ता) ।

(ख) कभी कभी बल देने के लिए प्रभाव शान्ति बनाने के लिये—विधेय पहिले आता है

'भवेयु' तावत् प्राणादय पञ्च जना माध्यदिनानाम् (शङ्कर-भाष्य ३७१), 'आस्ताम्' तावत् सर्व मेवेदम् (काद), 'उत्सर्पिणी' खलु महतां प्रार्थना (शकु .७), 'कृत' त्वया रामसदृशं कर्म (उत्तर २), 'विरला,' हि तेषामुपदेष्टार (काद), 'भवितव्यमेव' तेन (उत्तर ४) ।

(ग) जब प्रश्नवाचक शब्द का प्रयोग नहीं होता तो प्रश्नवाचक वाक्यों में भी यही बात होती है, जैसे, जात 'अस्ति' ते माता 'स्मरसि' वा तातम् (उत्तर०४), 'स्मरसि' च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि (उत्तर १)

४०८—उपसर्ग धातुओं के पहिले जुड़े हुए रहते हैं वे कर्मप्रवचनीय की ही हैसियत से प्रयुक्त होते हैं, अकेले कभी भी नहीं प्रयुक्त होते। जब कभी भी प्रयुक्त होंगे तब धातुओं के पहिले जुड़कर। जब कर्मप्रवचनीय बनकर आते हैं तब तो जिस शब्द पर शासन करते हैं उसके अनन्तर प्रयुक्त होते हैं, जैसे, इति मन्दमतीन् 'प्रति' भायात् (श कर भाष्य) । अयोध्याम् 'अनु' जलानि वहति (रघु० १३ । ६१) ।

(क) सह, ऋते, विना, अलम् आदि शब्द सज्ञाओं अथवा सर्वनाम के पर शासन करते हैं, और प्रायः जिन शब्दों पर शासन करते हैं उनके

वाद में आते हैं, जैसे, रामेण सह, ईश्वरात् ऋते, मा बिना, सतोषाय अलम् आदि ।

४०६—संस्कृत में अव्ययो का क्षेत्र अंग्रेजी के क्रियाविशेषणों के क्षेत्र की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत है । अव्ययों में उन सभी शब्दों का समावेश है जिनका रूप नहीं चलता, जैसे, क्रियाविशेषण, स्थानबोधक, समुच्चय बोधक, तथा विस्मयादिबोधक । सजाओं तथा सर्वनामों की सभी विभक्तियों क्रिया विशेषण मानी जा सकती हैं, परन्तु प्रथमा तथा द्वितीया विभक्तियों को छोड़कर, क्योंकि ये विभक्तियाँ क्रिया के कर्ता और कम का काम करती हैं, तथा षष्ठो विभक्ति को भी छोड़कर, क्योंकि यह विभक्ति एक शब्द का दूसरे शब्द के साथ सम्बन्ध सूचित करती है । क्रियाविशेषणों की स्थिति के विषय में निम्नलिखित नियम कारक-विभक्तियों में भी लागू होंगे ।

४१०—कालवाचक, स्थानवाचक, प्रकारवाचक, कारणवाचक तथा परिणामवाचक क्रियाविशेषण अव्यय प्रायः उन शब्दों के समीप रखे जाते हैं जिनकी वे विशेषता बताते हैं —

हसधवलशयनतले निषण्णा पितरमपश्यम् (काद) — यहाँ 'तले' 'निषण्णा' की विशेषता बताता है, क्योंकि 'निषण्णाम्' का स्थान बताता है, इसलिए इसे 'निषण्णाम्' के पहिले ही रखना चाहिये ।

इसी प्रकार 'आलोकमात्रेणैव' (कारणवाची क्रियाविशेषण) अपगतश्रमो मन्सि (स्थानवाची क्रियाविशेषण) एवम् । प्रकारवाची क्रियाविशेषण) अकरोत् (काद) ।

'इति मनसावधार्य' अव्ययम् (काद) । तमवेक्ष्म (कालवाची क्रियाविशेषण) सा भृश रुरोद् (कुमार० ४ । २६) — यहाँ 'भृशम्' पहिले नहीं रखा जा सकता, क्योंकि पहिले रखने से अर्थ ही बदल जायगा ।

४११—जब क्रियाविशेषण शब्द विधेय की विशेषता बताते हैं तब

वे कर्ता के पहिले भी आ सकते हैं, कर्ता के बाद में भी आ सकते हैं अथवा यदि कोई कर्म हो तो कर्म के बाद भी, परन्तु अन्त में नहीं आ सकते,

अनेकवारम् (समय) अपरिश्रथम् (प्रकार) मा परिष्वजस्व (उत्तर ० ६), प्रजानामेव भूत्यर्थम् अभिप्राय) स ताभ्यो (स्थान) बलिमग्र-हीत् (रघु ० १। १८), सर्व सौदामिन्या (स्थान) सम्भाव्यते (मालती-माधव १)।

दारिद्र्याद् (कारण) हियम एत (मृच्छकटिक १)। हरिणा (कर्ता) असुरा तव शरव्य कृता (शकु ६)। शिवाभ्यो (अभिप्राय वस्तुतः तो अकथित कर्म) मासबलिपिडम् अनुदिन निशि (समय) समुत्स-सर्ज (काद)।

गुरौ भक्त्या मयि अनुकम्पया (कारण) च प्रीतास्मि (रघु ० ६३)।

विशेष—यदि कर्ता अथवा कर्म के कोई विशेषण शब्द हो तो दुबिधा मिटाने के लिए क्रियाविशेषण को कर्म के बाद में रखना चाहिए।

(क)भाववाचक उपवाक्य अथवा कालवाचक और कर्मा कभी कारण वाचक अव्यय हुआ करते हैं, इसलिये प्रायः पहिले रखे जाते हैं—

‘चन्द्रिकायामभिव्यक्तायां’ कि दीपिका गौनरुक्त्येन (विक्रमो ० ३)

‘युष्माकं प्रेक्षमाणानाम्’ एन स्मर्तव्यशेषं नयामि (वेणी ० ४)

विशेष—कालवाची तथा स्थानवाची क्रियाविशेषण अव्यय प्रायः समुच्चयबोधक अव्ययों के अत्यन्त सन्निकट, वाक्य के प्रारम्भ में रखे जाते हैं।

४।२—‘च’, ‘वा’, ‘तु’, ‘हि’, ‘चेत्’—ये कभी भी आदि में नहीं आते। ‘अथवा’, ‘अथ’, ‘अपिच’, ‘किंच’ प्रायः आदि में आते हैं। इतरेतर सम्बन्ध-बोधक-समुच्चय-वाची अव्यय, जैसे, यथा—यथा,

यावत्—तावत्, यद्—तद्, यत्—तत् जिन उपवाक्यों को जोड़ते हैं उनके प्रारम्भ में आते हैं। उदाहरण के लिए प्रासंगिक सेक्शनों को देखिए।

४१३—प्रश्न-वाचक शब्द वाक्य के प्रारम्भ में आते हैं,

(क) 'अपि', एतत्तपोऽनम्, 'अपि' कुशली ते गुरु, 'कथं' शास्त्राणां परिचय, 'कियद्' वा वय (काद-)।

'एव', 'नाम', 'किल', 'खलु', 'हि' आदि बल देने वाले शब्द जिन पर बल देते हैं उन्हीं से जोड़ दिए जाते हैं। 'इव', 'नु', 'अपि' जिन शब्दों की विशेषता बताते हैं उन्हीं के साथ आते हैं।

(ख) हा, हन्त, अहं आदि। वक्ष्याद-बोधक अव्यय तथा 'अहो' 'अये', 'अयि' सम्बोधन-सूचक शब्द प्रायः वाक्य के प्रारम्भ में आते हैं।

४१४—पुनरुक्त शब्द, अथवा किसी पूर्वप्रयुक्त शब्द का सजातीय शब्द जहाँ तक हो सके उसी शब्द के समोप रक्ता जाना चाहिये, जैसे, गुणा गुण वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः।

तृतीय सेक्शन

वाक्यों का सङ्श्लेषण

४१५—संस्कृत वाक्यों के विश्लेषण की व्याख्या करके और शब्दों के क्रम के विषय में कुछ नियम बनाकर, अब हम विद्यार्थी को एक पग और आगे ले चलेगे वाक्यों का संयुक्तीकरण।

विद्यार्थी ने पहिले ही देख लिया है कि किसी भी वाक्य में कम से

कम एक कर्ता और एक क्रिया होनी चाहिए, और यह भी देख लिया कि कर्ता अथवा कर्म का विस्तार विशेषण द्वारा, षष्ठ्यन्त सज्ञा शब्द द्वारा, समानाधिकरण सज्ञा द्वारा, समासों द्वारा, अथवा इन सब विधियों को एक में मिलाकर भी किया जा सकता है, और यह भी देखा कि क्रिया का विस्तार कालवाची, स्थानवाची, कारणवाची, तथा परिणामवाची परिस्थितियों से किया जा सकता है। अब उसे वाक्यों को जाड़ने का प्रयत्न करना चाहिए।

साधारण वाक्य

४१६—‘राम’ और ‘गम्’ शब्दों को ले लीजिए। इन दोनों को मिलाकर एक वाक्य बनाया जा सकता है—रामो जगाम। यह वाक्य—रामो जगाम—अपने प्रारम्भिक स्वरूप में है। कर्ता का विस्तार दो किया जा सकता है —

- (१) दशरथस्य पुत्र अथवा दशरथपुत्रो रामो जगाम,
- (२) कौसल्यानन्दवर्धन अखिलजनप्रियो दशरथपुत्रो आदि,
- (३) भरताग्रज कौसल्यानन्दवर्धन आदि आदि,
- (४) भरताग्रज कौसल्यानन्दवर्धन अखिलजनप्रियो दशरथ-पुत्रो राम ससीतालक्ष्मणो रम्याणि उपवनानि पश्यन् जगाम।

अब स्पष्टतया देखा जा सकता है कि किस प्रकार अन्तिम वाक्य दो साधारण शब्दों से अर्थात् राम और गम् से—प्रादुर्भूत हुआ है।

अभ्यास १

अर्जुन, हनुमत् गंगा, और हरि शब्दों को कर्ता बनाकर वाक्य बनाइए और क्रमशः उपर्युक्त विधि के अनुसार उनका विस्तार कीजिए।

अभ्यास २

रु, रच, पत्, रम्. धातुओं का विधेय के तौर पर प्रयोग करते हुए वाक्य बनाइए और किसी भी दो विधि के अनुसार कर्ता का विस्तार कीजिए ।

अभ्यास ३

इन शब्द-युग्मों को लीजिए और किसी षष्ठ्यन्त सज्ञा शब्द तथा विशेषण द्वारा कर्ता का विस्तार करते हुए वाक्य बनाइए ।

शुक्र—डी। अगना—या। सैनिक—युध् तथा हन् (कर्मवाच्य)।
भृत्य—तड् (कर्मवाच्य)।

अभ्यास ४-५

रावण सीता जह्वा—और सारमेयोऽन्नियत—इन वाक्यों को लीजिए और कर्ता का विस्तार सभी विधियों के अनुसार कीजिए ।

४१७—यदि क्रिया सकर्मक हो तो उसका कर्म देकर वाक्य पूरा किया जा सकता है। कर्म कारक सज्ञा अथवा सर्वनाम होता है, अतः कर्ता के समान कर्म का भी विस्तार किया जा सकता है, जैसे, अहं प्रासादमपश्यम्—यहाँ पर कर्म का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है ।

अहं विशाल प्रासादमपश्यम्। अहं वगाधिपस्य विशाल प्रासादमपश्यम्। अहं सौख्यनिकेतन नगरभूषणं च अनेकरक्षिपरिवृतं वगाधिपस्य विशाल प्रासादमपश्यम्।

उसी प्रकार “राजा अमात्य प्रोवाच” विस्तृत किए जाने पर राजा शास्त्राध्ययनकठोरवियम् अनुरजितसकलप्रजाजन सुरगुरो प्रत्यादेश स्वम् अमात्य प्रोवाच ।

कीजिए और कर्म का विस्तार कृदन्तीय विशेषण द्वारा करके विधेय को पूरा कीजिए ।

अभ्यास १२

छ. वाक्य बनाइए जिनमें कर्ता तथा कम दानों का विस्तार कृदन्तीय विशेषण तथा षष्ठ्यन्त सज्ञा अथवा सर्वनाम द्वारा हो ।

४१८—कालवाची, स्थानवाची, प्रकारवाची, कारणवाची तथा परिणामवाची पारस्थितियों से विधेय का विस्तार किया जा सकता है । “त्व यासि” इस वाक्य को लीजिए । विधेय का विस्तार इस प्रकार किया जा सकता है —

त्वम् अधुना यासि (काल) । त्वम् अधुना कुत्र यासि (काल-तथा स्थान) । त्वम् अधुना सत्वर कुत्र यासि (काल, स्थान तथा-प्रकार) । त्वम् अधुना सामदाहरणाय सत्वर किमिति पद्भ्यामेव यासि (काल, प्रकार, अभिप्राय, कारण) । त्वमधुना समिदाहरणाय गुरुमपृष्ट्वा सत्वर किमिति आदि यासि ।

इस प्रकार सखे मा प्रति पालय का विस्तार भिन्न भिन्न विधियों से किया जा सकता है —

सखे, विरचिताया प्रयाणसविधाया पितरावापृच्छ्य द्वारे क्षण मा प्रति पालय ।

स निशितेन शरेण व्याह्वारार्थं कमपि विलोलनेत्र हरिण शिशु नितवदेशे विव्याध ।

पश्यतोऽपि पितु त्व ह्य स्ववेश्मन निष्क्रम्य किकरेण सार्धम् अतिचटुलया गत्या कुत्र खलु अगच्छ ।

अभ्यास १३

निम्नलिखित वाक्यों में क्रियाओं में उपयुक्त कालवाची तथा प्रकारवाची क्रियाविशेषणात्मक विस्तार जोड़िए —

(१) विहगा डयन्ते (२) पुस्तकं वाचय (३) अहं गामानयम्
(४) गुरुननुरुध्यस्व (५) त्वया रुद्यते (६) आपण याति (७) सैनिका
युयुधिरे (८) कृषीवल. क्षेत्रमकृषत् (९) प्रमदा उद्यान जग्मु. (१०)
सपद् उद्यमम् अनुगच्छति ।

अभ्यास १४

निम्नलिखित क्रियाविशेषणात्मक विस्तारों का प्रयोग करते हुए वाक्य
बनाइए जिनमे कर्ता का विस्तार दो से अधिक विधियों के अनुसार किया
गया हो —

सहसा बार बार, त्रान् सवत्सरान्, सपदि, कदा, पुनः, कल्या-
णाय पूर्वं (अनादन के साथ) तजानीम्, प्रत्यनलम्, प्रतिदिनम्,
उपनाद, द्विक्रोश, रात्रिद्विम् ।

अभ्यास १५

निम्नलिखित का प्रयोग करत हुए वाक्य बनाइए जिनमे कर्ता का
विस्तार एक विशेषण द्वारा तथा पठ्यन्त सज्ञा या सर्वनाम द्वारा हो —

सेनया सह, श्रमाद् ऋते, अनेन हेतुना, कस्य हेतो, भिन्न
सान्त्वयितुम्, जठरस्यार्थे, अपवादश्रवणात्, तथानुष्ठिते, पाठम-
धीत्य, गृहस्थोपरि, मामतरेण, दुर्देवात्, अरण्ये, प्रबलवेदनया ।
अनुगमम् ।

अभ्यास १६

निम्नलिखित शब्द-युग्मों का लेकर क्रिया का विस्तार बालवाची
तथा स्थानवाची क्रिया-विशेषणात्मक विस्तारों द्वारा कीजिए —

मुनि — वस् । राजन् रक्ष । पुत्र — सेव । कोकिल — नाव + रु । हरि
— क्रुध् । शिष्य — प्र + नम् ।

अभ्यास १७

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करते हुए तथा विवेक का प्रकार

वाची, कारणवाची तथा परिणामवाची क्रियाविशेषणों द्वारा विस्तार करते हुए वाक्य बनाइए —

मृ, प्र+या, प्र+स्था, मृज् उत्त + वह्, याच् पा (रक्षा करना), स्निह्, ईश्, अधि + इ ।

अभ्यास १८

निम्नलिखित कर्तृपदों क लेकर क्त्वान्त अथवा ल्यबन्त द्वारा क्रिया का विस्तार कीजिए :—

मृगा, नर, देवा, अमो, राक्षसै (कर्तृपद), भीमः, सामानिकाः, दूत, अधिराजः, अश्वत्थाम, सुभद्रा, यवनाः ।

अभ्यास १९

निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग करते हुए भाववाचक वाक्यांश द्वारा क्रिया का विस्तार कीजिए —भाष्, दह्, प्रच्छ्, कृ (कान्त), स्पृह्, वद्, हन् (कान्त), पठ्, सम् + मन्त्र्, या ।

अभ्यास २०

कालवाची, प्रकारवाची तथा निम्नलिखित धातुओं को तुमुनन्त बनाकर क्रिया का विस्तार कीजिए —

बन्ध्, कथ्, चुद्, शास्, जर्, स्तु, ग्रह्, आ + दा, वि + श्वस्, उग्र + आस्, सू, परि + नी ।

अभ्यास २१

बारह वाक्य बनाइए जिनमें क्रिया का विस्तार कानवाची, स्थानवाची प्रकारवाची, कारणवाची, तथा परिणामवाची, क्रियाविशेषणवाक्यांशों द्वारा हो ।

४१६—जब क्रिया के साथ-साथ कर्ता और कर्म का भी विस्तार हुआ रहता है तब वाक्य अपने पूर्णतम स्वरूप में दृष्टि में आता है । “रविरुदगच्छत्” साधारणतम स्वरूप वाला वाक्य है । कर्ता और क्रिया का विस्तार करके इस प्रकार का वाक्य हो सकता है :—

अरुणपुर.सरो रवि. तमोजालं निरस्य जनक्रियाप्रवृत्तये प्राच्यां दिशि भटिति उदगच्छत् ।

इसी प्रकार 'स पदवीमन्वयात्'—यह वाक्य विस्तृत होकर इस प्रकार हो सकता है—गुरुभिरुपदिष्ट स प्रथमे वयसि वर्तमानोऽपि संसाराद् उद्विजमान अनेकयतिप्रतिपन्ना परमसुखदायिनी साधुपदवीं निवारयतोऽपि पितु पारत्रिकसुखावाप्तये प्रशान्तचेतसा अन्वयात् ।

इसी प्रकार “पांथ. भुजग ददर्श” विस्तृत किए जाने पर इस प्रकार हो सकता है,—

अथ असौ पांथ. ग्रामांतरं गच्छन् अध्वश्रमार्तं कथमपि पदानि न्यस्यन् अनाक्रान्ते एवार्धपथे काचत् बृहत्कायं प्रसारितफणं श्याम-देहं भुजगं यदृच्छया तरुतले ददर्श ।

अन्य उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

इति परिकलय्य किंचिदुन्नमितकन्धरो भयचक्रिया दृशा दिशोवलोक्य तृणेऽपि चलति पुनः प्रतिनिवृत्तं तमेव पदे पदे पाप-कारिणम् उत्प्रेक्षमाणो निष्क्रम्य तस्मात् तमालतरुमूलात् सलिल-समीपम् उयसतुं प्रयत्नकरवम् (काद) ।

अनुबध्यमानश्च तथा तां सर्वाम् अतिथिसपर्याम् अतिदूरावनतेन शिरसा सप्रश्रयं प्रतिजग्राह (काद) ।

किनिमित्ता वा अनेकसिद्धसाध्यसबाधानि सुरलोकसुलभान्य-पहाय दिव्याश्रमपदानि एकाकिनी वनमिदममानुषमधिवसति (काद.) ।

अभ्यास २२

छ' वाक्य बनाइए जिनमें कर्ता तथा क्रिया दोनों का विस्तार सभी विधियों से रहे । निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग कीजिए —
धाव प्रकाश, उत्, + स्था, पत, आस्, भ्रम्, ।

अभ्यास २३

छ' वाक्य बनाइये जिनमें क्रिया और कर्म का विस्तार रहे । निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग कीजिए .—

भृ, स्तु, मन्, वृह्, चि, विद् ।

अभ्यास २४

छ' वाक्य बनाइये जिनमें कर्ता, क्रिया तथा कर्म का विस्तार एक से अधिक विधि के अनुसार रहे ।

४२०—साधारण वाक्यों में अर्थ को बिना बदले हुए क्रिया के वाच्य का परिवर्तन करके शब्दों का रूपान्तर किया जा सकता है । दासी पुष्पाण्यनयत् इस वाक्य का वही अर्थ है जो दास्या पुष्पाणि आनीयन्त का है ।

कभी कभी वाक्यांश बदलकर शब्दों का रूपान्तर किया जा सकता है, कस्माद् हेतोरत्र निवससि, पिता सपुत्रो ग्राम गत; इन वाक्यों का वही अर्थ है जो किमर्थमत्र निवससि और पिता पुत्रेण सह (अथवा सहित) ग्राम गत. का है ।

परन्तु संस्कृत में हम एक ही भाव को भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा प्रकट कर किसी भी वाक्य के शब्दों का रूपान्तर कर सकते हैं । उद्यमात् विभवः प्रभवति—इस वाक्य को लीजिए । अर्थ को बदले बिना यह वाक्य निम्नलिखित ढंगों से अनेकधा प्रकट किया जा सकता है:—

उद्यमाद् विभव उत्पद्यते-संजायते

उद्यमो विभवाय कल्पते-भवति-जायते

उद्यमप्रभवो विभवः

उद्यमेन नरो विभव याति-विभवयुनो भवति

उद्यमी नरो विभवस पन्नो भवति

उद्यममवलम्ब्य नरो विभवं याति

उद्यमपरेण नरेण (प्रायः) विभवयुतेन भाव्यम्

उद्यमबीजाद् विभवाकुर प्ररोहति

अभ्यास २५

उपर्युक्त वाक्य के आदर्श पर निम्नलिखित वाक्या को भिन्न भिन्न प्रकार से प्रकट कीजिए :—

(१) निर्धनता सर्वापदामास्पदम् (२) अस्य क्रोध सनिमित्त
(३) मूर्खाणामुपदेशः प्रकोपाय भवति (४) अविवेकः आपदां पर
पदम् (५) न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते (६) विद्वान् सर्वत्र पूज्यते
(७) देवपरा नरा विनश्यन्ति (८) सुतो लालनाद् विनश्यति (९)
त्वमेव न परमा गतिः (१०) पराभवोऽपि मानिनाम् उत्सव एव ।

मिश्रित वाक्य

४२१—मिश्रित वाक्य को देखने से यह स्पष्ट हो है कि उसमें एक प्रधान कथन होता है और कम से कम एक आश्रित कथन । प्रधान उप-वाक्य स्वतंत्र हुआ करता है, और आश्रित उपवाक्य बनावट में प्रधान के ऊपर आश्रित रहते हैं । इस प्रकार इस वाक्य को लीजिए—दूतों राज्ञों वार्ता न्यवेदयत् ।

यह साधारण वाक्य है । तीन प्रकार के आश्रित उपवाक्यों में से कोई एक भी जोड़कर यह मिश्रित बनाया जा सकता है ।

सामता महाराजमभिद्रोग्धुम् अहर्निश यतन्ते इति वार्ता दूतों राज्ञे न्यवेदयत् (सज्ञा उपवाक्य) ।

यः पौरजानपदानपसपितु प्रयुक्त . स दूत .

(विशेषण उपवाक्य) ।

काले उपायश्चिन्त्येतेति हेतोः दूत आदि ।

(क्रियाविशेषण उपवाक्य) ।

४२२—अब मिश्रित वाक्य बनाने के लिए कुछ अभ्यास दिए जायेंगे ।
आश्रित वाक्य बनाने के लिए जो शब्द प्रयोग में लाए जाते हैं वे पृष्ठ ३४२पर सेक्शन ३६० के चक्र में दिखाए गए हैं । उन शब्दों को इस अवसर पर देख लेना चाहिए ।

अभ्यास २६—२८

पाँच वाक्य बनाइए जिनमें सज्ञा उपवाक्य (१) कर्ता अथवा कर्म बने (२) प्रधान उपवाक्य के कर्ता अथवा कर्म का समानाधिकरण हो, अथवा (३) प्रधान उपवाक्य में स्थित किसी शब्द का कर्म बने ।

अभ्यास २६

निम्नलिखित में से प्रत्येक के विषय में एक मिश्रित वाक्य बनाइए,
सुवर्णकार, गुरु, विद्या, सुशिष्य, बाजीनृप, शिवराज,

अभ्यास ३०

चार मिश्रित वाक्य बनाइए जिनमें विशेषण उपवाक्य क्रमशः कर्ता, कर्म, किसी क्रिया-विशेषणात्मकविस्तार की, और कर्ता, कर्म या क्रिया के किसी विस्तार की विशेषता बतावे ।

अभ्यास ३१—३४

छ मिश्रित वाक्य बनाइए जिनमें (१) कालवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य हो (२) स्थानवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य हो (३) प्रकारवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य हो (४) कारणवाची, दशावाची, अभिप्रायवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य हो । निम्नलिखित धातुओं का प्रयोग कीजिए --

स्वन्, उप + स्था, हन् लभ्, पत्, आ + राध् (प्रेरणार्थक) ।

अभ्यास ३५

छः मिश्रित वाक्य बनाइए जिनमें क्रमशः कालवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य, स्थानवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य, सादृश्यवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य, प्रकारवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य, परिणामवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य तथा दशावाची क्रियाविशेषण उपवाक्य आवे ।

४२३—ऐसे मिश्रित वाक्यों का अभ्यास दिया जा चुका जिनमें एक प्रकार का आश्रित उपवाक्य प्रयुक्त था । अब ऐसे वाक्य लिए जायेंगे जिनमें दो या दो से अधिक प्रकार के आश्रित उपवाक्य आवेंगे । इस वाक्य को लीजिए “वृषल. समाज्ञापयति ।” य एष क्षपणको जीवसिद्धि. नाम राक्षसप्रयुक्तो विषकन्यया प्रवर्तक घातितवान् स एकमेव दोष प्रख्याप्य सनिकार नगरात् निर्वास्यताम् इति (मुद्रा०१) ।”

यहाँ ‘समाज्ञापयति’ का कर्म “स एकमेव दोष प्रख्याप्य सनिकारं नगरात् निर्वास्यताम् इति” यह उपवाक्य है । इस उपवाक्य के कर्ता की विशेषता एक विशेषण उपवाक्य कर रहा है, वह विशेषण उपवाक्य यह है, “य एष क्षपणको जीवसिद्धिः नाम राक्षसप्रयुक्तो विषकन्यया प्रवर्तक घातितवान्” ।

इसी प्रकार “यदैव मयाय देवस्य उज्जयिनीगमनवृत्तान्तो निवेदित. तदैव सनिर्वेदमेव मेतदित्युक्त्वा उत्थाय महाश्वेता पुनस्तपसे स्वमाश्रमपदमाजगाम” इस वाक्य में प्रधान क्रिया की विशेषता एक कालवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य कर रहा है, वह कालवाची क्रियाविशेषण उपवाक्य यह है “यदैव मयाय देवस्य उज्जयिनीगमनवृत्तान्तो निवेदित” और इसके एक विस्तार के साथ एक सहा उपवाक्य जुड़ा हुआ है (उक्त्वा का कर्म एवमेतत् है) ।

इस प्रकार एक ही मिश्रित वाक्य में दो या दो से अधिक प्रकार के आश्रित उपवाक्य जोड़े जा सकते हैं, यदा अतितृष्णा नराणां हृदये पदं करोत तदा ते यदीश्वरेणात्मने स्थित्यनुरूपं दत्तं तेनापरितुष्टाः सन्तः ततोधिकतरमीहमाना यत्तु सुखेन मोक्षं शक्यं तृष्णातिरेकात् प्रायो हापयन्ताति असकृद् वयमस्मिन् जगति प्रतीम इति मिश्रित वाक्य में एक क्रियाविशेषण उपवाक्य यह है—यदा करोति जो “हापयति” की विशेषता बताता है, दो विशेषण उपवाक्य हैं (१) यत् दत्तम् और (२) यत् शक्यम् और एक सज्ञा उपवाक्य है “तत्ते हापयन्ति” ।

अभ्यास ३६—४०

पाँच मिश्रित वाक्य बनाइए, जिनमें प्रत्येक में (१) एक विशेषण उपवाक्य और एक सज्ञा उपवाक्य हो (२) एक क्रिया-विशेषण उपवाक्य और एक विशेषण उपवाक्य हो (३) एक सज्ञा उपवाक्य और एक क्रिया-विशेषण उपवाक्य हो (४) एक क्रिया-विशेषण उपवाक्य और एक सज्ञा उपवाक्य हो, और इनमें से प्रत्येक की विशेषता एक विशेषण उपवाक्य करे (५) तीनों उपवाक्य साथ साथ प्रयुक्त हो ।

सयुक्त वाक्य

४२४—सयुक्त वाक्य में दो या दो से अधिक प्रवाचन कथन रहते हैं । ये कथन सब के सब माधारण अथवा मिश्रित, या साधारण और मिश्रित मिले हुए हो सकते हैं ।

एक साधारण वाक्य लीजिए “यात्रिक काशोमगच्छत् ।” इसको सयुक्त वाक्य में परिवर्तित करने के लिए हम इस प्रकार कह सकते हैं —

(१) यात्रिक काशोमगच्छत्, गगायाः पावने सलिलेऽस्नात्, सकलानि च तत्रत्यानि तीर्थानि दृष्ट्वा स्वग्रामं न्यर्तत ।

(२) यात्रिकः काशीमगच्छत् किन्तु गंगासलिले स्नानार्थमवती-
शः केनचित् महानक्रेण सहसा गृहीत्वाऽभक्ष्यत ।

(३) यात्रिकः काशीमगच्छत् ते तात्मानं परिपूतं मेने ।

यहाँ पर सयुक्त वाक्यों के भिन्न-भिन्न अंश साधारण वाक्य के स्वरूप में
हैं । आवश्यकता पड़ने पर वे मिश्रित बनाए जा सकते हैं ।

उपर्युक्त जो द्वितीय वाक्य है उसे लीजिये—

यात्रिक काशीमगच्छत् किन्तु यावन् स्नानार्थं गंगासलिलेऽव-
तरति तावत् केनचित् महानक्रेण सहसा गृहीत्वा भक्षित ।

यहाँ द्वितीय अंश मिश्रित वाक्य है और पहिला अंश साधारण वाक्य
है, जो मिश्रित वाक्य बनाया जा सकता है—

श्री विश्वेश्वरदर्शनेनात्मानं निर्धनैतकल्मष करोमीति यदा गाढा-
भिलाषो मनसि पदं चकार तदा स यात्रिक आदि आदि ।

अभ्यास ४१—४२

ऊपर के आदर्श पर (१) पाँच सयुक्त वाक्य बनाइये जिनके अंग
साधारण वाक्य रहे (२) पाँच सयुक्त वाक्य बनाइये जिनके अंग मिश्रित
वाक्य हों ।

एक सयुक्त वाक्य लिखिये जिसमें निम्नलिखित में से प्रत्येक का वर्णन
हो :—

(१) वर्षाकाल (२) पारणनि (३) अराजको जनपद (४) राजधर्मः
(५) धनम् (६) कालिदास

४२५ - संस्कृत में बहुव्रीहि तथा तत्पुरुष समासों द्वारा बहुत से
साधारण वाक्य एक वाक्य में जोड़े जा सकते हैं। इस प्रकार जो नया वाक्य
बनेगा वह या तो साधारण वाक्य होगा या मिश्रित या सयुक्त ।

एकदा सा गम्भीरध्वनि शुश्राव । तदाकर्ण्य तस्याः कुतूहलमुप-

जातम् । अतः सा तस्या दिशि दृष्टिं प्रेरितवती महान्तं च शबर-
गणं ददर्श ।

इन सब वाक्यों को मिलाकर एक साधारण वाक्य इस प्रकार बनाया जा सकता है—

एकदा श्रुते गंभीरे ध्वनौ सा तदाकर्णनोपजातकुतूहला तद्विशिष्ट-
प्रेरितदृष्टिं महान्तं शबरगणं ददर्श ।

इसी प्रकार अथैकदा राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनमियाय । तं तस्य
सैनिका अमात्याश्चानुजग्मुः । वने स बहून् मृगान् जघान । तेषु एकं
मृगं पलायमानमनुससार । मार्गं दिव्याश्रमपदं ददर्श ।

ये वाक्य एक मिश्रित वाक्य में इस प्रकार जोड़े जा सकते हैं —

सैनिकैरमात्यैश्चानुगतो यदैकदा राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनमि-
याय तदा स तत्र बहून् मृगान् हत्वा तेष्वेकं मृगं पलायमानमनुसरन्
मार्गं दिव्याश्रमपदं ददर्श ।

अथवा इससे भी अधिक सक्षिप्त इस प्रकार किया जा सकता है.—
ससैनिकामात्यो राजा दुष्यन्तो मृगयार्थं वनं गत बहून् मृगान्
आदि आदि ।

अभ्यास ४४

निम्नलिखित वाक्यसमूहों का जोड़कर एक साधारण अथवा मिश्रित
अथवा संयुक्त वाक्य बनाइये ।

(१) एव महाश्वेता आहार परिसमाप्य सभ्योचिताचारा-
न्निवर्तयामास । पश्चात्सा एकास्मिन् शिलातले विश्रब्धमुपाविशत् ।
तथा स्थिता ता चद्रापीडो निभृतमुपससार मुहूर्तमिव स्थित्वा च तां
स सविनयमवादीत् ।

(२) तस्मिन् दिव्याश्रमपदे दुष्यत कामपि कन्यकामपश्यत् । सा

कन्या चारुसर्वाङ्गी आसीत् । स कण्वमुनेराश्रमः । तं राजा प्रावि-
शत् । तदा तत्सत्कारार्थं शकुन्तला आश्रमाद्वहिराजगाम ।
शकुन्तला कण्वस्य कृतिका दुहितासीत् । सा सप्रश्रयं दुष्यंत
स्वागतं व्याजहार ।

(३) पेशवे इति ख्याताना महाराष्ट्राधिकारिणां मध्ये चरमो
बाजीराज इत्युक्तो बभूव । स पुण्यपत्तनमधितष्ठो । स किल
बहुगुणोपपन्न आसीत् । किंतु तस्य राजकार्यावेक्षणविषयेऽतीव
मंदोदर आसीत् । अतः कर्मसचिवस्थाने बहवो नर्मसचिवा
एव तं पर्यावारयन् । तैस्तस्य मनो विषयभोगेषु सुतरामाकृष्यत ।
एव कामाधीने राजनि तच्छदानुवर्तिनि चामात्यगणे महा-
राष्ट्रदेशोऽनायासेनैव रघ्रान्वेषणदक्षाणां शत्रूणामभिपत्ता गतः ।

४२६—ऊपर बता दिया गया है कि कतिपय दिए हुए वाक्यों को
जोड़ कर किस प्रकार एक वाक्य बनाया जा सकता है । अब यह बताया
जायगा कि किसी दिए हुए वाक्य को किस प्रकार भिन्न भिन्न वाक्यों में
तोड़ना चाहिए । इससे विद्यार्थी को किसी भाँति दिए हुए मौलिक संस्कृत वाक्य
की टीका संस्कृत में ही करने का अच्छा अभ्यास प्राप्त हो जायगा ।
इस प्रणाली से टीका करने के कार्य में बड़ी सुविधा प्राप्त हो जायगी ।
यदि दिए हुए वाक्य को भिन्न भिन्न वाक्यों में तोड़कर विद्यार्थी मौलिक
शब्दों के स्थान पर अन्य पर्यायवाची शब्द रख दे तो मानो उसने उस
वाक्य का स्वतंत्र अनुवाद कर दिया ।

उदाहरणार्थ यह श्लोक लीजिए—गुणदोषौ बुधो गृह्णन्निदुःखे-
डाविवेश्वरः । शिरसा श्लाघते पूर्वं परं नटे नियच्छति ।

यह श्लोक भिन्न भिन्न वाक्यों द्वारा इस प्रकार प्रकट किया जा
सकता है :—

शिव इन्दुं विष च द्वे अपि स्वीकरोति, किंतु इन्दुं शिरोधार-

एतत्पूर्वकं प्रशंसति विष च स्वकण्ठे नियच्छति । एव प्राज्ञो नरः
कस्यचिन्नरस्य गुण दोषमुभावपि गृह्णाति । किन्तु गुण ग्रीवान्दो-
लनापूर्वकं श्लाघते, दोष तु स्वकण्ठे नियम्य तन्नाममात्रमपि
विलोपयति ।

वस्तुतः यह मौलिक श्लोक को स्वतन्त्र टीका है, पर इससे अर्थ पूर्ण-
तया स्पष्ट हो जाता है । एक दूसरा वाक्य लोजिएः—

सग्रामनिर्विघ्नसहस्रबाहुरष्टादशद्वापनिखातयूप ।
अनन्यसाधारणराजशब्दो बभूव योगो किल कार्तवीर्य ॥

यह श्लोक निम्न लिखित प्रकार से कई वाक्यों में तोड़ा जा सकता है:

पुरा किल कार्तवीर्यो नाम यागो समजायत । तस्य युद्धेषु
(एव) बाहुसहस्र परैरनुभूतम् (अन्यत्र स द्विभुज एव) । तेन
अष्टादशसु द्वीपेषु यज्ञस्तम्भा स्थापिता । तथा च तस्य राजशब्दो
नान्यसामान्य आसीत् । इस प्रकार

श्रुतिमुन्नम गीतध्वनिं श्रुत्वा सजातकुतूहलो ध्वनिप्रभवजिज्ञासया
कृतगमनबुद्धिं वृत्तपर्याणम् इन्द्रायुवमारुह्य प्रियगीतैः प्रथमप्रस्थितैः
वनहरिणैरुपदिश्यमानवर्त्मानं पश्चिमया सरस्तोरवनलोखया निमित्ती-
कृत्य तं गीतध्वनिमभिप्रेतस्थे—इस वाक्य का विस्तार निम्नलिखित
विधि से किया जा सकता है—

यदा म सुवश्रव गीतशब्दमशृणोत् तदा सजातकुतूहल
तत्प्रभवमुपलब्धुः स ऐच्छत् । तदनुरोधात् गमनाय मति विधाय
इन्द्रायुधपृष्ठे पर्याणं समारोह्य तमारुह । तन्मार्गोपदेशाय इव
सदाप्रियगीतरवा, वनहरिणा तस्मात् पूर्वमेव तदभिप्रेतां दिश
प्रस्थिता । ताननुसरन् स पश्चिमेन सरस्तोरप्रान्तेन तं गीतध्वनिम्
उद्दिश्य ययौ ।

ऊपर दिए हुए उदाहरणों की शैली के अनुसार तथा सेक्शन ४२० की सहायता से विद्यार्थी संस्कृत-लेखकों की कृतियों से वाक्यों को लेकर उनकी टीका कर सकत है।

चतुर्थ सेक्शन

पत्र-लेखन

४२७—पत्र लेखन के विषय में संस्कृत लेखकों ने बहुत व्यान नहीं दिया। जितने संस्कृत ग्रन्थ विद्यमान हैं उनमें पत्रों के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं, क्योंकि हमारे पूर्वज पत्रलेखन-प्रणाली का अधिक आश्रय नहीं लेते थे। अतएव संस्कृत में पत्रलेखन में वे कठिनाइयाँ नहीं आती जो प्रायः अंग्रेजी में आती हैं, क्योंकि अंग्रेजी में विविध प्रकार के पत्र चलते हैं—वैयक्तिक, व्यापारिक, राजकीय, आदि आदि। अंग्रेजी में कुछ निश्चित विधियाँ होती हैं जिनके अनुसार पत्र प्रारम्भ किए जाते हैं। सम्बोधित व्यक्ति का स्थिति के अनुसार पत्रों के इन स्वरूपों में भी वैभिन्न्य होता है। इस अन्तर के अतिरिक्त दूसरी कोई भी ऐसी बात नहीं रहती जिसमें यह पहिचाना जा सके कि अमुक वैयक्तिक पत्र है (पिता का पत्र पुत्र को), अमुक राजकाय पत्र है (अमात्य का ओर से राजा को) अथवा अमुक पत्र किसी अन्य प्रकार का है (एक व्यक्ति की ओर से अन्य व्यक्ति को)। संस्कृत में पत्रलेखन का जो बहुत प्रचलित विधियों हैं वे उदाहरणपूर्वक इस सेक्शन में दी जायेंगी।

४२८—पहिले दो उदाहरण दिए जायेंगे, तदनन्तर विद्यार्थी से कहा जावेगा कि पत्र के विवरण का अध्ययन करे.—

(१) स्वस्ति । महेन्द्रद्वीपात् परशुरामो लकायाम् अमात्यं माल्यवन्तमभ्यर्हयति । अत्रैव परममाहेश्वर लकेश्वरम् अभिनन्द्य ब्रवीति । विदितमेतद् वो यदस्माभि दण्डकारण्यतीर्थोपासकेभ्यः तपोधनेभ्य प्रतिज्ञातमभयम् । तत्र विराध-दनु कबन्ध प्रभृतयः केप्यभिचरन्तीति श्रुतम् । तत् तान् प्रतिषिध्य सद्बृत्तिम् अस्मद्धिता च माहेश्वरप्रीतिमनुरुध्यतां भवंत ।

ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये ।

जामदग्न्यश्च वो मित्रमन्यथा दुर्मनायते ॥ इति ।

(२) और भी अधिक अर्वाचीन प्रणाली का नमूना यह है —

स्वस्ति । श्रीमन् सस्कृताद्यनेकविद्याविनयविराजमाना राजमान्याः श्रीयुतगोखले उपनामधारिण कृष्णरावाख्या शतशः साष्टांगप्रणाम-पुरस्सर विज्ञाप्यन्ते । यत् काशीतो भवदर्थे आनीतस्य मानवधर्म-शास्त्रग्रन्थस्य वार्ताहरदेयभागेन महित मूल्य सार्धदशरूपकपरि-मितमिमा पत्रिका भवद्धस्त प्रापयतो गोविदस्य हस्ते दीयतामिति एषा विज्ञप्ति ।

पुण्य पक्षने
मार्गशीर्षसुदि १८०७ सवत्सरे
१५

पटवर्धनकुलोत्पन्नस्य
हरिसूनोर्नारायणस्य

४२६—अब विद्यार्थी को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए —

(१) प्रत्येक पत्र “स्वस्ति” शब्द से प्रारम्भ होता है ।

(२) जिस स्थान से पत्र लिखा जाता है उस स्थान का उल्लेख पहिले किया जाता है, और पंचमी विभक्ति में रक्खा जाता है । इस पंचमी विभक्त्यन्त शब्द का अन्वय प्रधान क्रिया के साथ रहता है ।

कभी कभी उस स्थान का उल्लेख अन्त में किया जाता है और सप्तमी में रक्खा जाता है जैसा कि ऊपर दिए हुए उदाहरण न० २ में है।

(३) सम्बोधन का शब्द प्रत्यक्ष प्रकट नहीं किया जाता। प्रत्युत तत् तत् सम्बन्धों को सूचित करने वाले किसी शब्द द्वारा प्रकट कर दिया जाता है, जैसे, 'आयुष्मन्' शब्द किसी छोटे सम्बन्धी के लिए प्रयुक्त होता है। 'मित्र' शब्द मित्रता का सम्बन्ध सूचित करने के लिए प्रयोग में आता है।

(४) लेखक का नाम अन्त में नहीं लिखा जाता, बल्कि प्रारम्भ में आता है, और आदि वाक्य का कर्ता बनाकर रक्खा जाता है। सम्बन्ध की घनिष्ठता की मात्रा प्रथम वाक्य की क्रिया में प्रकट की जाती है ('अभ्यर्हयति' का अर्थ है "श्रद्धाजलि अर्पण करना है" जिसका अर्थ यह हुआ कि लेखक सम्बोधित व्यक्ति का मित्र है। 'विज्ञाप्यन्ते' से यह प्रकट होता है कि लेखक और सम्बोधित व्यक्ति में केवल साधारण परिचय मात्र है। 'परिष्वज्य दर्शयति' से प्रकट होता है कि लेखक सम्बोधित व्यक्ति का निकट सम्बन्धी है, जैसे पिता, प्रति आदि)।

विशेष—अर्वाचीन पत्रों में लेखक का नाम अन्त में आता है और षष्ठी विभक्ति में रक्खा जाता है (जैसा कि ऊपर के उदाहरण न० २ के पत्र में है)। इस षष्ठ्यन्त शब्द का सम्बन्ध 'विज्ञप्ति' 'प्रार्थना' या इसी प्रकार के अन्य शब्द से रहता है। ध्यान रहे कि यह शैली अधिक लोकोपचारपूर्ण है, और उसी दशा में काम में लाई जानी चाहिए जब कि लेखक सम्बोधित व्यक्ति को न जानता हो, अथवा सम्बोधित व्यक्ति से परिचित न हो।

(५) पत्र का प्रारम्भ प्रथम पुरुष में हुआ करता है, यद्यपि पत्र के मध्य भाग में दूसरे पुरुष भी आ सकते हैं।

(६) सम्बोधित व्यक्ति का जो नाम कभी कभी अंग्रेजी में कागज के बाएँ कोने पर अन्त में लिखा जाता है और लिफाफे के ऊपर पूरा पूरा लिखा जाता है—यही नाम संस्कृत में लेखक के निवास-स्थान के सहित आदि वाक्य में दिया जाता है, और किया का कर्ता अथवा कर्म बना कर (जैसा कि ऊपर के उदाहरण न० २ में है), अथवा उसके साथ किसी अन्य प्रकार से सम्बद्ध करके रखा जाता है। यही पत्र का पता कहलाता है।

(७) संस्कृत में पत्र लिखने की तारीख नहीं दी जाती। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उस क्रिया का क्रियाविशेषणात्मक विस्तार बनाकर सप्तमी विभक्ति में या पत्र के बाएँ कोने में अन्त में रखते हैं जैसे, शुभानुसंवत्सरे वैशाखवदि १३ भौमे।

४३०—सविधा के लिए पत्र दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं—

(१) घरेलू पत्र—वे हैं जो किसी कुटुम्ब के भिन्न भिन्न प्राणियों के बीच में लिखे जाते हैं।

(२) अन्य पत्र—वे हैं जो मित्र द्वारा मित्र के पास, शिष्य द्वारा आचार्य के पास, अमात्य द्वारा राजा के पास, अथवा एक व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्ति के पास भेजा जाता है। इन्हें हम “विविध पत्र” के नाम से सम्बोधित करेंगे।

१—घरेलू पत्र

४३१—पिता द्वारा पुत्र के पास भेजे हुए, बड़े द्वारा छोटे के पास भेजे हुए, अथवा पति द्वारा पत्नी के पास भेजे हुए पत्रों में सम्बन्ध की घनिष्ठता की मात्रा “स्नेहात् परिष्वज्य,” “उत्तमागे चुम्बन” “मस्नेह-मालिग्य” आदि आदि से प्रकट की जाती है।

यहाँ पर कुछ उदाहरण दिए जायेंगे —

(क) पिता की ओर से पुत्र को

स्वस्ति । यज्ञशरणात्सेनापति पुष्पमित्रो वैदिशस्थ पुत्रमायु-
ष्मतममित्रिभिरस्नेहात्परिष्वज्य अनुदर्शयति । विदितमस्तु । योसौ
राजसूययज्ञे दीक्षितेन मया राजपुत्रशतपरिवृत वसुमित्र गोप्तारमा-
दिभ्य निरर्गलस्तुरगो विसृष्ट स सिधोर्दान्त्यारोधसि चरन्नश्वानीकेन
यवनानां प्रार्थित । तत उभयो सेनयोर्महानासीत्समर्द्ध । किंतु
वसुमित्रेण प्रसह्य द्वियमाणो मे वाजिराजो निवर्तित । सोहमिदानीं
पौत्रेण प्रत्याहृताश्वो यक्ष्ये । तदिदानीमकालहीनं विगतरोषचेतसा
भवता वधूजनेन सह यज्ञसदृशनायागतव्यमिति ।

(ख) स्वस्ति । उज्जयिनीत परममाहेश्वरो महाराजाविराजो
देवस्तारापीड सर्वसपदामायतन चद्रापीडमुत्तमांगं चुम्बन्नदयति ।
कुशलिन्य प्रजा । किंतु कियानपि कालो भवतो दृष्टस्य । बलवदु-
त्कंठित नो हृदयम् । देवी च सहात पुरैस्तांनिमुपनीता । अतो
लेखवाचनविरतिरेव प्रयाणकालता नेतव्येति ।

(ग) और भी आधुनिक ढंग का पत्र निम्नलिखित प्रकार का
होगा—

स्वस्ति । पचवटीतो गोविंद्शर्मा पुण्यपत्तने पुत्र विश्वनाथ
(अथवा आयुष्मत विश्वनाथ) सोत्कंठ सस्नेह निर्भरमालिङ्ग्य कुशलं
वार्तयति यथा । कार्यं च । कुशलमिहास्माक सर्वेषाम् । भवदीया
कुशलवती वार्ता सर्वदा प्रहेया । अद्यैव भवदर्थेऽस्मन्मित्रस्त्व
परशुरामस्य हस्ते विशतो रूपका दत्ता । तेषां विनियोग कथं कृत्वा
इति यथावसर निवेदनीयमिति ।

शके १८०७ मार्गशोर्षवदि १४ भौमेऽहनि ।

४३२—पिता अपने पुत्र को, बड़ा अपने छोटे को, तथा बड़ा
सम्बन्धी अपने छोटे सम्बन्धी को अबोनिर्दिष्ट ढंग से पत्र लिखेगा—

स्वस्ति । श्रीमच्चिरजीविषु अमुकशर्मसु प्राणाधिकतरेषु अमुकस्य (पितु, भ्रातु आदि जैसा भी हो) सस्नेहा आशिषः कोटिश स्फुरतु । विदितमस्तु आदि

स्वस्ति। अमुकस्थानात् अमुकस्थानवासिन चिरजीविनम् अथवा आयुष्मतम् अमुकशर्माणम् अमुकशर्मा सस्नेहमाशीःसहस्रपूर्वकं कुशलं वार्तयति, अथवा सोत्कठं सस्नेहं समालिङ्ग्य कुशलं वार्तयति यथा । आदि,

(क) पति की ओर से पत्नी को

स्वस्ति । अमुकस्थाने पालितपरमपतिव्रतागुणा सौभाग्यशालिनीं भार्याममुकानाम्नीम् अमुक. सस्नेहं समालिङ्ग्य कुशलं वार्तयति यथा । कार्यं च । कुशलमिहास्माकम् । तत्रत्यसमस्तमानुषाणां कुशल-वती वार्ता प्रहेया । अथवा एवगुणासु प्राणेभ्योपि प्रियतरासु नितांतालिंगनपूर्वकस्नेहसमूहा आदि ।

४३३—जब छोटा अपने बड़े को अथवा पत्नी अपने पति को पत्र लिखे तो इस ढंग से लिखे—

१—पुत्र की ओर से पिता को —

(१) स्वस्ति । अमुकस्थाने अनेकगुणालंकृतस्नेहगुणभूषितपुत्र-वत्सलपूज्यपितृपादारविद्वान् अमुकस्थानात्सदा विनीतः सुत (अथवा सदाज्ञाविधायी पितृभक्तितत्पर सुत) अमुको महाभक्त्या सबहुमान क्लिततलनिहितमौलिना साष्टांगं प्रणम्य सविनय विज्ञापयति ।
× × × सर्वाभ्यो मातृप्रभृतिभ्यो मदीय. प्रणमो वाच्यः ।
कार्यादिकं च सदादेष्टव्यमिति ।

(२) स्वस्ति। श्रीमत्पितृचरणेषु अकिञ्चित्करकिकरस्य सुतस्य (कभी कभी मम) बद्धकरसपुट प्रणतिततिसहस्रमजस्रम् । कार्यं च इत्यादि

(३) स्वस्ति श्रीजन्मकर्मार्थ्यज्ञेषु जनकेष्वितः॥

स्नेहार्द्रभावसहिता स्फुरन्तु नतयः परा॥

टिप्पणी—जब छोटा भाई बड़े भाई को अथवा पुत्र अपनी माता को पत्र लिखे तो उसे आवश्यक परिवर्तन कर देना चाहिए ।

२—पत्नी की ओर से पति को —

स्वस्ति । यथास्थाने सकलपूज्यतमगुणगणालंकृतभर्तुं पादान् (कभी कभी नाम दे दिया जाता है) अमुकस्थानात्सदाज्ञाविधायिनी अमुका पतिसेवातत्परा कठाम्लेष पूर्वक सस्नेहं सोत्कठ सचिनयं प्रणम्य विज्ञापयति यथा । कार्यं च ।

२—विविध

४३४—अब हम “विविध” वर्ग वाले पत्रों का लेंगे । मित्र को लिखत समय लोग प्रायः सम्मानद्योतक शब्दों का प्रयोग करते हैं जैसे, अमुकम् अर्हयति, अभिनन्दयति, अभिनन्द्य ब्रवीति, सस्नेहम् अनुदर्शयति, प्रणतिपुरःसरं निवेदयति इत्यादि ।

इस प्रकार के एक पत्र का उदाहरण पहिले ही दे दिया गया है (उदाहरण न० १ देखिए) । मित्र को पत्र लिखते समय विद्यार्थी उस पत्र को नमूना मान सकता है ।

नाचे कुछ नमूने दिए जाते हैं—

(१) स्वस्ति। यथा स्थाने विद्वत्त्वदाक्षिण्यौदार्यादिगुणालंकृतशरीरं परमप्रेमनिधानं, वयस्यम् अमुकम् अमुकस्थानादमुकः सोत्कठ सस्नेहं गाढमालिग्य कुशल वार्तयति यथा । कार्यं च ।

(२) स्वस्ति । अस्मदेकाश्रयीभूतेषु विद्याविनयादिमण्डितेषु पूज्यतमेषु अमुकस्थाननिवासिषु अमुकशर्मसु अमुकस्थानवासिनः अमुकस्य प्रणतिसहस्रमजस्रम् ।

४३५—अपरिचित लोग निम्नलिखित सामान्य ढंग को काम में ला सकते हैं —

स्वस्ति । अमुकस्थाननिवासी अमुकनामक श्रीमत सकलविद्या-
वदातचेतसः अमुकान् अनेकप्रणामपूर्वक विज्ञापयति । अथवा अमु-
का एवगुणोपेता अमुकेन प्रणामपुर सर विज्ञाप्यन्ते निवेद्यते वा
अथवा श्रीमताम् अमुकनाम्ना—समक्ष (सनिधौ)अमुकस्थानवासिनः
अमुकनाम्नः सविनया विज्ञप्ति । इत्यादि

इस नमूने के ढंग पर किसी भी पुस्तक-प्रणेत्या को पत्र लिखकर
प्रार्थना की जा सकता है कि अमुक पुस्तक की एक प्रति डाक के द्वारा
भेज दे ।

स्वस्ति । आंग्लभौमगीर्वाणादिभाषासु परा प्रतिष्ठा गता
कलिकातानगरस्थमहापाठशालाधिकृता श्रीतर्करत्नवागीशाख्या
प्रणामपुर सर विज्ञाप्यन्ते । यत् भवत्प्रणीतम् अलंकारदर्पणाख्य
ग्रंथम् अधिकृत्य काचित् विज्ञप्तिपत्रिका मया मित्रहस्ते अद्य दृष्टा ।
तदवलोकनेन तं ग्रंथं क्रेतुं मन्मनसि बलवतीच्छा प्रादुर्भवति ।
तदनुरोधात् राजशासनपत्रद्वारेण वार्ताहरभागसहित मूल्य
सार्धचतुष्टयरूपकम् इत् प्रेषितम् । तद्यावच्छक्य सत्वर तद्ग्रंथस्य
प्रेषणेनानुग्राह्यमात्मानमिच्छामि । ग्रंथश्च निम्नलिखितबाह्यनामा
प्रेषणाय इति विज्ञप्ति ।

पुण्यपत्तने संस्कृतपाठशालायाम् } अभ्यंकरोपनामकस्य गोविन्दसूनो
संवत् १९३५ श्रावनवदी ११शनौ } रामशास्त्रिणः

टिप्पणी—इन सभी पत्रों में प्रायः सम्बोधित व्यक्ति के कुशल के
लिए भगवान् से या किसी देव या देवी से प्रार्थना कर दी जाती है । यह
अन्त में रक्खी जाती है, इस प्रकार—शमिह भावत्कं भव्यमनदिन-
मेधमानमाशास्महे अथवा अत्यन्त संक्षेपत इति शम् ।

४१६—विद्यार्थी अपने अध्यापक को इस प्रकार लिखेगा —

स्वस्ति । अमुकस्थाने 'अनेकतीर्थावगाहनपवित्रीकृतमानसान् परमाराध्यपरमपूज्यश्रीगोविदाचार्यपादारविद्वान् अमुकस्थानात्सद्दादेशवर्ती अमुरुनामक परमभक्त्या क्षितितर्लानहितमौलिना साष्टांग प्रणम्य सविनयं विज्ञापयति, अथवा एवंगुणोपेता श्रीमदुपाध्यायपादा भक्तित्परेण अमुकनाम्ना शिष्येण सविनयप्रणामपूर्वकं विज्ञाप्यन्ते, इति विज्ञप्ति अमुकशर्मण इत्यादि ।

इस ढंग के अनुसार विद्यार्थी बीमारी की छुट्टी के लिए अध्यापक को इस प्रकार लिख सकता है —

स्वस्ति । सकलविद्यावगाहनविशदीकृतमानसा परमपूज्या गोपालरावाख्या अनेकप्रणामपूर्वकं सविनयं विज्ञाप्यन्ते । यन्मम गेहेद्य मातापितराबुभावपि ज्वरपीडितौ सतौ शय्याप्रस्तौ । तौ तथा परित्यज्य पाठशालां गतुं नाहमुत्सहे । मामपि च बलवती शिरोबाधा पीडयति । अत अद्य मम अनुपस्थिति मर्षयितुमर्हति आचार्यपादा इति सविनया विज्ञापना सदाभवदादेशवर्तिनः शिष्यस्य,

ख्रिस्ताब्दे दशममासस्य द्वादश वासरे } कालेकुलोत्पन्नस्य गोविन्द-
१८८५ } सूनीहरेः

४३७—कुछ और नमूने देकर इस सेक्शन की ममाति की जाती है ।
("स्वस्ति" प्रत्येक नमूने में प्रयुक्त किया जा सकता है) ।

(१) मंत्री अथवा अन्य राज-पुरुष की तरफ से राजा को —

श्रीसमस्तसामंतसेनानिर्वाहकेषु परोपकारसत्कारनिपुणेषु निज-कीर्तिधवलितदिगतरेषु महाराजाधिराजचरणेषु, आदेशवर्तिनो

महाराजकिकरस्य समस्ताशीराशी महस्रमजस्रम् अथवा 'का' 'णा',
'रा:', 'णाः आशी सहस्रपूर्वक निवेद्यन्ते, अथवा अमुकस्थाने देव
विनयनतशिरा. अमुक पादद्वद्वारविदे भक्त्या मूर्ध्नि अजलि
रचयति । कार्यं च लिख्यते इत्यादि ।

(२) बड़े की तरफ से छोटे को —

अमुकस्थानात् अमकः अमुकस्थाने अमुक सप्रसाद समादिशति
यथा (कार्यं च) इत्यादि

(३) छोटे की तरफ से बड़े को .—

पूज्यपरमाराध्यस्वामि अमुकपादान् अमुकस्थानात्सदादेशकारी
अमुक. साष्टाणप्रणामपूर्वक विज्ञापयति ।

(४) सन्यासी को

श्रीमत्परमहंसपरिब्राजकाचार्यदेवभूदेवनरदेवपूजितेषु श्रीपादेषु
अमुकस्य प्रपचविस्मरणपूर्वक नारायणस्मरणप्रणामसहस्र-
मजस्र विज्ञप्तिश्च ।

४३८—अब हम विद्यार्थी से कहेंगे कि ऊपर के पृष्ठों में दिए हुए
नियमों के अनुसार कतिपय पत्र लिखें। इन नियमों का अनुसरण करने
से वह किसी भी प्रकार का पत्र किसी भी हैसियत से लिख सकता है।
लेख्य विषय में पर्याप्त वैभिन्न्य मिलेगा, परन्तु ऊपर दी हुई विधियों
प्रायः काम दे जायगी ।

अभ्यास ४५—५२

१—अपने पिता को एक पत्र लिखिए जिसमें यह दिखाइए कि आप ने
पाठशाला में अपने अध्ययन में क्या प्रगति की ।

२—पिता की ओर से पुत्र के पास एक पत्र लिखिए, जिसमें यह

दिखलाइए कि आप उसके पास कुछ पुस्तकें तथा उपहार भेज रहे हैं

-अपने मित्र के पास एक पत्र लिखिए, जिसमें यह प्रार्थना कीजिए कि अमुक प्रीतिभोज में अथवा अमुक धार्मिक उत्सव के अवसर पर आकर दर्शन दीजिए ।

-एक पुस्तक-विक्रेता के पास पत्र लिखिए, जिसमें उससे प्रार्थना कीजिए कि अमुक अमुक पुस्तकों की आपको आवश्यकता है, अतः उन्हें शीघ्र भेजिए ।

-अपने गुरु को एक पत्र लिखिए जिसमें यह दिखलाइए कि अमुक अमुक गृह-कार्य के कारण आप पाठशाला में उपस्थित न हो सकेगे, अतः अमुक अवधि तक के लिए अवकाश प्रदान किया जाय ।

-किसी मित्र को पत्र लिखिए जिसमें उससे यह प्रार्थना कीजिये कि मेरे लिए कुछ आर्थिक सहायता भेज दीजिए ।

-अपने सहपाठी को एक पत्र लिखिए जिसमें यह प्रार्थना कीजिए कि अपनी संस्कृत व्याकरण की पुस्तक कुछ दिनों के लिए उधार दे दीजिए ।

-किसी पाठशाला के प्रधानाध्यापक की ओर से ज़िले के शिक्षाधीश के पास कतिपय सहकारी अध्यापक माँगते हुए एक पत्र लिखिए ।

कठिन शब्दों की व्याख्या

प्रथम पाठ

विदूषक के विषयमें पुरुरवा द्वारा कथित, जबकि उसने चन्द्रमा की उपमा मोदक से दी। प्रत्येक दशा में भोजन ही भुक्खड आदमी का उपयुक्त क्षेत्र हुआ करता है' अर्थात् उसके रूपक और उसकी उपमाएँ भी भोजन-विषयक होती हैं।

‘निश्चयपूर्वक कोन व्यक्ति यह विश्वास कर सकता है कि यह खो वही है’,—इसकी मुखाकृति में ऐसा घोर परिवर्तन हो गया है।

“अर्थपति”—व्यक्तिवाचक सज्ञा (कुवेर), इसका अर्थ है—मानों विमर्दक अर्थपति का बाह्य जीवन है, वह उसे अपने प्राणों के समान प्यारा समझता है, वे—प्राण जो ‘अन्तश्चरा’ हैं।

एक प्रश्न, ‘क्या पांडव लोग भयोत्पादक वस्तु हैं’।

भाम सहदेव से कहते हैं “न तो मेरे सुयोग्य भ्राता (धर्म), न अर्जुन, न तुम ही, कारण हो।” मम शिशोरेव सुभ्र जैसे बच्चे ही का।

द्वितीय हृदयम्—दूसरा हृदय, तू मेरे अस्तित्व (जीवन) का अंश-भूत है।

निस्तेजा —तेजहीन, साहसहीन, तथा अग्निरहित, दाहशक्ति रहित। यह भस्मचय में भी अग्नित है, जो बहुत बड़ा होते हुए भी सरलता से ही पाँव तले रौंदा जाता है क्योंकि उसमें आग नहीं रहती।

आहितलक्षणः— काकुत्स्थ’ ऐसा नाम रक्खा गया, ‘काकुत्स्थ’

इस नाम से विख्यात हुआ, अथवा (अमरकोशानुसार 'अपने सद्गुणों के कारण प्रसिद्ध') ।

‘जो मेरे ही समान मेरे मन की दूसरी गॉठ है ।’ कामन्दकी द्वारा मालती से कहा गया है जब कामन्दकी ने उससे यह बताया कि माधव कौन था ।

पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य — अपनी अन्तिम अवस्था में वर्तमान जिसकी अवस्था काफी बड़ी हो चुकी थी ।

शुक्रमादाय — अपने साथ एक सुग्गा लिए हुए । आश्चर्यभूत — आश्चर्य की वस्तु । इति कृत्वा — ऐसा विचार कर, इस विचार से ।
देवपादमूलमागता — श्रीमान् के चरणों में आई ।

गर्भस्थस्यैव — जब कि वह गर्भ ही में रहता है, तभी, अर्थात् ये पाँचों उसके साथ साथ पैदा होते हैं ।

भूपते. — भूपतिना, केवल तीन वस्तुएँ उसके द्वारा नहीं दी जा सकती थी क्योंकि वे राजत्व के आवश्यक लक्षण थी ।

इस पंक्ति का अर्थ यह है कि यद्यपि सम्पत्ति तथा विद्या (सरस्वती) के प्रकृत्या भिन्न भिन्न स्थान (स्थितियाँ) होते हैं तथापि इस राजा में वे साथ-साथ रहती हैं । लक्ष्मी और सरस्वती का साथ साथ निवास बड़ा दुर्लभ हुआ करता है, पर इस राजा में दोनों का साथ-साथ निवास पाया जाता है । एकसंस्थम् — एका संस्था यस्य ।

व्यतिकरितदिगन्ता — जिन्होंने दिगन्तों (दिशाओं के अन्तों) को व्याप्त कर रक्खा है । दिशाम् अन्ताः इति दिगन्ताः ।
सुकृतविलसितानाम् स्थानमूर्जस्वलानाम् — जो उत्तम कार्यों के ज़बर्दस्त विलासों (प्रदर्शनों) के घर हैं अर्थात् जिन्होंने अनेक पुण्य कार्य किए हैं ।

द्वितीय पाठ

चन्द्रसरोरक्षका — चन्द्र-सरोवर का रक्षा करने वाले, अर्थात् खरगोश ।

जिसके ऊपर राजा अपनी आँखें अधिक लगाता है अर्थात् जो औरों की अपेक्षा अधिक प्रियतर दृष्टि से देखा जाता है ।

इसका अर्थ यह है 'राक्षस तुम्हारे बाणों के लिए उपयुक्त निशाने हैं, इसलिए अपने धनुष का इनके ऊपर झुकाओ ।'

उन्नी प्रकार राजा और मागधो (सुदक्षिणा) जो कि उनके (शिव तथा उमा और इन्द्र तथा शची) के समान थे अपने पुत्र से प्रसन्न थे जो कि उनके समान था (अर्थात् कार्तिकेय और जयन्त के समान था) ।

बहु मन्यते—माना जाता है, बड़े सम्मान की दृष्टि से माना जाता है । आशानिवन्धन जाता जीवलोक्त्य—मारे संसार पर की आशा का बन्धन हो गया । श्री सीता जी के कहने का तात्पर्य यह है—“वस्तुतः वह स्त्री धन्य है जिसने मेरे स्वामी का मनोरंजन करके लोगों की आशाओं को अपने ऊपर केन्द्रित करा लिया है ।”

पृथ्वी के कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीसीता जी को स्वर्गने भेजे राम इन विचारों से ज़रा भी प्रेरित नहीं हुए थे, जिनमें एक के भी अनुसार श्रीराम जी के विरुद्ध निर्णय हो सकता था ।

दूषण, खर, त्रिमूर्धा—राम द्वारा मारे गए हुए राक्षसों के नाम हैं ।

वस्तुतः उसका जीना मृत्यु है, और उसके लिए मृत्यु विश्राम है, अर्थात् इस प्रकार के मनुष्य का अस्तित्व जीती जागती हुई मौत है, बल्कि सदा मौत उसके लिए विश्राम है ।

यह सन्देहात्मक पक्ति है । इसका अर्थ यह मालूम पड़ता

हे “जो हृष तथा विषाद दोनों में उपयुक्त वस्तु बन सकता है वह दुर्लभ है” अर्थात् सम्पत्ति तथा विपत्ति के दिनों में मित्र के अतिरिक्त कोई भी साथ नहीं दे सकता। ये चान्छे सुहृद् समृद्धिसमये द्रव्याभिलाषाकुला ते सर्वत्र मिलन्ति - इसकी तुलना सैम्सन एगो निस्ट्रस की उक्ति से कीजिये-“सम्पत्ति के दिनों में वे लोग झुण्ड के झुण्ड इकट्ठा हो जाते हैं, विपत्ति के दिनों में, वे अपना मुँह छिग लेते हैं, खोजने पर भी नहीं मिलते।” तत्त्वनिकषप्राप्ता तु तेषां विपत्तः—परन्तु विपत्ति उनके तत्त्व को पहिचानने की कसौटी है (जिस पर उनका वास्तविक चरित्र परखा जा सकता है)।

हिंसाशून्यम्—क्षतिरहित, किसी को कष्ट पहुँचाए बिना प्राप्त। “अशनम्” का अन्वय “व्यालानां समाप्तिं प्रयान्ति” के साथ होगा—“नष्ट हो जाते हैं, क्षीण हो जाते हैं” “जीविका उपार्जन करने के प्रयत्न में बिल्कुल क्षीण हो जाते हैं”।

भगवान् विष्णु के प्रति सम्बोधित है “हमारे शब्द आप की महिमा का वर्णन करके बन्द हो जाते हैं—यह या तो हमारी क्षीणता (थकावट) के कारण हो जाता है, अथवा वर्णन करने की असमर्थता के कारण, न कि इस कारण कि आप के गुणों का अन्त हो चुका।”

तृतीय पाठ

विन्दूत्क्षेपान्—चक्र करती हुई पहिये के द्वारा ऊपर की तरफ फेंकी हुई जलकी बूँदे।

प्रियवता के कहने का तात्पर्य यह है—दुष्यन्त के अतिरिक्त उस स्त्री का जीवन कौन बचा सकता है जिसने गाढ़े प्रेम के लक्षण प्रदर्शित किये हैं।

प्रावृषा सभृतश्रीः—जिसकी शोभा वर्षा ऋतु के कारण बढ़ जाती है।

कृतकार्य—वनम् का विषय है। इसका अर्थ हुआ “जिसका मनोरथ सिद्ध हो चुका है।” “यद्” कम है “अध्यास्ते” का।

अधिष्ठाय—नेता अथवा सचालक होकर; पथप्रदर्शक होकर।

“अग्नी” का सम्बन्ध है “वह्नयः कलृप्तधिष्ण्याः” से। “कलृप्त-धिष्ण्या.” का अर्थ है “जिसके स्थान नियत कर दिये गए हैं”।

मण्डप की लम्बान चौड़ान दा। शतमध्यर्द्ध—एक सौ पचास।

रघुप्रतिनिधि.—रघु के प्रतिनिधि अर्थात् अज। कामदेव के समान नात्यावस्था के अतिारक्त किसी भी अवस्था को धारण कर।

सम्प्राति आवसत्—हाल ही में रह चुका है।

वह उसके बाद सोता था और प्रातः काल उसके जागने पर जागता था “अयं जन.” का सम्बन्ध साधारणतया वक्ता से हुआ करता है। दुष्यन्त कहने का तात्पर्य है “इस व्यक्ति ने (अर्थात् मैंने) एक बार उससे अर्थात् हृषपदिका से प्रेम किया, इसी कारण रानी वसुमती के सम्बन्ध में मुझे बहुत कड़े कड़े व्यंग्य सुनने पड़े हैं।

वोष विवक्षता त्वया—दोष को कहने की इच्छा करने वाले आप के द्वारा।

क्रियान्तरान्तरायमन्तरेण—आपके अन्य कर्तव्यों में विघ्न पहुँचाए बिना, अर्थात् ऐसे समय पर जब कि आप को दूसरा कुछ भी काम न करना रहे।

कल्पितशस्त्रगर्भम् जिसके अन्दरूनी भाग में शस्त्र तैयार करके रखे हुए थे।

चतुरस्रयानम् एक ऐसी सवारी जिसमें चार कोने हो अर्थात् बालकी। चतस्रः अस्त्रयो यस्य तत्।

मञ्जान्तराजमार्गम्—वह राजमार्ग जो कि मत्तों की पक्तियों से बना हुआ था।

ऋतृप्रविवाहवेषा — विवाह के वेष में सजी हुई ,

कष्टसश्रया — दुःखों से भरा हुआ ।

यत्—चकि । इसका अर्थ यह है कि पागल कुत्ते के जहर के समान सीता-विषयक यह बदनामी हर जगह फैल गई है, यद्यपि बड़े बड़े अद्भुत उपायों द्वारा यह हटाई जा चुकी थी ।

प्रियासहचर — मेरी प्रिया की साथी अर्थात् मेरी प्रिया के साथ ।

गोदावरीपरिसरस्य—जिसके समीप गोदावरी नदी है ।

दृष्टानखलागलप्रहरण — जिसके अस्त्र उसके दाँत, पजे, और दम हैं । वृष्णा छिनत्ति—प्यास बुझाता है ।

अज्ञातशत्रु — जिसका कोई शत्रु ही नहीं था । लिखितैरिव—चित्र में खिचे हुए से, मानों हम लोग चित्र थे जिसमें हिलने डुलने तथा बदना लेने की शक्ति नहीं हुआ करती ।

जलानि या तीरनिखातयूपा वहल्ययोध्यामनुराजधानीम्—सरयू नदी जिसके तट पर यशस्तम्भ बने हुए हैं, अयोध्या राजधानी के बगल से अपना जल बहाती है ।

वाच्यदर्शनात्—निन्दा को देख कर । नृपति सन्—राजा होता हुआ ।

चतुर्थ पाठ

अचिरप्रवृत्तोपदेशम्—जिसमें उपदेश को प्रारम्भ हुए बहुत दिन नहीं बीते हैं, चूँकि हाल हा में वह अपने स्वामी के हाथों में सौंपी गई थी । कीदृशी मालविका—मालविका का क्या हाल है ? उसने कितनी निपुणता प्राप्त कर ली है ?

सुख प्रष्टुम्—यह पूछने के लिए कि उसका क्या हाल है ।

पृथूपदिष्टाम्—महाराज पृथु द्वारा बताया, हुई ।

इन्द्र द्वारा उद्दिष्ट कार्य के सम्बन्ध में जो अपनी शक्ति दिखा चुका था, जो उद्दिष्ट कार्य को करने की क्षमता सिद्ध कर चुका था ।

सोऽहम्—इसलिए मैं ।

जब कौत्स ने देखा कि रघु ने कुबेर से आकाश से सम्पत्ति (निधि) की वर्षा करवाई है तब उसने कहा था—वृत्ते स्थितस्य—(राजाओं के) कर्तव्य में लगे हुए के । मनीषितम्—आकाश ने भी अपने अभिलषित अनारथ को प्रदान किया है ।

ज्येष्ठा—हिमवान् की बड़ी कन्या । त्रिपथगा—तीन मार्गों से बहने वाली आकाश, पृथ्वी और पाताल ।

राज्याश्रममुनिम्—वह राजा जो राज्यरूपी आश्रम में मुनि के तल्य था ।

काकपत्नधरम्—जिसके धुंधराले बाल थे अर्थात् जो अभी बिल्कुल बालक था ।

तेजसाम् हि न वयं समीक्ष्यते—जो तेजयुक्त होते हैं उनके विषय में उम्र नहीं देखा जाती । भर्तृहार जी के न खलु वयस्तेजसो हेतु ” से तुलना कीजिए ।

कृपयाविष्टम्—कृपा की भावना से भरे हुए को ।

यहाँ पर शरद् ऋतु की उपमा एक ऐसे दूत से की गई है जो अपने मित्र (गंगा जी) को स्वामी (अर्थात् समुद्र) के पास पूर्णतया प्रसन्न चित्तवृत्ति की दशा में (अत्यन्त शुद्ध जल वाली गंगा-पद्म में) बड़ी कठिनाइयों को पार करके उन गंगा जी को ठीक रास्ते पर लाया है (गंगा पद्म में-नदी को उसके सामान्य मार्ग पर लाकर), जो दुबला पड़ गया है (जो गंगा जी मार्ग में सकीर्ण हो गई हैं), जो स्वामी से क्रुद्ध हो गया है क्योंकि स्वामी ने बहुत सी पत्नियाँ रख ली

हैं (गंगा पक्ष में—जिसका जल वर्षाऋतु में गँदला हो जाता है चूँकि समुद्र भी नदी रूपी बहुत सी पत्नियाँ रख लेता है)।

मम वचनात्—मेरे कहने से। पूर्वाभाष्यम्—जो लोग प्राय विपत्तिग्रस्त गहा करते हैं उनके बातचीत करने का यही एकमात्र ढंग है।

स—राम। याचमान शिव सुरान्—देवताओं से आशीर्वाद माँगता हुआ। देवताओं से सोता जी के कल्याण की प्रार्थना करता हुआ।

यथास्थित सर्वम्—सभी गते जैसी थी वेशा ही हैं। भिन्नमाणो वन प्रियाम्—अपना पत्नी के बारे में जगल से पूछता हुआ।

प्राणान् दुहन्निवात्मानम्—मानों अपने शरीर में मे प्राणों को निचोड़ते हुए उसने शोक को अपने मस्तिष्क में सीमित रख्खा अर्थात् वह जीवन से निराश हो गया, इस में हृदय में दुखी था।

“आ यत्र तापसान्”—अनुमान भिडाता है। “आ” का अर्थ हुआ करता है “हाँ”, शायद ऐसा ही हो।”

पंचम पाठ

अनाययत् अर्थात् हारीत, जब उसने सुगों को उस निस्सहाय अवस्था में देवा। मुक्तप्रयत्नम्—जिम्ने प्रयत्न करना (छुटपटाना) बन्द कर दिया था।

येन असत्यमन्धे जने सखी पद कारिता—जिसने मेरी सखी को उस असत्य प्रतिज्ञ पुरुष में विश्वास करवाया।

आसन प्रतिप्राहित—तुम्हने (गुरुओं का) आसन दोबाया गया।

धात्रीकर्म वस्तुतः परिगृह्य—डाई के कर्तव्य में लेकर अन्य सभी कार्यों का भार लेकर यानी जो कार्य दाइयाँ करती हैं वह सब काम करता

हुआ । कदाचित् यह वाक्य यो पढ़ा जा सकता है । 'धात्रीकमे वस्तुतः परिगृह्य'—दाई के कर्तव्यों का भार वस्तुतः लेकर ।

वृत्तचूडौ—जिनका चूडाकर्म (मु डन सस्कार) हो चुका था ।
त्रयीवर्जम्—तीनों वेदों को छोड़कर ।

तौ दपती बहु विलाप्य शिशोः प्रहर्त्रा शल्य निखातमुदहारयता मुरस्तः—विलाप करके वे दोनों (स्त्री पुरुष) अपने शिशु के बव करने वाले से छाती में गड़े हुए बाण को निकलवाने लगे ।

सागं च वेदमध्याय—अगो-समेत वेद पढ़ाकर । अग छू है—
शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, और ज्योतिष ।

उत्क्रान्तरैश्वर्यौ—जो अपनी शैशवावस्था पार कर चुके थे ।
कविप्रथमपद्धतिम्—कवियों का पहिला मार्ग, जिसने पहिले पहिले कवियों का रास्ता दिखाया । वह श्री वाल्मीकिजी "आद्य कवि" हैं अतः उनके लिए उक्त विशेषण दिया गया है ।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

भावेन—श्रीमान् जी के द्वारा, इसका सकेत सूत्रधार की तरफ है
रजनीतिमिरावगुण्ठिते पुरमार्गे घनशब्दविकृता इत्यादि
शिवद्वारा कामदेव के भस्म कर दिए जान पर रति द्वारा कहा गया है
"रात्रि क अन्धकार में आच्छादित" ।

ता कुलप्रतिष्ठा कुलदेवताभ्यः प्रणमय—जो अपने कुल की शक्ति अथवा पेमवत्ती ऐसी उस कथा से कुलदेवताओं को प्रणाम करवा कर । कारयितव्यदत्ता—जो कुछ (दूधों से) कराया जाना चाहिए उसको भला भौंति जानती हुई । सतीना पादग्रहणमकारयत्—उससे स्त्री स्त्रियों के चरण पकड़वाए ।

उत्सवसकेतान्—एक जातिविशेष के लोगो का नाम है ।
ज्यौह्वहरणम्—अपनी बिजय की घोषणा

अथानाथा प्रकृतयः—दशरथकी मृत्यु के बाद । अनाथा—राजा के मर जाने के कारण स्वामी से हीन ।

त्व रक्षसा भीरु यतोऽपनीता—राम ने सीता से कहा है । रक्षसा—रावण द्वारा

गुणानुरक्तामनुरक्तसाधन कुलाभिमानि कुनजा नरनाधिप — इत्यादि द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा है—अपने उन्मुख सभी साधनों को रखने वाला, तथा अपने कुल पर गर्व करने वाला, तुम्हारे अतिरिक्त कौन सा राजा, गुणों के कारण पति में अनुरक्त रहने वाली तथा उच्चकुल में पैदा हुई पत्नी-तुल्य सम्पत्ति को दूसरे से हरण करवा लेगा । क इव—सम्भवतः कौन सा ?

य पयो दोग्धि पापाण स रामात् भूतिमाप्नुयात् इत्यादि ये चार पक्तियाँ तथा आगे की दो पक्तियाँ रावण ने सीता जी से कही हैं । रावण सीता जी का वित्त अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न कर रहा था । इन पक्तियों का अर्थ है “जो पुरुष पत्थर में से दूध निकालता है वहीं श्रीरामजी से भूति (ऐश्वर्य) प्राप्त कर सकता है ।” कहने का तात्पर्य यह है कि “यह विलकुल असम्भव है”

बोधयन्त हिताहितम्—जो तुम्हें हितकर तथा अहितकर बातें समझा रहा है ।

कि विलाषयसे—मुझे क्यों उवाड़ा बातचीत करवाले हो ?

आज्ञा कारय रक्षोभिर्मा प्रियास्थुपहारय । क शक्रेण कृत नेच्छेदधिमूर्धानमजलिम्—मुझसे और रक्षकों से प्रिय लगने वाले कार्य करादिये । सिर पर हाथ लगाकर आर अञ्जलि जोड़कर इन्द्र द्वारा किष्ट नष्ट हुए ब्रह्म का वीन न चाहें, अर्थात् मुझसे इरादा गया हुआ इन्द्र जिस प्रकार मुझे ब्रह्म करता है, उसी प्रकार मेरी प्यारी को (ब्रह्मको) भी

प्रणाम करेगा । मूर्धानमधिगतः अथवा अविगतो मूर्धा येन तमवि-
मूर्धानम् ।

एनम् अर्थात् राम रत्नोगणं क्षिप्तुम्—राक्षसों के समूह का नष्ट
करने के लिए । गार्धिसुत—विश्वामित्र ।

छठवाँ पाठ

अधरोत्तरव्यक्तिर्भविष्यति—यह स्पष्ट हो जायगा कि कौन छोटा
है, कौन बड़ा है ।

अहम् अयम्—गणदास, जिसने हरदत्त के विषय में राजा से
शिकायत की ।

शापितामि मम लवणिकावलोकितयोर्जीवितेन यदि वाचा न
कथयसि—यदि तुम इसे वाणी द्वारा नहीं कहोगे तो मैं तुम्हें अपने प्राणों
की शपथ दिलाता हूँ । जब मालती मावव के प्रश्नों का उत्तर केवल
सिर हिलाकर देता था तब मावव ने यह बात कही थी । जरद्विड
धामरु—बुढ़ा द्रविड सन्यासी “इच्छया” का अन्वय “निमृष्टैः”
के साथ होगा । इसका अर्थ है “स्वेच्छानुसार” “अस्मितम्” का
अन्वय “मनोरथम्” के साथ होगा । इसका अर्थ है “चाहा हुआ,
चाहिये” ।

कि बहुना—हुत कहने में क्या लाभ ? अर्थात् सन्तपन ।

स्वहृदयेनापि विदितवृत्तान्तेनामुना जिह्वेभि—चूँकि मेरा हृदय
सारा वृत्तान्त जान गया है इसलिए मैं उससे अपने हृदय में लजित हूँ ।

दूरीकृता खलु गुणैरुद्यतलता वनलताभि—गुणों से, वनलताओं
से वनलताओं को बहुत ज्यादा मात कर दिया है । अर्थात्
अन्य प्राकृतिक प्रकृति सबसे अधिक अलङ्कृत कर देता है ।

शरीरस्याङ्ग सप्रभूपणा—जब भी लक्षणा सम्भवती या उस समय

उनकी जो दशा थी उसका वर्णन है। मुदाक्षिणा अपने सारे आभूषणों को नहीं पहिने हुए थी बल्कि थोड़े से अत्यन्त आवश्यक आभूषणों को पहिने हुए थी—जैसे, मङ्गलसूत्र कङ्कण इत्यादि। मुखेन—मुखेन उपलक्षिता। तनुप्रकाशेन—धुंधले प्रकाश वाले (चन्द्रमा) से। विचेयतारका—ऐसी रात्रि जिसमें सितारों को खोजना पड़ता है, क्योंकि वे प्रभातकाल में बहुत कम रहने हैं।

मर्त्येषु असंमूढ — तमाम मनुष्यों में जो मूढ़ नहीं है वही मुझे जानता है।

अकथ्यमाने—अर्थात् पुण्डरीकवृत्तान्ते।

अवधूतप्रणिपाता पश्चात् सतप्यमानमानसोऽपि इत्यादि— यद्यपि मानवती स्त्रियाँ पहिले तो प्रणाम को ठुकरा देती हैं, तथापि बाद में वे पश्चात्ताप से दुःखित होती हैं और अपने धिय को मनाने से हृदय में भातर ही भोतर लजित होती हैं अर्थात् वे खुलकर मनाना पसन्द नहीं करती।

कष्ट जन कुलधनैरनुरजनीय — जब लक्ष्मणजी ने कहा “यावदायाया हुताशने विशुद्धि” अर्थात् अग्निद्वारा सीता जी की विशुद्धि तक, तब श्रीरामचन्द्र जी कहते हैं ‘ हा, कितने दुःख की बात है कि जिनका विमल वेश हा धन है उन्हें प्रजा को प्रसन्न रखना पड़ता है। इसलिए वह कार्य (विशुद्धि) केवल प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए किया गया था। इसलिए जो कुछ बुरी बातें हम ने तुम्हें कही हैं वे वस्तुतः तुम्हें उचित नहीं हैं। नः—अस्माभिः।

अविनयबहुलतया—क्योंकि चढ़ती हुई जवानी तमाम अविनयपूर्ण कार्यों से भरी रहती है। तमपि—पुण्डरीकम्।

स्पृशति बहुमानीअतिपदम्—पदवी को प्राप्त कर लेता है। इत.—भयि।

विनयप्रधानै —विनयः प्रधानः येषाम्, जिनमें विनय सबसे प्रधान है।

“नन्दमौर्यैर्नृपयो ” का अन्वय “अस्तोदयौ” के साथ होगा। अविभिन्नकालम्—साथ ही साथ। इन पक्तियों से सूर्य की अपेक्षा चाणक्य की उत्कृष्टता सूचित होती है। “जो अपने प्रकाश के कारण सहस्रकिरण वाले सूर्य भगवान् के प्रकाश को भी मात कर देता है—वह प्रकाश जो सर्व-व्यापी नहीं है और पर्याय से (अन्तर से) शीत और उष्ण पैदा करता है (चाणक्य की तरह एक ही समय में नहीं—चाणक्य एक साथ ही शीत तथा उष्ण पैदा कर देता है)।

न तेन सज्ज कचिदुद्यत धनुः—दुर्योधन के गुणों का वर्णन है, “शत्रुओं के विरुद्ध उठाया गया हुआ अथवा खींचा गया हुआ।” उसकी आज्ञाएँ राजाओं द्वारा बड़े सम्मान के साथ पाली जाती हैं। “गुण” का अर्थ “ढोरा” भी है।

सबाल ऋग्मीद् वपुषा चतुर्भुज —नारदमुनि विष्णु से शिशुपाल के विषय में कह रहे हैं। बाल —लडका होते हुए (भी)। मुखेन पूर्णैन्दुनिभस्त्रिलोचनः—मुख में पूर्णचन्द्रमा के समान वह त्रिनेत्र भगवान् शंकर के तुल्य था। अब, युवा होने के कारण, उसने राजाओं को कर देने के लिए विवश कर दिया है, और वस्तुतः सर्वथा सूर्य के समान है (जो अपनी किरणों से पर्वतों को व्याप्त कर लेता है)।

सातवाँ पाठ

१—“सर्वज्ञस्य” में तृतीया का अर्थ है। केवल एक आदमी के द्वारा फैसला कराने का उत्तरदायित्व, चाहे वह आदमी कितना भी सर्वज्ञ क्यों न हो, दोषपूर्ण हो सकता है।

६—मिथ्या • निर्भरा —भूठी मूठी महिमा के घमड़ से भरे

हुए । आत्मप्रज्ञा इत्यादि—वे मन्त्री की राय से धृष्टा करते हैं क्योंकि वे सोचते हैं कि मन्त्री की राय को मानने में मेरी बुद्धिमत्ता का अपमान है ।

८—महाश्वेताप्रणामपुर सरम्—पहिले महाश्वेता को प्रणाम कर के ।

९—अवाङ्मनसगोचरम्—जो वाणी और मन की पहुँच के बाहर है । अर्थात् जिसका न तो वर्णन हो सकता है, न चित्तन हो सकता है ।

१२—तृणबिन्दो परिशक्ति —तृणबिन्दु घोर तपस्या कर रहे थे इसलिए उनसे डरा हुआ इन्द्र ।

जब कौत्स ने देखा कि महाराज रघु बिल्कुल धनहीन हो गए हैं, तो वह वहाँ से चन्नने लगा । निर्गलिताम्बुगर्भम्—शरद्धन से चातक भी नहीं मॉगता क्योंकि उसका जलरूपी गर्भ निकल चुका रहता है ।

उन (श्रवण के माता पिता) के पास पहुँचकर राजा (दशरथ) ने उस दशा में स्थित कलौते पुत्र को (के विषय में) तथा अज्ञानपूर्वक किया हुआ अपना कृत्य कह सुनाया । “उपेत्य”—कुछ विद्वानों का मत है कि “उपेत्य” का अर्थ है “उद्दिश्य” ।

रामस्य दर्शन सुहृदाम्—राम का अपने मित्रों को देखना ।

कुलपाशव—कुल के कलक, जो कुल की प्रतिष्ठा को दूषित करते हैं ।

८—दिलीप. यज्ञाय गा दुदोह—देवताओं को प्रसन्न रखने वाले यज्ञों को सम्पादन करने के लिए । अन्न उपजाने के लिए इन्द्र वृष्टि करते थे (अन्नार्थ—आकाश को दुहते थे) इस प्रकार वे दोनों परस्पर अदल बदल में सेवाएँ करते थे और ससार का पोषण करते थे । गां दुदोह—पृथ्वी को दुहते थे (कर वसूल करते थे) ।

“केवलात्मने” से ब्रह्मा की तरफ सकेत है जो एक तथा अविभाज्य हैं। “गुणत्रयम्” सत्व, रजस और तमस्। बाद में सृष्टि के समय ब्राह्मण विभक्त कर दिया गया। वे तीनों गुण कमशः ये हैं—रचना, पालन और नाश।

दुःखात् सुखमुपनतम्—विपत्ति भोग लेने के बाद जो प्रसन्नता होती है।

अरुणाय कल्पते—अरुण का स्वागत करने के योग्य है। “अरुण” सूर्य भगवान् के अग्रगामी दूत हैं जो रात्रि की समाप्ति सूचित करते हैं।

अनुहु कुरुते—बदले में गरजता है, दूसरे का गरजना सुनकर स्वयं गरजता है।

सन्तानकामाय—सन्तान का इच्छुक।

“तस्या” का अन्वय “प्रसादम्”, के साथ होगा।

पुराणशोभाम् अधिरोपितायाम्—अपनी पहिले की भी शोभा को प्राप्त। न स्पृह्याम्बभूव—जरा भी स्पर्श नहीं करते थे, क्योंकि वह तो पहिले ही से अपनी राजधानी में उसका उपभोग कर रहे थे।

सानुनीति—सानुनय मेल मिलाप वाला रुख धारण कर के।

दिदृक्षुम् “त्व शुभा न व” इति द्रष्टुमिच्छन्तम्। नमस्कुर्या—यदि त्व नमस्कुर्या !

आठवाँ पाठ

पृष्ठ ७८

सत्क्रियाविशेषात्—विशेष प्रकार के सत्कार (स्वागत) के कारण। राजा के कहने का तात्पर्य यह है कि मैंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया है जिसके कारण इन्द्र के हाथों से ऐसा ऊँचा स्वागत पाऊँ।

सूर्योपस्थानात् प्रतिनिवृत्तम्—सूर्य का उपस्थान करके लौटे हुए को यानी सूर्य की पूजा करके लौटे हुए को ।

उज्जिहानजाविताम् वराकीम्—जिसका प्राण निकल रहा था, ऐसी उस स्त्री का छोड़कर ।

अलम् उत्तरोत्तरम्—और ज्यादा बाते न करो ।

तासां चतुर्दश कुलानि—आगरसा चतुर्दश कुलानि ।

मा तावदुद्धर शुचो दयिताप्रवृत्त्या इत्यादि—पुरूरवा ने हम से कहा है । तावत्—गहिले अर्थात् अन्य कोई भी कार्य करने के पूर्व ही स्वार्थात् सता गुरुतरा प्रणयिक्रियैव—राजन पुरुषों के विचार में याचक का कार्य अपने स्वाथ की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होता है ।

प्रजा सरक्षति नृप इत्यादि । तद्भावे—उसके (अर्थात् रक्षा के) अभाव में मत् वस्तु अर्थात् विद्यमान वस्तु भी असत् (अविद्यमान) हो जाती है । तात्पर्य यह कि जान और माल की कोई सुरक्षा नहीं रह जाती ।

म —रघु । अस्त्रम्—अस्त्रविद्याम्, रघु के पिता दिलीप स्वयं ही रघु के गुरु थे ।

अनभ्राणां समुद्रतुं तस्मात्—जो राजे मग्न नहीं हुए थे अर्थात् जिन्होंने रघु के सामने मस्तक नहीं झुकाया था उन राजाओं को जीतने वाले रघु से । आत्मा सरक्षित सुहृद्—सुहृद् ने अपने प्राणों की रक्षा की । वैतसी वृत्तिम् आश्रित्य—बेटों की नीति का सहारा लेकर, बेटों की सी नीति धारण कर, अर्थात् अपने से प्रबलतर शत्रु से हार मान कर ।

अभ्यासार्थ अतिरिक्त वाक्य

पृष्ठ ८०

१-जन्मकर्मतो मलिन तर-जनम —जहाँ पर के लोग अपने

जन्म तथा बर्णों की अपेक्षा बहुत ज्यादा मैले थे । निर्घृणतर—बिनके सारे कृत्य उनके हृदयों की अपेक्षा कहीं अधिक घृणित थे ।

२—कुसुमघटित—बहु प्रमोदोद्यान को कामदेव का धनुष समझती है जो पुष्पनिर्मित बाणों के कारण सुन्दर लगता है, और बगीचा भी सुन्दर है क्योंकि उसमें भौरे फूलों में चिपके हुए हैं । शिलीमुख—बाण और भौरा भी । पीतरक्ता—पीताश्च ते रक्ताश्च चम्पक पीला होता है और अशोक लाल होता है । राक्षस-पक्ष में—“पीतरक्ता” का अर्थ होगा—पीत रक्त जैसे ते ।

३—आत्मसपत्न—अपनी उत्कृष्टता । अभिजनात् प्रभृति—उच्चकुल में लेकर ।

४—लब्धप्रसरा—स्वच्छन्द व्यवहार (कार्य) के लिए अवसर पाकर । दुःखोपचर्या—बड़ी मुश्किल से मनाई जा सकने वाली ।

५—विनयाधानम्—नैतिक शिक्षा प्रदान करना, शिष्टता सिखलाना ।

७—नव—अज । नवेतर—रघु । स्थिर सकल्प वाले महाराज अज ने तब तक अपने कार्य (समाधि लगाने का कार्य) नहीं बन्द किए जब तक उन्होंने परमात्मा का दर्शन नहीं कर लिया ।

८—स्वनुष्ठित—अच्छी तरह से सम्पादित ।

११—जब श्रीसीता जी ने श्रीहनुमान् जी को अशोकवाटिका में अपने समीप में देखा तो कहा था । पूर्वस्मात् इत्यादि—यह तो पहिले (रावण) से भिन्न मालूम पड़ता है क्योंकि यह बड़ी श्रद्धापूर्वक श्री राम जी का गुणानुवाद गा रहा है । अथवा, क्या बिना किसी प्रकारक क्रूरता किए हुए मुझमें विश्वास पैदा करने के लिए यह यहाँ आया है ! अभातात् प्राक्—दृष्टानि स्वप्रदर्शनादीनि शुभनिमित्तानि ।

१२—स. - मारुति । ताम्—सीताम् । प्रीते पराजयमानाम्—
जिसे रावण की बातें असह्य लगती थीं ।

१४—एकाक्षरम्—एक अक्षर । ओम् मावित्र्यास्तु पर नास्ति—
जगत्प्रसिद्ध गायत्रीमन्त्र अर्थात् सावित्री से बढ़ कर कोई चीज नहीं है ।

नवाँ पाठ

पृष्ठ ६०

वर्तमानकवि —जोना हुआ कवि अथवा समकालीन कवि ।
त्वयि बद्धभावा—तुम्हारे ऊपर उसका प्रेम लगा हुआ है । इतो गतम्
—त्वयि आहितम् ।

ससर्गभुक्ति खलेषु—खलससर्गमुक्तिः, खलों की मगत से वृणा
करता हुआ ।

मन्तानार्थय विधये—मन्तानार्थक किसी विधि के लिए ।

जब इन्द्र कामदेव को एक बड़ा कार्य सौंप रहा था तब उसने कहा
था । आत्मसमम्—मेरे सदृश तुम । भूधरतामवेक्ष्य—पृथ्वी को
धारण करने की योग्यता देखकर ।

कृत्स्न गोत्रमगलम्—मोता ने दोनों कुलों का मगलकृत्य
किया था ।

ईशम्—उसके स्वामी अर्थात् श्रीरामचन्द्र । नितान्तरूक्षाभिनि-
वेशम्—जो सीता जी के विषय में बड़ी निर्दय धांगणा रखते थे (अर्थात्
त्यागने का विचार रखते थे) ।

परकर्मापह—अपने शत्रुओं के कार्यों को नष्ट करता हुआ । “परे”
शत्रव इत्यर्थः ।

आवृणोदात्मनो रन्ध्र रन्ध्रेषु प्रहरन् रिपून्—शत्रुओं की
कमजोरी देखकर उन्हें प्रहार कर अपनी कमजोरियों को छिपा लिया ।

भगवति कमलालये शृशम् अगुणज्ञामि—राक्षस ने लक्ष्मी

से कहा है जब कि लक्ष्मी ने नन्द के गुणों का आदर न कर उसको त्याग दिया और चन्द्रगुप्त से प्रेम किया ।

साक्षात् प्रियामुपगतामपहाय पूर्वम्—जब दुष्यन्त शकुन्तला का चित्र देखकर प्रसन्न हुआ तो विदूषक ने उससे यही कहा है । जब शकुन्तला स्वयं दुष्यन्त के पास आई थी तो दुष्यन्त ने स्वयं ही उसको त्याग दिया था ।

चिरेणानुगुण प्रोक्ता प्रतिपत्तिपराङ्मुखी—जब सीताजी ने तिरस्कार पूर्वक रावण की प्रार्थनाओं को ठुकरा दिया तो उसने उनसे कहा था । प्रतिपत्तिपराङ्मुखी—मझे अपना पति मानने के लिए (तू) तैयार नहीं ।

स—जनक—आतवचनात्—विश्वशनीय मुनि के कहने से । मुनि की इस बात को सुनकर, जनकजी को विश्वास हो गया कि राघव मे पुरस्कर्ता है, यद्यपि वे (राघव) बालक ही दिखाई पड़ते थे । त्रिदशगोपमात्रके—वीरवह्नी (इन्द्रगोप) नामक कोंडे के बराबर ।

दमर्षो पाठ

पृष्ठ १०८

विश्रम्भातिशयप्रसंगसाक्षिण अन्यन्त वनिष्ठता (विश्रम्भ) वाली घटनाओं के साक्षी (गवाह) ।

एवमवस्थिते—इन परिस्थितियों में ।

तत्र प्रभवति देवी—इसे करने का श्रीमती जी को (आपको) पूरा अधिकार है ।

अथ जनः—मालती । न खलु स उपरत—निश्चय ही वह जीव मरा हुआ नहीं है जिसे उसके प्यारे लोग स्मरण करें ।

समरशिरसि चचत् पचचूडश्चमूनाम्—युद्ध के अग्रभाग में अर्थात् जिस स्थल पर खूब घनघोर युद्ध हो रहा हो उस स्थल पर ।

स राजा मनसि धर्मेण इत्यादि । सर्वं देवमयस्य—जो नारायण सर्वदेवमय हैं उनके समान वह था, क्योंकि उसके अन्दर बहुत से देवता निवास करते थे । मन म 'धर्म' देव रहते थे अर्थात् वह धर्म के समान न्यायी अथवा स्पष्टवक्ता था ।

नियतामह सर्वात्मना कृतावस्थितिना इत्यादि—निश्चय ही धर्म-देव यहाँ पूर्णरूप से निवास कर रहे हैं, कलियुग की लीलाआ को ठुकरा देते हैं, और सतयुग को सुाव नहीं करते हैं—वह सतयुग जो धर्म कर्म करने के लिए बहुत हा उपयुक्त युग है । इस आश्रम म रहने वालों का जीवन इतना अच्छा है ।

उडेति पूर्वं कुसुमम् । तव प्रसातस्य—कारण कार्य का जो सामान्य नियम है उसका विरुद्ध, आपके विषय म, आप की कृपा के पहिले का सम्पत्तियों का आगमन हा गया ।

शम्बूको नाम । शीर्षच्छेद्य —तुम्हे उसका मिर काट लेना चाहिए । ते = त्वया ।

अपीमिनम् । अकामयेतान्—दोनो माताएँ कौसल्या और सुमित्रा "वीरसू" शब्द की इच्छा नहीं करती थी—“वीरसू”— - “वीर पुत्र पैदा करने वाली” नहीं कहलाना चाहती थी ।

वानप्रस्थया मद्रचनात् स राजा—आ श्री रामचन्द्र जा ने निर्दयतापूर्वक साताजी का त्याग किया, तब साताजा ने तत्क्षण नी से कहा था “मद्रचनान्” तेरी गोरा, का कृपा से ।

देव्या शून्यस्य जगतो द्वादश पत्नियः—जाती की शून्य हाए (खाला हाए) समार को बरह वर्ष हो गए । नाना जाना जी को जल गए बारह वर्ष हा गए ।

अयं मैथिल्यभिज्ञानम् = यय भाथलि : अभिज्ञान म ।

पुर प्रवेशमाश्रयं बुद्ध्वा शास्त्रामृगेण सा—जो जसी दुष्प्रवश्य

नगरी में बन्दर के प्रवेश को एक आश्चर्यजनक घटना समझकर ।

त दृष्ट्वाऽचितयत् सीता—श्री हनुमान जी को पहिले पहिल बगीचे में आया हुआ देखकर श्री सीता जी विचारती हैं । पहिले वह हनुमान जी को रावण समझती हैं । बताइये कि वह क्यों नहीं विश्वास करती कि यह व्यक्ति श्री रामजीद्वारा भेजा गया है । “इस समुद्र के उत्तर में रहने वाले श्री राम जी, खारे समुद्र के दक्षिण में बसी हुई इस नगरी को कैसे जान सकते थे ?”

ग्वारहवॉ पाठ

पृष्ठ ११८

अलमलमुपालम्भेन—जब दोनो नर्तकों के बीच विवाद उठ खड़ा हुआ तो परिव्राजिका से कहा गया कि इस मामले का निर्णय करो । तब परिव्राजिका ने कहा—“जब शहर बिल्कुल पास हो म बसा हुआ हो, तब क्या रत्न की पराज्ञा गाँव में करवाई जाती है ? तात्पर्य यह कि जो काम हम लोग मुझसे करवाना चाहते हो उसको करने का अधिकार केवल महारान को है, अथवा उसे करने के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति महाराज हैं न कि मैं ।

मा तावदनात्मज्ञे देवेन—अरे, ऐसा न करो, ऐसा न करो ।

कि दीपिका पौनरुक्त्येन—इतने अत्यधिक दीपकों का क्या प्रयोजन ? इनकी संख्या आवश्यकता से वही अधिक है ।

आर्ये आत्रेयि किं वृत्तम्—ऐ पूज्य आत्रेयी, उसका क्या हाल हुआ ।

रघुकुदम्बकेषु—सुओ में सर्वश्रेष्ठ ।

स्मर्तव्यशेषे नयामि—उसको केवल स्मरण किए जाने लायक बनाए देता हूँ अर्थात् मारे डालता हूँ ।

वीजम्—श्री सीता जी स्वयं ही गर्भवती होने पर त्याग दी गई थीं

सा—पृथ्वी । मामेति व्याहरत्येव—ज्यों ही वह कह रहे थे “अरे ! से मत ले जाओ, मत ले जाओ ।”

अनपायिनि सश्रयद्रुमे गजभग्ने पतनाय वल्लरी—वृक्ष के ऊपर आश्रित लता अवश्य गिर जाती है ।

दर्शितभयेऽपि घातरि—भय को देख कर दृढचित्त वाले व्यक्ति (अपने कार्य को) बन्द नहीं कर देते ।

सन्तानवाहीनि—लगतार चलते रहने वाले ।

स्रोत सहस्रैरिव सप्रवन्ते—मानो हज़ारों वाराआम होकर बहने । अर्थात् हज़ारों नए नए मार्गों से प्रकट होते हैं ।

पचभि.—पाँच तत्व पचत्व गते—मर जाने पर ।

तस्मिन्—अर्घ्य, अपना वलय पुनः प्राप्त करने के लिए कुश वासुकि के ऊपर जो बाण चलाया था ।

तस्मिन् हृदं महितमात्र एव क्षोभान् समाविद्धतरङ्गहस्तं—क्षोभ (उथल पुथल) के कारण तरंगरूपी हाथों का ऊपर उछालावे हुए ।

रोधामि निघ्नन्—तटों को धक्का मारने हुए ।

त्यय्युत्कृष्टवत्तेऽभियोक्तारि । त्वद् बाँझास्तरिताभिः—आपकी इच्छाआ स रोक दो गई हुई अर्थात् आप केवल आपो धावा बोलने की इच्छा कीजिए, शेष सभी चीजें तैयार हैं । अनेक भाव सम्यन्त पद परिस्थितियों का अनुकूलता सूचित करते हैं । चलिताधिपारविमुखे—अपने पद से हटा दिए जाने के कारण तटस्थ । सर्गमात्रकथन-व्यापारयोगोद्यमे—जिसका कर्म केवल यह है कि माग बतला देवे । “योग” शब्द अनावश्यक है ।

आश्रज्ज्वालावलीढप्रतिबलजलधेरन्तर्वायमासे—अश्वत्थामा ने कहा है “कैसे हुए बाणों रूपी ज्वाला में चार्टी गई हुई जो शत्रु

सेना थी वही समुद्र तुल्य थी। उस शत्रु-सेना-रूपी समुद्र के अन्दर बड़वानल के समान दिग्वाई पड़ने वाले अथवा पराक्रम करने वाले।”

चारवौं पाठ

पृष्ठ १२६

श्रीशस्त्राऽवतु—इन चारों पक्तियों में “व” “न” “त्वा” “ते” इत्यादि छोटे रूपा का प्रयोग दर्शाया गया है। ये सा तृतीया के प्रथम में प्रयुक्त हुए हैं। “तुम्हारे अथवा हम लोगों द्वारा मेवा किए जाने योग्य।”

कार्यवशात्—अपने काम के लिए। ताकि मे उस समय की बटनाओं का जान बाऊँ और समझ पाऊँ।

तदेव पचवटीवनम् जातनिविशेषा—साक्षान् अपने लड़कों के समान।

आयुष्मन्तेव वाग्विषयीभूत—जो हमारे ज्ञातज्ञान का विषय था।

मन्दिशन्ति—प्रणय-रन्देश भेजते हैं। समुपमर्षति—अपने प्यारों के पास जाते हैं।

एक-अपर—अज और रघु। प्रभुशक्तिसम्पदा—उसकी प्रभुशक्ति का प्रभाव। प्रभुशक्त—शक्ति, दण्ड और बल में होती है। प्रणिवान-योग्यता-ध्यान के अभ्यास से। शरीरगोपरान्—शरीर में भरे हुए (व्याप्त)।

लक्ष्मिन्मादिताव्यसनशतशततामुपगता—जो लक्ष्मी के पा जाने + मारण करने कर कुप्राप्त जाते हैं उनका दशा का वर्णन है। “व्यसनशत” इत्यादि—यदि सेकड़ों वित्तियों के लक्ष्य बन जाते हैं, तथापि वे यह नहीं समझते कि हमारा प्रयत्न उनकी गरीबी के कारण ऊँचा हुआ घास की प्रभुशक्ति पर स्थित अन्विष्ट के समान भ्रष्ट है।

तस्य तरुणवृक्षस्य मध्ये मणिदर्पणम् इव—विमल जल के कारण त्रैलोक्य लक्ष्मी के मुँह देखने के लिए दर्पण का काम करता था।

अर्थोष्मणा विरहित.—धन की गर्मी से रहित ।

कोऽप्येव एव पिशुनोग्रमनुष्यधर्म—पिशुन का यह गुण है कि वह किसी का तो कान भर देता है और किसी को जइसहित नष्ट कर डालता है (चुगली खा कर) ।

रूप तदोजस्वि—अज के गुणों का वर्णन है । राजकुमार अज अपने कारण (पिता) से भिन्न नहीं थे, जैसे एक दीप से जलाया हुआ दूसरा दिया अपने कारण से भिन्न नहीं होता ।

तेरहवाँ पाठ

पृष्ठ १३८

ते गति ज्ञास्यन्—तुम्हारा समाचार जानने की इच्छा करता हुआ ।

वारितप्रसर—आगे बढ़ने से रोक दिया गया हुआ ।

श्रुतमृषे—ऋषि से सीखा गया हुआ । यद्यपि राघव अपने पूर्व जन्म (वामनावतार) के कार्यों से अनभिज्ञ थे तथापि उच्चैर्जित हो गए ।

क्षेमाय—सुरक्षा के लिए । शत्रून् हति इति शत्रुघ्नः—यही उनके नाम की सार्थकता है ।

कथकैशिकेन्द्रः—भोज, वैदर्भराज । चन्द्रः प्रवृद्धोर्मिरिवोमिमाली—ऊँची ऊँची उठा हुई लहरों के साथ चन्द्रमा से मिलने के लिए जाने वाले समुद्र के समान ।

चौदहवाँ पाठ

पृष्ठ १४७

अत्रभवतो—गणदास और हरदत्त का । ज्ञानसघर्षः—शास्त्रार्थ, शास्त्रसम्बन्धी विवाद ।

अवश्यकर्तव्यतामापतितम्—अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य हो गया है ।

दक्षिणाञ्च—दाहिनी ओर को मिकोड़ कर दिए हुए सकेत को समझने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए । तुम उन लोगों पर इस प्रकार से ओर को इशारा करो कि वे तुरन्त समझ जायें कि तुम्हारा क्या मतलब है ।

उत्क्रान्तमिवासुभिः—माना उनके प्राणों ने उन्हें त्याग दिया ।

पृष्ठतः कृत्या—पीछे की तरफ करके ।

अनुबान्ध—सदा-निरन्तर, शाश्वत । इयत्तया परिच्छेत् नालम्—सीमा के अन्दर नहीं रक्खा जा सकता, जिसको सीमा है ही नहीं ।

हसितमुदाप्रसितम्—हँसी प्रसन्नतापूर्वक जारी रही । विलम्बितम्—प्रेम में उर्जावत प्रसन्नता से भरे खेल कूद घट गए । हनन्ममदा—जिनकी उत्तेजना नष्ट हो गई है । पुरहितम्—जो चीज़ नगर के लिए हितकारि थी और नगर को बाधित भी वह नहीं की गई ।

सयममधनान्—समय हा जिनका धन है । कथमप्यवान्धवृत्ताम्—किसी भी प्रकार से बान्धवों द्वारा पैदा नहीं की गई हुई । सामान्य सम्मानपूर्वक इसके अपने स्त्रा करके मानना । इसके आगे तो फिर भाग्य की बात है । बहू के घर वालों को यह बात न कहनी चाहिए ।

पन्द्रहवाँ पाठ

पृष्ठ १६०

मित्रावार्तामन्देशके - भूठे समाचारों और मन्देशों के ।

इष्टिपशुमार मारित - यज्ञ-पशु के समान मार डाला गया । स - मातल ।

चित्रलेखाद्वितीया—चित्रलेखा के साथ ।

क्रोधविह्वला—(शूर्पणखा) । अतैरौ-खरदूषणों ।

लतानुपातम्—बारबार लताओं को झुका कर । नक्षत्रकन्द-नदी

के जल को उथल पुथल करता हुआ पानी सुड़कता था। चारुशिलो-
पवेशम्—किमा सुन्दर शिला पर बैठता हुआ।

विश्वासप्रतिपन्नानाम्—विश्वास में आए हुए लोगो का।

मन्थरविवेकम्—निणय करने में मन्द।

अमन्दलीलया—सुन्दर लीला से।

स्थिते अर्धरात्रे—जब आधी रात हो गई।

विप्रदर्श-यत्ना—जिस किसी का ब्राह्मण समझती थी उसी को मरने का प्रयत्न करती थी। जिघासुवेदम् भासुरास्त्र--जिस किसी को भी मारने वाला समझ लेना था उसको मारने के लिए चमचमाते हुए अस्त्र लेता है।

सोलहवॉ पाठ

पृष्ठ १६६

नौ गुणदोषत परिच्छेत्तुम्—हम लोगों के गुण तथा दोषों की परीक्षा करने के लिए।

समयपूर्वम्—प्रतिज्ञा (इकरार नामा) पूर्वक।

का गणना—क्या गिनती कहने की कोई आवश्यकता नहीं।

अचिराधिष्ठितराज्यः—जो अभी हाल ही में राज्य पर (राजगद्दी पर) बैठा है।

आरूढमूलत्वान्—चूँकि अभी अपनी प्रजा के मन में गहरी जड़ नहीं जमा पाई है। इसी कारण वह उस वृक्ष के तुल्य है जो अभी नया नया लगाए जाने के कारण ढाला ढाला है।

अनुभवसमा वेदनाम्—अनुभव की हुई वेदना के समान वेदना।

स्मरण—कृपया अपने जीवन को उस शाकाग्नि का इन्धन न बनाइए जो अग्नि विगत घटनाओं के स्मरण से पैदा होती है।

वेगोदग्रम्—वेग (के साथ चक्कर करने) के कारण भयानक ।
अयभर —यह उत्कर्ष उनमें प्रकृत्या (जात्या) विद्यमान है ।

बहुक्षमा—विपुल क्षमा-शक्ति को धारण करने वाली ।

शुचो वश गन्तुं नार्हसि—कृपया शोक के वशीभूत न हूजिए ।

यमौ—जुड़वाँ । अर्थात् नकुल और सहदेव । कथैव नास्ति—कोई हिसाब लेने की आवश्यकता नहीं, कोई चर्चा ही करने की आवश्यकता नहीं । विस्फुरण—जिसने अपना गोल धनुष तान लिया है । अथवा जिसने अपना धनुष तथा चक्र दोनों तान लिया है (निकाल लिया है) ।

मत्रद्वां पाठ

पृष्ठ १८०

“मर्तुः” शब्द “प्रतीपम्” के साथ जाता है । “युवनिषा इसी प्रकार “गृहिणी की पदवी” पाती है; इसके विपरीत आचरण वाला स्त्रियों अपने कुल का अभिशाप है ।

अनन्यभाजम्—जो किसी भी अन्य व्यक्ति के प्रति अनुरक्त न हो । तथ्यमेव—“हर” जो पीछे से उसे पति मिले वस्तुतः इसी प्रकार के थे ।

पुरी—अमरावती ।

घनबद्ध—लोग अपने मित्रों और वान्धवों के साथ गोष्ठो करके आनन्द का अनुभव करते हुए खुशियाँ मनावें ।

नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेषु—पहिए का चाका जिस प्रकार ऊँचे नीचे आता जाता है उसी प्रकार मनुष्य की दशा ऊँचे तथा नीचे जाती आती है ।

अठारहवाँ पाठ

पृष्ठ १६०

कार्यहन्तारम् कार्य को नष्ट करने वाले को ।

कथं भवेत्—उसकी क्या दशा होगी ?

तत्तुल्य—भीष्मद्रोण तुल्य ।

गूढा—स्वयं अदृश्य होने के कारण । बलादानीयेत पदात् पदम्—
भीरे-भीरे जबर्दस्ती करके लाई जा सकती है । डर के मारे, आगे बढ़ने
से वह इतना डरती है ।

ध्रुवेच्छाम्—दृढ़ इच्छा वाली । इति ध्रुवेच्छामनुशासती सुतां,
शशाक मेना न नियन्तुमुद्यमात्—इस प्रकार उपदेश देती हुई मेना,
स्थिर इच्छा वाली (अपनी) पुत्री को (उस) निश्चय से न हटा सकी ।
चाही हुई वस्तु के लिए जो मन दृढ़ निश्चय कर लेता है उस मन को
और नीचे की ओर जाने वाले जल को कौन पलट सकता है ।

दष्ट्राकुरात्—तेज दाँतो से ।

“भूतये” का अन्वय “नृपतेः” के साथ होगा ।

जीवितापहा—प्राणों को अपहरण करने वाली ।

उन्नीसवाँ पाठ

पृष्ठ १६७

आविभूतज्योतिषाम्—जिसको सर्वश्रेष्ठ ज्योति दिखाई पड़
गई है ।

प्रार्थ।—उसका प्राण नहीं लिया ।

प्रसेदु—प्रसन्न हो गई, चमकने लगी । प्रदक्षिणाचिं हविर-

ग्निराददे—अपनी लपक को दाहिनी ओर घुमा करके अग्निदेव ने पूजा
स्वीकार की ।

परिमेयपुर सरौ—बहुत थोड़े से नोकर चाकरों को लेकर। अनुभाव-
विशेषात्—उनका उत्कृष्ट ज्योति के कारण।

अत्यगाढाश्रमम्—आश्रम के पास से होकर निकल गए। “कहीं
मुनि का तपस्या में बाधा न पहुँचे” इस डर के मारे वहाँ नहीं रुके।

बीसवाँ पाठ

पृष्ठ २१२

असौ—ऋषालकुण्डला। पापम्—मालती का वध।

अन्यलिखितम्—उसका लिखा हुआ कोई अन्य कागज।

स्पृहणीयशोभम्—जिसकी शोभा स्पृहणीय थी (ईर्ष्या करने योग्य
थी)। “परस्परेण” का अन्वय “द्वन्द्वम्” के साथ होगा।

मोहकलिलम्—अज्ञान के कारण पैदा हुई ध्वराहट।

तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च—जो कुछ तुमने
सुना है अथवा सुनोगे उस सब की तरफ से तटस्थ (विरक्त) हो जाओगे।

श्रुतिविप्रतिपन्ना—जो कुछ तुमने सुना है उसी से घबड़ाई हुई
(व्याकुल हो गई हुई)।

इक्कीमवाँ पाठ

पृष्ठ २२२ .

कान्तमात्मीयम् पश्यति—अपनी चीज को सुन्दर समझती है।

द्वन्द्वसम्हारम्—आपसी संघर्ष। प्रत्युपस्थिते—जब ऐसी नौबत
आ पड़ी।

अलमप्रभु—बिल्कुल शक्तिहीन। अन्धकारतामुपयाति—धुँधला
हो जाता है।

उत्कर्षनिकषः—बढ़पन अथवा अधिकता की कसौटी।

सभाजनाक्षराणि पातयिष्यामि—बधाई (प्रशंसा) के कुछ शब्द कहलाऊँगा ।

अगृहीते राक्षसे—जब तक राक्षस पकड़ नहीं लिया जाता । तथा त्वमसि = जारिणी ।

क्रियार्थम्—धार्मिक क्रियाओं के लिए ।

एनम्—आत्मानम् । नित्यजातं—नित्य-मृतम्—सदैव पैदा हुआ, सदैव मरा हुआ ।

लक्ष्मी तनोति—लक्ष्मी (शोभा) को बढ़ाता है ।

बाईसवाँ पाठ

पृष्ठ २३३

स्वरसयोग.—स्वरों का सयोग ।

अतिभूमिं गतेन—उच्चतम शिखर पर पहुँचे हुए ।

अहो जाने—मैं बहुत ही पसन्द करता हूँ ।

चिन्ताविषम —चिन्ता को नाश करने वाला ।

न वेद्मि इत्यादि—वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, चाहे प्रेम के वेग के कारण, चाहे , सो मैं नहीं जानता ।

सद्योविपाकस्य—जिसने तुरन्त फल पाया ।

पात्रविशेषन्यस्तम्—उत्तम पात्र में रखी हुई, अथवा उत्तम पात्र को दी हुई । गुणान्तरम्—उच्चतर गुण ।

स सखा—तुम्हारा मित्र, कामदेव । “मानों मैं इस असह्य विपत्ति रूपी धूप से ढकी हुई, दीप-वत्ता हूँ ।”

स्वशरीर शरीरिणावपि श्रुतसयोगविपर्ययौ यदा—

जब मनुष्य का शरीर और उसकी आत्मा भी मयोगवान् तथा वियोगवान् होते हैं, तो भला बताओ बाह्य पदार्थों (पुत्र, कलत्र आदि) का वियोग, विद्वान् पुरुष को कैसे दुःख पहुँचा सकता है ?

किमात्मनिर्वाह कथामुपेक्षे भार्यामदोषामुत मत्यजाति—जब श्री रामचन्द्र जी का मन आगा पाँछा में पड़ा हुआ था कि सीता जी को त्याग दे अथवा अपनी बदनामी की चर्चा को सुनी अनसुना कर दे। एकपक्षाश्रयविकृतवत्वात्—एक मार्ग का अनुसरण करने का निर्णय न कर सकने के कारण, उनका चित्त भूले के समान आग पीछे आता जाता था।

तेईसवाँ पाठ

पृष्ठ २४२

भर्तृगतया—अपने पति के बारे में। गतया—सबधिन्या।

उन्नमितोपदेश गणदास—गणदास के उपदेश अधिक उत्तम पाए गए।

देवस्य—दुष्यन्तस्य। उपरोधकारि—बाधा पैदा करने वाला।

स्फुरितोत्तराधर—स्फुरण भूयिष्ठ अधरो यस्य स, जिसका ओठ बड़े जारों से फड़क रहा था, बोलने के लिये चेष्टा कर रहा था। अथवा इसमें भाँ बँटिया अनुवाद यह होगा “जिसके नीचे का ओठ तथा ऊपर का ओठ—दोनों ओठ फड़क रहे थे।

तास्मात्—महत्तोऽपभाषमाणत्।

परोक्षमन्मथ—जिसको कामदेव (अ वा प्रेम) का अनुभव न हो, जो प्रेम का पहुँच के बाहर हो। ‘ऐ मित्र, जो बात केवल हँसा में कही गई है उसको सत्य न मान लो।’

शाक्यमशिक्षित—जिसने शठता नहीं सीखी है। अप्रमाणम्—प्रमाण नहीं माना जाता, विश्वास-पात्र नहीं समझा जाता। विद्या इति—इसे विद्या की सुनयमित तथा सुव्यवस्थित शाखा मानकर।

त्वं यस्य नेत्रयो पथि स्थिता—तुम जिसकी आँखों के विषय में सयोगवशात् खड़ी थी, और जिसकी आँखें, इसी कारण से अवन्ध्य हो

गई (अव्यय हुई क्योंकि उन्होंने अपना फल पाया) । रूढसौहृदः—गहरी मित्रता वाला ।

रजसोऽपि परम्—हिमालय ने सप्तर्षियों से कहा है । रजोगुण के भी परे ।

सुखश्रव—सुनने में सुखदायक । दिवौकसां पथि—आकाश ।

अन्यथावृत्ति—विकृत, लुब्ध, आन्दोलित । कण्ठाश्लेषप्रणयिनि—कण्ठ का प्रगाढ़ आलिगन चाहने वाले ।

अशिक्षितपटुत्वम्—झिना सिखाई पढाई हुई चातुरी (छल, कपट) ।

काम प्रिया न सुलभा मनस्तु तद्भावदर्शनाश्वामि—उसके (शकुन्तला के) प्रेम का देख कर आश्वासन पाने वाला ।

रतिमुभयप्रार्थना कुरुते—हम दोनों की इच्छा तृप्ति (सन्तोष) पैदा करती है । “हम दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं” इस बात के विचार मात्र से ही हम लोग सुख का अनुभव करते हैं ।

चौबीसवाँ पाठ

पृष्ठ २५२

दृष्ट्वा मेघनाद दूरत एव कृतनमस्कार तमप्राज्ञात्, तिष्ठतु पुरस्तात्—सामने ठहरे ।

नववारिधरोदयादहोभिर्भवितव्यं च निरातपत्वरम्यै—गर्मी के अभाव के कारण दिन अवश्य रमणीक होंगे ।

प्रतिग्रहीतुं प्रणयिप्रियत्वात्—अपने भक्तों के ऊपर कृपा या प्रेम रखने के कारण ।

अत्रभवत्या प्रसवादस्मद्गृहे तिष्ठतु—जब दुष्यन्त ने शकुन्तला को पत्नी मानने से इनकार कर दिया तब कुल पुरोहित ने यह उपाय सुझाया है । अत्रभवती—शकुन्तला । उपदिष्टः—भविष्यवाणी द्वारा

वता दिया गया हुआ । तल्लक्षणोपपन्न —चक्रवर्ती के लक्षणों से युक्त ।
विपर्यये—यदि परिणाम कुछ दूसरा हो ।

लब्धान्तरा—जब अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी ने राजमहल में प्रवेश प्राप्त कर लिया, यद्यपि राजमहल खूब जोरों से बन्द कर दिया गया था, तब कुश ने उस देवी से कहा है । लब्धान्तरा—प्रवेश प्राप्त करके ।

सा निन्दन्ती स्वानि भाग्यानि वाला बाहूत्क्षेप—यहाँ “बाहूत्क्षेपम्” का अर्थ है “अपनी भुजाओं को ऊपर की ओर फेकती हुई ।”
स्त्रीसम्थानम् ज्योति—स्त्री के स्वरूप में ज्योति (प्रकाश), स्त्री रूप-धारिणी ज्योति । अप्सरस्तीर्थम्—एक पवित्रस्थान का नाम है ।

निशितनिपाता —नेज या पैने गिरने वाले ।

च-च-प्रत्येक पक्ति में च-च का अर्थ है ‘ऐसी बात हो न पाई थी कि इतने ही में । घनाघन —खूब घना और सज्जित ।

पचीसवाँ पाठ

पृष्ठ २६२

ज्ञानवृद्धभाव—ज्ञान में बड़े होने के कारण अर्थात्, यद्यपि दो के दोनों एक समान विद्वान् हैं । पुरस्कारमर्हति—पुरस्कार का पात्र है आगे किए जाने (रक्खे जाने) का पात्र है ।

अनियंत्रणानुयोग—बिना किसी रुकावट के यानी स्वतन्त्रतापूर्वक पूछा जा सकता है ।

तत्पाटवात्—उसकी चातुरी के कारण ।

बद्धकलकले—जिसने बड़े जोरों का कोलाहल करना आरम्भ कर दिया था । प्रदीप्तशिरसम्—अपना फन फैला कर । भीतोन्मम—भयभीत होने का बहाना करके । अर्थात् भयभीत व्यक्ति के समान ।

इमं ललनाजनं घुणात्तरन्यायेन—लकड़ी में अथवा पुस्तक के पृष्ठों में कीड़े द्वारा बनाया गया हुआ कटान जो अक्षरों के आकार

से मिलता जुनता है । कीड़े लकड़ी को अथवा पुस्तक के पृष्ठों को इस प्रकार से काट देते हैं कि उसमें मानो अक्षर बन जाते हैं । घुणाक्षरन्यायेन—संयोगवशात्, अकस्मात् ।

प्रयोगेणाधिक्रियताम्—प्रयोग (प्रदर्शन) का विषय बनाया जाय, अर्थात् रगमच पर लाया जाय ।

तातपरिजनस्य—मेरे पिता जी के नौकर । यथाभ्यस्तम्—जैसे तुम्हारा अभ्यास पड़ गया है वैसे ही ।

अष्टादशवर्षं देशीय—लगभग अठारह वर्ष का ।

अनुजिम्भतक्रम—मर्यादा(श्रौचित्य) की सीमा को बिना त्यागे हुए, अर्थात् मर्यादा का पालन करते हुए ।

आत्तदण्ड—दण्ड को ग्रहण कर ।

करणोज्झितेन—स्पर्श आदि की इन्द्रियों से त्यक्त ।

तैलनिषेकबिन्दुना—टप् टप् चूते हुए तेल की बूँद से ।

कान्तिप्रदः—कान्ति (ज्योति, शोभा) का देने वाला ।

मासो इत्यादि—वैशाख का महीना, वसन्त ऋतु जब कि वृद्ध से लदे रहते हैं ।

छब्बीसवॉ पाठ

पृष्ठ २६८

कुञ्जलीला—कुबड़े की चाल, कुबड़ी कुबड़ा चाल ।

प्रत्युत्पन्नमति—तात्कालिक बुद्धियुक्त धैर्यमान् ।

खलीकरोति—(मनुष्य को) दुष्ट बना देता है ।

यदणीयसि—छोटी सी बात पर बड़ा सम्मान प्रदर्शित किया जाता है ।

अलमन्यथा गृहीत्वा—मेरे विषय में गलत धारणा मत बनाइए ।

चीयते—फल से युक्त होता है, सफल होता है ।

कल्याणी—पवित्र गाय ।

अथवा मम भाग्यविप्लवात्—अज की उक्ति है । जब इन्दुमती के वक्षस्थल पर गिरते हैं स्वर्गीय माला ने उसके प्राण हर लिए और अज को तनिक भी हानि न पहुँचाया, तब अज ने कहा है ।

सत्ताईसवाँ पाठ

पृष्ठ २७६

अभिनिवेश्य—मन को पदार्थों या विषयों में लगाकर ।

कालान्तरक्षमो न भवति—विलम्ब को सहन करने में असमर्थ है, विलम्ब नहीं सहन कर सकता ।

ईदृश—तुम्हारे पैदा किए जाने की यह दशा हो गई है ।

भस्मावशेष चकार—राख कर दिया ।

उच्छिरसा—जिसका सिर (शिखर) आकाश में ऊपर को गया हुआ है ।

अभिषेकान्ते—राज्याभिषेक के अन्त में ।

विरलजनसम्पाते—जहाँ बहुत कम लोगो का आना जाना हुआ करता है ।

विमानोत्सग - किसी राजा के महल का नाम ।

लोकयात्रा सिद्धा—इस प्रकार की जीवनयात्रा निश्चित है ।

उभयो—कृशलवयो । लोग उनके सगीत नैपुण्य पर उतना आश्चय नहीं करते थे जितना कि इस पर कि वे राजा द्वारा स्वेच्छापूर्वक दिए हुए उपहारों को बड़े तिरस्कारपूर्वक ठुकरा देते थे ।

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृह—यह उन लोगो के लिए बड़ी लाभकारी शिक्षा है जिनकी आदत ऐन मौके पर काम करने की होती है । ऐन मौके पर तैयारी करने से कार्य सिद्ध नहीं होता । पहिले ही से सन्न प्रबन्ध करना चाहिए ।

अट्टाईसवाँ पाठ

पृष्ठ २८६

सुख विशन्ति—आसानी से प्रवेश प्राप्त कर लेते हैं ।

सर्वतोमुखो—प्रत्येक बात में अपारिमित, पूर्ण । यस्य—हिमालय की ओर सकेत है ।

असशय क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मन

सज्जनो के हृदय की आन्तरिक प्रेरणा उनके लिए बहुत ही शुभ चिन्तक पथप्रदर्शक होती है जिसकी राय उन्हें माननी चाहिए । क्योंकि उनका हृदय किसी अन्याय्य बात को सोच ही नहीं सकता ।

एवमादिभिः—अर्थात् उपायैः । सा = उर्वशी ।

तदाश्रयिणी—उसके विषय की ।

भावगम्यम्—मन द्वारा चिन्तन करने योग्य ।

मखजम्—विश्वजित् नामक यज्ञ से पैदा हुई । विश्वजित् नामक यज्ञ में रघु ने अपनी सारी सम्पत्ति दा । कर दी थी ।

इयम्—मालविका । प्रेक्ष्यभावेन—नौकर की हैसियत से । वा—समान ।

पक्तिरथः—दशरथः । पक्ति—दस नियमों का उल्लंघन करके जो दशरथ ने किया था वह वस्तुतः उन्हें मना किया गया था । [तब बुद्धिमान् राजा होकर उन्होंने इस कर्म को कैसे कर डाला] क्योंकि अन्धकार (मद) से अन्धे होकर विद्वान् लोग भी ग़लत रास्ते पर चले जाते हैं ।

शकटेन—शकटदासेन ।

खण्डनहेतव—उसको निराश करने के बहाने ।

उन्तीसवाँ पाठ

पृष्ठ ३०१

शक्ति—राजा की शक्ति, प्रभुशक्ति, जिसमें तीन अंग होते हैं—

प्रभावशक्ति—स्वयं राजा का ऐश्वर्य ।

मंत्रशक्ति—अब्जो राय की शक्ति । उत्साह—शौर्यशक्ति ।

कल्पान्तदुःस्था—कल्प के अन्त में विपद्ग्रस्त दशा में । कल्प—
अखिल विश्व के प्रलय का समय । ऊँहे—उठा लिया गया अथवा खींच
लिया गया ।

पर—शत्रुः । बढ़ते हुए शत्रु तथा रोग को । वद्वान् लाग एक समान
मानते हैं अर्थात् यदि उनका बढ़ना ठीक समय पर नहीं रोक दिया जाता
तो वे घातक सिद्ध हो जाते हैं ।

त्वत् प्रबोधप्रयुक्तम्—आपको जगाने में प्रयुक्त की हुई ।

सर्वतोमुखम्—जिसके मुख सभी दिशाओं में हो ।

स—हिमालय पितृणां मानसी कन्याम्, वह कन्या पितरों के मन से
पैदा हुई थी ।

नव इव चिरेणापि—यद्यपि चिरकाल व्यतीत हो गया, तथापि मेरा
शोक मानो नया हो गया है ।

असौ—इशुमान् ।

स्फुटन्निव—मानो आन्तरिक उद्गार के कारण फूट रही थी ।

वयो—राम तथा लवकुश में जो समानता थी वह केवल अवस्था
और वस्त्र में भिन्न थी, अन्यथा और सभ बातों में मिलती जुलती थी
अर्थात् लवकुश तथा राम अवस्था और वेष क अतिरिक्त अन्य सभा बातों
में मिलते जुलते थे ।

नास्तिकम्प व्यतिष्ठत्—बिला आँख झपाए खड़ा था, उनका ओर
टकटकी लगाकर खड़ा था ।

मरुत सुत—भीम । दर्शितविक्रियम्—जिसने अपने मन का
विकार दिखा दिया था ।

तद्योधा—उसके योधा लोग ।

श्रुतमधिगम्य—प्रखर ज्ञान प्राप्त करके । शरीरजन्मन रिपून्—

काम, क्रोध, लोभ, इत्यादि छु विकार ।

प्रियप्राया—प्राय दया से भरी हुई । जिसका स्वाद पहिले अथवा पीछे कभी भी विकृत नहीं होता, अर्थात् जो सर्वदा एक समान रमणीय रहती है ।

न सस्थास्यते—नहीं रुकेगी, पूर्ण होगी ।

सीताम्—द्रष्टुम् का कर्म । उपाक्रंस्त—समुद्रतट की तरफ बढ़ा ।

यावदर्थपदाम्—अर्थ को स्पष्ट कर देने भर के लिए जिसमे शब्द थे ।

अखिलीकृत्य—बिना उसको शक्तिहीन किए हुए ।

मोपयध्वम् भयम्—भय मन करो । महेन्द्र—एक पर्वत का नाम है । धैर्यमाधिपत—उनके हृदयो ने हिम्मत धारण की ।

तीसवाँ पाठ

पृष्ठ ३१३

नरपतिप्रबोधनार्थम्—राजकुमार की जो आँखे राजा के ऊपर लगी हुई थी उन्हें चाण्डालकन्या का तरफ फेरने के लिए ।

अनाश्रवासीन् - परवाह नहीं किया । समगिरेताम्—प्रण किया ।

प्रतिविधाय तिष्ठत्सु—राजा के जो मनसूखे सम्भव थे उनके विरुद्ध कार्यवाई करके ।

वतैयते—प्रपना भरण पोषण करता है । स्वत मारे हुए हाथियों पर जाँविका निर्वाह करता है । जा महान् पुरुष अपनी ही शक्ति से समार का नीचा दिखा देता है वह अपने भरण पोषण के लिए दूसरों से इच्छा नहीं रखता ।

अस्तसंख्यम्—अनगिनती । अत्र—इस युद्ध मे ।

शक्ति—बल और तीनों राज-शक्तियों । पाङ्गुण्यम्—छ उपाय ।

अगानि—शरीर के अवयव तथा किसी राज्य के अगभूत भाग ।

ना कस्यचिदुपस्कृथा—मेरे लिए भोजन की बहुत सी सामग्रियाँ मत तैयार करो (दृश्यपेयभोज्यादिकं किमपि मा कुरु) ।

वदमान—चमकता हुआ (भासमान) ।

व्यवहर्तुमभियोक्ष्यते—प्रदालत म जाने के लिए प्रयत्न करेगा ।
कौपीनावशेषम्—उस एक दम दरिद्र बना देंगे ।

कृतपूर्वसर्विद्—जिन्होंने अपने मनसूखे की पूर्ति के लिए पहिले षडयन्त्र रचा था । समयोपलभ्यम्—अज्ञ के प्रस्थान के समय मिलने वाला ।

सविदामीश—शक्तियों के स्वामी । विरोध्य—जो मूर्खता के कारण शत्रुता कर लेते हैं परन्तु बाद में नम्र हो जाते हैं उन लोगों का ।

शान्तिमधिकृत्य—शान्ति के विषय में । स्वन्तम्—शोभन अन्तःपरिणामः यस्य स, तथोक्तम् ।

भूपति—चेदिराजः । यह सम्भव नहीं है कि सिंह (कृष्ण) आक्रमण के डर के मारे आसानी से दुबुक जायेंगे ।

उदधिश्यामसीमाम्—जिसकी बाली काली सीमा समुद्र है, अर्थात् समुद्र तक । नगर पुर द्वार की अर्गला के समान लम्बी भुजाओं वाला अर्थात् विपुल शक्ति वाला ।

लतां नतयमानवत्—मानों हवा के झोंके के साथ लता को नचाता हुआ । सत्रस्ता—रावण से डरे हुए । नायासयन्त—हस्तक्षेप नहीं किया, कुछ भी प्रभाव नहीं डाला । स्मरात्—काम पीड़ित होने के कारण ।

परिशिष्ट—१

चुने-चुने शब्दसमूह तथा मुहाविरें

स दैवाधीन कृत, यद्भावि तद्भवतु इत्युक्त्वा परित्यक्त—वह अपने भाग्य पर छोड़ दिया गया।

तव निर्णये स्थास्यामि, तव निर्णय प्रमाण—आप का निर्णय मुझे मान्य होगा। प्रतिज्ञाम्—अभिसंधा-पालयति—अपनी प्रतिज्ञा का पालन करता है।

यथाशक्ति, यावच्छक्यं—अपने भरसक, जहाँ तक हो सके।

बहुकौतुक स देश—वह देश कौतुकों से भरा हुआ है।

पचवर्षदेशीय—लगभग पाँच वर्ष का। मध्याह्नप्राय कल्प-समय—लगभग दोपहर है। कि कर्तुमुद्यतोसि, किंकार्यव्यग्रोसि, किमारभस्त्वंम्—किस फेर फार में हो।

स सर्वेषा मूर्ध्नि तिष्ठति—वह सब के ऊपर है। अदत्तावकाशो मत्सरस्य—जलन या डाढ़ से परे।

सा दारुणा प्रतिज्ञा लोके प्रकाशतां गता-प्रकाशीभूता—वह भयंकर प्रतिज्ञा समाप्त में ज्ञात हो गई।

शून्यमनस्क, शून्यहृदय, हृदयेनामन्निहित, विगतचेतन—अन्यमनस्क कृतमेतादृशेन असंगतेन प्रलापेन—इस तरह की असंगत बातें न करो मनोरथानामगतिर्न विद्यते—इच्छा के लिए कोई चीज अगम्य नहीं।

मरण प्रकृति विकृतिर्जीवितमुच्यते—मृत्यु प्राकृतिक चीज है, जीवन तो केवल विकारमात्र है।

भावमनुप्रविश—अपने आप को हिंसा की इच्छा के अनुकूल बनाना ।

एकचित्तीभूय—एक हो कर । यदृच्छया, स्वयं, स्वेच्छात्—अपना इच्छा ने । तद्वचनानुसारेण अनुरोधेन—उसके कहने के अनुसार । अनुज्यष्टम्—व्यष्टता के अनुसार ।

राजोत्तम मात्रा-गणना मम—मेरे लिए राजा किस लम्बा म है, मैं राजा का कुछ भाग परवाह नहीं करता ।

दैवहस्तकम्, दग्धदेवम्, हनदैवम्—अभाग्य, दुर्भाग्य ।

बलवता शिरावेदना मा बाधते—मुझे बहुत जबरदस्त सरदब है ।

भवताऽविनयमन्तरेण परिगृहीतार्था कृता देवी—रानी को तुम्हारी वृष्टता के विषय में अवगत करा दिया गया ।

ते स्वयम् साधु निरवाहयन्—आचरन्—उन लोगों ने भर्त्सना में व्यवहार किया ।

शामने तेषु भर्तु—अपने पात का आश के अनुसार कार्य करा ।

लक्ष्मीभूमिकाया वर्तमाना—लक्ष्मी का अभिनय करने वाली ।

कुरु प्रियसखीवृत्ति सपत्नाजन—अपना सोता के प्रातः प्रियसखा का सा व्यवहार करना । मना वाक्-काय कम भि—मनसा, वाचा, वर्मणा ।

कुशाग्रबुद्धि—तेज बुद्धि वाला ।

यथाकाल व्यवहर—पा स्थितियों के अनुसार अपना आचरण बनायी ।

तस्यैकदेश अभिनेयाथ कृत—इसका एक अंश अभिनय के योग्य बना दिया गया है ।

लक्ष्मी तनोति—शोभा का बढ़ाता है ।

गंडस्थोपरि पिटिका सवृत्ता, अयमपरो गंडस्थोपरि स्फोटः—पहिले अन्तर्ग के ऊपर यह एक और नया अन्तर्ग आकर उपस्थित हो गया (फोड़ा के ऊपर फुसी) ।

मधुरालाप, प्रियवद—मीठा वाणी बोलने वाला । अदत्त-
वाह्यनामा लेख—ऐसा पत्र जिस पर कोई भी पता न लिखा
हो । दत्तलिखितमद्वाह्यनाम पत्र प्रेषय—पत्र को मेरे पत से
भेज देना ।

आमत्रयस्य—आपृच्छस्व सहचरम्—अपने मत ने विदा हो लो ।

सर्वविश्रम्भेष्वभ्यन्तरीकरणीया—सभा गुप्त मामलो में उसे
सम्मिलित रखना चाहिए । तस्या विकारो विलबाक्षम्—उसकी बीमारी
ऐसी नहीं है जिसमें देर करने की गुजाइश हो ।

वयोवृद्ध, प्रवयस्—उम्र में बढ़ा । ज्ञानवृद्ध—ज्ञान में बढ़ा ।

मम छिद्रेण लब्धावकाश—मेरी कमजोरी में फायदा उठाकर ।

वसन्तसमयावनार, मधुप्रवृत्ति—वसन्त का आगमन ।

क्लेशलेशैरभिन्न—जराया भी थकावट से प्रभावित न होकर ।
वेतालपहत—पिशाच (भूत) से ग्रस्त । अनेकव्याध्युपसृष्ट—
अनेक रोगों से ग्रस्त । न न किञ्चिद् छिद्यते—इसमें हमारी स्थिति पर
जरा भी प्रभाव नहीं पड़ता । कृतककलह कृत्या—तकली भगडा
करके । मम वचसा तस्य हृदयं द्रवीभूतम्, मम वचसस्य
हृदये दृढ पद लेभे—मेरी बातों का उसके हृदय पर बड़ा असर
पड़ा ।

पण्डितमन्योसौ—वह अपने को पण्डित लगाता है ।

द्वौ नयौ प्रकृतार्थं गमयत—दो निषेधवाचक शब्दों से एक विधि
वाचक अर्थ निकलता है ।

इति वार्ता प्रसृता—ऐसी अफवाह फैली थी ।

अनुपूर्वश—एक क बाद दूसरा । वृत्त वृत्त सिचति—एक वृत्त के
बाद दूसरे को सीचता है ।

स पितामहनाम्नाऽभिधीयते—आहूयते—उसका नाम उसके पिता-

मह के नाम पर रक्खा गया है । प्राप्तव्यवहारदश—बड़ा हो जाने पर ।
षोडशवर्षवयोवस्थामस्पृशत्—वह सोलह वर्ष का हो गया ।

अस्मिन्विषये सर्वेषां..तेषामैकमत्यम्—इस बात पर वे सब एक-
मत हैं ।

शरसंधानं कुर्वन्—बाण का निशाना लेकर । कानिर्दिष्टकारण
गम्यते—बिना किसी निश्चित लक्ष्य के कहाँ जा रहे हो ।

प्रकाशता गम्—खुल जाना । अवलेपमुद्रा—अभिमान का रूख ।

निकृतमिवात्मानं सदृश्यं—कुद्व व्यक्ति का सा आकार बना कर ।
गगनकुसुमानि-खपुष्पाणिचि, मनोराज्यविजृम्भण—मन के लड्डू
खाना ।

अकस्मात्, महसा, एकपदे—यकायक । एतावान्मे विभवो भवत
सेवितुम्—आप की सेवा करने के लिए इतना हो कर सकता हूँ ।

एव पिडीकृत्य मद्यं विशति रूपकान्देहि—एव मिलाकर मुझे बीस
रुपए दीजिए । सर्वे मिलित्वा सप्त वयः—सब मिन कर हमलोग सात हैं ।

इयं कथा मामेव लक्ष्यीकरोति—यह कहानी मेरे ही विषय में है
क्षीणभूयिष्ठाया क्षपायां—जब रात लगभग समाप्त हो चुकी थी । अधुना
प्रभातप्राया-कल्पा रजनी—इस समय लगभग रातः काल हो गया है ।
मृतप्राय-कल्प लगभग मरा हुआ । अन्या गतिर्नास्ति, अन्यच्छरण
नालोक्यते—दूसरा कोई चारा नहीं है ।

एष तव वचसो निष्कर्ष—पिडितोर्थ—आपके भाषण का सारांश
यह है ।

अराजके जनपदे—ऐसे देश में जिसमें राजा न हो, जहाँ अराजकता हो ।

जन्मदिवस—जन्म दिन । भूततिथि—निधन तिथि ।

भवतु-तथा-इति स प्रयुवाच—उसने उत्तर दिया “बहुत अच्छा”
इदं मे इष्टसिद्धये कल्पेत—इससे मेरा काम चल जायगा ।

चिंताविषघ्नोऽगदः—चिन्ता को मिटाने वाली दवा । विषवैद्यः,
जांगुलिकः—जहरीली दवाइयाँ बेचने वाला ।

व्याजस्तुति — ऊपर से देखने में प्रशंसा ।

अस्मिन्नर्थेऽत्रभवतं प्रमाणीकरोमि, अत्र भवान् प्रमाणं—इस विषय में मैं आपमें फरियाद करता हूँ ।

साक्षी नोपतस्थौ—गवाह उपस्थित नहीं हुआ । शोभनाकृति, सुभगाकृति, चारुदर्शन, प्रेक्षणीय—सुन्दर आकार वाला । तव कथा सत्येव प्रतिभाति—अवभासते—तुम्हारी कथा सच्ची सी मालूम पड़ती है ।

सुखार्थे विषयशब्द न प्रयुजते—“विषय” शब्द सुख के अर्थ में नहीं प्रयोग किया जाता । द्वितीयगामी न हि शब्द एष न —हमारी यह पदवी किसी दूसरे में लागू नहीं होती । कोपरो नियोगोनुष्ठीयतामिति प्रार्थयामास—उसने प्रार्थना की कि अब कौनसी दूसरी आज्ञा बजा लाऊँ । वयं स्वकर्मण्यभियुज्यामहे—हमलोग अपने अपने काम में लगते हैं ।

देवि सामयिका भवाम —हे देवी, हम लोगों को समय का पाबन्द होना चाहिए ।

तीक्ष्णमति—तेज बुद्धि वाला । मदधी, स्थूलबुद्धि—मोटी बुद्धि वाला प्रस्तावसदृश, प्राप्तकाल, कालोचित, समयानुरूप —अवसर के लिए उपयुक्त ।

न ते वचोऽभिनदामि—मैं तुम्हारे वचनों का अनुमोदन नहीं करता । युवानो विस्मरणशीला —नौजवान लोग भूलककड़ हथ्था कर= हैं (चीजों को भूल जाया करते हैं ।) अतिस्नेह पापशंकी—अतिस्नेह से पाप की शंका होने लगती है ।

लोके गुरुत्व विपरीतता वा स्वचेष्टितान्येव नरं मयति—मनुष्यों को अपने हा कार्य उन्हें बड़ा अथवा छोटा बना देते हैं ।

बध्नाति मे चक्षुश्चित्रकूट —चित्रकूट मेरे नेत्रों को आकृष्ट करता है।

अव्याजमनोहरम् अकृत्रिमलावण्य निसर्गरमणीय वपुः—प्रकृत्या सुन्दर शरीर ।

गुणास्तावत्तस्य नैव विद्यते—गुण तो उसमें एक भी नहीं हैं ।

शीघ्रमिति मुकर—रही करने की, सो तो सरल है। पितेति मां स मानयति—यह पिता हैं ऐसा समझकर मुझे मानता है।

वेलोपलक्षणार्थम्—समय मालूम करने के लिए।

कस्मिन् दोषं निक्षिपामि, क दोषपक्षे स्थापयामि—किसके मध्ये दोष मट्टे।

भस्मीकृत, भस्मसात्कृत—गाव कर डालना। भस्मीभू—राख हो जाना। तस्य वदनं हर्षोत्फुल्ल वभौ—उसका मुखड़ा हर्ष से खिल उठा। सर्व विपर्यास यात—मभी चाजे बदली हुई थी।

उदगभिमुख मे गृहम्—नेरे घर में उत्तरी भूलक है

दूराखुडा-दूराधिरोहिण-उत्सर्पिण खलु एते मनोरथा वस्तुतः ये बड़ी उच्चाकाक्षाए हैं।

मृगा मृगैः मगमनुव्रजन्ति—हिरन हिरनो के साथ रहते हैं।

कृतक-मौनम्, मिथ्या मौन—दिग्वावटी मौन।

इति मे निश्चयः, दृढ मन्ये—मुझे प्रग विश्वास है।

उपचारातिक्रम - प्रणिपातलघन - प्रमादुर्मयमारभ—दृष्टवत् प्रणाम का तिरस्कर करने का प्रायश्चित्त करने के लिए यह काय है।

लोकापवादां बलवान्मतो मे—मैं लोकनिन्दा को बहुत महत्व शाली चाँज मानता हूँ। नृपे सुन्दरमनुरक्ताः प्रजा—प्रजा, राजा मे बहुत जवर्दस्त अनुगम रग्यता हैं।

युवतयो गुह्यिणीपदं यांति—युवती स्त्रियाँ गुह्यिणी की पदवी पानी हैं।

उदार-आर्य-नेपथ्यभृत्—बड़ी मज्जज के साथ वस्त्र पहने हुए।

वैरभाव, विपक्षवृत्ति—शत्रुता का रुख।

आत्मन्यारोपितालोकाभिमाना—अपने में मिथ्या गौरव सनभने (मानने) वाले।

राजदर्शन लेभे—राजा से मुलाकात को । दर्शनानुग्रह
मिच्छामि—दर्शन पाकर अनुग्रह होना चाहता हूँ ।

विपदुत्पत्तिमतामुपस्थिता जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु—जो पेदा
होता है वह अवश्य मरता है ।

चकित नृस्य पार्श्वमुपैमि—मे राजा के पास भयभीत होता
हुआ जाता हूँ ।

परोक्षे, परोक्षम्—गीठ पीछे । उर्वशी प्रयादेश श्रिय—उर्वशी
लक्ष्मी का मान कर देती है ।

मरुलवचनानामविषय वर्णनविषयातिक्रात मोघवर्णनप्रयत्नं-
तत्स्थानम्—यह स्थान वर्णनातीत है ।

ते कुलस्याधय—वे कुल के अभिशाप हैं ।

इति गमय कृत—ऐसा सौदा (शते) ठहरा था ।

अपि च, अपर च—अतिरिक्त ।

तस्मिन्नवसरे तेन धीर विक्रात—उम अवसर पर उमने वीरता-
पूर्वक व्यवहार किया । चित्ते अवृत्, मनसि कृ, अनुस्पृ—मन में धारण
करना । शोकवश सा गम—शोक भक्त कीजिए । गर्भेश्वर—जन्म से ही
धनवान् ।

सीतादेव्या कि वृत्त—महारानी सीता का क्या हुआ ।

आरतति हि गम्भारमथमवतीर्णानामेते वृत्ताता—इस प्रकार
को घटनाएँ हमारी मनुष्य के ऊपर पड़ती हैं ।

अश्रुतपूर्व—पहिले कभी न सुना हुआ ।

लतातरित लताव्यवहिनविग्रह—लताओं के पीछे अपने शरीर
को छिपा कर ।

भ्रूभग कृ—भौं टेढ़ी करना । स पुनरपि स्वकार्ये मनो बबध
न्यवेशयत्—वह फिर अपने काम में दत्तचित्त हो गया । भवति नम्रास्तरव-
फलागमैः—फलों के बोझ से बच्चा झुक जाते हैं । कृतनिश्चय, दृढनिश्चय

कृतसकल्प, विहितप्रतिज्ञ—तुला हुआ कटिबद्ध । परस्परवधोद्यतौ—
एक दूसरे को मारने पर तुने हुए ।

आनदपरवश, आनन्देन विगतचेतन इव भूत्वा—आनन्द के मारे
अपने आपे में नहीं रह गया । अप्रास्ताविकं, अप्रस्तुत, अप्रासंगिक,
अप्रकृतम् एतत्—यह तो प्रस्तुत विषय के बाहर है ।

अस्ति मे विशेषोऽद्य—आज मेरी तबियत अच्छी है । अभिभू-अति
रिच्—मात कर देना ।

दुर्गम, दुर्जेय, दुर्बोध—जो समझ में न आवे । आयाधिक व्ययं
करोति—वह अपनी आय से अधिक खर्च करता है । स श्रुतिपथम् अति-
क्रान्त, व्यतीत—जहाँ तक सुनाई पड़ सकता था उसके आगे चला गया ।

न मनागपि, न स्तोकांशेनापि—झरा भी नहीं ।

मृत्पिण्डबुद्धि—काठ का उल्लू ।

समेत, सह—एक साथ । आसन्नपरिचारक—अग्र रक्षक ।

भिन्नोष्टधा विप्रससार वश—कुटुम्ब आठ भागों में विभक्त हो गया ।
साहसे श्री प्रतिवसति—लक्ष्मी वार पुरुष के ऊपर कृपा करती है ।

प्रभाता रजनी—दिन निकल आया । विच्छेदमाप कथाप्रबध—
कथा में भङ्ग हो गया । सम्या स्व स्व स्थानं प्रतिजग्मु—सभा विसर्जित
हो गई । तम्याक्षणो, प्रभातमासीत्—उसके नेत्रों के सामने ही दिन
निकल आया ।

किं बहुना—सन्नेप में, बहुत कहने में क्या ।

हर्परोमाचत पुलकित कंटकित तनु—प्रसन्नता के मारे उसके
शरीर पर रोगट खड़े हो गए ।

तस्या महसा प्रावर्तताश्रुधारा—वह फूट फूट कर रोने लगी ।
संभूय प्रशंसागिर उदतिष्ठन्—(लोगों के मुँहों में) प्रशंसा फाट पड़ी ।

अप्रस्तुत किमिति अनुसधीयते—क्यों गोलमोल बातें करते हो ।
ध्रुणि परित्यज्य अध्रुवनिषेवण नेष्टम् अध्रुवाद् ध्रुव वर, वरमद्य

कपोतो न श्वो मयूर, वरं तत्कालोपनता तित्तिरी न पुनर्दिव
सातरिता मयूरी—नौ नकद न तेरह उधार ।

अनुदिवस दिन दिने दिने—प्रतिदिन । शतश—सैकड़ों ।
एकैकश आनु व्येण—एक एक करके ।

प्रयत्नसवर्धित—बड़ी देखभाल से पाला पोसा हुआ । निपुण-
मन्विष्य—सावधानी के साथ खोजकर । अधुनाह वीतचित्त—अब मुझे
चिंता नहीं । न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते—स्वेच्छाचारी पुरुष कलक की
परवाह नहीं करता । प्रतिपात्रमाधीयता यत्न—प्रत्येक पात्र की देखरेख
की जाय ।

प्रस्तुतविषये, प्रकृत—इस मामले में, वर्तमान मामले में । तेन -
यदि ऐसी बात है तो ।

कि मिष्टमन्न खरसूकराणा—भैस के आगे जान बजावे भैम खड़ी
पगुराय ।

ज्वलनमुपगत-अग्निदीप्त-गोह—घरमें आग लग गई । कर्मगृहीत,
रूपाभिग्राहित, लोप्त्रेण गृहीत—कार्य करते हुए पकड़ा गया ।

किन्नरमिथुन यदृच्छयाद्राक्षीत—सयोगवशात् दो किन्नरों को देखा ।
घुणाक्षरन्यायेन—अकस्मात् अनायास । स मया समापत्तिदृष्ट—मेरी
उससे अकस्मात् भेंट हो गई ।

स्वभावो दुरतिक्रम—स्वभाव नहीं बदल सकता । क्षीर दधिभावेन
परिणमन्ने अथवा दधिभावमापद्यते—दूध दही में परिणत हो जाता है ।

हस्ते निक्षिप्त्वा समर्पय—सौंपना । अयं जन कस्य हस्ते सम-
र्पित निक्षिप्त—यह पुरुष (मैं) किसके हाथ में सौंपा गया है ?

समाश्वसिहि, धैर्य निधेहि हृदये—धैर्य धारण करो ।

इत्थम् अथवा एवं गते-सति—ऐसी परिस्थिति में । दुर्गत, दुर्दशापन्न
दृ.स्थित—विपत्त में पड़ा हुआ । येन केनापि प्रकारेण—चाहे जिस
तरह से भी हो । यथावसर, यथाकाल—अवसर अथवा परिस्थितियों के

अनुसार ।

अतिभूमि गतो रसुरणकोऽस्या — इस स्त्री की चिता पगकाष्टा को पहुँच गई है ।

निमिमिल नरोत्तमप्रिया — राजा की प्यारी ने आँखें बन्द कर ली ।
अद्य निर्वात नभ — आज बड़ी उमस है ।

मृत्युमुखान्मुक्त — काल के गाल में बचना हुआ ।

यद्भावि तद्भवतु — जो होना हो सो हो । यद्भावि तद्भवतु शुभम्
शुभ वा — चाहे अच्छा हो चाहे बुरा, जो होना हो सो हो । प्रकृतिमापद्,
संज्ञा-चेतना-लभ-प्रतिपद्, प्रकृतो स्था — होश में आना । आगामिनि
सोमवासरे — आगामी सोमवार को ।

ता सुवशयित पृच्छ — उससे पूछो कि नींद अच्छी आए या नहीं ।
रात्रावपि निकासयितव्यं नास्ति — रात को भी मे आराम से नहीं सो सकता ।
दीर्घिकावलोकनगवात्सगता — एक ऐसी खिड़की पर बैठ कर जहाँ से
एक कुर्आ दिवाई पड़ रहा था । आकृतिविशेषेष्वाढर पद करोति —
सुन्दर स्वरूप का आदर होता ही है । पद हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते —
गुणों ने सभी जगह लोग आकृष्ट हो जाते हैं । तनुवाग्निभवोपि मन् —
यद्यपि मेरे पास भाषा-मम्पत्ति नहीं है । त वाग्वश्येवानुवर्तते — उसको
भाषा पर पूर्ण अधिकार है ।

इदं वृत्त लेख्य-पत्र आरोपय, पत्रे निवेशय — इसको लेखबद्ध कर दो ।
अस्माभि नैहैकार्याणां — जिन्होंने हमारा सहयोग दिया है ।

सहाध्यायिन् — सहपाठी । समदु खसुख — सुख तथा दुःख का साथी ।
अहमहमिकया प्रणामलालसा — प्रणाम करने का लालसा से
एक दूसरे के साथ हाड़ लगाते हुए ।

अभिनन्द्य ब्रवीति — अभिनन्दन करके कहता है । चययन्ताय सा
प्रणिपातय या मदीयो नमस्कारो वाच्य — चयवन जी ने मेरा प्रणाम
कहना । उपचारपद — लोकाचार (शष्टाचार) के वाच्य ।

स नाद्यापि पर्यवस्थापयति-सस्तभयति आत्मान—वह अब भी अपने दोष में नहीं आ रहा है ।

महदपि राज्य न मे सौख्यमावहति—मेरा बड़ा राज्य भी मुझे सुख नहीं पहुँचाता ।

अपि रक्ष्यते त्वया रहस्यनिक्षेप—क्या आप न गुप्त बात को सुरक्षित रक्खा है । विश्वास-विश्रम-भूमि, समम—वह परा विश्वास पात्र है । विश्रमस्थाने सन्—गुप्त मामलों में विश्वास करना ।

प्रसवकाल, प्रसवावस्था—किसा स्त्री का प्रसवकाल (उच्चा जनने का वक्त) । प्रसूता प्राप्तप्रसवा तद्भार्या—उसकी स्त्री सोइस म है ।

दिष्टया सुतसुखदर्शनेन आयुष्मान्वर्धते—अपने पुत्र का सुख देखने पर आप को बधाई देता हू ।

प्रसन्न-उपपन्न ते तर्क—आप का अनुमान ठीक है ।

अग्निसात्कुरु, उवलनाय समर्पय—अग्निदेव को सौंप दो ।

तस्याचरण वचसा न विम्वदात्—उसका आचरण उसकी बातों के विरुद्ध नहीं है । स्वाथ विरोधेन—अपन मतलब का पूरा पूरा पान रखते हुए । अभिरूपभृतिप्रा परिपद्—ऐसा पारपद् जिसमें आवश्यकतर विद्वान् लोग हों ।

तस्य वचसि दुराशय नाकल्पय-आरोपय—उसके वचना में बुरी भावनाओं का आरोप न कीजिए ।

तत्परतयैव वेदांतवाक्यानि योजयति—वेदान्त वाक्यों को उसीमें सम्बन्धित बताते हैं ।

जनहितमपि तावत् त्वया चितनीय-मनसि कार्यमेव-अवज्ञणीय आपको प्रजा के हित का भी ध्यान रखना चाहिए । अहितपरायणो मा भू—केवल अपना ही हित मत दाखिए । साप्रत्यक्षिकं सवाद्यताम्—ज्योतिषियों से परामर्श ले ली जाय ।

मर्मच्छिद्-भिद् मर्माणि कृतत्—हृदय को भेदना । मद्बचन-
माक्षिप्य—मेरी बात को बीच हा में काटकर ।

तस्योत्साहभंग मा कृथा—उसके उत्साह को भङ्ग मत करो ।

आनुरो जीवितसशये वर्तते—रोगी की हालत बहुत खतरनाक है।

अध तम., सूचिभेद्यं तम—घना अधकार । सतमस—सब तरफ
छाया हुआ अन्धकार ।

हाहानिनादेन दिशो बधिरयत.—“हा हा” की आवाज से दिशाओं
को बहिरा करने वाले ।

स्वासुभिर्भूरानृण्यं गत—प्राण देकर स्वामी से उन्मृण हो गया।

पश्चिमे वयमि, परिणतवयसि—वृद्धावस्था में ।

दूरगतमन्मथ सा, अतिभूमि गतोस्या अनुराग—उमका बहुत
गहरा प्रेम हो गया है ।

मम विहार परिच्छेदातीत—मेरी मनोव्यथा वर्णनातीत है ।

एकस्य मूल्येन व्यय शुध्यति, सर्वा व्ययशुद्धि सपद्यते—एक
की मूल्य से प्राप्त आय में सारा खर्च चलता है ।

वैद्ययत्नपरिभावी गद—वैद्यों के प्रयत्नों को विफल करने
वाला रोग ।

दीर्घसूत्री विनश्यति—बहुत देर लगाने वाला नाश को प्राप्त
होता है ।

वसुधा तस्य हस्तगामिनीमकरोत्—पृथ्वी उसके हाथों में सौंप दी ।
लेख तस्य हस्त प्रापयिष्यामि—पत्र को उसके हाथ में दूँगा ।

सर्व दैवाधीन-आयत्तं—एक कुछ भाग्याधीन हुआ करता है । मया
प्रायोपवेशनं कृत विद्धि—निश्चय समझिए मैं अनशन करके मर
जाऊँगा । असशय, नियतं, नूनं खलु अवश्यमेव निमित्तसव्यपेक्ष—
किसी कारण के ऊपर निर्भर करने वाला ।

विषण्ण, मुकावयव—खिन्न, दुःखित, उदास ।

सर्वजनम्योपहस्यतामुपयांति—सभी लोग मे हँसे जाते हैं ।
 तस्याः श्रीर्वचनानामविषया—उमका सौन्दर्य वर्णनातीत है ।
 सविस्तर सविस्तरेण, विस्तरत-श सुविस्तर—विस्तारपूर्वक ।
 सा पुपोप लावण्यमयान् विशेषान्—अथवा मनोहर वपुः
 प्रचीयमानावप्रा—उसके सुन्दर सुन्दर अंग बढ़ते गए ।

क्षुण्णाद्वर्त्मनो रेखामात्रमपि न व्यतीयु —पीटी हुई लकीर में बाल
 भर भी बाहर नहीं गए ।

नाहमात्मविनाशाय वेतालात्थापन करिष्यामि—अपने ही नाश
 के लिए मैं पशुान को नहीं उठाऊँगा ।

पुत्रसक्रातलक्ष्मीका गुणवत्सुतरोपितश्रिय —पुत्रों को सम्पत्ति का
 सारा भार देकर ।

नुमार्थवचन—ऐसी बात जिसका नाम निशान न रह गया हो ।

अराम्य वैर—गरी शत्रुता ।

स लोष्टघात हत —डेला मार मार कर वह मार डाला गया ।

अव्यतिरिक्त्यममच्छरीरात्—यह मेरे शरीर से भिन्न नहीं है ।

विपमपदविमर्शिनी टीका—कठिन कठिन विषयो को स्पष्ट करने
 वाली टीका ।

आत्मन्यप्रत्यय चेत —अपने आप में विश्वास नहीं है ।

अलमप्राप्तगिकेन, अप्रमगेन, प्रकृतमेवानुसधीयता—असम्बद्ध
 बातें न करो ।

चक्षुर्विपयातिक्रातेपु-नयनपथातीतेषु-अतरितेषु- अदृष्टि-गोचरेषु-
 अतर्हितेषु-कपोतेषु—कबूतरों के गाघन हो जाने पर ।

कर्तव्यानि दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि—दुःखित व्यक्तियों को
 चाहिए कि अपने दुःखों की शान्ति कर ले ।

शिष्य उपदेशं मलिनयति—शिष्य उपदेश की बदनामा कराता है।

प्रकृत-प्रस्तुत अनुस्र अथवा अनुसधा—विचाराधान विषय की तरफ आना ।

प्रस्ताव , प्रस्तुत-प्रकृत विषय , प्रस्तुत, प्रकृत—विचाराधान विषय।
तपस्विव्यजनोपेता , तापसच्छद्धाना, तापसरूपधारिण —तपस्वी का वप धारण कर ।

निष्कारणो बधु —निष्प्रयाजन ।मत्र ।

नम द्रव्यस्य कथ त्वया विनियोग कृत —मरे द्रव्य को आप ने किस प्रकार व्यय किया ।

अह त्वदधीनोऽस्मि—म आर के अधीन हूँ । अयमर्थस्त्वदायत्त ,
अत्र भवान् प्रभवति—यह मामला आपके अधीन है । कलहशील,
कलहकाम—झगड़ा करने वाला ।

किं वो विशादवस्तु—आप लोगों का झगड़ा किस बात पर है ।
वादप्रस्तोर्थ —झगड़ वाला विषय ।

अतिथिविशेष —अमाननीय अतिथि ।

एव तावद्वक्तृपाभि, अन्यत सचारयामि—मैं इस प्रकार उसके विचारा का दूसरी तरफ लगाऊँगा ।

अतर्भेदाकुल गृह —अपन म ही फूटा हुआ घर ।

अपि कुशल-शिव भवत —आप का कुशल तो है ? त्वा सुख-
कुशल पृच्छति—आपका कुशल पूछता है । देवी सुख प्रष्टुमागता—
रानी आपका कुशल पूछने आई है । अल निर्वधेन—दृढ मत करो ।
किमस्माक स्वामिचेष्टानिरूपणेन—स्वामी की चेष्टाओं की देखरेख
करने न हमें क्या प्रयोजन ?

मनो मे मशयमेव गाहते अथवा आशकते—मेरा मन अब भी
शका न पड़ा है ।

नतोऽतभूमिभाग , उखातिनी भूमि.—ऊँची नीचा जमीन ?
पाततनान—उत्थान पतन । नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण

जिस प्रकार गाड़ी का पहिया ऊँचे और नीचे को जाता आता रहता है उसी प्रकार मनुष्य के जीवन में उत्थानपतन हुआ करते हैं । निपात्यतां-उच्छेद्यतामश्चसौ प्रजापीडक —अत्याचारी का नाश हो ।

परिणतप्रायमह —दिन ढल रहा है, सूर्यास्त होने वाला है ।

त्वया स्वहस्तेनागारा कर्षिता —तुमने तो अपने हाथों ही सत्या-नाश कर डाला ।

द्वीपिचमपेरिच्छन्न गर्दभ —व्याघ्र की खाल में ढका हुआ गदहा ।

चापलाय प्रचोदित —चपलता करने के लिए प्रेरित हो कर ।

अविरलवारिधारासपात, पटुधारासार —निरन्तर जल धारा ।
किमुद्विश्य भवान्भाषते—आप किस बात की तरफ लक्ष्य करके कह रहे हैं ।

मा भवानगानि मुचतु—निराश मत होइए । मुक्तैरवयवैरशयिषि-अग अग शिथिल हो जाने पर मैं सो गया । ससते देहबंध —सारा शरीर शिथिल हो रहा है ।

जलबिदुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः—बूँद बूँद से घट भरै ।
कन कन जोरे मन जुरे ।

सह्यितामिय कथा—इस विषय को छोड़िए । अवसन्नप्रायाणि मे गात्राणि, सीदति अगानि—मरे अग प्रत्यंग शिथिलप्राय हो रहे हैं ।

शिखी केकाभिस्तिरयति मे वचन —मोर अपनी बोली से मेरी आवाज को दबा लेता है ।

श्रवणगोचरे तिष्ठ—ऐसे स्थान पर खड़े होओ (रहो) जहाँ बात सुनाई पड़ सक ।

महति प्रत्यूषे—बड़े प्रातः काल ।

न परिहसामि, नायं परिहासस्य समयः—हँसी नहीं कर रहा हूँ । परमार्थेन ग्रह् सच्चा मानना ।

लब्ध स्वास्थ्य मया, अह निर्वृत, वीतचित्तः—मैं स्वस्थ चित्त हूँ ।
जातो ममायं विशद प्रकाम अतरात्मा—मेरी आत्मा पूर्णतया
स्वाथ है । यथाकाम, पर्याप्त, प्रकाम—स्वेच्छानुसार

सुखसुप्त—सुख पूर्वक सोया हुआ ।

फल, मूर्च्छ—प्रभाव करना । मारुतस्य रह शिलोच्चये
न मूर्च्छति—वायु का वेग पर्वत के ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं कर
सकता । मूर्च्छस्थमा विकारा ऐश्वर्यमत्तेषु—प्रभुता से मतवाले पुरुषों
के ऊपर ये विकार बड़ा प्रभाव करते हैं । निशि मूर्च्छतां तमसा—रात्रि
में घना होने वाला अंधकार । वज्र तपोवीर्यमहत्सु कुठम्—घोर उपस्था
करने वालों पर वज्र कुछ भी प्रभाव नहीं डालता । इति, एतदभिप्रायः
अर्थत, वस्तुतः —असल में ।

नृपस्तस्या बद्धभाव, कृतानुराग, प्रीति-भाव बबन्ध—राजा
उससे प्रेम करने लगा ।

शृणु मे सावशेष वच —मेरी बात अन्त तक सुनो । कल्याणोदक-
स्वतं-मविष्यति—इसका परिणाम अच्छा होगा ।

अलमतिविस्तरेण—बहुत विस्तार मत करा । अलं-कृत-परि-
हासेन—हँसी न करो

कुतूहलेन तस्य चेतसि पद कृतं—उसके हृदय में उत्सुकता
पैदा हो गई ।

मानमर्हति, मान्य, पूज्य —वह सम्माननीय है । स पुरस्कारम-
र्हति—वह प्रथम पूजे जाने योग्य है ।

परसुवासहिष्णु—दूसरों के सुख से ईर्ष्या करने वाला । ते परस्पर-
यश पुरोभागा —वे एक दूसरे की कीर्ति से ईर्ष्या करते हैं ।

तुलया वृ—बराबर समझना । तत्कार्यं साधयितुमल स.—
वह इस कार्य को करने में समर्थ है ।

प्रतिज्ञासनम्—उद्देश लेकर भोजना ।

बधनभ्रष्टो गृहकपोतश्चिल्लाया मुखे पतित — कुआँ से बच कर
वह खाई में जा गिरा ।

कथ कथमपि मुक्त — बाल बाल बच गया ।

सुरक्षिता ता प्रेषय — उसको सुरक्षित करके भेजो ।

अत्यतविलुप्तदर्शन, एकातनष्ट — सदा के लिए गायब ।

असन्निवृत्त्यै गत, अत्यतगत — सदा के लिए चला गया ।

अप्रबोधाय सा सुष्वाप — वह सदा के लिए सो गई ।

अब्रह्मण्य, अत्याहितं — महान् अनर्थ हो गया ।

स सत्कारो मम मनोरथानामप्यभूमि — स्वागत आशातीत हुआ ।

उत्सर्गा सापवादा — नियमों में अपवाद हुआ करते हैं । अप-
वादैरिवोत्सर्गाः कृतव्यावृत्तयः — सामान्य नियम अपवादों से नियमित
रहते हैं ।

इति लोकवाद न विसवादमाप्नादयति — इस उक्ति में अपवाद
नहीं है । प्रतिप्रसव — अपवाद का भी अपवाद ।

शिरःशूलस्पर्शनमपदिशन् — सिर दर्द का बहाना करता हुआ ।
अन्यमयापदेशेन — बीमारी का बहाना करके ।

स्वनियोगमशून्य कुरु, अनुनिष्ठात्मनो नियोग — अपना काम करो ।

असौ क्रमाद्यौवनभिन्नशैशवः — उसका शैशव धीरे धीरे युवावस्था
को प्राप्त होगया । हर्षोत्फुल्लनयन — हर्ष के मारे उसकी आँखें खिल उठी ।

भवतात्मा क्लेशस्य पदमुपनीतः — आने अपने को क्लेश में डाल
दिया । स कातर इति वाच्यतां गत — “वह कायर है” ऐसी बदनामी हुई।
सा तडुलान् सूर्यातपे दत्तवती, अतपायोऽभिमतवती — उसने चावलों
को घाम में फैला दिया ।

क्रियताप्यशेन, ईषत्, मनाक् — कुछ अश तक । सर्वथा — सब
प्रकार से ।

लोकदृष्ट्या—सब साधारण जनता की दृष्टि से । अक्षिगतोहं तस्य—
मैं उनकी आँखों की किरकिरी हूँ ।

मुखामुखि, समुखं—आमने सामने—पूर्वामुख गृह—ऐसा घर
जिसका मुँह पूर्व की ओर हो ।

वस्तुतः, तत्त्वतः—असल म । वस्तुवृत्तेन, परमार्थतः, तत्त्वतः—
असल में ।

सकटष्वविषण्णधी—सकट क समय जिसकी बुद्धि व्यथित न हो ।
फले विसवदति—फल देने में असमर्थ है ।

तस्य धैर्यं न हीयते, न स्खलति—उसका धैर्य क्षीण नहीं होता ।
पत्राभावे—पत्र के अभाव में । तस्य स्मृतिलोप सजात—उसकी
स्मरण शक्ति लुप्त हो गई । सन्ततिविच्छेद, लोप—अन्तान का न होना ।
अनिर्वेद. श्रियो मूल—दुःखी न होना लक्ष्मी का मूल है ।

सुदिन—अच्छा दिन ।

पातोत्पातौ, व्यसनोदयौ—उत्थान तथा पतन । स लक्ष्यच्युत-
सायकोभूत्—उसका बाण निशाने से चूक गया । तत्र महिमानमुत्कीर्त्य
वच. सहियते—आप की महिमा बखान करने में वाणी असफल हो
जाती है ।

लुप्तप्रतिज्ञ, असत्यसन्ध, भग्नप्रतिज्ञ—अपनी प्रतिज्ञा को न पालन
करने वाला ।

अतिपरिचयादवज्ञा—अत्यन्त घनिष्ठता होने से अपमान होने
लगता है ।

को वृत्तातस्तत्रभवत्या—श्री मती जी का क्या हाल है ?

नात्र मुनिर्दोषं ग्रहीष्यति—मुनि जी इसमें दोष न निकालेंगे ।

दृष्टदोषा मृगया—शिकार के दोष चिदित हैं ।

सहृदय, सचेता—सहृदय । सचेतसः कस्य मनो न दूयते—किस

कोमल हृदय व्यक्ति का मन दुखी नहीं होता ।

आत्मान मृतवत्सदर्शयामास—अपने को मरा हुआ सा दिखला दिया । कृतकक्रोध कृत्वा—भूटा गुस्सा करके, गुस्से का बहाना करके । प्रसुप्तलक्षण, व्याजसुप्त, लक्षसुप्त—सोने का बहाना करके ।

पर्याप्तमाचामति—पेट भर पीता है ।

तै सोपराधी स्थापित —उन लोगों ने उसे अपराधी ठहराया ।

उदार -प्रथमः कल्प —अच्छा (सुन्दर) प्रस्ताव ।

सुश्लिष्टमेतत्—यह ठीक ज़ेचता है ।

मनुस्त्रासकदृष्टि —मेरे मुँह की तरफ दृष्टि लगा कर । आसक्त-बद्ध-दृष्टि —टकटकी-लागाकर । स्तिमित-अनिमेष लोचन—निश्चल दृष्टि से । मनो निष्ठाशून्य भ्रमति—अस्थिर मन भ्रमता रहता है ।

रधान्वेषिन्, छिद्रान्वेषिन्—दोष ढूँढने वाला ।

सप्तभूमिकः प्रासाद —सात मंजल वाला महल ।

हस्तौ समानीय, अजलि बद्धा, कृताजलि, सा (प्रा) जलि—हाथ जोड़ कर । भुजाभ्यां तामापीड्य—दोनों भुजाओं से आलिगन करके ।

महतां पदमनुविधेयम्—बड़ों के मार्ग का अनुसरण कीजिए । पदवीं प्रतिपद्य पुरस्कृतमध्यमक्रम —बीच के मार्ग के अनुसरण करके । दुःखं दुःखानुबधि, विपद्विपदमनुबध्नाति—विपत्ति एकके बाद दूसरी आती जाता है । अतः किं प्राप्नोति—इससे क्या निष्कर्ष निकलता है । परस्ताद्वगम्यते—जो इससे बाद आवेगा वह समझ लिया गया । ततस्ततः —आगे कहिए । तथा—वह इस प्रकार है ।

शांत पापम्, प्रतिहतम् अभगलम्—ईश्वर न करे ।

स्वनामत्यागं करोमि—अपना नाम कहाना त्याग दूँगा ।

तार्ण-पूर्ण-प्रतिज्ञा, पालितसगरः, सत्यप्रतिज्ञा, सत्यव्रतः, सत्य-संध —प्रतिज्ञा पालन कर चुका हुआ ।

अधुना मुच शय्याम्—अब बिस्तर छोड़ दीजिए ।

युद्धाय सनद्धा अथवा वद्धपरिकरास्ते—उन लोगों ने युद्ध के लिए कमर कस लिया है।

शुचो वश मा गम, शोकाधीन मा भू, वैक्लव्य मावलवस्व—शोक मत करो।

ज्वलन्निव ब्रह्ममयेन तेजसा—ब्रह्ममय तेज से चमकता हुआ सा।
इति ख्यातः, कृतनामधेयः, दत्तसंज्ञः—वह इस नाम से प्रसिद्ध है। उमाख्यां सा जगाम—वह उमा नाम से प्रसिद्ध हुई।

किं तथा दृष्ट्या, कोर्थस्तस्या दर्शनेन—उसका दर्शन करने से क्या लाभ। अलं परिदेवनेन—रोंने से क्या लाभ, मत रोओ।

मृत्युमुखे वर्तते, कालालीढ, मृत्युगोचरं गत—वह मृत्यु के मुख में है। इदं च अशेषविद्याग्रहणसामर्थ्यं—समस्त विद्या को प्राप्त कर लेने की यह सामर्थ्य। ममाशय सम्यग्गृहीतवानसि—आपने मेरा अभिप्राय पूर्ण रूप से समझ लिया है।

आनन्दस्य परां कोटिं काष्ठाम् अधिगत—वह बहुत प्रसन्न हुआ।

रोषात् दंतैर्दन्तान्निष्पिष्य—क्रोध के मारे दाँतों को पीसता हुआ।

यौवनपदवीमारूढः, प्राप्तयौवन, यौवनदशामापेदे—वह युवावस्था को प्राप्त हो गया। वत्सतरः महोक्षतां स्पृशति, महोक्षभावं अयति—बछुवा बड़ा बैल हो जाता है।

तस्याः आबद्धधारमश्रु प्रावर्तत, उद्धाष्ये नयने जाते—उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली।

चौर्यवृत्ति—चोरी की आदत। ज्ञातदुःख, दुःखशील, परिचित-क्लेश—विपत्ति भागने में अभ्यस्त।

रेखामात्रमपि—बाल भर मा।

सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्थं त्यजति पंडित—सर्वसं जाता देख कर आधा लेय बैठा।

बाहुयुद्ध—हाथों का युद्ध । एकतः-अन्यतः, एकच-अपरच - एक तरफ तो यह—दूसरी तरफ । तु, तावत्—इसके विपरीत । सर्वथा, सर्वत्र—सबत्र । दत्तहस्तावलव—हाथ बँटा कर । परपरया आगम्—परंपरा से चला आना ।

त्रिशकुरिवातरा तिष्ठ—त्रिशकु की तरह बीच ही में लटके रहो ।

आवेद्यति प्रत्यासन्नमानद अग्रजातानि शुभानि निमित्तानि—होनहार बिरवान के होत चीकने पात ।

अहो दारुणो दैवदुर्विपाक —हाथ रे दुर्भाग्य । प्रबलक्षुधावसन्न—भूख से खूब व्याकुल ।

तव मुख कमलश्रियमुद्रहति-आहरति-कलयति—तुम्हारे मुख में कमल की शोभा है ।

सशयितजीवित —अपने जीवन को खतरे में डालने वाला ।

धुरि कीर्तनीय, प्रतिष्ठापयितव्य—सब के आगे रक्खा जाना । स सर्वेषा धुरि मूर्ध्नि-तिष्ठति—वह सब के ऊपर है । वसिष्ठाधिष्ठिता, वसिष्ठपुर सरा -प्रमुखा -पुरोगमा —जिसके अगुआ वसिष्ठ थे ।

व्रणविरोपण तैलम्—फोड़े को अच्छा करने वाला तेल ।

सुस्थोसौ, कुशलमस्य—वह कुशल पूर्वक है । पूर्ववत्-प्रकृतिस्थ. समजायत—पहले की तरह स्वस्थ हो गया ।

किमस्मान् सभृतदोषैरधिक्षिपथ—हम लोगों के ऊपर लाछन क्यों लगाते हो ?

इति कर्णपरपरया श्रुतमस्माभि —हम ने लोगों के मुँहों से यह बात सुनी है ।

सोत्साह, सर्वात्मना—पूरे दिल से । सर्वात्मना तस्मिन्कर्मणि स व्यापृतः—वह तन मन से इस काम में लगा है । यथेच्छं, पर्याप्तं, प्रकामं, निकामं—अपनी इच्छा भर ।

दीध स्थूलस्थूलं नि.श्वस्य—बड़ी गहरी साँस लेकर ।

भूस्वर्गायमानमेतत्स्थल, भूलोकगत स्वर्ग—यह पृथ्वी पर स्वर्ग है ।

अहमनुपदमागत एव—मैं तुम्हारे पीछे-पीछे अभी आता हूँ ।
जघामवलब्—नौ दो ग्यारह हो जाना ।

विना पुरुषकारेण देव न मिध्यति—परमात्मा उनकी सहायता करता है, जो अपने आप अपनी सहायता करते हैं । का गति.,
किमन्यच्छरण—दूसरा क्या चारा है ।

हंत वीभत्समेवाग्रतो वर्तते—वह सामने बढ़ा वीभत्स दृश्य है ।

स त्वा बहुमन्यते—वह आप को बहुत मानते हैं ।

इषव सिध्यति लक्ष्ये चले—बाण हिलते डुलते हुए लक्ष्य को बेध देते हैं ।

का अथवा कियती मात्रा तेषां मम, तानहं तृणाय मन्ये अथवा तृणीकरोमि—मैं उन्हें तृण बराबर ममझता हूँ । वाचयमो भव, वाचं नियच्छ, तूष्णी जोषम् आस्व—जवान सँभालो । सर्वगामी-अव्य-मिचारी अयं नियम—यह नियम सर्वा लग जाना है । रागः शुक्लपटे स्थायीभवति—लाल रंग सफेद वस्त्र पर खूब पक्का पड़ जाता है । स लोकस्य मन आददे—सर्व साधारण जनता के मन पर उसका पूरा प्रभाव था । लेभेतर चेतसि नोपदेश, अलब्धपदो हृदि—उसके हृदय पर उपदेश का कुछ भी प्रभाव न पड़ा ।

तद्वच तस्य हृदयमर्मास्पृशत्—वह बात उसके अन्तःकरण पर असर कर गई ।

चतुर शशकान् विश्वासस्थाने धृत्वा—चार खरगोशों को जमानत के तौर पर रख कर ।

मानुषी गिरमुदीरयामास—मनुष्य की सी बोली बोला ।

इति राज्ञां शिरसि वामपादमाधाय—इसप्रकार राजाओं की नीचा दिखा कर ।

ब्रह्मसायुज्य प्राप्तः, ब्रह्मलीनः, ब्रह्मभूय गत — ब्रह्म मे लीन हो गया ।

दुर्देव, दुर्भाग्यं, मदभाग्यं, दैवविपर्यास, दुर्विपाक — दुर्भाग्य ।

अस्मार्तकालात्—युगों से, बहुत प्राचीन काल में ।

स महति जीवितसशये अवर्तत—वह बड़े भारी मौत के खतरे में था ।

अल सेवया (स्नेहभणितेन) मध्यस्थता गृहीत्वा भण—चापलूस न करो, न्यायपूर्वक बोलो ।

उन्नमत्यकालदुर्दिन—असमय का तूफान आ रहा है । अनावृष्टि सपद्यते लग्ना—अकाल (सूखा) पड़ने वाला है ।

निबन्धपृष्ठ अथवा पुनः पुनश्चानुबध्यमान म जगाद् सर्व—हठ-पूर्वक पूछे जान पर उठने सब कुछ बता दिया ।

जानकी करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव—जानकी करुण रस का साक्षात् अवतार है ।

वाच्यता याति, दोषभाजन दोषभाक्-दोषपात्र-भवति—वह कलङ्क का पात्र बन रहा है ।

किं कथ्यते श्रीरुभयस्य तस्य—उस दम्पती की शोभा अवगुणनाय है ।

सभावनीयानुभावास्याकृतिः—उसके स्वरूप से उसके प्रताप का अनुमान लगाया जा सकता है । आकृतिरेवानुमापयत्यमानुषतां—उसका स्वरूप ही बता देता है कि वह मनुष्य योनि से परे है ।

अधरोत्तरव्यक्तिर्भविष्यति—स्पष्ट हो जायगा कि कौन बड़ा है कौन छोटा है । ओजस्वितया सा न परिहीयते शक्त्या—तज में वह शक्ती से कम नहीं है । न प्रतिच्छेदात्परिहीयते मधुरता—उसकी शोभा चित्र में कम नहीं है ।

अमी विनोदनोपाया सन्दीपना एव दुःखस्य—ये विनोद तो दुःख को और भी बढ़ाते हैं ।

दर्पाध्मात, मदोद्धत, उत्सिक्त—उमड़ से मतवाला ।

निद्रावशा, निद्रा-विधेय—नीद के वशोभूत । मूढ़ परप्रत्ययनेय-बुद्धिः—मूढ़ पुरुष के मन पर दूसरो के विश्वासो का प्रभाव जम जाता है ।

पुरुषोत्तमे इति भणितव्ये—पुरुषोत्तम ऐसा कहने के बजाय । अध्ययने आरब्धव्ये किमिति क्रोडसि—अध्ययन आरम्भ करने के बजाय तुम सोते क्यों हो । हर्षस्थाने अल विपादेन—सज्ज होने के बजाय दुखी न हो ।

परोपकरणीकृत भूत—दूसरो का साधन बन कर । उपकरणीभावमा-यात्येवविधो जन—इस प्रकार के लोग सहायक साधन बन जाते हैं ।

चक्रवृद्धि—व्याज दर व्याज । सरला वृद्धि—साधारण व्याज । पचकेन शतेन पचोत्तर शत—पाँच रुपया सैकड़ा दर से । दृष्ट युष्माभि कथार-सस्याक्षेपसामर्थ्यम्—आपने देख लिया कि कथा के रस ने किस प्रकार मुझसे विषयान्तर करा दिया । स्वार्थपर, स्वार्थदृष्टि—स्वार्थ को देखने वाला । अतिरमणीय कथावस्तु—कथा का विषय अत्यन्त रमणाक है । पक्षपातिनौआवागमनयो—हम दोनों इन दोनों में पक्षपात रखते हैं ।

न चेदन्यकार्यातिपात—यदि इस कार्य से अन्य कर्तव्यों में बाधा न पड़े । अव्यापारेषु व्यापारं स करोति—वह उन मामलों में हस्तक्षेप करता है जिनसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं ।

मैनमतरा प्रतिबध्नीत—उसे मत टोको ।

काले काले, अतरा अतरा—समय समय पर ।

श्रमसहिष्णु, जितश्रम—थकावट सहने का अभ्यासी ।

नायमेकातो नियम—यह ऐसा नियम नहीं है जो बदलता न हो ।

रामस्य दैवदुर्नियोग कोपि—यह राम का दुर्भाग्य था ।

परिहासविजल्पित, नर्मभाषित—हँसी में कहा गया हुआ
 अध्वसजातखेदात्—यात्रा की थकावट के कारण । उत्थाय पुनरव-
 हत्—उसने फिर यात्रा प्रारम्भ की । सप्ताहगम्योऽध्वा—यह एक हफ्ते
 की यात्रा है ।

स्वगृहनिर्विशेषमत्र वस—यहाँ अपने घर के समान रहो ।

स्वपुत्रनिर्विशेष सम्बर्धित—पाँचात अपने पुत्र के समान पाला
 हुआ ।

जानुभ्यां अवनौ गम् अथवा पत्—घुटने टेकना । जानुद्वन्द्वयस-
 मात्र—घुटने तक गहरा ।

भ्र कुटि बन्ध् या रच्, भ्रुवौ स कुच् या भिद्—भौ मिक्कोड़ना ।
 बुद्धिर्यस्य बलं तस्य—बुद्धि ही बल है । तदाख्यया भुवि पप्रथे,
 तदाख्यां जगाम—उस नाम से विख्यात हुआ ।

चिताशतैर्बाध्यमान-अभिभूत—सैरङ्गों चिन्ताओं से पीड़ित ।

प्रतस्थे स्थलमार्गेण, वर्त्मना—स्थल से रवाना हो गया ।

अलसेक्ष्ण—अलसाई हुई आँखों वाला ।

एष ते जीवितावधि प्रसाद —यह वार्ता तुम्हारी जिन्दगी भरचलेगी ।
 कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्री—युवावस्था की शोभा केवल थोड़े
 दिनों रहती है । कालांतरक्षमा माला—बहुत देर तक टिकने वाली माला ।

अर्गलानिरुद्धं पक्षद्वारं—पक्षद्वार अर्गला से निरुद्ध था ।

किमिति चिरायित त्वया, वेलातिक्रमः कृतः—तुमने देरी क्यों की ।

मुहूर्तं तत् आस्ता, तिष्ठतु तावत्—थोड़ी देर इसे रहने दो ।

विषयसुखनिरतो जीवितमत्यवाह्यत्—विषय वासनाओं से रहित
 जीवन बिताया । चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि—चित्रकूट जाने वाले मार्ग में
 अयं पथा नदीमुपतिष्ठते—यह रास्ता नदी को जाता है ।

अनुदिवस परिहीयसेऽगै—तम प्रतिदिन दुबले होते जा रहे हो ।
 मदलेखया दत्तहस्ताबलांवा—मदलेखा की भुजाओं पर टेक लगा कर

वामहस्तोपहितवदन—अपना मुँह अपने बाएँ हाथ पर रख कर ।

त्र्यवरा साक्षिणो ज्ञेया —कम से कम तीन गवाह होने चाहिए ।

अस्मास्ववहीनेपु—हम लोगों के पिछड़ जाने पर । शान्ते पानीयवर्षे
—वृष्टि शान्त हो जाने पर ।

सुखमुपदिश्यते परस्य—दूसरे को उपदेश देना बड़ा सरल है ।

लब्धावकाश, प्राप्तावकाश, निर्व्यापार, लब्धक्षणा—फुरसत में ।

परित्रायस्वेना मा कस्यापि तपस्विनो हस्त पतिष्यति—इसकी रक्षा, करे कही ऐसा न हो कि यह किसी तपस्वी के हाथ में पड़ जाय ।

भूमिसात्कृ—जमीन के बराबर कर देना । ढरिद्रसमानतां नीत गमित—गरीबों के समान कर दिया गया ।

मनुष्या स्वतनशीला —मनुष्य से गलती होती ही है ।

यदत्रावसरप्राप्त तत्र प्रभवति भवती, बधे मोक्षे चाधुना मा ते प्रभवति—वह आप को रोकने अथवा छोड़ देने में पूर्णतः स्वतन्त्र है ।

सवथा त्वमेवात्र दोषभाक्—इतम आप ही सब प्रकार से दोषी है ।
सखीगामी अयं दोष —यह दोष मेरी सखी का है ।

प्राण्यात्रा-धारण-रक्षण—जीवन का अवलम्ब । साधुवृत्त—
सदाचारी । दशातराणि—भिन्न-भिन्न दशाएँ ।

अनया दृष्ट्या—इस विचार से गौर करने पर

एवमादि—इसी प्रकार की । यस्ते छन्द, यद्भवते रोचते,
कामचार, स्वच्छन्द, स्वैरिन्, कामवृत्ति—स्वेच्छानुसार व्यवहार करना ।
कामरूपः—इच्छानुसार रूप करने वाला । यथाभिलषित क्रियतां—
जैसा तुम्हाग मन हो वैसा करो । स न तस्या रुचये बभूव—वह उसकी रुचिका नहीं था ।

अल्पविषय तस्य यश इत्यतया परिच्छेत्तु नाल- उसके यश की कोई सीमा नहीं । न गुणानामित्यतया—गुणों को सीमितता के कारण नहीं ।

यावदह भ्रिये—जब तक मैं जीवित हूँ। वन्यफलै शरीरवृत्ति
निर्वर्तयति—जगली फलो पर जीवन निर्वाह करता है।

स्मार्ते काले—जहाँ तक स्मरण शक्ति जाती है

राजकुले राज्ञे-निविद्—मुकदमा दायर करना। नयनै-दृष्टिभि-पा,
निध्यै—किमी की तरफ बड़े गौर से ताकना। जनन्या मे योगक्षेमं
बहस्य, जननीमवेक्षस्व-चितय—मेरी माता का देखभाल करना।
धिगतासुर्बभूव, प्राणैरहीयत—वह मर गया। मित्रैर्वियुज्यते—वह मित्रों
से वियुक्त होता है। उन्मार्गगामी अभूत्—वह रास्ता भूल गया।

च्युताधिकार अधिकारभ्रष्ट —अधिकार से च्युत हो गया हुआ
क्रिर्तव्यता-प्रतिपत्तिमूढ—क्या करूँ, क्या न करूँ ऐसा सोचकर
वकराया हुआ।

उपनम्, उपस्था—भाग्य मे बढ़ा होना। तव दुःखमुपनमेत्—तुम्हारे
भाग्य मे दुःख हा बढ़ा होगा।

कस्यात्यतं सुखमुपनत—निरन्तर सुख किसके भाग्य मे बढ़ा है।

दोषमपि गुणत्वमुपपादयितु—जुरी परिस्थिति मे पड़कर जहाँ तक
हो सके लाभ उठाना। लक्ष्यभेद—लक्ष्य को बीवना।

अप्रभुरस्मि आत्मन न प्रभवास्यात्मनः, गात्राणामनीशोस्मि
सवृत्त—मैं अपने आप का प्रभु नहीं रह गया।

सकलशास्त्रपारगत, शास्त्रपारदृश्वा—जो सारा विद्याओं का
पंडित हो चुका है।

गतोसि सर्वास्वापुधविशासु परां प्रतिष्ठाम्—आपने सारी अस्त्र-
विद्याओं पर पूर्ण पांडित्य प्राप्त कर लिया है

आवां प्रतिद्वन्द्विनौ भवाव—आओ हम दोनों होड़ बंद ले।
दैत्येभ्यो हरिरलं—हरि दैत्यो के लिए काफी हैं।

अतीत्य-अतिक्रम्य वृत्—उसमे बहुत बढ़कर है।

तुल्यप्रतिद्वि बभूव युद्ध—बराबर का युद्ध था।

यत्किञ्चित्करमेतत्—कोई हर्ज नहीं । किं तस्या वृत्त, कस्तस्या वृत्तात्—उसका क्या मामला है ।

किं मम तेन कार्य-क्रोर्थ.—मुझसे इससे क्या प्रयोजन ।

सन्निधानस्य अकिञ्चित्करत्वात्—सन्निधान से कोई मतलब नहीं ।

परिणतप्रज्ञ, कठोरधी—'पक्को बुद्धि वाला । साकूत मा निर्वर्ण्य—मेरी तरफ इशारा पूर्वक देखते हुए ।

प्रत्युत् या व्रज-गम्—मिलने के लिए जाना । प्रत्युत्था, अभ्युत्था—मिलने के लिए उठना

आप सप्लवते-सभिद्यते—जल मिलते हैं ।

तस्य हृदय स्नेहार्द्राभूत, स्नेहेनाभ्यष्यदत्—उसका हृदय स्नेह से विघल गया ।

मेधाविन्, धारणावत्—अच्छो स्मरण शक्तिवाला । स्मृतिविषयता-स्मृतिपथ-रमतव्यशेष-कथावशेष गम् अथवा नी—केवल स्मरण में रह जाना ।

एको दोषो गुणसन्निपाते निमज्जति—अच्छे गुणों के समूह में एक दोष विलीन हो जाता है ।

चित्त-मनो-व्यापार-वृत्ति-मन का व्यापार । मनसि उत्-इ, उद्भू, बुद्धो मजन्—मन में आना । आस्ता तिष्ठतु तावत् प्रथम प्रश्न.—पहिली बात का कोई परवाह नहीं ।

उत्कण्ठासाधारण परितोषमनुभवामि—मुझे पश्चात्ताप-मिश्रित प्रसन्नता होना है ।

मार्गात् भ्रष्ट—रास्ता भूल गया ।

गोत्रस्खलित—नाम लेने में गलती । तस्माद्गर्दभान्-व्याघ्रधिया-बुद्ध्या पशव पलायते—पशु गदहों को बाघ समझकर भागे, जाते हैं ।

अलमन्यथा गृहीत्वा—मेरे विषय में गलत धारणा न करो ।

आपातरमणीय—इस सम्पत्ति अच्छा मालूम पड़ने वाला ।

खल सर्पपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति । आत्मनो बिल्व-
मात्राणि पश्यन्नपि न परयति—अग्ना डेढर न देखना दूसरोंकी
कृपा देखना । पर का अङ्गुन देखियत अपनो देखत नाहि ।

तिले ताल पश्यति, अणुं पर्वतीकरोति—वह राउ का पर्वत बना देता है ।
अस्मात्स्थानात्पटात्पटमपि न गतव्य—एक पग भी आगे न बढ़ो ।
कर्मणो गन्ता गति—भाग्य की अद्भुत गति है ।

अपि ज्ञायते ते नामधेयत—क्या उनके नाम जानते हो ।
अस्य सातरं नामत पृच्छेयम्—मैं उसकी माता का नाम पूछूँगा ।
नामग्रहं सामाह्वयति—वह मेरा नाम लेकर मुझे पुकारता है ।

वाच्यस्त्वया मद्रचनात्स राजा—मेरी तरफ से राजा से कह देना ।
मामुद्दिश्य तस्मै सभाजनाक्षराणि पातय—मेरी तरफ से
नमस्कार कह देना ।

मानुषतामुक्तो लघिमा—ऐसी लघुता जो मनुष्य मात्र में स्वाभाविक
होनी है ।

दुर्जातव्रधु—विराट में मित्र । स मुह्यद् व्यसने य स्यात्—जो
विपत्ति में मित्रता बनाए रखे वही मित्र है ।

मालती मूर्ध्ना चालयति—मालती अपना किर हिलाती है ।
ननु शब्दपति त्रितैरह—मैं पृथ्वी का नाम मात्र का स्वामी हूँ ।
बहुलीभूतमेतत् वृत्त—यह मामला सब को मालूम हो गया है ।
यत्नादुपचयतामस्तौ—खूब ध्यानपूर्वक उसकी देख-भाल होने दो ।
स्नेहस्यैकाग्रनाभूता—प्रेम का एक मात्र पात्र ।

किमुर्दिश्य, किंनिमित्त, किमपेक्ष्य फल—किस उद्देश्य से ।
प्रत्यर्थिभूता सा समाधे—समाधि करने में वह एक बाधा थी ।
श्लाघ्ये गृहिणीपदे स्थिता गृहिणी के सम्माननीय पद पर
आरूढ़ ।

इति तस्य बुद्धौ न संजात, इति तस्य हृदये नापतितम्—यह बात उसके मन में नहीं सूझी ।

स्मृत्युपस्थितौ इनौ द्वौ श्लोकौ—ये दोनों श्लोक हमें स्मरण हो आये। कस्मिन्नपि पूजाहो अपराद्धा शकुतजा—शकुन्तला ने किसी पूज्य पुरुष का अपराध कर दिया है ।

तव न कदापि मया विप्रिय कृत, प्रतिकूलमाचरित—मैंने कभी एक बार भी तुम्हारा अपराध नहीं किया है ।

शीघ्रकोपिन्, सुलभकोप—जल्दी क्रुद्ध हो जाने वाला ।

च्युत भ्रष्ट-अधिकार—पद से गिरा हुआ ।

प्रकाश निर्गत—खुल गया, प्रकाशित हो गया ।

तवोपालभे पतितस्मि, उपालभपात्रं जाता—मैं तुम्हारे व्यंग्यो का पात्र हो गई ।

गृहीतावसर, लब्धावकाश—अवसर पाकर ।

लोकाचारविरुद्ध, लोकविद्विष्ट—समाज की रीति के विरुद्ध ।

अत्र स्वरुच्या वर्तता भवान्, यथाभिलाषं क्रियताम्—इस मामले में जैसा आपका रुचे वैसा कीजिए ।

यथाज्ञापयति देव—श्रीमान् की आज्ञा का पालन किया जायगा ।

आनुलोम्य—सामान्य क्रम ।

प्रातिलोम्य, व्युत्क्रम, विपर्यय, व्यत्यार. - उलटा क्रम ।

अपह्रिये परिश्रमजनितया निद्रया—थकावट से पैदा हुई नींद से अभिभूत हूँ ।

आनदपरिवाहिणा चक्षुषा—हर्ष भरी आँख से ।

प्रथम कुतूल सपरिग्राहमासीत्—पहिले तो मेरी उत्सुकता बह चली ।

विवर्णमाध प्रपेदे—पीली पड़ गई ।

शरीरभूता मे शकुतला—शकुन्तला मेरे शरीर का अंग हो गई है ।

भूमिकाकल्पनम्—पाटनिर्वाचन ।

तस्य नरस्य विशेष ब्रूहि—उस व्यक्ति का पूरा पूरा विवरण दो ।
तेनाष्टौ परिगमिता ममा कथंचित्—बड़ी कठिनता से उसने
आठ वर्ष बिताए ।

इदं धियं पथि न वर्तते—यह बात समझ के बाहर है ।

आस्ता, तिष्ठतु तदधुना, यातु, किमनेन—अब इसे हटाओ ।

किमर्थमगृहीतमुद्रं कटकान्निष्कामसि—बिना टिकट लिये क्यों
शिावर से बाहर जाते हो ।

अमुद्रालाञ्छित—पास (टिकट) के बिना ।

तया हृदयवल्लभोऽभिलिख्य कामदेवव्यपदेशेन सखीपुरतोऽष-
ह्नुत—उसने अपने प्रियतम का चित्र यह कह कर अपनी सखी को
दे दिया कि यह कामदेव का चित्र है ।

मध्यमावाप्ततातोऽतरित आर्येण—श्रामान् जो मध्यम माता का
हाल झिपा गए ।

जालातरप्रेषितदृष्टिरन्या—जगले में से भौकती हुई दूसरी ।

आज्ञा गुरूणा ह्यविचारणीया—बड़ों की आज्ञा पर विचार नहीं
किया जाता, उसका पालन करना अनिवार्य है ।

नाटकं न प्रयोगतो दृष्टम्, प्रयोगेणाधिकृतं न दृष्ट—नाटक को
रंग मंच पर अभिनय किया हुआ नहीं देखा है ।

स्थिरप्रतिबधो भव—विरोध करने में दृढ़ रहो ।

आसन्न-शरीर परिवारक—अग्न रक्षक ।

स्वानुभव—निजी अनुभव ।

यौवनमगेषु सन्नद्ध—अगों में यौवनावस्था व्याप्त हो गई है ।

ज्ञायता कं क कार्यार्थीति—पता लगाओ कौन कौन प्रार्थी हैं ।

विरहोत्कट हृदय—विरह (अनुपस्थिति) में उत्कण्ठित रहने वाला

हृदय ।

स गृह गतुमुदताम्यत्—वह घर जाने के लिए उत्कंठित था ।
 अन्त पुरविरहपयुत्सुको राजर्षि —राजर्षि अपनी रानियों के विरह
 के कारण क्षीण होते जा रहे हैं ।
 पितृस्थाने, पितृभूमौ—पिता के स्थान पर ।
 प्रथमं, प्रथमतः, प्रथम तावत्—पहिले तो ।
 अपरच, पुनः, पुनश्च—दूसरे ।
 आर्थिन्, वादी, अभियोक्तृ—मुद्दई ।
 प्रत्यर्थी, अभियुक्त, प्रतिवादी—मुद्दालेह ।
 द्वित्राण्यहान्यहर्हि सोढुमहर्न्—ऐ पूज्य, दो तीन दिन प्रतीक्षा
 कीजिए ।
 यदभिरोचते वयस्याय—मेरे मित्र को जो अच्छा लगे ।
 हृदयंगम परिहास —आनन्ददायी मजाक ।
 सुगश्रव, श्रुतिसुख, श्रवणसुभग, मज्जुलस्वन—कानों को सुखद ।
 विहितप्रतिज्ञा—गृहीतक्षण अह —मैंने प्रतिज्ञा कर ली है ।
 अनयोर्वृत्तेय प्रतिज्ञा—उन दोनों ने इस प्रकार प्रतिज्ञा कर ली ।
 तव विरूपकरणे तेन सुकृतमतरे धृत—उसने अपने पुण्यकर्मों की
 शपथ लेकर कहा है कि तुम्हें हानि न पहुँचाऊँगा ।
 मरणोन्मुख, आसन्नमृत्यु, मुमूर्षु—मरने के करीब ।
 प्रसवोन्मुखी, आसन्नप्रसवा—बच्चा देने वाली ।
 दासी महिषीपद आहिता, देवीभाव गमिता—दासी को रानी की
 पदवी दे दी गई ।
 तदुभयथापि घटते—यह दोनों प्रकार से सम्भव है ।
 चिरप्रवृत्त—बहुत दिनों से चालू ।
 सदाचार, सद्वृत्त, साधुवृत्त—सदाचारी ।
 का वृत्तिमुपजीवत्यार्यः—आपका क्या व्यवसाय है ।
 प्रयोगः—क्रिया । शास्त्र, आगम —सिद्धान्त, मत ।

शासनात् करण श्रेय, वाच कर्मातिरिच्यते—कहने से करना अच्छा होता है ।

स कथयत्यागमिनमप्यर्थ—वह तो भविष्य की घटनाओं को भी बता देता है ।

वर मृत्यु न पुनरपमान —मृत्यु अच्छी है पर अपमान नहीं ।

दौर्हृदलक्षण दधौ—उसकी गर्भावस्था के लक्षण दिखाई पड़े ।

कठोरगर्भा—बड़े हुए गर्भ वाली ।

त्वयोपस्थातव्य, सन्निहितेन भाव्य—आपको उपस्थित रहना चाहिये समतीत च भवच्च भावि च—भूत वर्तमान तथा भविष्य ।

अग्नि साद्ये आधाय—आग्नि को साक्षो बनाकर ।

त वक्षसा परिरभ्य क्रोडीकृत्य—उसको छाती से लगाकर ।

भावित्रविषवेगः—विष से प्रभावित होने का बहाना करके ।

अश्रुतिमभिनयति—न सुनने का बहाना करता है ।

आर्यध्वजिन्-लिगिन्—न्याय-शील होने का बहाना करता हुआ ।

प्रक्षालनाद्धि पकस्य दूरादस्पर्शनं वर—कौचड़ को धोने की अपेक्षा उसे न छूना ही अच्छा है ।

द्विषामामिषता ययौ—शत्रुओं का शिकार बन गया ।

प्रथम वयं नवम्-अक्षत-यौवन—नई जवानाई ।

ततस्तत्, तत् पर कथय—आगे कहो ।

प्रस्तूयता विगदवस्तु—भागड़े वाला मामला बताओ ।

प्रवर्त्यता भगवतो ब्राह्मणानुद्दिश्य पाक—पूज्य ब्राह्मणों के स्वागतार्थ भोजन की तैयारी करा ।

किनिमित्त ते सताप—तुम्हारे दुःख का क्या कारण है ?

क्षुद्बोधित—लुषा से प्रेरित ।

परमार्थत प्रेम—सच्चा प्रेम ।

स सदा प्रत्युत्पन्नमतिः, प्रबोधननिरपेक्षः—उसे प्रेरणा करने (सिखाने) की आवश्यकता नहीं।

एष सनिकार नगरान्निर्वास्यते—यह पुरुष अपमान-पूर्वक नगर से निकाला जाता है।

ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कठेन निजोपयोगितां—सज्जन लोग अपनी उपयोगिता कार्यों से सिद्ध कर देते, मुँह से कहते नहीं।

अनागतविधाता—भविष्य के लिये व्यवस्था करने वाला।

आपदर्थे धन रक्षेत्—आपत्ति के दिनों के लिए धन को बचा रखना चाहिये।

स्तूयमाना नास्तिच्यन्ते अथवा अनुद्धता —श्रद्धा किये जाने पर फूल कर कुप्पा नशे हो जाते।

दर्पाध्मात्, उत्सिक्त, अवलिप्त, उद्धत—अभिमान से फूले हुए।

चौरदडेन दण्डयेत्—अपराधी को चोर की सी सजा देनी चाहिए
अनियत्रणानुयोगस्तपस्विजन.—तपस्वियों से बना किसी सकोच के प्रश्न करना चाहिये।

मदोप्यविरतोद्योग. सदा विजयभागभवेत्—धीमे धीमे परन्तु निरंतर काय करने वाला विजयी होता है।

तद्वचो मम हृदये शल्यं जात—वे बातें मेरे हृदय में काँटे के समान लगती हैं।

स प्रहार. करालता गत.—भाव भयानक हो गया।

वृत्तान्तेन श्रवणविषयप्राप्तिः—जब यह वृत्तांत उसके कानों में पहुँचा।

इदं प्रायेण तत्र कर्णपथमायात. श्रुतिविषयमापतितमेव—सम्भव यह आप के कानों में पड़ा होगा।

प्रत्युत्पन्नमति—हानि जवाब।

धनी उपगत दद्यात् (धन) स्वहस्तपरिचिह्नित दद्यात्—महाजन
को चाहिए कि अपने हाथ से लिखी हुई रसीद दे ।

तद्दह विदधे तव स्तव दमयत्या सविधे—इसलिए मैं दमयन्ती
के पास तुम्हारी प्रशंसा करूँगा

नाद्यापि प्रसाद गृह्णामि, प्रमन्ना न भवसि—आप अभी तक
प्रमन्न नहीं हो रही हैं ।

वाक्यानि प्रतिसमादधाति—कथनों (वक्तव्यों) का समाधान करता है ।
कृतकालोपनेय आवि—निश्चित समय पर पूरी की जाने वाली
प्रतिज्ञा ।

आत्मवशा नी, वशा कृ—अपने अधान कर लेना ।

अस्थिमात्रावशेष, ककालशेष—जिसकी केवल हड्डियाँ ही हड्डियाँ रह
गई हों ।

अत्र पुरावृत्तकथा अनुसंधेया—यहाँ पौराणिक कथा का हवाला
दिया गया है ।

भर्तुं प्रतीप मास्म गम—य त के विरुद्ध न होना ।

नार्हसि मे प्रणय विहन्तुम्—कृपया मेरी प्रार्थना को न ठुकराना ।
तस्य मनो मार्दवमभजत, कठिनतामजहात्—उसका हृदय
कोमल पड़ गया

स चानुनीतो मृदुतामगच्छत्—अनुनय विनय करने पर उसका
हृदय कोमल पड़ गया ।

किमपि सानुक्रोश. कृत—वह कुछ कुछ कोमल पड़ा ।

दुःखविश्राम ददाति—दुःख में आराम देता है ।

हृदि एना भारती उपधातुमर्हसि—कृपया इस वाणी को खूब
अच्छा तरह याद रखना ।

पैतालं मामद्य सस्मरयतीव भुजगलोक.—शूरी का यह समूह
माना मुझे पाताल की याद दिज्ञाता है ।

अये सम्भगनुबोधितोस्मि—ओहो, मुझे अच्छी याद आई ।
 इति जनप्रवाद किंवदन्ती श्रूयते, इति प्रवाद—ऐसी अफवाह है ।
 विश्वासप्रतिपन्न—विश्वास में आया हुआ ।
 दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयति, गुणपक्षे स्थापयति—दोषों को भी गुण करके बताते हैं ।
 सवदत्यक्षराणि—अक्षर एक दूसरे से मिलते जुलते हैं ।
 सागरे नद्यो विलीयन्ते—नदियाँ सागर में विलीन हो जाती हैं ।
 वामहस्तोपहितवदना—बाएँ हाथ पर मुँह रखकर ।
 सुरत्रये भर कृत्वा—तीन खुरों पर खड़ा होकर ।
 भाग्यायत्तमत. परम्—इसके आगे तो भाग्य पर निर्भर है ।
 सकलार्पणपुजयाशा यत्र बद्धा सुतैस्ते—जिस पर तुम्हारे पुत्रों ने शत्रुओं को जीतने की सारी आशा लगा रखी है ।
 हर स्मर स्वेन वपुषा नियोजयिष्यति—हर कामदेव को उसका शरीर पुनः दे देंगे ।
 एव सर्वतो निरुद्धचेष्टाप्रसरस्य मे—इस प्रकार जब सभी तरफ़ों मेरे कार्य बन्द हो जायेंगे ।
 अपवाद उत्सर्ग व्यावर्तयितुमीश्वर—अपवाद किसी भी नियम के क्षेत्र को सीमित कर सकता है ।
 अतः पर पुन यथयिष्यामि—इसके आगे फिर कहूँगा ।
 तस्य वार्थस्य सतत मनसि विपरिवर्तमानत्वात्—यह मामला निरन्तर उसके मस्तिष्क में नाच रहा था ।
 गमिष्याम्युपहास्यताम्—मैं हँसा का पात्र बनूँगा ।
 अविद्यमानाह प्रियवदा—प्रियवदा ठीक नहीं है ।
 न स्त्री स्वातन्त्र्यमहति—छा को स्वतन्त्रता नहीं मिलनी चाहिए ।
 तत् देवोहस्ते निक्षिप्ता मया युक्तमेवानुष्ठितं—तो मैं ने उसे महारानी के हाथों में देकर उचित ही किया ।

ते नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरुन्—वे अपने गुरुजनों को आगे से लेने के लिए नहीं उठते ।

उत्तिष्ठमान शत्रु —उभड़ता हुआ शत्रु ।

स्थाने खलु सज्यते दृष्टि —ठीक ही है जो नेत्रों ने टकटकी बाँध रक्खा है ।

प्रथम गुणितमिव तवोत्तर—तुम्हारा उत्तर मानो रटा हुआ सा है ।
प्रजा प्रजा' स्वा इय तत्रयित्वा—प्रजाओं के ऊपर अपनी सन्तान सा शासन करके ।

कियदवशिष्ट रजन्या—कितनी रात बाकी रह गई है ?

सफलीकृत भर्तृपिङ्ग—नमक हलाल करके ।

कथैव नास्ति—क्या कहना है ।

जनप्रवाद —लोक-निन्दा ।

तथा च लौकोकनामा भाणक लोकोक्ति इस प्रकार है ।

मुद्रां परिपालयन् उद्धात्य दर्शय—मुहर को बचाकर इसे खोलिए और मुझे दिखाइये ।

प्रत्यक्षीकृ—अपना आँखों देखना ।

क्रय्य, क्रयार्थ प्रसारित—विक्रा के लिये, बिकाऊ ।

कृतज्ञता, कृतवेदित्व—एहसान मानना ।

जरावलुप्तमानावमानचित्—वृद्धावस्था के कारण मानाप्रमान का विचार बिल्कुल त्याग कर ।

यौगिकार्थ—शब्दार्थ । रूढार्थ—प्रचलितार्थ । अन्वर्थ, यथार्थ, परमार्थ—सच्चा अर्थ ।

अन्यथा एषा वीप्सा न चरितार्था भवति—वर्ना यह पुनरुक्ति कोई अर्थ नहीं रखती ।

एकैक, व्यस्त—एक एक । (सर्वाविनयानामेकैकमप्येषा-मायतनं, तदस्ति कि व्यस्तमपि त्रिलोचने)

कोपोद्दीपनाय अलं यथवा पर्याप्तमिदं—उसके क्रोध को भड़काने के लिये यह काफी होगा ।

योग व्रज्, स्थाने भूमौ भू—किसी चीज के तौर पर काम आना ।
मरुत परिवेष्टार आसन्—देवता लोग भोजन परमने वाले थे ।
इदं पादोदकं भविष्यति—यह पौव धोने के लिए जल का काम देगा ।
सर्वांगिका आभरणसयोगा—शरीर के अंग प्रयोग में अच्छे लगने वाले आभूषण । रत्नानुविद्ध, मणिप्रत्युप्त, रत्नखचित—जवाहरात से जड़ा हुआ । पदं कृ—स्नान कर लेना ।

मन-धिय-चित्तं बंध्—अथवा आ + धा। अथवा मन्निविश—(प्रेरणार्थक) या युज्—(प्रगृह्यार्थक)—हृदय को किसी चीज पर लगाना ।
अनेन समयेन परिणतोदिवस—इस समय तक सूर्य डूब गया था ।
आधीयता धर्मे धी—धर्म में बुद्धि लगाओ ।

विषयेषु मनो मा संनिवेश्य—नश्वर पदार्थों में मन को मत लगाओ ।

विनाशधर्मसु अचिरप्रवृत्तो ग्रीष्मसमयः—अभी ही शुरू होने वाला ग्रीष्म ।

गुणा विनयेन शोभते—गुणों की शोभा नम्रता से होती है ।
व्यवस्थापितवाक्, वाच व्यवस्थाय—‘क्या कहना है’ इस बात का निश्चय करके ।

इति प्रतिपात्तिमाकुलोभवेन्—यह स्थिति डगमग हा जायगी ।
स्निग्धजनसविभक्तं दुःखं—प्रिय मित्रों द्वारा बँटाया गया हुआ शोक ।

केन वान्येन सह साधारणीकरोमि दुःखं—किस दूसरे पुरुष के साथ अपना शोक बँटाऊँ ।

वर्मिन्, फलकमणि—ढाल से सुसज्जित । खड्गचर्मधर—ढाल और तलवार लिए हुए ।

नयनोपातविलोकित, साचिवीक्षण, अपागदृष्टि, कटाक्षः—

तिरछी चितवन ।

विदूषक सज्ञा लभयति—विदूषक को सकेत करता है ।

अर्थवत्, सार्थ, चरितार्थ, अर्थयुक्त, अन्वर्थ—अर्थ से भरा हुआ ।
सीढ़ि में हृदय—मेरा हृदय वैठा जाता है ।

प्रबलपिपासावसन्नानि अगकानि—बल प्यास के कारण अग अंग
शिथिल पड़ रहे हैं ।

तस्य धैर्यमहीयत, स लुप्तस्खलित धैर्य—उसका धैर्य टूट गया ।
मया रथस्य मदीकृतो वेग—मैंने रथ के वेग को धीमा कर
दिया है ।

शिथिलितप्रयत्ना, श्लथोद्यमा—जिन्होंने अपने प्रयत्न को शिथिल
कर दिया है ।

मथरविवेकचेत—वह चित्त जो विवेक करने में मन्द हो ।
प्रत्यभिज्ञानमथर—परिचानने में मन्द ।

पराभवो मम हृदि प्रत्युप्त शल्यमिव, न्यक्कारो हृदि वज्रकील
डव मे तीव्रं परिस्पन्दते—हार के कारण मैं व्यथित हो रहा हूँ ।
बधिरान्मदकर्ण श्रेयान्—जहाँ कुछ न मिन रहा हो वहाँ थोड़ा
मिल जाना अच्छा है ।

वक्तुं सुकरमिदमश्वसितु तु दुष्कर—करने से कहना सरल
होता है ।

ततुनाभ स्वत एव ततून् सृजति—मकड़ी स्वयं अपने जाले को
तानती है ।

सोल्लास, प्रमुदितचित्त—प्रसन्नचित्त ।

मिषता न आमिष आच्छिनत्ति—हम लोगो के देखते देखते
शिक्कर छीन लेता है ।

चारचक्षुषः महीपाला—राजा लोग गुप्तचरों के द्वारा देखते हैं ।

उपक्रोशमलीममै प्राणै. किम्—प्रपक्कीति से कलकित प्राणों को रखकर क्या लाभ ।

सशयस्थ जीवित तस्य, स सशयितजीवित आसीत्, जीवितं सशयदोलाधिरूढ—उसके प्राण सकट में थे ।

वचनीयमिदं व्यवस्थित—यह मेरे ऊपर एक चिरस्थायी दाग लग जायगा ।

कुठित-प्रतिहत-रुद्ध-गति—ठप्प

इदं सोपपत्तिक न भाति—यह युक्ति सगत अथवा तर्क-सगत नहीं मालूम पड़ता ।

लब्धप्रतिष्ठ—जिसने प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है ।

पुलकित, रोमांचित—रोंगटे खड़े हो गए ।

यात्राभिमुख प्रयुत्—यात्रा के लिए प्रस्थान करना ।

अभिन्नगतय. शब्द सहते मृगा—वे मृग जिनकी गति भिन्न नहीं होती शब्द सुन लेते हैं ।

सर्चाकित—चौककर ।

अविदितगतयामा रात्रिः—वह रात जिसके गहर चुपचाप बीत गए ।

शनैर्निद्रा निमीलितलोचन मामकार्षीत्—निद्रा ने बोरे-धीरे मेरी आँखें बन्द कर दी ।

ज्वलति चलितेधनोग्नि—जब इंधन में खोद खाद कर दी जाती है तब आग जल पड़ती है ।

नैतावता पीडा निष्क्रामति—अनर्थ की इति यही नहीं हो जाती ।

मुखे चपेटादा—मुँह पर चोट मारना

चित्ते भय जनयति—मन में भय पैदा करता है ।

बद्ध प्ररूढ बद्धमूल—जिसकी जड़ गहरे तक गई हो ।

तस्य हृदय पस्पर्शं विस्मयः—वह आश्चर्य से चकित हो गया ।

तद्धि प्रसिद्ध-तरेण प्रयोगेण शीघ्रं बुद्धिमारोहति, प्रसिद्धबलेन प्रथमतर प्रतीयते—चूँकि यह अत्यन्त सामान्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ

है इसलिए यह सरलता से चित्त में जँच जाता है ।

जर्जरितकर्णविवर-जर्जरीकृतकर्णपुट नाद —कान के पर्दों को फाड़ देने वाला आवाज ।

सा देवीशब्देनोपचर्यते—वह 'गनी' कह कर पुकारी जाती है ।

पितुरनतरमुत्तरकोशलान्समधिगम्य—उत्तर कोशल प्रदेश को पिता के बाद प्राप्त करके ।

यदि नावसीदति गुरु प्रयोजन —यदि किसी बड़े कार्य की हानि न हो ।

खल करोति दुवृत्त तद्धि फलति सायुषु—दुष्ट पुरुष अपराध करता है और मञ्जन उसका फल भोगता है ।

आतपलघनात्—लू लगने के कारण ।

पुनरुक्तता नी —व्यर्थ मनाना ।

अभिव्यक्ताया चद्रिकायां कि दीपिकापोनरुक्तयेन—जब स्पष्ट चाँदनी विद्यमान है तो मशाल व्यर्थ है ।

अश्वमेधसहस्रेभ्य सत्यमेवातिरिच्यते-विशिष्यते—सत्य हजारों अश्वमेधयज्ञों से कहीं बढ़कर है ।

कथं जीवितं धारयिष्यामि—मे कैसे जिऊँगा । न ह्ययं मन्त्रः स्वातन्त्र्येण कचिदपि वादं समर्थयितुमुन्सहते—यह मन्त्र स्वतः किसी भी सिद्धान्त का समर्थन नहीं कर सकता ।

नियम्य शोकावेग—शोक की तेजी को रोक कर ।

विकारस्य गमनीयास्मि सयुक्ता—मैं तो विकार से प्रभावित होने वाली बना दी गई ।

विकारि सौवन—जशानों पर बड़ी जल्दी प्रभाव पड़ जाता है ।

धृतद्वैधीभावकातरं मे मन —मेरा मन द्विधा में पड़ा है, इसी से चिन्तित है ।

विहगा. समदुःखा इव चुक्रुशुः—पक्षी मानो समवेदना के कारण चीख पड़े।

भिन्नः कचिद्भिलको—लोगी कों पसन्द भिन्न भिन्न होती है।

निगतु सहसा न वेतसगृहाच्छत्तोस्मि—बेत के घर में से निकलने में असमर्थ हूँ। विललाप विकीर्णमूर्धजा—बालों को बिखेर-बिखेर कर रोई।

गमयति रजनी विपाददोर्घतरां—शोक के कारण बहुत बड़ी लगने वाली रात्रि को बिताता है।

शास्त्रे प्रयोगे च मां विमृश—शास्त्र में तथा प्रयोग में मेरी परीक्षा ले लो।

अनुगृहीतोस्मि, महानय प्रसाद—मैं अनुग्रहीत हो गया। मेरे ऊपर यह बड़ी कृपा हुई।

द्रावप्यागमिनौ प्रयोगनिपुणौ च—दोनों शास्त्र सम्पन्न तथा प्रयोग में निपुण हैं।

नगरगमनाय मति न करोति—वह राजधानी में जाने का मन नहीं करता।

सखीमुखेनोचे—सखी के द्वारा बोला।

अपत्यमन्योन्यसंश्लेषण पित्रो—सन्तान माँ बाप का पारस्परिक बन्धन है।

अतिपिनद्धेन वल्कलेन नियत्रितास्मि—मैं इस कसे हुए वल्कल वस्त्र से जकड़ी हुई हूँ।

समयः स्नानभोजनं सेवितुं—स्नान और भोजन करने का समय है।

कालानुवर्तिन्—समय देख कर काम करने वाला।

नैव वारातर विधास्यामि—अब दूसरी बार ऐसा न करूँगा।

अनवसरग्रस्तोर्थिभाव—अब भीख माँगने की प्रथा नहीं रह गई।

अकालक्षेप अविलंबिन, अकाल-हीन—बिना समय खोए हुए।

अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी, स्रस्ता एव विद्या जिह्वाग्रेऽभवत्
—विद्या तो उसकी जिह्वा के अग्रभाग पर नाचती थी।

धारासारैर्महती वृष्टिर्बभूव—मूसलाधार पानी बरसा।

शतसख्या मामिय स्पर्शति—१०० की सख्या मुझे स्पर्श करती है।

हृदय सस्पृष्टमुत्कठया—हृदय उत्कठ। से प्रभावित हो गया।

मित्राणा तत्त्वनिकपप्रावा विपत्—विपत्ति मित्रता की कसौटी है।

ग्राहकैर्गृह्यते चौरः पदेन—चोर अपने पाँव के निशानों से पकड़ा जाता है। ब्रह्मशब्दस्य व्युत्पत्तिर्ब्रह्मणोऽस्ति—जब ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति का जाती है।

क्षुरणाद्वर्त्मन—पीटी हुई लकड़ से।

परतपो नाम यथार्थनामा—वस्तुतः यथार्थ नाम वाला परन्तप।

ध्रुवसिद्धेरपि यथार्थनाम्न—यथार्थ नाम वाले ध्रुव सिद्धि का।

उपकार प्रत्युपकारेण निर्यातयितव्य—उपकार का बदला उपकार में दिया जाना चाहिए।

असमर्थित, अतर्कित, अतीतलोपनत—अप्रत्याशित।

समवायो हि दुस्तर, सहति कार्यसाधिका—मेल में शक्ति है।

ज्योति शब्दस्तेजसि प्रयुज्यते—“ज्योति.” शब्द ‘प्रकाश’ के अर्थ में आता है।

ज्योति शब्दो ज्वलन एव रूढ - “ज्योति” शब्द रूढि से “अग्नि” के लिए प्रयुक्त होता है।

अनुपभुक्तभूषण—आभूषण पहिनने में अनभ्यस्त।

रणधुरां वह्, समरशिरसि वृत्—सेना का अभूषण होना।

वाचिक, वाचनिक, शब्दाख्येय—मौखिक सन्देश।

वाग्व्यवहार—मौखिक वाद विवाद।

लोक व्यवहार-दृष्टया—साधारण व्यवहार की दृष्टि से।

निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेह—तेरा अपत्य-स्नेह पूर्ण रूप से प्रकट हो गया।

काल कश्चित्प्रतीक्ष्यतां—थोड़ा देर तक प्रतीक्षा कीजिए।

सहस्र मासद्वय—दो महीने तक प्रतीक्षा कीजिए ।

स्फुलिगावस्थया वह्निरेधापेक्ष इव स्थित—चिनगारी की दशा में स्थित आग ईंधन का प्रतीक्षा कर रही है ।

त्वत्तो न किमपि परिहास्यते—आप को किसी बात को कमी न रहेगी ।

न कामचारो मयि शक्नोय—इह शका न काजिएगा कि मैंने स्वच्छन्दता से आचरण किया है ।

सूर्यातप सेव्—घाम लेना । अग्न्यातप सेव्—आग तापना ।
वृद्धितयौ—बढ़ना घटना ।

अतरा—गस्ते में । परिपथीभू—विघ्न डालना ।

कि स्वातन्त्र्यमवलग्नसे—क्या तुम मनमानी कर रहे हो ।

सवत्र नो वार्तमवेहि—हमारा सब प्रकार से कुशल जानो ।

युज्यते, बाढ, तथेति उक्त्वा—‘उद्धृत अच्छा’ कह कर ।

छुवोनुवृत्ति—दूसरे को इच्छा के अनुकूल आचरण करना ।

ईश्वरेच्छा बलीयस, प्रभवति भगवान् विधि—ईश्वर की इच्छा बली हाता है ।

बलात्, हठात्, अकामत—अनिच्छया जबरदस्ती ।

कुठितमति आसीत्, निरुत्तरीकृत—बढ़ानरुत्तर हो गया ।

कष्टमभ्यापन्न—विपदवस्था में पड़ा हुआ ।

नैतच्चित्र, किमत्र चित्रम्—इसमें कोई आश्चर्य नहीं है ।

सत्यपालित-सगर सन्ध—प्रतिज्ञा पालन करने वाला ।

लघुसदेशान्दा मरस्यती—माक्षित सदेश ।

समग्रग्रथित-साधुविन्यस्त पद—जिसमें खूब अच्छा तरह से सोच साच कर शब्द रक्खे गए हों ।

करुणार्थग्रथित—करुणा जनक शब्दा से भरी हुई ।

त्वं मम जीवितसर्वस्वीभूत—तुम मेरे जीवन के सबस्व हो ।

लौकिकज्ञ—संसार की रीति को जानने वाला ।
 न तर्हि प्रागवस्थाया परिहीयसे—तो आप पहिले से बुरा दशा में
 नहीं हैं ।

अनुरूपभर्तृगामिनी—अपने अनुरूप पति वाली ।

वैरसाधन-निर्यातन —बदला लेना ।

बाढम्, अथकिम्—हाँ । तथेति उक्त्वा—हाँ कह कर ।

वैतसी वृत्तिम् आश्रि—बलवान् शत्रु के सामने झुक जाना ।

परिशिष्ट — २

शुद्ध करने के लिए वाक्य

- १—अरण्येऽधिवस्तु यतय इच्छति ।
- २—सन्यासी बहवो दिनान्येकस्थाने नावसेत् ।
- ३—यद्रामादतरेणोद्योया शून्या दृश्यते तत्कैकेयीवचनस्य परिणामः ।
- ४—अस्य गिरेरभितो बहवोऽश्मान सति ।
- ५—अस्य वस्त्रेण परितः पलाशवृक्षा दृश्यन्ते ।
- ६—हा धिङ् मेऽन्यायाचरणं कुर्वते ।
- ७—स एव विचारयन् सकला रात्रिर्व्यतीयाय ।
- ८—दुर्योधन पाडवान्नास्निह्यत् ।
- ९—शत्रवे बाणानहं क्षिपामि स तु महद्य दृशदो मुचति ।
- १०—मम वचनं स न विश्वसिति ।
- ११—सर्वेभ्यः पुत्रेभ्यो गोपालः पितुः श्रेष्ठः ।
- १२—सर्वाभ्यो नदीभ्यो भागीरथी द्राघिष्ठा ।
- १३—स भोजनादनु बहिरगच्छत् ।
- १४—ससारसुखानि केवलं दुःखस्थानमस्तीति साधोरतरेण को जानाति ।
- १५—इयं नगरी त्रयः क्रोशाः आयता ।
- १६—धनितं द्रव्यं याचितं भिक्षुकैः ।
- १७—अभोनिधिः सुधा ममथे देवैः ।
- १८—तेषां मे च सख्यमस्ति ।

१६—अयं वित्तसचयस्त एव ।

२०—ता वात्रानय मां वा तत्र नय ।

२१—हे जगन्नाथ मे सर्वाणि पापानि क्षमस्व ।

२२—ता स्त्रिय आत्मनो निदति ।

२३—सा युवतिरात्मानं हतप्रायाममन्यत ।

२४—क्रुद्धं पुरुषं शिलायामप्यधिगते ।

२५—गोशालो वा रामोह वा त्वं तत्कार्यं करिष्यथेति मा भ्राति ।

२६—पथिकं उन्धिते सति तस्य सार्धमहमगच्छम् ।

२७—समागतेषु बालेषु तान्फलानि दातुमारभस्व ।

२८—तस्मिन् राजनि वसुधामीशाने न कोपि सामतस्तमभिभ
वितुं येते ।

२९—अजासु क्षेत्रं नीयमानासु तां शस्यमखादयत् ।

३०—भार्याया आक्रोशत्या सा भर्त्रा प्रतिषिद्धा ।

३१—दम्भश्च पैशुन्यं च सदा गर्हणीयौ ।

३२—रूपवतीभार्या मदा प्रीतिपात्रा भवति ।

३३—पिता च माता च वार्द्धक्ये परिपालनीयः ।

३४—यत्स एवमुवाच तत्तस्य दोष एव ।

३५—यत्क्रौर्यमित्याचक्षते तत्प्रकृतिरेव खलानाम् ।

३६—अन्येषां पुत्राणां राम एव पितुः प्रेयानासीत् ।

३७—त्वं मम प्राणानामपि प्रियतरा अतस्त्वा सर्वं कथयामि ।

३८—अहं तत्र गतुं न शक्नोमि हि मध्ये नद्यायातवती ।

३९—वरं भिक्षां याचितुं न तु परसेवाविधिम् ।

४०—अहं वा त्वं वा तच्चकार ।

४१—स गृहं प्रत्यागतो वा नेति मां सत्वरं निवेदय ।

४२—राज्ञापराधिगं शता रूपका दड्या ।

४३—इन्द्रः स्वयंशः किन्नरमिथुनैर्गापयामास ।

- ४४—प्रासादस्य परितोऽमात्य भिक्षुकान् स्थापयति राजा ।
 ४५—क्षुधितेन वत्सेन पय पायय तमन्न वा खादय ।
 ४ —राज्ञी वनात्पुष्पाणि दासीरानाययत् ।
 ४७—अह मम मित्र सा पारितोषिकमदापयम् ।
 ४८—गुणिवु पूजास्थान गुणा एवास्ति न लिङ्ग वा न वय ।
 ४९—तस्या नार्या अवलोकनस्य पात्र ते नरा बभूव ।
 ५०—अत्र विपये ईश्वरो न दोषास्पद ।
 ५१—सा तपस्विनी मत्कृपापात्र जातम् ।
 ५२—गोविन्द तस्य भार्या च स्तुत्यचरिते स्त ।
 ५३—तपो दमो निस्पृहता च सर्वे अमी यतिषु प्रस्रस्या ।
 ५४—ऋते राम' जनक कमपि नृग शिवधनुर्भजयितु न
 शशाक ।
 ५५—अय पवतोऽस्य ग्रामस्योत्तर ।
 ५६—रामस्य पूर्वं गोविन्द आगच्छत् ।
 ५७—त द्विवसमारभ्य मम मन पर्याकुल जातम् ।
 ५८—पुत्रविवाहस्यानन्तर पिता ग्रामस्य बहिरावसथेऽध्युवास ।
 ५९—स शिष्येणोपनिषद वेदयामास ।
 ६०—न्वाभिन्ता भृत्येन वेनु पयो दोहयते ।
 ६१—भिक्षुक श्रेष्ठिन धन' याचयति ।
 ६२—स नर पादस्य खज अय तु नयनस्य काण ।
 ६३—स जवुद्वीप नावि गत शकटे च प्रत्यागतः ।
 ६४—यज्ञदत्त कुडिनपुराय प्रेषित स माम्मद्वये प्रत्यागमि-
 प्यति ।
 ६५—रथस्य एव बहु शोभमे तत्कृतमत्यादरस्य ।
 ६६—हिरण्यकश्चित्रग्रीवस्य प्राणा आमन् ।
 ६७—गोविन्दो यूय' चैतदकुरुताम् ।

६८—अहं ते वीराश्च शत्रून् पराजयन् ।

६९—त्वमहं गोपालसूतवश्च तत्कृत्य कुर्यु ।

७०—अयं बटुस्ते ब्राह्मणा वा माम् गच्छतु ।

७१—यूय वय वा नदी गमिष्यथ ।

७२—अतस्त्वां दूरादेव नम ।

७३—इमा वार्तामह वयस्य कथयामि ।

७४—यदि स त्वया पाठ नाध्यापयति तर्हि मा तन्निवेदय ।

७५—देवा. स्वभयकारणं ब्रह्माणमाचख्यु ।

७६—तस्मै अहं दूतं प्रहितवान्, किंतु पाटलिपुत्राय न
कोऽप्यद्यापि विसृष्ट ।

७७—अयं नरश्चौराणामतीव बिभेति ।

७८—ममागमनस्य प्रागेव म गत ।

७९—अलं तं बहु ताडयितुं सोऽत्यशक्त ।

८०—अस्य पुस्तकस्य रामाय प्रयोजनं नास्ति ।

८१—ये यतयोऽरण्येऽधिवसति तेभ्यो नृपानुग्रहस्य क उप-
योगः ।

८२—भक्तिं देवो रोचते ।

८३—अहं देवदत्तस्य शता रूपका धारयामि ।

८४—मं मयि द्रुह्यति नाहं तस्मा अभिद्रुह्यामि ।

८५—न किमपि त्वामधुना प्रत्याशृणोमि ।

८६—राजत्योपरि चण्डवर्मा शास्ति ।

८७—अहं शत्रुं हत्वा मं प्रत्याजगाम ।

८८—रामो रावणं हत्वा विभीषणो लंकाराज्ये स्थापितः ।

८९—त्वया प्रातरेव गां पयो देग्धव्यमिति तमादिशन्
रामोऽत्रागतवान् ।

९०—गौतमीवर्जं सर्वं निष्काताः ।

- ६१—अश्मभिर्घात स शत्रुभिर्हतः ।
 ६२—रामाय द्वौ पुत्रावास्ताम् ।
 ६३—प्रभवति निजाय कन्यकाजनाय महाराज ।
 ६४—वासुकि पातालतलस्येष्टे ।
 ६५—मामग्रे किं तिष्ठसि ।
 ६६—अस्य पर्वतस्य पूर्वं महावापी वर्तते ।
 ६७—अस्मादुत्तरतस्तु रौद्र श्मशानम् ।
 ६८—दिवसे त्रि सध्यामुपासीत ।
 ६९—वर्षत्रये दशकृत्वोऽपि मम गृहे त्वं नागच्छ ।
 १००—उपवनाद्दक्षिणेनार्त्तरव श्रुत्वा दुःखितान् शरणं प्रत्यश्रूणोत् ।
 १०१—अधुना सुवृष्टिर्भवति चेत्सुभिन्नं सर्वत्राजनिष्ट ।
 १०२—आप नाम स राजास्मत्समीहितं सपादयिता ।
 १०३—अहं हयः पथि महात्तं भुजगं ददर्श ।
 १०४—अत्र विषये तत्र सदेहो माऽभूत् ।
 १०५—मा चौरानभैष्ट ।
 १०६—यद्यहं तत्र बभूव तदा त्वं भ्रातुः सार्धं मा कलहमकृथा
 इति तमख्यम् ।
 १०७—स्वपुत्रं यथा अन्येषां पुत्रेभ्योऽपि प्रीतिः कर्तव्या ।
 १०८—अशांतिदिवसा यावत्स भृत्यो मामसेविष्ट ।
 १०९—याक्वन्नमीश्वरेणात्मानं दीयते तस्मिन्सतोपो मान्यः ।
 ११०—ते रथे कुसुमपुराय यातवत ।
 १११—सा मृतवतीत्याकर्ण्यहं दुःखितो जातवान् ।
 ११२—शशना भाषितं स्मितं च पित्रोरग्नौ दोषादकम् ।
 ११३—अयं मम चिरतनो वयस्यो भवितव्यः ।
 ११४—त्वय्यस्माज्ज्ञासति कथमस्माभिरभिभूतं भाव्यम् ।
 ११५—कुमत्रिणा नृपसभा न प्रवेष्टव्यम् ।

- ११६—गोपालो नाम वयस्येन सहागच्छम् ।
 ११७—जितोमौ मया पाडशमहस्राणा रूपकाणाम् ।
 ११८—काची नाम नगर्या धनमित्रनाम वणिगवसत् ।
 ११९—सुवर्णपुर नाम नगरे द्वा कोलिकौ वयस्यभावेन आवसत ।
 १२०—चन्दनमिव शीतले कदलीगृहेऽपि सा निर्दृति नालभत ।
 १२१—रामेतिनामा दशरथस्य पुत्र आसीत् ।
 १२२—उपला इव शत्रुष्वस्मानवस्कदस्तु वय कि कुर्यानेति
 न जज्ञिम् ।
 १२३—सुरगुरुमिव प्रज्ञस्यास्य ब्राह्मणस्य दक्षिणां कि न दत्से ।
 १२४—तव च मे च मख्यमस्ति ।
 १२५—चेत्त्वं मम कार्यं करोषि त्वामह मुद्रिकाशत दास्यामि ।
 १२६—मा नारी रविरिव आजमान सुतमलब्ध तु इय बहु-
 कुरूपम् ।
 १२७—अश्वमारोढुं मे रोचते ।
 १२८—त्वामावस्थातु कथमहमनुमस्ये ।
 १२९—अहं त्वामेतत्कर्तुमिच्छामि ।
 १३०—इमं ग्रथ वाचयितुं न शक्यते ।
 १३१—इममाश्रुत्तमधः पानयितुं न रांप्रतम् ।
 १३२—वर देशमपि त्यक्तुं न तु नीचसेवा विधातुम् ।
 १३३—दशरथाय त्रिभार्याभ्य पुत्रचतुष्टयमुदपादि ।
 १३४—विजयतु भवान् य एव जनानानन्दय ।
 १३५—एना भवतेऽनुरक्ता किं निष्कारणेन त्यजामि ।
 १३६—इमं दिवसमारभ्य मामाद्विजया दशमी भवति ।

परिशिष्ट ३

शब्दकोष

अ

अंशुमालिन—(पु) सूर्य ।	सके ।
अकलित—(वि) दुर्वोध ।	अज(वि०)—जन्म न लेने वाला ।
अकिचनत्व—निर्वनता ।	अजन—अजन ।
अक्षयत्वं—विनाश हीनता ।	अतिक्रात—ब्रीता हुआ ।
अगुण—बुरा गुण ।	अतिगर्हित—अत्यन्त निन्दनीय ।
अगृध्नु—(वि०) लालची नहीं ।	अतिप्रसग—अत्यन्त जगलोपन ।
अग्निसात्कृ—जला देना ।	अतिभूमि—पराकाष्ठा ।
अग्रजन्मन्—(पु०)—ब्राह्मण ।	अतिमात्र—बहुत ज्यादा ।
अग्रणी—नेता ।	अतिमुक्तलता—माधवी लता ।
अग्र(वि०)—सर्वोत्तम ।	अतिव्रणा—बहुत दुख ।
अघ—पाप ।	अतिलोल—अत्यन्त कमजोर ।
अक—धन्वा, दाग ।	अतिलोहित—बहुत लाल ।
अकुर—अकुर ।	अतिहूँपण—अत्यन्त लज्जाजनक ।
अंग—हिस्सा ।	अत्यादर—बहुत ज्यादा आदर ।
अगराग—सुगन्धित नेप ।	अत्रातरे—इसी बीच में ।
अगुलि(स्त्री०)—उँगली ।	अदूरवर्तिन्—दूर नहीं ।
अगुलीयक क—अँगूठी ।	अधिक्षिप्त—झिडका गया हुआ ।
अचितनीय(वि०) जो सँचा न जा	फटकारा हुआ ।

अधिज्य—डोरी चढा हुआ ।	अनुत्सेकिन्—जो फूलकर कुप्पा न हो ।
अधिराज —महान् राजा ।	अनुवध —तारतम्य, धारा ।
अध्वर —यज्ञ ।	अनुपक्रम्य—जो अरुद्धा न किया जा सके ।
अनङ्ग —कामदेव ।	अनुपधि—छलहीन
अनतिपात्य—देरी न करने योग्य ।	अनुमित—अनुमान किया गया हुआ ।
अननद्वार—उपयुक्त पत्नी जिसके न हो ।	अनुविद्ध—चारों ओर फैला हुआ ।
अनन्तर—लगातार	अनुवृत्ति—अतीत का अनुभव ।
अनपायिन्—अनश्वर ।	अनृतं—मिथ्या ।
अनम्र --जो नम्र न हो, अभिमानी ।	अतरात्मन्—अन्तरात्मा ।
अनर्घत्व—अमूल्य होना ।	अतराय - विघ्न ।
अनवगीत—आनन्दित ।	अतरिक्त—आकाश ।
अनातप—ठंडा, धूप ने सुरक्षित ।	अतरित—गायब हो गया ।
अनातुर—जो बीमार न हो ।	अतर्लान—छिपा हुआ ।
अनात्मज्ञ—बेवकूफ ।	अन्तर्वेदि—यमुना और गंगा के बीच का प्रदेश ।
अनादि—जिसका आदि न हो ।	अपकारिन्—अपकार करने वाला ।
अनायास—सरल ।	अपचार —अनुचित आचरण ।
अनामय--नीरोगता ।	अपदेश —बहाना ।
अनिवृत्त—दुखी ।	अपयशस्—कलक ।
अनीश—जिसका प्रभुत्व या अधि-कार न हो ।	अपरिसमाप्त—जो कभी समाप्त न हो ।
अनुचर —सेवक, पीछे पीछे चलने वाला ।	अपवाद—बदनामी, निन्दा ।
अनुज —छोटा भाई ।	अपहस्तित—व्यक्त ।
अनुत्तम—जिससे बढ़कर कोई न हो ।	अपुनरुक्त—जो पुनरुक्त न हो ।
अनुत्सेकः—अभिमानहीनता ।	प्रतिदिन नया नया ।

अपूर्व—जिसकी समता का पहिले कभी न था ।	अभि (ति) सवान—खाता देना, ठगना ।
अपोहन—तर्क शक्ति ।	अभ्यवहार्य—भोजन ।
अप्रतिभट—जिसकी जोड़ का कोई न हो ।	अभ्यागत—अतिथि । ^{१८}
अप्रतिविधेय—जिसका कोई उपाय न हो ।	अभ्युपेत - हाथ में लिया हुआ ।
अप्रतिहत—पूरा पूरा ।	अमगल—अनर्थ, नीच विचार ।
अप्रत्यय—जिसको अपने ऊपर विश्वास न हो ।	अमर्षित—कुद ।
अप्रमेय—असंख्य ।	अमल—निर्मल, शुभ ।
अबला स्त्री ।	अमानुष—मनुष्यातीत ।
अब्जभू—ब्रह्मा ।	अमानुषी—निर्बुद्धि स्त्री । ^{१९}
अभिरुचा—शोभा ।	अमोघ—अचूक, अव्यर्थ ।
अभिगमन-रति, मैथुन ।	अम्बुवाह—बादल ।
अभिजन—उच्च कुल में जन्म ।	अयस्—लोहा ।
अभिज्ञान—पहिचान, चिन्हानी ।	अरुण—सूर्य का सारथि ।
अभिनव—नई, ताजी ।	अरुन्धती—वसिष्ठ जी की पत्नी ।
अभिनिवेश—लागू होना श्रद्धा, रुचि ।	अर्जन—प्राप्ति, कमाना ।
अभियुक्त—विद्वान् ।	अर्थ—सम् पूर्वक)चुरादि आत्मने ।
अभियोक्तृ—आक्रमणकारी ।	विचारना, कल्पना करना ।
अभिरमणीय—अत्यन्त सुन्दर ।	(प्रपूर्वक), पीछा करना ।
अभिलाष—इच्छा ।	अर्थ—अर्थयुक्त ।
अभिव्यक्त—स्पष्ट ।	अर्हन्—योग्य ।
अभिषेणय—सेना से मुडभेड करना ।	अल्पमेधस्—मूर्ख । ^{२०}
	अवकल्प्य—विचारने योग्य । ^{२१}
	अवक्षय—नाश ।
	अवकाश—गु जाइश, वारण ।
	अवताडन—पेरना ।

अवपात.—शिकार पकड़ने के लिए	असविदान—अनभिज्ञ ।
गदा ।	असक्त—जो राग न देखता हो, बे
अवद्य—निन्द्य ।	लगाव वाला ।
अवधूत—घृणित । ^१	असदृश—अनुचित अशोभन ।
अवमानिन्—अपमान करने वाला । ^२	असार—कमजोर, अयोग्य ।
अवयव—अंग ।	असारता—कमज़ारो, क्षण भंगुरता,
अवलोकित—एक नौकरानी का नाम	अस्थिरता ।
अवसन्न—समाप्त ।	असित—काला ।
अवसान—अन्त ।	असिपत्र—तलवार की धार ।
अवस्थित—टिका हुआ । ^३	अस्ताचल—वह पर्वत जिसके पाछे
अविलत—जो घायल न हुआ हो,	सूर्य छिप जाते हैं ।
कुशला ।	अहंकार—घमड़ ।
अविधवा—वह स्त्री जो विधवा न हो ।	अहाय—तुरन्त, शीघ्र ।
अविनीत—उजड़ ।	आकर—रवाना ।
अव्यापन्न—न मरा हुआ, जिन्दा ।	आकार—स्वरूप ।
अव्याहत—बिना रोक टोक । ^४	आकुल—भरा हुआ, परिपूर्ण, व्यथित,
अशनि—वज्र ।	पीड़ित ।
अशन—भोजन । ^५	आकृष्ट—रोना ।
अशरण—निस्सहाय ।	आखण्डल—इन्द्र ।
अशुभ—दुर्घटना ।	आसु.—चूहा ।
अशोषत—पूर्णतया ।	आख्यात—रहा हुआ, घोषित किया
अश्वमुख.—घोड़मुँहा जन्तु ।	हुआ ।
अश्वमेध—एक प्रकार का यज्ञ जिसमें	आगतुक—अतिथि, अनजान ।
घोड़े का वध किया जाता है ।	आगम—आना, वेद ।
अस् (उत् पूर्वक)—कर्मवाच्य-रलट	आगमिन्—सद्धान्तो मे पारगत ।
जाना (विपरि पूर्वक) बदल जाना ।	आशु—शीघ्र ।

आश्रम —जीवन की एक मजिल ।	आस्थान—परिषद् ।
आस्—(अनु पूर्वक —अदादि— आत्मने—सेवा करना ।	आस्थान मण्डप—परिषद् भवन, सभाभवन ।
आसक्त—लगा हुआ ।	आहव —-युद्ध ।
आसक्ति —राग, लगाव ।	आहार — भोजन ।
आस्तरण— बिछौना ।	आहितु डिक —राजीगर ।

इ

इ (प्रति पूर्वक)-प्रेरणार्थक-विश्वास करना, (व्यय पूर्वक) ।	इन्द्रिय —इन्द्रिय ।
अलम कर देना, अलग हो जाना	इधन—ईधन, जलाने को सामग्री ।
इक्ष्वाकु —एक सूर्य वंशी राजा, रघु के पुरखा ।	इरावती—एक स्त्री का नाम है ।

ई

अनु पूर्वक)—भाट —आत्मने— देख भाल करना ।	ईश —मालिक, अधिपति, शिव ।
ईक्षण — नेत्र ।	ईश्वर (विशे) —योग्य ।
ईप्सित—चाह हुआ ।	ईश्वरः — स्वामी ।
	ईह्—भादि० आत्मने —इच्छा करना

उ

उचित—साधारण, सामान्य, प्रथागत	उत्पात—उखाड़ दिया गया हुआ, नष्ट किया हुआ ।
उच्छ्रित—ऊँचा, उठा हुआ ।	उत्खातिन्—गड्ढों से भरा हुआ, ऊँचे नीचे स्थलों से भरा
उत्कर्ष —ऊँचाई, अच्छाई ।	हुआ ।
उत्कुल—कुल में ध्वजा लगाने वाला	
उत्क्रुष्ट —जोर की आवाज ।	

उत्तसय—बोधना, अलकृत करना ।

उत्तर (विशे०)—वादवाला, पिछला ।

उत्तरा—अभिमन्यु का पत्नी ।

उत्तरोत्तर—सर्वदा बढ़ने वाला,

आगे आगे, दिनों दिन ।

उत्तान (विशे०)—शुद्ध, कपट रहित,
शुद्ध ।

उत्तानित—खुला हुआ, फैला हुआ ।

उत्तलिनी—कमलिनी ।

उत्पीड—नाला, अलक ।

उत्सव—जलमा, प्रसन्नता या आन-
न्द का अवसर ।

उदत्त—वृत्तान्त, इतिहास ।

उदय—दर्शन ।

उद्दाम—(क्रियाविशे०)—बे रोक, बड़े
जोर से ।

उद्यत—तुला हुआ, कमर कसे हुए,
लगा हुआ, तत्पर ।

उद्यम—इरादा, सकल ।

उद्धत (विशे०)—घमडी, ऊँचा ।

उद्वाष्प (विशे०)—आसू बहाता हुआ ।

उन्नतत्व—श्रेष्ठता, उत्तमता ।

उन्नति (स्त्री०)—बढ़प्पन, उदारता,
उच्चता, श्रेष्ठता ।

उन्मुख (विशे०)—तैयार ।

उपकंठः—सान्निध्य, सामीप्य, पड़ोस

उपकार—भलाई, नेकी ।

उपकारिन्—उपकार करने वाला ।

उपकार्या—राजा का शिविर ।

उपघात—नाश, क्षति ।

उपचार—वाह्य प्रदर्शन, उपरी
लोकाचार ।

उपदेश—शिक्षा, राय, सलाह ।

उपद्रव—हानि ।

उपनत—आया हुआ, प्राप्त हुआ,
पड़ गया हुआ ।

उपनिपात—घटना, होना ।

उपपन्न (विशे०)—योग्य, उचित ।

उपमा—तुलना, ।

उपरत—मरा हुआ ।

उपराग—ग्रहण ।

उपरोध—बाधा, क्षति ।

उपलक्षण—ज्ञात्वात्मिक, चिह्न ।

उपलभः—पता लगाना ।

उपवास—भोजन न करना, भूखा
रहना ।

उपहत—मरा हुआ, बग़वाद, क्रिया
हुआ ।

उपस्थित—जो समीप में आ गया है,
जो पड़ गया है ।

उपहास्यता—हँसी का पात्र ।

उपाधि—दशा, परिस्थिति ।

उपाध्याय — आचार्य ।

उषस् - (स्त्री०) प्रातःकाल ।

उपालभ—ताना, व्यंग्य ।

उष्मन् (पुं०)—गर्मी ।

उपाशु—(क्रियाविशे०)—एकान्त म ।

उष्णिमन्—(पुं०)—गर्मी ।

उपाश्रय —आश्रय, शरण ।

ऊ

ऊरीकृत—हाथ में ले लिया गया हुआ ।

ऊर्मि(स्त्री०)—लहर ।

ऊरु —जघा ।

ऊर्ह् (अप पूर्वक) भ्वादि—परस्मै—

ऊर्जस्वत् (विशे०)—बड़ा शक्तिशाली

हटाना, नष्ट करना ।

ऋ

ऋजु (विशे०)—जो बुरा न हो, सीधा,
मत्सररहित, स्वच्छ ।

ऋषिकुमार —ऋषि का पुत्र ।

ऋषिकल्प(विशे०)—ऋषितुल्य ।

ऋष्यशृङ्ग —महाराज दशरथ का
दामाद ।

ए

एकपदे(क्रिया० विशे०)—यकायक ।

एकैकश (क्रियाविशे०)—एक एक

एकाग्र (विश०) -एक चीज पर लगा हुआ

करके ।

एकात(वि०)—आत्यंतिक, चिरस्थायी,
लगातार । (विशेषण के

एधित—गला पोसा गया हुआ, बड़ा ।
किया गया हुआ ।

साध(- बहुत ज्यादा ।

एनस्—नाप

ऐ

ऐश्वराक—इक्ष्वाकु का वंशज ।

ऐरावत —इन्द्र का हाथी ।

ओ

ओजस्विन्—प्रतापी, तेजस्वी ।

औ

औदरिक —भुवखड़, पट्ट ।

औदासीन्य—उदासीनता, तटस्थता ।

क

ककुद—कूबड़, (अलंकार) प्रधान,
सर्वश्रेष्ठ ।

कच — बाल, केश ।

कज्जल—काजल ।

कठ्(उत्पूर्वक) — भ्वादि —आत्मने—
उत्सुक होना उत्कटित
होना ।

कतिपय — कुछ, थोड़े से ।

कथमपि—(क्रियाविशेषण)—बड़ी
कठिनाई से ।

कँडली—नेले का वृक्ष ।

कनक—सुवर्ण ।

कन्दरम्—गुफा ।

कदल — समूह, पुञ्ज, राशि ।

कमलयोनि — ब्रह्मा ।

कप् (अनुपूर्वक) —तरस खाना, दया
करना ।

कर्ण—(आपूर्वक चुरादि-उभयपदी-
सुनना ।

कर्णधार.—मल्लाह ।

कलकल — शोर ।

कलहस — हस ।

कलभ — हाथी का बच्चा ।

कला—चन्द्रमा की कला ।

कलिका—कली ।

कलेवरम्—शरीर ।

कल्प — विधि, प्रकार ।

कल्पांत — सृष्टि का अन्त या नाश ।

कल्य—(विशे) बड़े सबेरे ।

कल्याण (विशे.)—श्रेष्ठ, उत्तम,
धन्य, भाग्यवान् ।

कल्याणिन् (विशे) ७ धन्य, भाग्यवान् ।

कष्ट (विशे०)—कठिन ।

काकपक्ष-क्षकः—घु घराले झूल ।

काचन—सुवर्ण ।

काम — इच्छा, कामदेव ।

कामगम—स्वेच्छानुसार चलने वाला ।

कामत (क्रियाविशे०)—वामना से
अभिभूत होकर ।

कामसू (विशे)—इच्छाओं को पूरा
करने वालों ।

कामिन् (पु)—प्रमा ।

कार्तातिक.—ज्योतिषी, भाग्य बताने
वाला ।

कापाय—गेरू आ वस्त्र ।

किन्नर.—स्वर्गीय गवैयो का एक वर्ग ।

किन्दन्ती—अफवाह ।

किरीटी (न्)—अर्जुन ।

कुटि न—(विशे०)—टेढा, मकार ।

कुट्टिम—फर्श ।

कुट्टचिन्—(पु०) गृहस्थ ।

कुतूहल—उत्सुकता ।

कुधी—मूढ, मन्द बुद्धि ।

कुमुद—रुमल ।

कुमुदिनी—रुमल का पौधा ।

कुशलम्—कुशल, कल्याण ।

कशलिन्—(विशे०)—कुशल पूर्वक

कुशाग्रबुद्धि—तज बुद्धि वाला ।

कुसरित्—नाला ।

कु—(पुर पूर्वक)—जनादि उभयपक्षी

आगे रखना, अगुआ बनाना ।

(अपा पूर्वक) हटाना, रोकना ।

(उप पूर्वक) उपकार करना ।

(वि पूर्वक) कर्मवाच्य बदल जाना

प्रभावित हो जाना, (विप्र पूर्वक)

तग करना, छेड़ना, हान पहुँ-

चाना । विप्रकृत—जिमक साथ

अन्धाय किया गया हो, जिसके

साथ दुर्व्यवहार किया गया हो,

सताया गया हुआ, हान पहुँ-

चाया गया हुआ ।

कृतधी—(विशे०)—बुद्धिमान्, विचार

शील ।

कृतन—(विशे०)—सम्पूर्ण, अप्रिल ।

कृपण—(विशे०)—अधम हृदय वाला ।

कृश—विशे०)—दुबला पतला ।

कृप्—+वादि-परस्मै—(वि पूर्वक)

भुकाना ।

कृषि—(स्त्री)—खेती ।

कृप्—(परि पूर्वक) प्रेरणाथक लगाना

बनाना, (सम् पूर्वक) प्रेरणार्थक)

नकल्प करना, तै करना, लक्ष्य

करना ।

कृष्णवर्त्मन्—(पु०)—अग्नि ।

केतन—घर, निवास स्थान ।

केशिन् (पु०)—एक राज्ञ का नाम ।

केसरिन् (पु०)—गह ।

कोटर र—खोखला, गड्ढा ।

कोटि (स्त्री०)—शिखर, अन्त, चोटी,

अग्रभाग ।

पराकोटि—उच्चतम शिखर ।

कोश-प—कला ।

कौतूहल—उत्सुकता, उत्कण्ठता ।

* कौपीन—लंगोटा ।

कौचेरी—उत्तर दिशा ।

कोरव्य—कुर का वंश ।

कौलीन—बदनामी, अपयश ।

कौमे (विशे०)—कच्छ, सम्बन्धी ।

कौशिक—+वश्वाभि—(कुशक)

के पुत्र ।

कौशिकी—एक स्त्री का नाम ।
 क्रकच.—आरौ ।
 क्रम् (आपूर्वक)—आक्रमण करना,
 छीन लेना, भपट्टा मारना ।
 क्रिया—काम ।
 क्रीडनीय—खिलौना ।
 क्लैब्य—कमजोरी, नपु सकता, डरपो
 कपन नामर्दी का सा व्यवहार
 (आचरण) ।
 क्लणिक—क्षण भर वायम रहने
 वाला, थोड़ी देर तक रहनेवाला ।
 क्षत्र—क्षत्रिय, योद्धाओं का वर्ग ।
 क्षपित—नष्ट ।
 क्षप—रात्रि ।

क्षम (विशे)—योग्य, समर्थ, उचित ।
 क्षय—घटना, नाश, कम होना ।
 क्षात्र (विशे)—क्षत्रिय वर्ण से सम्बन्ध
 रखने वाला ।
 क्षाराबुधि—खारा सागर ।
 क्षितिप]—राजा, पृथ्वीका स्वामी।
 क्षितीश्वर.]
 क्षिप् (आपूर्वक) तुदादि-परस्मै-
 पठकना, भड़काना, प्रलोभित ।
 करना, (निपूर्वक) समर्पण
 करना, लगाना ।
 क्षुद्र(विशे)—तुच्छाशय, अधम, अयोग्य।
 क्षेत्र—खेत ।
 क्षोभ—बड़े जोर का धक्का ।

ख

खम्—आकाश ।
 खड—टुकड़ा, तोड़ना ।

खल्वाट.—गजा ।
 खिन्न(विशे)—थका हुआ, परिश्रान्त

ग

गणक—ज्योतिषी ।
 गणिका—वेश्या ।
 गति (स्त्री)—आश्रय, चारा, अवलम्ब ।
 गद्गद (क्रिया. वि)—गला रुँघा हुआ ।
 गंध.—महक ।
 गंधद्विप—सर्वोत्तम जाति का हाथी,

जिसके गण्डस्थल से एक
 प्रकार की खुशबू निकलती
 रहती है ।
 गभस्ति—क्रिष्ण ।
 गम् (प्रत्युद् पूर्वक)—स्वागत करने
 के लिए जाना ।

गर्भेश्वरत्व — धनी घर में पैदा होना,
उत्तराधिकार में धन प्राप्त करना ।
गाभीर्य—गहराई ।
गाह—(भ्वादि-आत्मने) घुसना, घँसना ।
गिरौश — शिवजी ।
गुण — अच्छा परिणाम, लाभ, प्रभाव ।
गुरु (विशे०) — प्रधान, सर्वाग्रणी
(पु०) — पिता, गुरव — बड़े लोग ।

गृहमेधिन् (पु०) — गृहस्थ ।
गृहिणी — स्त्री, गृहस्थ की स्त्री ।
गोत्र — कुल, वंश ।
गोमायु — सियार ।
गौरव — बड़प्पन ।
ग्रह — पकड़ ।
ग्राम्य (विशे०) — देहाती, उजड़ु,
गँवारु ।

घ

घट् (स्मृ पूर्वक प्ररणार्थक) — जोड़ना,
मिलाना ।

घर्माशु — सूर्य ।
घातक — जल्लाद ।

च

चक्रवर्तिन् — चक्रवर्ती राजा ।
चक्रवाल — क्षितिज ।
चक्ष् (प्रत्या पूर्वक) अदादि आत्मने-
त्याग देना, इनकार कर देना ।
चचत् (विशे०) — हिलना हुआ ।
चचू — चोंच ।
चद्रकांत — चन्द्रान्तमणि ।
चपल (विशे०) — विचारहीन, चंचल
अस्थिर ।
चमू (स्त्री) — सेना ।
चय — राशि पुञ्ज ।
चर् — भ्वादि-परस्मै- (वि पूर्वक) —

घूमना फिरना, टहलना ।
चर — गुप्तचर, खोफिया ।
चल — (विशे०) — चंचल ।
चलचित्ता — चित्तकी चंचलता ।
चलित — एक प्रकार का नृत्य ।
चातक — चातक पक्षी ।
चापलम् — चपलता ।
चामर — चँवरो ।
चारित्र्य — शुद्धाचरण सदाचार ।
चारुता — सुन्दरता ।
चि — (प्र पूर्वक) — कर्मवाच्य-बढ़ना,
उन्नति करना (परि पूर्वक) — प्राप्त-

करना ।	चूत.—ग्राम का दृक् ।
चिकीर्षा—करने का इच्छा ।	चेष्टा—कार्य ।
चित्र—(विशेष) आश्चर्य, विचित्र ।	चेष्टित—आचरण ।
चित्रापित—चित्र में चित्रा हुआ ।	च्युत त्मन्—गिरी हुई अथवा भ्रष्ट
चूडा—शिखर चोटा ।	आत्मा वाला ।
चूडामणि—मि. का मणि ।	

छ

छद्मन्—(नपु०) -कपट बहाना ।

ज

जड—(विशेष) मूढ़ ।	जाति (स्त्री०)—जाति ।
जनता—जनसमूह ।	जाल्म—बदमाश, शठ, धूर्त ।
जतु—जानवर, प्राणी ।	जीव्—अनुरू (क) +वादि—परस्मे-
जन्मभूमि (स्त्री०)—जहाँ किसी का जन्म हुआ हो वह देश ।	जाते रहना, किसी के बाद में भी जिन्दा रहना ।
जयत—इन्द्र का पुत्र ।	जीवनं—जीवन, जिन्दगी ।
जलचर—जल में रहने वाला जान वर ।	जीवलोक—समाग, विश्व ।
जलद. { —बादल ।	जृग्—(समुत् पूर्वक) +वादि—
जलमुच् { —बादल ।	आत्मने—प्रयत्न या चेष्टा करना ।
जलयत्र—पानी का जल, कृत्रिम जलाशय ।	(।व पूर्वक)—दिखाई पड़ना, ब्याप्त करना ।
जलाशय—जल का स्थान, तालाब ।	ज्या—धनुष का डोरा ।
जाल—ब्रह्मा, समूह, ब्रह्मा का समूह ।	ज्ञाति—जाति भिन्नदरी वाले ।
	ज्ञापय—(ज्ञा का प्रेरणार्थक) वि पूर्वक —सम्मान पूर्वक कहना, प्रार्थना

करना । आ-पूर्वक आज्ञा देना । ज्योतिष्मत् — (विशे०) — चमचमाता
ज्योति शास्त्र — ज्योतिष । हुआ, दीसिमान् ।

ट

टिट्टिभी — टिट्टिहरी ।

ढ

ढौक् — (भादि-आत्मने) समीप म आना ।

त

तटिनी — नदी ।

तनु (विशे०) — दुबला पतला ।

तपन — सूर्य ।

तप्त — घाम में पीडा ।

तदानीतन — समकालीन, एक ही
समय म रहने वाला ।

तमसा — एक नदी विशेष ।

तमिस्रा — अन्धकार ।

तरा — लहर ।

तरलता — चंचलता, आन्दोलन,
इन्द्रियो का क्षोभ ।

तात — प्रिता, प्रेम सूचक शब्द ।

ताप्तस. — तपस्व ।

ताल. — ताड़ का वृक्ष ।

तितित् — भादि-आत्मन० — (तिज् की
सन्नन्त धातु) — क्षमा करना ।

तिमिरः-र — अन्धकार ।

तीक्ष्ण (विशे०) — तेज, कठिन, अति
कठोर ।

तीर्थ — तीर्थ स्थान, पुण्य स्थान, योग्य
व्यक्ति, योग्य पदार्थ ।

तीर्थोदक — तीर्थ का जल, पवित्र जल ।

तुषार (विशे०) — ठंढा, ठढक ।

तुषार — हल्की बौछार ।

तूर्य -र्य — वाद्य यन्त्र, नगाड़ा ।

तूल — रुई ।

तूष्णीम् — (क्रिया वि०) — चुपचाप ।

तृ — भादि-परस्मै (अव पूर्वक) यात्रा
को समाप्त कर देना, गर्भस्थ
चोबो को निकाल देना । (प्र
(पूर्वक-प्रेरणार्थक — घोखा देना,
(वि पूर्वक) देना ।

तेजस्विन् — (विशे०) — बीरो की सी
आ म युक्त, (सश) योद्धा ।

त्वच्—(स्त्री०)—चमडा, छाल ।

त्रयं—तीन का समूह ।

त्रिपुरहर —तीनों पुरों को नष्ट करने वाले (शिवजी) ।

त्रिमूर्ति—(विशे०)—तीन स्वरूप वाला

द

दक्ष (विशे०)—बुद्धिमान, चतुर ।

दक्षिण (विशे०)—सम्य, शिष्ट ।

दंड —डठल (कमल का) ।

दम्—(प्र पूर्वक प्रेरणार्थक)—दबाना, कुचलना ।

दमन—नियंत्रण, बन्धन ।

दम्य.—जवान बैल जो अभी पालवू नहीं बन पाया है, जो अभी जोता नहीं गया है ।

दयित—(विशे० अथवा स०)—प्रिय, स्वामी ।

दरी—घाटी ।

दपे—घमण्ड ।

दर्पण —आइना ।

दर्भ—कुश ।

दल—भाग, टुकड़ा, छोटा सा अंकुर, पत्ता ।

द्वामिः—जगल की आग ।

दशन—दोत ।

दार—(पु०)—नित्यबहुवचनान्त-पत्नी, भार्या ।

दारुण—(विशे०)—दुःखद ।

दिवसेश्वर—दिनपति, सूर्य ।

दिव्य—(विशे०)—स्वर्गीय, अलौकिक ।

दीक्षित- दीक्षा द्वारा तैयार किया हुआ ।

दीन—(विशे०)—कसगाथात्र अभागा, दुःखी ।

दीप्—(दिवादि-आत्मने)---चमकना, जलना ।

दीपक —दिवा, चिराग ।

दीप्तिमत्—(विशे०)—चमक वाला, चमकता हुआ ।

दुस्मर—(विशे०)—जिसका स्मरण करके दुःख हो ।

दुराराध्य—(विशे०)—जो आसानी से सन्तुष्ट न किया जा सके ।

दुरित—पाप ।

दुर्ग—(विशे०)—जिसके पास तक पहुँचना कठिन हो (संज्ञा), कठिनाई ।

दुर्जनत्वम्—दुष्टता ।

दुर्जर्य (विशे०)—जिसको जीतना मुश्किल हो ।

दुर्धर्ष—(विशे०) भयानक, जिस पर
आक्रमण करना कठिन हो ।

दुर्निवार—(विशे०)—जिसको रोकना
कठिन हो ।

दुर्भिक्ष—अकाल, अन्नाभाव ।

दुर्लभ्य—(विशे०)—जिसको लभन
कामा मुश्किल हो ।

दुर्ललित—(विशे०) प्यार करके
बिगाड़ दिया गया हुआ ।

दुश्चर—(विशे०)—कठिन, घोर, जिसका
आचरण करना कठिन है ।

दुष्कर—(विशे०)—जिसको करना
कठिन हो ।

दुष्कृत्—(पु०)—पापी दुष्ट ।

दुष्कृत—बुरा कर्म ।

दुष्टाशय } विशे०—दुष्ट हृदय वाला ।
दुरात्मन् }

दूरीकृत—(तनादि उभयपदी)—मात कर
देना ।

दूषण—अपराध, ऐब, अवगुण, त्रुटि
देवरातः—(व्यक्तिवाचक)—माधव का
पिता ।

देवी—रानी ।

देहभृत् } (पु०) देहधारी ।
देहिन् }

दैवदुर्विपाकः—दुर्भाग्य ।

द्युति—(स्त्री०)—चमक, शोभा, छवि ।

दृढय—दृढ करना ।

द्रव्य—भौतिक पदार्थ ।

द्रु—भवादि-परस्मै-द्रवीभूत होना, भागना ।

द्रुम.—वृक्ष ।

द्विगुणित—(विशे०)—दुगुण ।

द्विज—पक्षी, ब्राह्मण ।

द्विजाति—ब्राह्मण ।

द्विप—द्वीप ।

द्विरद—हाथी ।

द्विरेफ—मौरा ।

द्वीप—टापू ।

ध

धनजय.—अर्जुन का नाम है ।

धनेश—धन के स्वामी अर्थात् कुबेर ।

धन्य (विशे०)—भाग्यवान् ।

धन्विन् (पु०)—धनुर्वासी ।

धर्म.—कतेव्य, धार्मिक कृत्य, आच-

रण की औचित्य ।

धर्मक्रिया—धार्मिक कार्य ।

धर्मपत्नी } धर्म पूर्वक व्याही हुई स्त्री ।
धर्मदाराः }

धर्मारण्य—तपोवन ।

धर्मासन—न्यायासन, अदालत ।
 धा—जुहोत्यादि-उभयपदी (आतिसम्
 पूर्वक)—ठगना (अन्तर पूर्वक)
 अपने को छिगाना । (अभिपूर्वक)
 कहना, बोलना । (सम् पूर्वक)
 सन्धि करना, वर्तमान करना, जैसे
 बाण ठीक किया जाता है उस
 तरह ठीक करना ।
 धातृ—(पु ०)—सृष्टिकर्ता ।
 धामन्—(नपु ०) शोभा, प्रतीति ।
 धारणा—मन को दृढ एकाग्रता ।
 धारावाहिन्—निरन्तर ।
 धारिणी—एक रानी का नाम ।
 धीर—दृढ चित्त वाला, साहसी,
 अधवसायी ।

धीरता—धैर्य, मन की मजबूती ।
 धुर्य—नेता, प्रधान ।
 धुत्—(सम् पूर्वक) +वादि-आत्मने-
 सुलगाना ।
 धू—(उत् पूर्वक) +वादि-उभयपदी-
 हिलना, फड़फड़ाहट त्याग देना ।
 धूर्त—ब्रह्माश ।
 धृ—+वादि तथा चुरादि-परस्मै-धारण
 करना, थाँभना, (उत् पूर्वक
 अथवा समुत् पूर्वक) रक्षा करना,
 उग्राड फेंकना, उठाना निकाल
 लेना ।
 ध्याम (विशे ०)—गन्दा, मलिन ।
 ध्वनत्—गर्जता हुआ, कड़कता हुआ ।

न

नकुल.—नेवला ।
 नक्षत्र—तारा ।
 नग—पर्वत ।
 नद्—+वादि-परस्मै-प्रसन्न होना-आनन्द
 मनाना, (अभिपूर्वक) स्वागत
 करना, बधाई देना ।
 नदन—इन्द्र का बगोचा ।
 नत्निका—एक नौकराना का नाम ।
 नलिनी—रुमल का पौधा ।

नवीकृ—तनादि-उभयपदी नया कर
 देना, पुनर्जीवित कर देना ।
 नहृ (सम् पूर्वक)—दिवादि-आत्मने-
 तैयार हो जाना ।
 नाट्य—नाच, नाटक ।
 नामग्रहण—नाम लेना ।
 निश्रेयस—महत्तम आनन्द, सर्व-
 श्रेष्ठ सुख ।
 निःसत्यता—भूठ ।

निःस्नेह—निर्दय, हृदयहीन ।
 निकाम (विशे०)—खुश, प्रचुर, अत्यधिक ।
 निकष. (ग्रावन्.)—कसौटी ।
 निखिल (विशे०)—सम्पूर्ण ।
 निगाद्य—कहे जाने योग्य, चर्चा किए जाने योग्य ।
 निग्रह—दण्ड ।
 निचुल—निचुल नामक एक वृक्ष ।
 निज—अपना ।
 नितर—(क्रिया विशे०)—अत्यन्त ।
 नितात—अत्यधिक ।
 निदाघ—ग्रीष्म ऋतु ।
 निदान—मौलिक कारण ।
 निधन—मृत्यु ।
 निवधन—जोड़ने वाली लड़ी ।
 निमित्त—शुभ लक्षण, मारण, लक्षण ।
 निमिष—पलक गिरना ।
 नियम—धार्मिक कृत्य ।
 नियमेन—(क्रिया विशे०) जैसा कि नियम है ।
 नियोग—आज्ञा, कर्तव्य ।
 निरतिशय—जिसको किसी ने मात न किया हो ।
 निरत—लगा हुआ ।

निरपेक्ष } (विशे०) तटस्थ,
 निरभिलाष } उदासीन ।
 निरस्त—निकाला हुआ ।
 निराकरण—काट देना, फेंक देना ।
 निर्गम—निकास, निकलने का द्वार ।
 निर्गुण—(विशे०)—गुणरहित, अयोग्य ।
 निर्भर—भरना, सोता ।
 निर्वध—हठ ।
 निर्वाण—पूर्ण सन्तोष, अथवा आनन्द, गर्मी को कम करना ।
 निर्वात—जहाँ हवा न हो (हवा एक दम शान्त हो) ।
 निर्वाड—बदनामो ।
 निर्वापण—हल्का करना, कम करना ।
 निर्वृत्ति—(स्त्री०)—सन्तोष, सुख ।
 निर्वृत्त—हो गया हुआ ।
 निशाचर—राक्षस ।
 निषेवित—भरा हुआ ।
 निष्कप—निश्चल, स्थिर ।
 निष्पीडित—निचोड़ा हुआ, दबाया हुआ ।
 निष्प्रतीकार—(विशे०)—जिसका कोई इलाज न हो ।
 निसर्ग—प्रकृति ।
 निसृष्ट—दत्त ।

निस्वन — ध्वनि ।

निखिंश — निर्दय, पैनी ।

निष्पन्द — निश्चल ।

नी — भ्रादि-परस्मै- (अनु पूर्वक) स्नेह करना, (उप पूर्वक) यज्ञोपवीत संस्कार करना, (समा पूर्वक) इकट्ठा करना, जुटा देना ।

नीरध्र — घना ।

नील — नीला ।

नुद् — (वि पूर्वक-प्रेरणार्थक) मन बहलाना, मनोरंजन करना ।

नूपुर — गायजेव ।

नैमित्तिक — प्रभाव, परिणाम ।

नैषध — महाराज नल का नाम है जो निषधदेश के राजा थे ।

नैष्ठुर्य — निष्ठुरता, प्रकृति की उग्रता ।

नैसर्गिक — प्राकृतिक, औत्पत्तिक ।

प

पकण — चाण्डाल का भोपड़ी ।

पक्ष — पक्ष, एक तरफ ।

पकच्छिद् — गन्दगी को हटाने वाला ।

पचाल — पचाल देश के राजा ।

पजर — पिंजड़ा ।

पटु — निपुण ।

पट् — (परिपूर्वक प्रेरणार्थक) — पढ़ाना ।

पत् — (भ्रादि-परस्मै- परिपूर्वक) — मँडराना, चक्कर काटना । (प्रणि पूर्वक) प्रणाम करना ।

पतगः — मकौड़ा, पतिंगा, सूर्य ।

पतिवरा — पति को वरण करने वाली ।

पत्रपुट — पत्तों का पात्र (दोना) ।

पत्रलेखा — व्यक्ति वाचक सज्ञा ।

पत्रोर्ण — रेशम का वस्त्र ।

पथ्य — कल्याण, हितकारी भोजन ।

पद् — (व्यापूर्वक-प्रेरणार्थक) मार डालना, (प्रतिपूर्वक) कबूल करना, स्वीकार करना, ।दखाना, हारमानना, प्राप्त करना । (उप-पूर्वक प्रेरणार्थक) अस्तित्व में लाना, करना ।

पन्नगः — साँप ।

पयस्विनी — गाय ।

पयोद् — बादल ।

परभृत — कोयल ।

परमप्रख्य — बड़ी कीर्ति वाला ।

परमार्थ — सर्वोच्च सत्य ।

परमार्थतः — वस्तुतः, वास्तव में ।

परतप — शत्रुओं का नाश करने वाला

दुःख देने वाला ।
 (र)परा—सिलसिला ।
 पराक्रम—वीरता, शूरता ।
 परागत—छोटा हुआ ।
 परावृत्त—वूम आया हुआ, लौटा हुआ ।
 परिगृहीत—जिसके ऊपर कृपा दिखाई गई हो ।
 परिग्रह—विवाह ।
 परितर्पण—सन्तुष्ट करने वाला ।
 परिदेवना—रोना घोना ।
 परिपथिन्—विघ्नकारी बाधक ।
 परिभव—तिरस्कार ।
 परिभाविन्—तिरस्कार करने वाला, नीचा दिखाने वाला ।
 परिवार. { नौकर चाकर ।
 परिजन. }
 परि (री)वाह—जलमार्ग, नाली, पानी के निश्लने का मार्ग ।
 परिव्राजिका—सन्यासिनी ।
 परिषद्—सभा ।
 परीक्षित—एक राजा का नाम ।
 परीत—अभिभूत ।
 परोक्षे—पीठ पीछे ।
 पर्यटन—टहलना, घूमना ।
 पर्याप्त—योग्य, समर्थ ।

पर्याय—नियमित पारी या क्रम ।
 पल्लव—डाली, टहनी ।
 पल्लविका—एक नौकरानी का नाम ।
 पल्लवित—जिसमें पत्ते आ गए हों ।
 पवन—हवा ।
 पांसुल—बब्बा या दाग लगाने वाला ।
 पांडु—पाला, सफेद ।
 पाणिग्रह—विवाह ।
 पाताल-लम्—पाताल ।
 पात्र—पात्र ।
 पानीय—जल ।
 पापभाज्—पापी ।
 पारक्य—शत्रुपक्षीय ।
 पारग्राभिक—शत्रुपक्षीय ।
 पारसीका—फारस देश वाले ।
 पार्श्व—पास, बगल ।
 पावक—आग ।
 पावन—पवित्र करने वाला ।
 पिगल—पीला, लाल, भूरा ।
 पिट—टाकरी ।
 पिठर—वर्तन, कढ़ाही ।
 पिपासु—प्यासा ।
 पिशुन—चुगुलखोर ।
 पिशुनता—चुगुलखोरी ।
 पीठ—आसन, सिंहासन ।
 पीडित—दुःखित ।

पीवर—मोटा ।	प्रकृति—मन्त्रि-समूह ।
पुङ्गव—बैल, समासो के अन्त मे आने पर इसका अर्थ होता है “सर्वश्रेष्ठ” ।	प्रकोप—क्रोध ।
पुण्य—पवित्र ।	प्रकोष्ठ.—घर के अन्दर का आँगन ।
पुण्यभाज्—पुण्यात्मा ।	प्रक्रात—पराक्रम ।
पुरन्दर—हन्द्र ।	प्रक्षीण—नष्ट ।
पुरस्कृत—जो आगे आगे चलता हो ।	प्रगल्भ—ढीठ ।
पुराण—पुराना ।	प्रजागर—रात की जगाई, रात को जागते रहना ।
पुप्—दिवादि परस्मै-प्रदर्शित करना ।	प्रजापति—सृष्टिकर्ता ।
पुष्पित—फूला हुआ ।	प्रणय.—प्रेम ।
पुष्पेषु—कामदेव ।	प्रणयिता—प्रेम ।
पूरोत्पीड—जल की प्रचुरता ।	प्रणयिनी—प्रियसखी ।
पूर्ववत्—पहिले की तरह ।	प्रणिधि.—गुप्तचर ।
पृथग्जन—तुच्छ मनुष्य, गँवार, अपढ़ ।	प्रतनु—बहुत छोटा ।
पृष्ठ—सतह, पाठ ।	प्रताप—शक्ति, पराक्रम गर्मी ।
पेशल—चतुर, निपुण ।	प्रतिनिर्विष्ट—इठी ।
पोत—जहाज ।	प्रतिपादित—दिया हुआ ।
वीरपोत—जवानी से भरा हुआ योद्धा ।	प्रतिबधवन्—कठिनाइयों अथवा विघ्न बाधाओं से युक्त ।
पौरव—पुरुषा वश न ।	प्रतिबुद्ध—जगा हुआ ।
पौरुष—पराक्रम, साहस्य ।	प्रतिबोधवत्—बुद्धि शक्तीवाला तर्क शक्तिवाला ।
पौरुहूत—इन्द्र सम्बन्धी ।	प्रतिम—समान ।
प्रकीर्ति—नाम की चचा ।	प्रतिवाच्—उत्तर, जवाब ।
प्रकीर्तित—कहा गया हुआ ।	प्रतिष्ठा—स्थिरता, स्थिति की दृढ़ता, दृढ़ स्थिति ।

- प्रतिसक्त—लगा हुआ, गढ़ा हुआ । प्रयत—गवित्र, तपस्या से विशुद्ध किया गया हुआ ।
- प्रतीकार } इलाज, उपाय
प्रतिक्रिया }
- प्रतीत—विश्राम करने वाला । प्रयुक्त—लगाया हुआ, इस्तेमाल किया हुआ ।
- प्रतीप—विरुद्ध, विपक्ष । प्रयग—प्रयोग, क्रिया व्यवहार ।
- प्रत्यग्र—नथा, तौजा । प्रलाप—रान्ना धोना ।
- प्रत्यधिन्—शात्रव, विरुद्ध, अडचन डालने वाला । प्रवणक—झुका हुआ, खींचा हुआ ।
- प्रत्यादेश—ठक लेने वाला प्रतिद्वन्द्वी, पछाड़ देने वाला, आच्छादित कर लेने वाला । प्रवयस्—बुढ़ा ।
- प्रथित—प्रसिद्ध । प्रवात—हवा का वेग, झुझावात, आर्ध-नूतन से युक्त दिन ।
- प्रत्यक् पश्चिम की तरफ । प्रवातशयनम्—वह विस्तरा जो झुझावातके बीच में लगाया गया हो
- प्रत्युत्पन्नमति—हाजिर जवाब । प्रवृत्ति—प्रारम्भ
- प्रदान—विवाह में देना । प्रव्रज्या संन्यास ।
- प्रदोष—सध्यामाल । प्रशमित—ठीक कर दिया हुआ ।
- प्रद्रुत—भाग गया हुआ । प्रश्नोत्तन—छुड़काव ।
- प्रबन्ध—निबन्ध । प्रसन्न—खुश ।
- प्रभव.—उत्पत्तिस्थान । प्रसगत—यहाँ, वत की चलन में वात के सिलमिले में ।
- प्रभाव—शान्, बल । प्रसह्य—जवरदरती ।
- प्रभुत्व—शक्ति अधिकार । प्रस्ताव—चर्चा, हवाला ।
- प्रमद्वन—आमोद प्रमोद का बगोचा । प्रस्तुत—इस समय झिड़ा हुआ
- प्रमाण—साम, तुलादण्ड । अधिकारी विषय ।
- प्रमाणीकृत—अधिकार मानना । प्रसूति—सन्तान ।
- प्रमाण मानना । प्रसून—फूल ।
- प्रमाथिन्—व्यथा पहुँचने वाला । प्रसून—फूल ।

प्रस्थ — एक बटखरे को कहते हैं ।	प्रांतः—अन्त, सिरा, किनारा ।
प्रहरण—अस्त्र ।	प्राप्तप्रसव—बच्चा दे चुकी हुई ।
प्रहसन—हँसी मजाक ।	प्रार्थना—इच्छा, प्रणययाचना ।
प्रक्षु—ूर्व की तरफ ।	प्रावृष्—वर्षा ऋतु ।
प्राकार—चहार दीवारी ।	प्राश्रिक—निर्णायक, मध्यस्थ ।
प्राग्रसर—प्रथम, सब से आगे ।	प्रिय—प्यारा ।
प्राङ्मुख—अपना मुँह पूर्व की तरफ करके ।	प्रेषित—भेजा हुआ, खारिज, बरखास्त ।
प्राणायाम—सँसरोकना, श्वासावरोध ।	प्रोद्दीप्त—आग लगाया हुआ ।
प्रातराश—कलेवा, प्रातःकाल का भोजन ।	प्लवग (व)—चन्दर ।

फ

फण—शा—फन (सॉप का) ।	फलेग्रहि—फलयुक्त, सफल, समय पर फल धारण करने वाला ।
फलं—फल, परिणाम ।	

ब

बक — बगुला ।	बांधव — रिश्तेदार, भाई ब्रिगदरी ।
बटु — युवक लड़का ।	बालिश — मूर्ख ।
बंदी—कैदी ।	बिब—परछाई ।
बन्धुल — वेश्या के घर का नौकर ।	बीभत्समान—डरता हुआ, दुखित होता हुआ ।
बल—सेना ।	बुद्धिजीविन्—बुद्धि लगाने वाला ।
बलि—पूजा ।	ब्रह्मर्षि—ब्राह्मण ऋषि ।
बलीवर्दः—बैल ।	

भ

- भग्नोद्यम—जिमके प्रयत्न विफल हो गये हों, हार गया हुआ ।
 भज—भवादि उभय पदो-मनोरजन करना, आशा करना, अभ्यास करना ।
 भक्तिमत्—भक्तिवाला ।
 भद्र—सम्बोधन करने का एक ढग है, महाशय जी, श्रीमान् जी ।
 भद्रा—सभ्य वा शिष्ट स्त्री ।
 भरण—पोषण ।
 भरतर्षभ—भरतवशियो मे सर्वश्रेष्ठ ।
 भर्तृहारिका—राजकुमारी ।
 भव—उत्पत्ति, शकरजी ।
 भवन—घर ।
 भवितव्यता—होनहार, होनी, भाग्य ।
 भागधेय—भाग्य, तकदीर ।
 भाग्य—समृद्धि, ऐश्वर्य, सुख के दिन ।
 भाजन—पात्र ।
 भाष् (अपपूर्वक-वादि-आत्मने०) निन्दा करना, गाली देना ।
 भाव—भावना, प्रेम प्रकाश होना, विद्वान् व्यक्ति, सम्माननीय महोदय ।
 भासुर—चमचमाता हुआ, चमकीला ।
 भास्वत्—चमकता हुआ, सूर्य ।
 भिक्षाशित्व—भोखे माँगकर जीवन निर्वाह करना ।
 भीम—भयकर, भयानक ।
 भुजग—साँप ।
 भुवन—ससार ।
 भू—(वि पूर्वक-प्रेरणार्थक) सोचना, सिद्ध करना, निर्णय करना, देखना, भिन्न होना, जानना (सम् पूर्वक)-पैदा होना ।
 भूत—प्राणी ।
 भूतधारिणी—पृथ्वी ।
 भूमिका—पार्ट, नाटक का पात्र ।
 भूमिदेव—ब्राह्मण ।
 भूय—फिर ।
 भूयिष्ठ—खूब ।
 भूरिवसु—व्यक्ति वाचक सज्ञा, मालती का पिता ।
 भैक्ष्य—भीख माँगना ।
 भोग—भोग, विलास ।
 भ्रंश—हानि ।
 भ्रातिमत्—धूमता हुआ, चक्कर काटता हुआ ।

म

मंगल—शुभ, शुभकृत्य, (समाप्त में)
 शुभ, जैस, मंगलतूर्य-शुभ
 नगाडा, मंगलस्नानम्-शुभ-
 स्नान ।

मजु—माठा ।

मजुल —एक प्रकार की लता ।

मंडन—ग्राभूषण, सजावट ।

मद्—(उद् पूर्वक प्ररणार्थक) पागल
 कर देना, मतवाला कर देना ।

मद—नशा, प्रबल इच्छा, चूता
 हुआ रस ।

मदमुच्—मद बहाने वाला ।

मधु—शराब ।

मधुर—सुन्दर, मीठा ।

मधुमास.—बसन्त समय ।

मधुसूदनः—कृष्ण, मधुनामक राक्षस
 को मारने वाले ।

मध्यस्थ—निर्णायक ।

मनस्त्रिन्—बुद्धिमान्, दृढचित्त,

मनस्विनी—बुद्धिमता स्त्री ।

मनीषिन्—बुद्धिमान् पुरुष, ऋषि ।

मनोभूः }
 मनसिज } कामदेव ।

मन्—(आ पूर्वक-चुगदि-आत्मने०)
 विदा होना ।

मन्त्रकृत्—मन्त्र बनाने वाला ।

मन्त्रवत्—मन्त्रों से युक्त, मन्त्र वाला ।

मन्थर—मन्द, धीमा ।

मद—कुन्द, कु ठित ।

मदभाग्य—मन्द भाग्य वाला,
 श्रमभागा ।

मदायमान—पिछड़ा हुआ ।

मदीकृत—धीमा किया हुआ ।

मदात्सुक्य—जिसका दिल दुखी हो,
 निकाल दिया हुआ ।

मन्मथ—कामदेव ।

मन्यु—शोक, दुःख, क्रोध ।

मरिच—मिर्च ।

मरोचि—किरण ।

मर्त्य—मनुष्य, मरणशील ।

मलयजं—चन्दन का रस ।

महाजन—भीड़, जनता ।

महाभाग—भाग्यवान् पुरुष ।

महातेजस्—बड़ा तेजस्वी ।

महार्ह—महंगा, कीमती ।

महीपाल—राजा ।

महेंद्रः—बड़े इन्द्र ।

महेश्वर —बड़ा ईश्वर (णति) ।

महोत्तः—ब्रैल ।

महौषधि—बड़ी दवा ।

मागधी—सुदक्षिणा, मगधदेश के राजा की लड़की ।

मात —प्यार का शब्द ।

मान —घमंड ।

मानिनी—घमंडी स्त्री ।

मानुष्यक—मनुष्य प्रकृति ।

मारुत —हवा ।

मालाकार—माली ।

माल्यम्—माला ।

मिश्र—प्रतिष्ठा सूचक प्रत्यय-जिसका अर्थ होता है, “सम्माननीय, योग्य” ।

मुत्ताफल—मोती ।

मुग्ध—कपट रहित, निरपराध ।

मुद्—(अनुपूर्वक-भावि आत्मने.) अनुमोदन करना, समर्थन करना ।

मुद्रा—घुहर ।

मुरारि—विष्णु ।

मूछ्—(+वादि-परस्मै०) अभाव डालना, बल दिखलाना, बल पाना, माटा पड़ना, घना पड़ना ।

मूसल—मूसग या मूसल जिससे

ओखली में अनाज काँड़ा जाता है ।

मुहु —बारबार ।

मूर्तिमत्—मूर्तिमान् ।

मूर्धज केश, बाल ।

मृगतृष्णका—मृगतृष्णा, झूठी आशा ।

मृणाल—कमल का रेशा ।

मृणालिनी—कमल ।

मृद्—मिट्टी ।

मृदु—कोमल चित्त वाला, कमजोर ।

मृप्—(चुरादि-परस्मै०) सहन करना ।

मृषा—व्यर्थ, गलती से ।

मृपोद्य—भूट ।

मेखला—करघनी, पेटी ।

मेघनाद —व्याक्त वाचक सजा । रावण के पुत्र का नाम ।

मेधा—बुद्धि, गुण ।

मेध्य—पावत्र ।

मैथिलेय—मैथिली के पुत्र, कुश ।

मोक्ष—छुटकारा ।

मौल—पुगना नौकर, बाप दादो के जमाने से चला आया हथौड़ा नौकर ।

म्लेच्छ—बहिष्कृत जाति का व्यक्ति, जङ्गली, असभ्य ।

य

यजन—यज्ञ ।

यत्किञ्चनकारिता—नीच काम करना ।

यथार्थ—अर्थ के अनुसार, ठीक ठीक ।

यथावत्—(क्रिया विशेष) उचित विधि के अनुसार, उचितरिति से ।

यदृच्छया (क्रियाविशेष)—स्वेच्छानुसार । अकस्मात् ।

यम् (नि पूर्वक)—(भवादि-परस्मै) हटाना ।

यम—जुड़वाँ ।

यष्टि(स्त्रा)—माला, हार ।

यस् (आपूर्वक—प्रेरणार्थक)—दुख देना, व्यथित करना ।

या (प्रपूर्वक)अदादि-परस्मै -- प्रस्थान करना, रवाना होना ।

याच्च्वा—दीन होकर माँगना ।

यातुधान —राक्षस ।

यादृच्छिक (विशेष)—आकस्मिक ।

यावदर्थ (क्रियाविशेष)—हर माने में ।

युज् (रुधादि-उभयपदी)

इरादा करना, भाग्य में बढा होना । (निपूर्वक प्रेरणार्थक)

नाधना, जोतना, जोड़ देना, मेल कराना । (प्रपूर्वक) आत्मने-काय करना, नाटक रूप में प्रदर्शित करना ।

युध्—युद्ध ।

युवराज —युवराज ।

योग.—मन को एकाग्र करने को विद्या ।

योजनं—प्राठ मील की दूरी ।

योनिः—उद्गमस्थान, मूल कारण,

र

रहस्—(नपु)-वेग, चाल ।

रजनिचर—राक्षस ।

रणरणक—चिन्ता ।

रज्ज्—(अपपूर्वक-कर्मबान्ध)असन्तुष्ट हो जाना ।

रक्षधुरा—समर का अग्रभाग ।

रणशिक्षा—युद्ध शास्त्र, युद्धकला ।

रत्नाकरः—समुद्र ।

रध्—विवर, गड्ढा, छेद, सुराख ।

रभ् (परि पूर्वक) भवादि-आत्मने

—गले लगाना, आलिगन करना ।
 रय —धारा, प्रवाह, वेग ।
 रश्मि —लगाम ।
 रस्—भ्वादि-परस्मै-भारजना ।
 रस.—रस (शृंगार, हास्य, करुण,
 रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स
 अद्भुत ।
 रसवत्तर—अधिक स्वादिष्ट ।
 रसाबल—पातल ।
 रसाल —आम्रवृक्ष ।
 रसिक(विशे),—शोभायुक्त, रमणीक,
 रस को समझने वाला ।
 रहस्य—भेद, गुप्त बात । रहस्यभेद
 गुप्त बात का खुल जाना ।
 राक्षसः—नन्द वशीय राजों के मंत्री
 का नाम “राक्षस” था ।
 राग —वासना, उत्कट इच्छा ।

राजन्वत्—(विशे०)—न्यायशील
 अथवा सज्जन राजा द्वारा शासित ।
 राजर्षि—क्षत्रिय ऋषि ।
 राजतत्र—शासन-विद्या, शासन-शास्त्र ।
 रात्रिचरी—राक्षसी ।
 राध्—(आ पूर्वक-प्रेरणार्थक)-प्रसन्न
 करना, किसी की इच्छा के अनुसार
 व्यवहार करना ।
 रामगिरि. — एक पर्वत का नाम ।
 रुजा-ज्—(स्त्री०) -पीडा, आधि,
 मनोव्यथा ।
 रुधिर—रक्त ।
 रोगिन्—(विशे०)--रोगी, बीमार ।
 रोषण—(विशे०) क्रोधी ।
 रोषणता—क्रोधी प्रकृति ।
 रौरव—(विशे०)—रुक् नामक मृग
 की छाल से बना हुआ ।

ल

लक्ष्मन्—(भपु) -धन्वा, दाग ।
 लक्ष्मी.—शोभा, धृति ।
 लक्ष्य—रुम करना, घटाना ।
 लभ्—(उपा पूर्वक) भ्वादि—आत्मने-
 व्यय बोलना, ताना मारना,
 कलक लगाना । (प्रपूर्वक)-भ्वादि

परस्मै-बड़बड़ाना, जल्पना ।
 ललामन् (नपुं०)—एक
 आभूषण ।
 ललामम्—एक आभूषण ।
 लवंगिका—मालती की सौतेली
 बहिन ।

लवणाभस्—(पु०) -समुद्र (खारे पानी वाला) ।

लाघव -नैराश्य, हीनता, बेइज्जती, नीचा देखना ।

लाछन—निशानी । श्री कण्ठम्—

लाछन “श्रीकण्ठ”शब्द से प्रसिद्ध ।

लिख्—(व पूर्वक) तुदाद परस्मै-

गाड देना, लगा देना, बीध देना ।

लिखित—लेख दस्तावेज ।

लुम्—(प्र पूर्वक प्रेरणार्थक) प्रलो-
भित करना, उसकाना (वि० पूर्वक-
प्रेरणार्थक) किसी के चित्त को
उभाड़ना या प्रलोभित करना ।

लोभ्र.लोभ्रम्—लाभ्र नाम का वृक्ष,
अथवा लोभ्र वृक्ष का फूल ।

लोल—(विशे०)-उत्सुक,

व

वश्य—वशज ।

वध्यस्थान—फाँसी घर ।

वत्स—बछड़ा ।

वत्सतरो—बछिया ।

वनज्योत्स्ना—माधवी लता ।

वनदेवता—वन की देवता ।

वनस्पति—वृक्ष ।

वन्य—जंगल ।

वप्—(निर पूर्वक-+वादि-परस्मै) देना,
उधार देना ।

वष्टु—(पु०) बोनने वाला ।

वम्—(उत् पूर्वक-+वादि-परस्मै)-के
परना, उँडेलना, निकालना ।

वयस्—(नपु०) कौआ, पक्षी ।

वर—(विशे०)-सर्व श्रेष्ठ, सर्व प्रथम

वर.—दूल्हा ।

वराक—(विशे०)वेचारा, दयनीय ।

वरीयस्—(विशे०) अच्छा, बड़ा ।

वर्ण—जाति ।

वर्ग्य—किसी गुट्ट का, किसी वर्गका ।

वर्ग्या—नाटकीय पात्रों का समुदाय ।

वर्णिन्—ब्रह्मचारी ।

वल्कल—पेड़ की छाल का वस्त्र ।

वल्गल—उछाल, कुदाव ।

वल्माक.-क—पॉवी, त्रिवोंग ।

वल्मभ—प्रिय, इष्ट । वल्मभा—पत्नी ।

वश—अधीनता ।

वशिन्—(विशे०) ऋषि, जिसने
इन्द्रियो को जीत लिया हो ।

वश्या—आज्ञा कागिणी पत्नी ।

वस्—(अध्यापूर्वक-भादि-परस्मै०) ।

आवाद करना, बसाना, प्रवेश करना ।

वसति (स्त्रो.)—निवास स्थान ।

वसंतोत्सव—वसन्त ऋतु का उत्सव ।

वह्—(प्रेरणार्थक) जाना भ्रमण करना । निर् पूर्वक प्रेरणार्थक करना, व्यवथा करना ।

वाच्य—कलक ।

वाजिन्—घोडा ।

वाद—अफवाह, बातचीत ।

वाम—उलटे आचरण वाला, विरुद्ध आचरण वाला ।

वायम - कौआ ।

वारण—हाथी ।

वारयोषित्—वेश्या ।

वाराणसी—वनारस, काशी ।

वारिधर.—बादल ।

वारियत्र—जल-चक्र (जल को ऊँचा उठाने वाली एक घूमती हुई *पहिया ।)

वार्त—कुशल, कल्याण ।

वार्धक—वृद्धावस्था ।

वासगृहं—मकान का भीतरी हिस्सा ।

विकसित—बड़ा हुआ, फैला हुआ ।

विकार.—रोग, बीमारी ।

विकारहेतुः—प्रलोकन ।

विक्रम—पराक्रम, वीरता ।

विकृतव—डरा हुआ, दुःखित, चकराया हुआ ।

विगुण—बुरा, अयोग्य ।

विग्रह—शरीर, भगडा, शत्रुता ।

विघात—विघ्न, रुकावट, अडचन ।

विचक्षण—विद्वान्, निपुण, चतुर ।

विजया—(और जया)—एक प्रकार का मन्त्र जिससे भूख प्यास की व्यथा दूर हो जाती है और अद्भुत शक्ति मिलती है !

विजिह्व—टेढा, कुटिल ।

विज्ञापना—प्रार्थना ।

विटप—शाखा, डाली ।

विडम्ब—(चुरादि-परस्मै) नकल करना ।

वितथ—भूटा ।

वितीण—पैदा हुआ, उतरा हुआ, दिया हुआ ।

विदग्धता—चतुरता !

विदेश—विदेश, पराया देश ।

विद्युत्त्वत्—बादल ।

विद्विष्—शत्रु ।

विधातृ—सृष्टि कर्ता ।

विधृत—रक्षित ।

विधेय — नौकर ।

विधेयज्ञ — जो अपना कर्तव्य जानता है, आशाकारी ।

विनशतः — दिल्ली के उत्तर पश्चिम में एक देश ।

विनिमय — बदला बदली ।

विपक्ष — शत्रु ।

विपश्चित् — बुद्धिमान्, विद्वान् पुरुष ।

विपिन — जंगल ।

विप्रलब्ध — धाखा खाया हुआ, ठगा हुआ ।

विप्लव — उलट फेर विरुद्धता ।

विभव — जायदाद, ऐश्वर्य धन ।

विभावरी — रात्रि ।

विभु — स्वामी, अधिपति ।

विभ्रम — घबराहट, हानि ।

विमनस् — रजोदा, दुखी, खिन्न ।

विमानित — अपमानित ।

विमार्ग — गलत रास्ता, अनुचित मार्ग ।

विमुक्त — अलग हो गया हुआ ।

विरत — समाप्त, बन्द ।

विराग — असंतोष ।

विराम — बन्द हो जाना, समाप्ति ।

विरोध — वैर ।

शाश्वतविरोध — सहज वैर ।

बिलासः — भोग शृंगार पूर्ण मनो-]

विनोद ।

विवृत — खुला हुआ ।

विवेक — विचार, बुरा भला पहिचानने की सामर्थ्य, निर्णय ।

विश — (अभिनि पूर्वक) तुदादि-आत्मने-बुसना । (सम् पूर्वक) — सोना ।

विशुद्धि — शुद्धता, पवित्रता ।

विशेष — अन्तर ।

विश्रब्ध — (क्रियाविशेष) विश्वासपूर्वक

विश्रम — विश्वास ।

विश्रम्भस्थानम् — विश्वास का पात्र ।

विश्राम — आराम ।

विश्व भरा — पृथ्वी ।

विश्वसनीयता — विश्वास पैदा कर देने की शक्ति ।

विपण — खिन्न ।

विषम — उलटा, कठिन ।

विषय — क्षेत्र, प्रान्त, इन्द्रियों के भोग्य पदार्थ, इन्द्रिय सुख ।

विपाण. ण — मीग ।

विपाद — शोक, भय, दुःख ।

विष्टर — आसन ।

विसर — राशि,

विसृष्ट — बिदा किया हुआ भेज दिया गया हुआ ।

- त्वस्तोर्ण—चोडा, कैला हुआ ।
 विस्फारित—फैला हुआ ।
 विहित—डिगगी, आशा ।
 विह्वल—आकुल, दुखित, शोका-
 भिभूत ।
 विह्वलता—व्यथा ।
 वीरसू—वीर पुत्र पैदा करने वाली ।
 वृ—चुरादि, परस्मै, मॉगना ।
 वृकोदर—भीम ।
 वृज्—चुरादि-परस्मै, निकालना,
 (आपूर्वक)-मुकाना, (विपूर्वक)
 रहित होना, हीन होना ।
 वृत्—(निर् पूर्वक प्रेरणार्थक) खतम
 करना । (परि पूर्वक) चक्कर
 काटना, (प्रपूर्वक) पैदा होना,
 उठना, शुरू होना, (व्यपपूर्वक)
 पीछे को धूम जाना ।
 वृत्ति.—(स्त्री) जीविका, व्यवहार
 आचरण ।
 वृद्धि—(स्त्री) बढतो, बढना ।
 वृषल—शूद्र, चन्द्रगुप्त की पदवी ।
 वृषांक—शिवजी (जिनके ध्वज पर
 बैल का चिह्न है) ।
 वृष्टि—वर्षा ।
 वेग—तेजी ।
 वेगानिल—तेज हवा का झोंका ।
 वेणुलता—बॉस की छड़ ।
 वेतस—वेत, नरकुल ।
 वेदि-दी—वेदी, यज्ञ की वेदी हाम
 करने की वेदी ।
 वेधस्—ब्रह्मा ।
 वेशवेनिता—वेश्या ।
 वेशमन्—घर ।
 वैष्टन—पगड़ी ।
 वैकृत—अशुभ लक्षण ।
 वैतान—यज्ञ सम्बन्धी, पवित्र ।
 वैतानिक—पवित्र, यज्ञ में अर्पित ।
 वैतालिक—भाट ।
 वैदेही—सीता ।
 वैद्युतानल—बिजली की आग ।
 वैरिन्—शत्रु ।
 वैहायस—हवा में स्थित, हवाई ।
 व्रत—आचरण पद्धति ।
 व्रीडित—लजित ।
 व्यक्ति—(स्त्री०)--प्राकृत्य, आविर्भाव
 व्यक्तं—(क्रियाविशे०)-स्पष्ट ही है ।
 व्यग्रत्व—किसा चीज में लगा होना ।
 व्यजन—पखा ।
 व्यति.र—घटना ।
 व्यपदेश—कुल, नाम, जाति ।
 व्यय—खर्च, विघ्न, रुकावट, हानि ।
 व्यलीकं—दुख, शोक ।

व्यवहार —अदालती तरीका ।	पूर्वक लगा हुआ ।
व्यवहारासन—न्यायालय ।	व्याल —साँप ।
व्यवहित—अलग किया हुआ ।	व्याध —बहुलिया, शिकारी ।
व्यसन—दुःख, आवश्यकता, कठि- नता, खूब दृढता-पूर्वक लगन ।	व्याहार } व्याहति } शब्द, वाणी ।
व्याकुल—गहरे से अथवा ध्यान	

श

शकल—डुकेडा ।	रक्षार्थ आया हुआ ।
शक्ति—एक अद्भुत अस्त्र ।	शरद्—(स्त्री) वर्ष, साल ।
शक्र.—इन्द्र ।	शरव्य—निशाना, लक्ष्य ।
शची—इन्द्र की पत्नी ।	शर्मन्—सुख ।
शकुः—कौटा, बाण ।	शक्वरी—रात्रि ।
शप्—भ्वादि-उभयपदो-निन्दा करना ।	शरासन—धनुष ।
शबरः—पहाड़ी जाति का व्यक्ति ।	शरीरिन्—शरीर धारी, प्राणी ।
शब्दः—शब्द, पदवी ।	शल्य—बाण ।
शम्—(निपूर्वक) द्विवादि-परस्मै- सुनना, पाना । (प्रेरणार्थक) हटाना, दवाना, दमन करना (प्रपूर्वक-प्रेरणार्थक) तै करना ठीक करना ।	शश —खरगोश ।
शमयितृ—नाशकर्ता ।	शश्वत्—(त्रियाविशे.)- हमेशा के लिए ।
शरजन्मन्—कार्तिकेय, परमुख ।	शस्त्रभृत्—अस्त्रधारी, योद्धा ।
शरणा—घर ।	शाखामृग —बन्दर ।
शरणागत—शरण में आया हुआ,	शांत—हलका हो गया हुआ, घट गया हुआ, हटा हुआ ।
	शान्ति—नाश, हटाव ।
	शालि—एक प्रकार का धान ।